



# द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 75 अंक : 06  
सितंबर, 2025



# हिन्दी दिवस



की हार्दिक  
शुभकामनाएं

एक हृदय हो भारत जननी

# द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

[www.arpsguwahati.com](http://www.arpsguwahati.com)

वर्ष : 75

अंक : 06

सितंबर, 2025

## परामर्श मंडल

- भारतभूषण महंत (असम) • प्रो. आर. एस. सर्राजू (तेलंगाना) • प्रो. किरण हाजरिका (पंजाब)  
• प्रो. प्रदीप के शर्मा (सिक्किम) • प्रो. एच. एन. वाधेला (गुजरात) • डॉ. रीतामणि वैश्य (असम)

## संपादक मंडल

- प्रो. देवाशीष महापात्र (तेजपुर) • डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन (गुवाहाटी) • प्रो. दिलीप कुमार मेधी (गुवाहाटी)  
• डॉ. अनुशब्द (तेजपुर) • डॉ. कुसुम कुंज मालाकार (गुवाहाटी) • डॉ. जुरी दत्त (तेजपुर)  
• डॉ. अंबेश्वर गोगोई (गुवाहाटी) • डॉ. प्रांजल शर्मा वशिष्ठ (गुवाहाटी) • डॉ. स्वप्नाली दास (गुवाहाटी)

## प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया

## संपादक

प्रो. मोहन

## कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद



असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

**DWIBHASHI RASTRASEWAK** : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

*प्रकाशक :*

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति  
गुवाहाटी-32

*संपादकीय कार्यालय :*

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक  
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति  
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32  
फोन : 9101541395, 9101541380  
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकान्त कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया द्वारा सराइघाट फोटो टाइप्स प्रा. लिमिटेड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

© सर्वाधिकार : असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32

---

द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

---

## विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
<b>हिंदी विभाग</b>			
	संपादकीय		5
1.	भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में विकास लांबा का सामाजिक चिंतन	✍ प्रो. प्रदीप के. शर्मा	7
2.	हिंदी भाषा के प्रसार और संवर्धन में हिंदी सेवी संस्थाओं का योगदान	✍ डॉ मुकेश कुमार	12
3.	भारतीय ज्ञान परंपरा और प्रेमचंद की कहानियों में शिक्षा का संदर्भ	✍ डॉ रमाकान्त राय	23
4.	राष्ट्र एकता के पुरोध पुरुष : डॉक्टर बी.आर. अंबेडकर	✍ डॉ. समीर	
		✍ डॉ. सोनिया शर्मा	27
5.	काव्य का श्रेष्ठतम रूप : कविता और संगीत	✍ डॉ. संतोष कुमार गुप्ता	
		✍ डॉ. मनोज कुमार गोस्वामी	33
6.	स्त्री जीवन के आत्मसंघर्ष का सशक्त दस्तावेज 'नदी' उपन्यास	✍ डॉ. मृणालिनी पारीक	38
7.	दलित महिला जीवन-लेखन में पर्यावरण संबंधी आलोचना : कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' में भूमि, पर्यावरण और स्त्री-सक्रियता का अध्ययन	✍ रीना कुमारी राय	44
8.	राम राज्य : एक समग्रात्मक विश्लेषण	✍ आनंद सक्सेना	49
9.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : परिकल्पना एवं संभावनाएँ	✍ नेहा साव	54
10.	दांपत्य संबंधों के यथार्थ को अभिव्यक्ति देता नासिरा शर्मा का 'शाल्मली' उपन्यास	✍ भारती	
		✍ डॉ. निशा यादव	60
11.	पूर्वोत्तर भारत में हिंदी साहित्य : अरुणाचल प्रदेश के विशेष संदर्भ में	✍ प्रिया साहू	64
12.	पूर्वोत्तर राज्य की भूमि मणिपुर और मेघालय के संगीत एवं नृत्य पर विवेचन	✍ डॉ. नीरज कुमारी	70
13.	नई कविता में प्रकृति और आत्मसंघर्ष : मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य	✍ योगेश कुमार	
		✍ डॉ. कमलेश कुमारी	75
14.	पुराणों में पर्यावरणीय चेतना- एक समीक्षात्मक अध्ययन	✍ डॉ. निलाक्षी मिलि मेदक	80
15.	अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान और द्वितीय भाषा शिक्षण	✍ डॉ. नवनाथ गाडेकर	84
16.	कारक : हिंदी और असमीया व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में	✍ एन.ओकेन्द्रो सिंह	89
17.	रवाई में प्रचलित जागर लोक गीत विधा एक साहित्यिक विमर्श	✍ प्रमोद प्रसाद	95
18.	नवजागरण की अधूरी तस्वीर : भारतेंदु युगीन स्त्री-शिक्षा बनाम वीर भारत तलवार की 'रस्साकशी'	✍ सुप्रभा महतो	104
19.	राभा समाज में विवाह पद्धति: एक अवलोकन	✍ वर्षा राभा	
		✍ अनुज कुमार	110
20.	'देखा है उन्हें' : रवींद्र उपध्याय की कविताओं से गुजरते हुए	✍ रजनीश कुमार	117
21.	श्रीमंत शंकरदेव और दादू दयाल के काव्य में समन्वय की भावना	✍ सोनी रुमछु	122

## অসমীয়া বিভাগ

22.	অসমৰ চাহ-বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকসকলে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানসমূহৰ সম্পৰ্কে এটি অধ্যয়ন	শ্ৰ ড° মৃদুস্মিতা দুৱাৰা শ্ৰ ড° উৎপল ডেকা	128
23.	পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্বৰ আধাৰত ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ অধ্যয়ন	শ্ৰ এঞ্জেলিকা শইকীয়া শ্ৰ ড° বনশ্ৰী দাস	136
24.	অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষা আৰু ভাষা-পৰিকল্পনা	শ্ৰ ড° পাপুমণি হাজৰিকা শ্ৰ ড° বৰ্ণালী গগৈ	145
25.	সাহিত্যত নাৰীৰ স্বাস্থ্য আৰু নাৰীৰ স্বাস্থ্য সজাগতাৰ প্ৰতিফলন (য়েছে দৰজে ঠংচিৰ বিষকন্যাৰ দেশত উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লেখৰে)	শ্ৰ ড° পুষ্পাঞ্জলি হাজৰিকা	152
26.	কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য	শ্ৰ ড° মানস জ্যোতি নিৰ্মলীয়া	157
27.	বিশ্বায়ন আৰু অসমৰ থলুৱা সংস্কৃতিৰ বাণিজ্যিকীকৰণ	শ্ৰ ড° মালবিকা বাগলাৰী	164
28.	ড° ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ চুটিগল্প 'গ্ৰহণ' : এক অৱলোকন	শ্ৰ ড° নন্দিতা গোস্বামী	168
29.	অসমীয়া চুটিগল্পত আন্দোলনৰ প্ৰতিচ্ছবি : এক আলোচনা (বিশেষ উল্লেখন চৈয়দ আব্দুল মালিকৰ 'পোৰা গাঁৱত পহিলা ব'হাগ', যতীন্দ্ৰ কুমাৰ বৰগোহাঞিৰ 'পিতৃ' আৰু অৰূপা পটংগীয়া কলিতাৰ 'অস্থি')	শ্ৰ ড° ভাস্কৰজিৎ বৰা	173
30.	গঠনমূলক উপন্যাসৰ আধাৰত নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ উপন্যাস 'অভিযাত্রী' : এক বিশ্লেষণ	শ্ৰ বৰ্ণালী দত্ত শ্ৰ ড° স্বপ্নালী দাস	180
31.	শংকৰদেৱৰ কীৰ্তন ঘোষাৰ ৰস বিচাৰ - এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন	শ্ৰ ড° বন্দনা বৰুৱা	184
32.	আউলিঙৰ জুই উপন্যাসত বাধাগ্ৰস্ততাৰ উদ্ভৱ-ঔপনিৱেশিক তাৎপৰ্য বিচাৰ	শ্ৰ অংশুমান বৰা শ্ৰ ড° ৰাখী কলিতা মৰল	188
33.	ৰুদ্ৰানী শৰ্মাৰ কাঁহিবুনৰ মালিতা উপন্যাসত প্ৰতিফলিত সমলয় আৰু সংঘাতৰ চিত্ৰ : এক আলোচনা	শ্ৰ বন্দিতা শইকীয়া	194
34.	ফেৰেংগাদাও উপন্যাসত লোকসাহিত্যৰ সমল : এক অধ্যয়ন	শ্ৰ ভৃগুশ্ৰম বৰা শ্ৰ ড° ধীৰাজ পাটৰ	199
35.	অসমীয়া গল্পত 'হৃদপিণ্ড সংৰোপণ' বিষয় : এক চমু অৱলোকন (ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ 'গহুৰ' গল্পৰ বিশেষ অধ্যয়ন)	শ্ৰ বিমবিম গগৈ শ্ৰ দীপাঞ্জলি দাস গোস্বামী	207
36.	আধ্যাত্মিকতা, যৌনতা আৰু ধৰ্মীয় শোষণঃ উৰিষ্যা আৰু অসমৰ দেৱদাসী প্ৰথাৰ এক লিংগভিত্তিক অধ্যয়ন	শ্ৰ সুমন ভূঞা শ্ৰ ড° প্ৰীতিমা গগৈ	211
37.	দেবেন্দ্ৰনাথ আচাৰ্য্যৰ 'অন্য যুগ অন্য পুৰুষ' উপন্যাসত	শ্ৰ শিৱানী দাস শ্ৰ ড° গুণীন শইকীয়া	217
38.	ভাৰতবৰ্ষত কিম্বৰ আখৰা	শ্ৰ মিতালী কুমাৰী	223
39.	ডাঙৰীৰ বৌদ্ধিক জাগৰণঃ এক অধ্যয়ন	শ্ৰ মানস প্ৰতীম সোনোৱাল	229

## हिंदी के प्रचार-प्रसार में महात्मा गांधी जी का योगदान

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महानायक महात्मा गांधी ने जिस तरह राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक नेतृत्व प्रदान किया, उसी प्रकार उन्होंने भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी को राष्ट्रीय जीवन में प्रतिष्ठित करने का ऐतिहासिक कार्य भी किया। भाषा को उन्होंने केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं माना, बल्कि राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक जागरण और जनशक्ति के संगठन का अनिवार्य आधार समझा। आज जब वैश्वीकरण, तकनीक और उपभोक्तावाद के दौर में भारतीय भाषाएँ नई चुनौतियों से जूझ रही हैं, तब हिंदी के प्रचार-प्रसार में गांधी जी की दृष्टि पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक प्रतीत होती है।

गांधी जी का विश्वास था कि किसी भी राष्ट्र की आत्मा उसकी मातृभाषा में बसती है। अंग्रेजी के अत्यधिक प्रभुत्व को वे 'मानसिक गुलामी' का प्रतीक मानते थे। उनका प्रसिद्ध कथन- 'राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा हो जाता है' भारत की भाषायी नीति की दिशा निर्धारित करने वाला सिद्धांत बन गया। उनके लिए हिंदी का चयन किसी क्षेत्रीय या संकीर्ण दृष्टिकोण का परिणाम नहीं था, बल्कि वह पूरे भारत की जनताजनार्दन की भाषा थी। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम भारत के अधिकतर हिस्सों में हिंदी या उससे संबद्ध बोलियों का व्यापक प्रभाव था। अतः गांधी जी के अनुसार हिंदी भारत की जनता को जोड़ने वाली स्वाभाविक कड़ी बन सकती थी।

गांधी जी स्वयं अंग्रेजी में निपुण थे, किंतु उन्होंने अंग्रेजी माध्यम को भारतीय समाज के विकास में बाधक माना। उनका कहना था कि अंग्रेजी भारतीयों को अपनी जड़ों से काटती है, सोचने के स्वाभाविक ढंग में अवरोध डालती है और शिक्षा को अभिजात्यों के सीमित वर्ग तक सीमित कर देती है। उन्होंने तर्क दिया कि जब तक शिक्षा जनभाषा में नहीं होगी, तब तक स्वतंत्र विचार और नवाचार असंभव है। इसलिए उन्होंने प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक भारतीय भाषाओं के माध्यम को बढ़ावा देने का अभियान चलाया। हिंदी इस प्रयास का केंद्र बनी।

गांधी जी की यह मान्यता थी कि कोई भी आंदोलन सफल तभी होता है, जब उसकी भाषा जनता की भाषा हो। इसी आधार पर उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को हिंदी के माध्यम से व्यापक जनसमर्थन दिलाया। उनके भाषण, लेख, सभाएं और सत्याग्रह घोषणाएं हिंदी में होती रहीं, ताकि ग्रामीण, अशिक्षित और आम भारतीय भी आंदोलन को समझ सकें।

गांधी जी के संपादन में निकलने वाले 'नवजीवन', 'यंग इंडिया' और 'हरिजन' जैसे पत्रों ने हिंदी पत्रकारिता को नई दिशा दी। उनके हिंदी लेख सरल, सहज, स्पष्ट और प्रभावशाली होते थे, जो सामान्य पाठक को सीधे प्रभावित करते थे। उन्होंने पत्रकारिता को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम किया और भाषा को जनता से जोड़ा। एक ऐसी पत्रकारिता विकसित हुई जिसमें राष्ट्रवाद, सत्य, स्वच्छता, गांधी का पुनर्निर्माण और आत्मनिर्भरता जैसे विषयों पर व्यापक विमर्श हुआ। इन पत्रों ने हिंदी को आधुनिक विचार-विमर्श का मंच प्रदान किया।

गांधी जी ने हिंदी और उर्दू के साझा भाषायी रूप जिसे वे 'हिंदुस्तानी' कहते थे का समर्थन किया। उनके अनुसार भारतीय समाज की विविधता को ध्यान में रखते हुए दोनों भाषाओं के सहज, मिलनसार रूप को राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहिए। यह विचार उनके भाषाई लोकतंत्र का प्रमाण है। उन्होंने कहा था कि भारत की भाषा विभाजन की नहीं, बल्कि मेल-मिलाप की होनी चाहिए। हिंदुस्तानी की अवधारणा आज भी भाषाई सौहार्द और विविधता में एकता की प्रतीक मानी जाती है।

गांधी जी ने अपने सभी आश्रमों में हिंदी के प्रयोग को अनिवार्य बनाया। सेवाग्राम और साबरमती जैसे आश्रम हिंदी सीखने और लिखने के केंद्र बने। अनेक कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने हिंदी सीखने के लिए गांधी जी से प्रेरणा ली। असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी की स्थापना भी उसी उद्देश्य से हुई, जिसने बाद में हिंदी शिक्षण और प्रशिक्षण का अभियान चलाया। यह संस्था आज भी गांधी जी के आदर्शों के अनुरूप हिंदी शिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

गांधी जी ने भाषा को आर्थिक और सामाजिक स्वावलंबन से जोड़ा। वे मानते थे कि जब तक भारतीय अपनी मातृभाषाओं में व्यापार, शासन, शिक्षा और न्याय प्रणाली नहीं स्थापित करेंगे, तब तक स्वराज अधूरा रहेगा। वे 'स्वदेशी' की अवधारणा में भाषा को केंद्रीय तत्व मानते थे। उनका विचार था कि अपनी भाषा में व्यवसाय करना, शोध करना, प्रशासन चलाना और निर्णय लेना ही आत्मनिर्भरता का वास्तविक रूप है।

आज भारत तेजी से बदल रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी, वैश्विक व्यापार, शिक्षा का बाजारीकरण और इंटरनेट ने भाषाओं को एक नई प्रतिस्पर्धा में ला खड़ा किया है। अंग्रेजी अभी भी उच्च शिक्षा और कॉर्पोरेट जगत में प्रमुख स्थान रखती है। ऐसे समय में गांधी जी के विचार हमें याद दिलाते हैं कि यदि भारत को अपने ज्ञान, संस्कृति और नवाचार को विश्व मंच पर स्थापित करना है, तो उसे अपनी भाषाओं को भी समान रूप से विकसित और सशक्त करना होगा। हिंदी, जो विश्व की सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है, इस भूमिका को निभाने की क्षमता रखती है।

हिंदी के प्रचार-प्रसार में महात्मा गांधी जी का योगदान केवल स्वतंत्रता आंदोलन के संदर्भ में महत्वपूर्ण नहीं था, बल्कि वह आधुनिक भारत की भाषाई नीतियों के निर्माण की बुनियाद भी बना। उन्होंने भाषा को राष्ट्रीय स्वाभिमान, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक एकता से जोड़ा। उनके प्रयासों ने हिंदी को राष्ट्रव्यापी पहचान दी और उसे जनभाषा के दर्जे पर प्रतिष्ठित किया।

आज आवश्यकता है कि हम गांधी जी की उस दृष्टि को पुनः समझें, जिसमें भाषा केवल शब्दों का संग्रह नहीं, बल्कि राष्ट्र की आत्मा का दर्पण है। गांधी जी के अथक प्रयास हमें याद दिलाते हैं कि अपनी भाषा में सोचने और बोलने वाला समाज ही वास्तविक रूप से आत्मनिर्भर बन सकता है।

□□□

## भारतीय ज्ञान परम्परा के आलोक में विकास लांबा का सामाजिक चिंतन

### शोध-सार :



प्रो. प्रदीप के. शर्मा

भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध चिंतन-परम्पराओं में से एक है, जिसका आधार सत्य, अहिंसा, धर्म, करुणा, सहअस्तित्व और मानव-मूल्यों पर टिका है। यह परंपरा केवल दार्शनिक विमर्श नहीं, बल्कि जीवन के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया है। आधुनिक युग में विकास लांबा जैसे चिंतक इस परम्परा के पुनराविष्कार और अनुकरण के माध्यम से सामाजिक जागरूकता तथा मानवीय मूल्यों के पुनर्स्थापन का कार्य कर रहे हैं। लांबा का सामाजिक चिंतन भारतीय सांस्कृतिक विरासत से प्रेरित होकर समसामयिक समाज की विसंगतियों पर प्रश्न उठाता है तथा समाज में नैतिकता, समरसता और मानवीय संवेदनशीलता की पुनः स्थापना की आवश्यकता पर बल देता है। उनके विचारों में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भारतीय भावना और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की विश्व-दृष्टि सशक्त रूप में प्रकट होती है।

प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल तत्वों का विश्लेषण करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि विकास लांबा का सामाजिक चिंतन पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक सामाजिक संदर्भों में पुनः जीवंत करने का प्रयत्न है। वे न केवल परम्परा के अनुकरणकर्ता हैं, बल्कि उसके विकासशील स्वरूप के प्रवक्ता भी हैं। उनका चिंतन भारतीय ज्ञान-संस्कृति की आत्मा को आज के युग की आवश्यकताओं के अनुरूप रूपांतरित करता है, जिससे परंपरा और आधुनिकता का सशक्त समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

### बीज शब्द :

परंपरा, विकास लांबा, सामाजिक चिंतन, आधुनिकता, संस्कृति, नैतिक मूल्य, मानवीय संवेदना, सहअस्तित्व, समरसता, भारतीय दर्शन।

### मूल आलेख :

भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की उन अद्वितीय सांस्कृतिक परम्पराओं में से है, जिनकी जड़ें मानव सभ्यता के प्रारंभिक काल तक फैली हुई हैं। 'यह परम्परा किसी एक धर्म, मत या समुदाय की बौद्धिक धरोहर नहीं, बल्कि समूचे भारतीय मानस की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें वेदों की ऋचाओं से लेकर उपनिषदों के अद्वैत दर्शन तक, महाभारत के नीति-शास्त्र से लेकर बौद्ध-जैन ग्रंथों के करुणा-सिद्धांत तक, और तुलसी, कबीर, विवेकानंद, गांधी,

अध्यक्ष, हिंदी विभाग  
सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय  
गंगटोक, सिक्किम-737102  
☎ 8056067674

अरविन्द जैसे आधुनिक विचारकों तक एक अखंड विचार-धारा बहती रही है। इस ज्ञान परम्परा का मूल स्वर है— एकत्व का बोध; वह बोध जो व्यक्ति, समाज, प्रकृति और ब्रह्म के बीच सामंजस्य स्थापित करता है।<sup>1</sup>

भारतीय ज्ञान परम्परा का लक्ष्य केवल बाह्य ज्ञान अर्जन नहीं रहा, बल्कि आंतरिक आत्मबोध की सिद्धि रहा है। यहाँ ज्ञान का अर्थ है— 'स्वयं के सत्य स्वरूप की पहचान। वेदांत के 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'तत्त्वमसि' जैसे महावाक्य इसी आत्मबोध के साक्ष्य हैं। इस ज्ञान का प्रभाव भारतीय समाज के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है— धर्म, राजनीति, शिक्षा, कला, विज्ञान, समाज-संगठन सभी में। यह परंपरा कहती है कि वास्तविक प्रगति केवल भौतिक समृद्धि से नहीं, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक विकास से संभव है।'<sup>2</sup>

आधुनिक युग में जब पश्चिमी भौतिकतावाद ने मानव जीवन को उपभोगवादी दिशा दी, तब भारतीय चिंतन के इस शाश्वत संदेश की पुनः प्रासंगिकता सामने आई। इसी पुनर्पाठ के संदर्भ में विकास लांबा का चिंतन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने भारतीय ज्ञान परम्परा को आधुनिक समाजशास्त्रीय संदर्भों में पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया है। लांबा का चिंतन इस बात का साक्ष्य है कि भारतीय परम्परा गतिहीन नहीं, बल्कि सृजनशील और गतिशील है, जो काल, परिस्थिति और समाज के अनुसार अपने रूप और अर्थ का नवीनीकरण करती रहती है।

विकास लांबा का जन्म हरियाणा राज्य के जिला जींद के ऐतिहासिक कस्बे सफीदों के समीप स्थित ग्राम हरिगढ़ में एक साधारण किसान परिवार में हुआ। उनके पिता चौधरी रिछपाल सिंह लांबा एक कर्मठ, ईमानदार एवं श्रमशील कृषक हैं, जबकि माता श्रीमती सुनीता देवी धार्मिक प्रवृत्ति की, संस्कारवान और मृदुभाषी महिला हैं। पारिवारिक वातावरण में उन्हें बचपन से ही श्रम, ईमानदारी और देशभक्ति के संस्कार प्राप्त हुए। यही संस्कार आगे चलकर उनके व्यक्तित्व की बुनियाद बने।

उनका हिंदी भाषा और साहित्य के प्रति गहरा अनुराग है। वे हिंदी को न केवल मातृभाषा के रूप में देखते हैं,

बल्कि उसे भारतीय संस्कृति की आत्मा मानते हैं। उनका मानना है कि हिंदी भाषा में अपनापन, सौहार्द और राष्ट्रीय एकता का भाव निहित है। अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे हिंदी का प्रयोग गर्व के साथ करते हैं और दूसरों को भी मातृभाषा के सम्मान हेतु प्रेरित करते हैं।

राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा और समर्पण उनकी कार्यशैली में स्पष्ट दिखाई देता है। वर्तमान में विकास लांबा चंडीगढ़ ट्रांसपोर्ट यूनियन (CTU) में परिचालक (कंडक्टर) पद पर कार्यरत हैं। अपनी ड्यूटी के दौरान वे यात्रियों के प्रति सम्मान, शालीनता और मानवता का व्यवहार करते हैं। वे सेवा को केवल नौकरी नहीं, बल्कि जनसेवा का माध्यम मानते हैं। वे सदैव अनुशासन, समयनिष्ठा और ईमानदारी से अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं।

उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाला व्यक्ति भी दृढ़ संकल्प, परिश्रम और नैतिक मूल्यों के बल पर समाज में अपनी विशिष्ट पहचान बना सकता है। उनकी देशभक्ति, कर्मनिष्ठा और हिंदी प्रेम युवाओं के लिए प्रेरणास्रोत हैं।

उनका सामाजिक चिंतन इस परम्परा की जड़ों से अनुप्राणित होते हुए आधुनिक समाज की जटिल समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। 'उनके चिंतन में गांधी के नैतिक अहिंसावाद, विवेकानन्द के आत्मबल और स्वामी अरविन्द के अंतःप्रज्ञा-दर्शन का समन्वय दिखाई देता है। वे कहते हैं कि भारत का भविष्य तभी उज्वल हो सकता है जब हम अपनी सभ्यता के मूल तत्वों—सत्य, धर्म, करुणा, सह-अस्तित्व और मानवता को आधुनिक संस्थागत संरचनाओं में पुनः स्थापित करें।'<sup>3</sup>

लांबा के विचार में भारतीय ज्ञान परम्परा केवल अतीत की गौरवगाथा नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की दिशा है। वे 'ज्ञान' को जीवन की जड़ मानते हैं और कहते हैं कि— 'जब तक समाज अपने ज्ञान-स्रोतों से कटा रहेगा, तब तक उसका विकास अधूरा रहेगा। उनके अनुसार पश्चिम का विकास बाह्य तकनीकी उन्नति पर आधारित है, जबकि भारत की प्रगति आत्मिक अनुशासन पर आधारित है। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि भारतीय ज्ञान परम्परा 'विरोध' नहीं, बल्कि 'समन्वय' की संस्कृति है। यहाँ परम्परा और आधुनिकता, अध्यात्म और विज्ञान, व्यक्ति

और समाज, सब एक दूसरे के पूरक हैं।'<sup>4</sup>

लांबा की दृष्टि में आज 21 वीं सदी के समाज को पुनः नैतिक आधार की आवश्यकता है। वे मानते हैं कि समाज तभी संतुलित रह सकता है जब व्यक्ति आत्मानुशासित और करुणामय हो। यह विचार भगवद्गीता के कर्मयोग दर्शन से जुड़ा है, जहाँ श्रीकृष्ण कहते हैं कि अपने कर्तव्य का पालन ही परम धर्म है। लांबा के अनुसार आधुनिक समाज की सबसे बड़ी समस्या 'कर्तव्य-बोध' का लोप है। शिक्षा, राजनीति, और अर्थव्यवस्था सभी में नैतिकता का संकट है, क्योंकि भारतीय ज्ञान परम्परा का जीवन-सूत्र विस्मृत हो गया है। वे कहते हैं, 'जहाँ जीवन से धर्म हट जाता है, वहाँ संस्कृति केवल औपचारिकता रह जाती है।'<sup>5</sup>

उनका चिंतन इस विचार पर आधारित है कि शिक्षा केवल रोजगार का साधन नहीं, बल्कि संस्कार और सृजन का माध्यम है। वे इस बात पर बल देते हैं कि आधुनिक शिक्षा-पद्धति ने 'आत्मा' को विस्मृत कर दिया है। भारतीय परम्परा में 'विद्या' का अर्थ ज्ञान का वह रूप है जो विनम्रता, दया, और सह-अस्तित्व को जन्म दे। वे 'विद्या ददाति विनय' के शास्त्रीय सूत्र को पुनः जीवित करना चाहते हैं। उनके विचार में सच्ची शिक्षा वही है जो व्यक्ति को समाजोपयोगी, नैतिक और आत्मनिर्भर बनाए।

उनका चिंतन आत्मनिर्भरता को भारतीयता का प्राण मानता है। वे गांधी के 'स्वावलम्बन' और 'स्वदेशी' सिद्धांत को आधुनिक समाज और आर्थिक ढाँचे के अनुरूप विकसित करते हैं। उनके अनुसार आत्मनिर्भरता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि मानसिक और नैतिक स्वतंत्रता है। जब तक व्यक्ति अपने श्रम और विवेक पर विश्वास नहीं करेगा, तब तक समाज सशक्त नहीं बन सकता। वे कहते हैं कि 'परनिर्भर समाज सदैव भय और भ्रम में जीता है, जबकि आत्मनिर्भर समाज सृजनशील होता है।'<sup>6</sup>

लांबा जी के चिंतन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है- उनका पर्यावरणीय दृष्टिकोण। वे भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित प्रकृति-संवेदन को आधुनिक पर्यावरण-चिंतन का मूल मानते हैं। भारत की परम्परा में पृथ्वी को माता, नदियों को देवी, वृक्षों को देवता कहा गया है। यह केवल

प्रतीक नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति सम्मान का भाव है। वे कहते हैं कि- 'जब तक मनुष्य प्रकृति से संवाद नहीं करेगा, तब तक वह स्वयं से भी विमुख रहेगा।' वे आधुनिक 'सस्टेनेबल डेवलपमेंट' की अवधारणा को भारतीय 'पृथ्वी-माता' के भाव से जोड़ते हैं। उनके विचार में भारतीय संस्कृति का यह पर्यावरणीय दृष्टिकोण वैश्विक संकट के समाधान का मार्ग हो सकता है।

उनका सामाजिक चिंतन समन्वयवादी है। वे कहते हैं कि समाज तभी विकसित होगा जब व्यक्ति और समुदाय के हितों में संतुलन हो। व्यक्ति की स्वतंत्रता और समाज की मर्यादा, दोनों का समन्वय ही संस्कृति की पहचान है। यही भारतीय दर्शन की 'लोकसंग्रह' भावना है। यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि वे किसी एक विचारधारा या पंथ तक सीमित नहीं हैं, बल्कि एक व्यापक मानवीय दृष्टि रखते हैं। उनके लिए 'भारतीयता' किसी जाति या भूगोल की अवधारणा नहीं, बल्कि मूल्य-सम्पन्न जीवन-दर्शन है।

लांबा के चिंतन में बार-बार यह भावना उभरती है कि भारत को विश्वगुरु बनने के लिए केवल तकनीकी या आर्थिक विकास पर्याप्त नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास भी आवश्यक है। वे कहते हैं कि 'विज्ञान हमें साधन देता है, पर दिशा नहीं; और दिशा वही दे सकता है जो आत्मा को जानता है।'<sup>7</sup> उनके अनुसार, भारतीय ज्ञान परम्परा हमें यह दिशा देती है, कि विकास का आरंभ व्यक्ति की आत्मा से होता है और उसका परिणाम समाज की समरसता में दिखाई देता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा का अनुकरण करते हुए वे यह दिखाते हैं कि परम्परा का अर्थ जड़ता नहीं, बल्कि निरंतर प्रवाह है। वे इस धारणा के विरोधी हैं कि आधुनिकता का अर्थ पश्चिमीकरण है। उनके अनुसार, सच्ची आधुनिकता वह है जो अपनी जड़ों को पहचाने और उन्हें समय के अनुसार पुनर्गठित करे। वे आधुनिक विज्ञान और भारतीय अध्यात्म को एक दूसरे के विरोध में नहीं, बल्कि सहयोगी मानते हैं। उनके लिए विज्ञान बाह्य सत्य की खोज है और अध्यात्म आंतरिक सत्य की। दोनों के समन्वय से ही समग्र ज्ञान संभव है।

लांबा जी के सामाजिक चिंतन में नैतिकता, शिक्षा, आत्मनिर्भरता, पर्यावरण और समरसता—पाँच प्रमुख आधार दिखाई देते हैं। ये सभी भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल तत्व हैं। वे अपने साक्षात्कार में कहते हैं कि – ‘भारत का पुनर्निर्माण केवल नीतियों से नहीं, बल्कि ‘संस्कारों’ से भी होगा। संस्कृति का संरक्षण ग्रंथों से नहीं, जीवन-चर्या से होता है। यही भारतीय ज्ञान परम्परा का सार है, जहाँ ज्ञान और आचरण में कोई विभाजन नहीं।’<sup>8</sup>

विकास जी का व्यक्तित्व भारतीय जीवन मूल्यों की जीवंत प्रतिमूर्ति है। आपका जीवन केवल विचारों तक सीमित नहीं, बल्कि कर्म और व्यवहार में भी भारतीय संस्कृति की उस आत्मा को अभिव्यक्त करता है, जो प्रत्येक मनुष्य में देवत्व की संभावना देखती है। जब वे बस में परिचालक (कंडक्टर) की भूमिका निभाते हैं, तो यह केवल एक पेशागत जिम्मेदारी नहीं रहती, बल्कि एक सामाजिक और मानवीय सेवा बन जाती है। उनके व्यवहार में वह आदरभाव, करुणा और संवेदनशीलता दिखाई देती है जो भारतीय ज्ञान परम्परा की नींव है।



उनका मानना है कि प्रत्येक मनुष्य अपने स्थान और कार्य से नहीं, बल्कि अपने कर्म के भाव से महान बनता है। बस परिचालक के रूप में वे यात्रियों को केवल यात्री नहीं, बल्कि ‘अतिथि’ मानते हैं। वे नम्रता, संयम और सौम्यता के साथ यात्रियों से संवाद करते हैं। उनका यह चिंतन गीता के कर्मयोग सिद्धांत से प्रेरित है, जहाँ कर्म को पूजा और सेवा के रूप में देखा गया है। लांबा जी मानते हैं कि प्रत्येक कार्य, यदि समर्पण और सेवा भाव से किया जाए, तो वह साधना बन जाता है।

उनके व्यवहार में गहरी मानवता और सहृदयता का भाव है। वे वृद्धों, महिलाओं, बच्चों या दिव्यांग यात्रियों की सहायता करने में सदैव अग्रणी रहते हैं। कभी किसी यात्री के पास किराए की कमी हो तो वे कठोरता नहीं दिखाते, बल्कि मानवीय संवेदना से उसे समझते हैं। वे कहते हैं—‘मानवता हर पेशे का मूल है; यदि उसमें संवेदना नहीं, तो वह केवल यांत्रिक क्रिया बन जाती है। यही भाव उन्हें सामान्य परिचालक से विशिष्ट बनाता है।’<sup>9</sup>

वे अपने कर्तव्य को समाज-सेवा का माध्यम मानते हैं। बस को केवल परिवहन का साधन नहीं, बल्कि समाज के विविध वर्गों का संगम स्थल मानते हैं। बस में सवार प्रत्येक व्यक्ति एक कहानी, एक जीवन, और एक संघर्ष लेकर आता है। इस विविधता में सामंजस्य स्थापित करना ही भारतीयता की पहचान है। इसीलिए वे प्रत्येक यात्री के प्रति समान सम्मान रखते हैं, चाहे वह मजदूर हो, छात्र, किसान या अधिकारी।

‘उनका आचरण भारतीय ज्ञान परंपरा के उस सिद्धांत को मूर्त रूप देता है—‘अतिथि देवो भव’। यात्रियों से उनका संवाद विनम्र और आत्मीय होता है। वे कठिन परिस्थितियों में भी धैर्य नहीं खोते, क्योंकि वे मानते हैं कि ‘सेवा में क्रोध का स्थान नहीं,

केवल करुणा का होना चाहिए।' उनका यह दृष्टिकोण गांधीवादी चिंतन के 'अहिंसक व्यवहार' और विवेकानन्द के 'मानव-सेवा ही ईश्वर-सेवा' के सिद्धांत से मेल खाता है।'<sup>10</sup>

उनका परिचालक रूप हमें यह सिखाता है कि मनुष्य का मूल्य उसके पद से नहीं, बल्कि उसके आचरण से तय होता है। वे अपने कर्मक्षेत्र में भी एक अध्यापक, एक दार्शनिक, और एक मानव-सेवक की भूमिका निभाते हैं। यात्रियों के प्रति उनका आदरभाव समाज में एक नई सभ्यता और संवेदना का संदेश देता है कि सच्ची प्रगति तभी संभव है जब प्रत्येक व्यक्ति अपने दायित्व में मानवता का तत्व जोड़ दे।

अतः लांबा जी का बस परिचालक रूप एक प्रतीक है, उस भारतीय विचार का, जो कहता है कि 'कर्म ही पूजा है और सेवा ही धर्म।' वे यह सिद्ध करते हैं कि यदि मनुष्य अपने कर्म को समर्पण, सौम्यता और आदर के साथ निभाए, तो हर बस एक चलती हुई शिक्षालय बन सकती है और हर यात्रा मानवता की ओर एक कदम।

#### निष्कर्ष :

सारांश में कहा जा सकता है कि विकास लांबा का सामाजिक चिंतन भारतीय ज्ञान परम्परा का आधुनिक रूपांतरण है। उन्होंने इस परम्परा को केवल इतिहास का विषय नहीं, बल्कि वर्तमान का मार्गदर्शक बनाया है। उनके विचार यह बताते हैं कि भारतीयता का सार किसी संकीर्ण परिभाषा में नहीं, बल्कि मानवता के व्यापक आलोकमेंनिहित है। उनके चिंतन में आधुनिकता का आत्मविश्वास और परम्परा की करुणा, दोनों का अद्भुत संगम है।

उनका मानना है कि हम तभी आगे बढ़ेंगे जब हम अपनी जड़ों से जुड़ेगा, परंतु नई शाखाएँ फैलाने का साहस भी करेगा। उनके चिंतन में भारतीय ज्ञान परम्परा केवल भारत की नहीं, बल्कि समूची मानवता की धरोहर है। यह परम्परा हमें सिखाती है कि ज्ञान वही सार्थक है जो समाज में करुणा, संतुलन और न्याय स्थापित करे। विकास लांबा का चिंतन इस ज्ञान की पुनः खोज का आह्वान है, एक ऐसे समाज के निर्माण के लिए जो आत्मिक रूप से समृद्ध और नैतिक रूप से स्थिर हो। □

#### संदर्भ सूची :

1. कल्याण पत्रिका, संस्कार विशेषांक, पृष्ठ 175
2. राधाकृष्ण शर्मा, भारतीय दर्शन और आधुनिक विचारधारा., पृष्ठ 123
3. विवेकानन्द, स्वामी. प्रबुद्ध भारत. कोलकाता: अद्वैत आश्रम, 1898., पृष्ठ 33
4. प्रो मोहिनी सिंह, अध्यात्म और विज्ञान, पृष्ठ 19
5. सत्यप्रकाश शर्मा, अनुवाद, उपनिषद संग्रह पृष्ठ 173
6. आचार्य सोमप्रकाश, गांधी चिंतन, पृष्ठ 11
7. वही, पृष्ठ 41
8. हरेंद्र सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, पृष्ठ 210
9. डॉ मुकेश कुमार, भारत देश हमारा समाचारपत्र में प्रकाशित।
10. वही, भारत देश हमारा समाचारपत्र

## हिंदी भाषा के प्रसार और संवर्धन में हिंदी सेवी संस्थाओं का योगदान



डॉ मुकेश कुमार

### शोध-सार :

हिंदी भाषा का विकास केवल भाषिक प्रक्रिया नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्जागरण का परिणाम रहा है। इस पुनर्जागरण में अनेक हिंदी सेवी संस्थाओं ने अपने अमूल्य योगदान से इतिहास रचा है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने जहाँ हिंदी के मानकीकरण, शब्दकोश-निर्माण और प्राचीन ग्रंथों के प्रकाशन का कार्य किया, वहीं हिंदी साहित्य सम्मेलन ने राष्ट्रव्यापी स्तर पर हिंदी के प्रचार-प्रसार, सम्मेलन एवं साहित्यिक गतिविधियों के माध्यम से इसे जनभाषा से राष्ट्रभाषा की ओर अग्रसर किया। इसके अतिरिक्त हिंदुस्तानी एकेडेमी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हिंदी विद्यापीठ देवघर, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति गुवाहाटी, साहित्य अकादमी तथा महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा जैसी संस्थाओं ने हिंदी को शिक्षण, अनुसंधान, अनुवाद और रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्रदान की। प्रस्तुत शोध में इन संस्थाओं के ऐतिहासिक विकास, प्रमुख कार्यों तथा हिंदी भाषा के संवर्धन में उनके योगदान का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इन संस्थाओं ने हिंदी को न केवल राष्ट्रीय पहचान दी, बल्कि उसे वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी प्रतिष्ठित किया।

### बीज शब्द :

हिंदी प्रचार, नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, हिंदी सेवी संस्थाएँ, साहित्यिक विकास, भाषा संवर्धन, राष्ट्रभाषा, सांस्कृतिक एकता, महात्मा गाँधी, हिंदी आन्दोलन, भाषा नीति।

### विश्लेषण :

एक समय था जब हिंदी भाषा आगरा-दिल्ली के परिक्षेत्र अर्थात् कुरु-प्रदेश की स्थानीय बोली तक सीमित थी, जिसे उस समय कौरवी कहा जाता था। आठवीं शताब्दी से ही कौरवी के लोकगीत, लोककथाएँ तथा लोकगाथाएँ समाज में प्रचलित थीं। लेखन के क्षेत्र में इस बोली के आरम्भिक प्रयोग आठवीं-नवीं शताब्दी से ही दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यही कौरवी, जो बाद में प्रारम्भिक खड़ी बोली के रूप में विकसित हुई, अपभ्रंश साहित्य की रचनाओं के मध्य से झलकती हुई प्रतीत होती है।

सन् 770 ईस्वी में रचित उद्योतनसूरि की कृति कुबलयमाला कथा में एक ऐसे बाजार का वर्णन मिलता है जहाँ विभिन्न प्रदेशों के व्यापारी अपनी-अपनी भाषाओं में

हिंदी विभाग  
चौधरी रणबीर सिंह यूनिवर्सिटी  
जौद, हरियाणा-126102  
☎ 9896004680  
✉ drmkhindi@gmail.com

संवाद करते हैं। वहाँ कुरु प्रदेश के एक व्यापारी के मुख से 'तेरे-मेरे' जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो इस तथ्य का द्योतक है कि आठवीं शताब्दी में कौरवी का व्यावहारिक रूप समाज में प्रचलित था।

प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो ने इसी कौरवी को हिन्दवी या देहलवी कहा है। समकालीन कवि मुहम्मद औफी ने इसे हिन्दुई नाम से सम्बोधित किया, जबकि मुगल सम्राट बाबर ने अपनी आत्मकथा तुजुके बाबरी (बाबरनामा) में इसे हिन्दुस्तानी कहा है। इस प्रकार हिन्दुई, हिन्दवी, देहलवी और हिन्दुस्तानी- ये सभी नाम वस्तुतः उसी कौरवी या प्रारम्भिक खड़ी बोली के पर्याय हैं।

आठवीं शताब्दी में अंग्रेज विद्वानों ने इस बोली को Standing Dialect कहा, जिसका हिंदी अनुवाद 'खड़ी बोली' सर्वप्रथम लल्लूलाल जी द्वारा किया गया। यही खड़ी बोली आगे चलकर हिंदी भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। चौदहवीं शताब्दी के लेखक शरफुद्दीन अली यज्दी ने अपनी प्रसिद्ध कृति जफरनामा (तैमूर की जीवनी) में इस भाषा को सर्वप्रथम हिंदी कहा।

वर्तमान में यही हिंदी भाषा भारत की राजभाषा के रूप में गौरवान्वित स्थान प्राप्त कर चुकी है। इस गौरवमयी स्थिति तक पहुँचने में अनेक हिंदी संस्थाओं का अमूल्य योगदान रहा है। इन संस्थाओं ने न केवल हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य किया, अपितु इसके साहित्यिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक रूपों को भी सशक्त आधार प्रदान किया।

### 1. फोर्ट विलियम कॉलेज, कलकत्ता

अंग्रेजी शासनकाल में गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेजली के प्रयत्नों से 1800 ई. में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज भारत के भाषाई एवं साहित्यिक इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण संस्था सिद्ध हुई। इस शिक्षण संस्थान की स्थापना का मुख्य उद्देश्य था- ब्रिटिश अधिकारियों को भारतीय भाषाओं का व्यावहारिक ज्ञान प्रदान कराना तथा प्रशासनिक कार्यों में आने वाली भाषागत जटिलताओं का निवारण करना। यह वस्तुतः अंग्रेज़ अधिकारियों के लिए एक भाषा-प्रशिक्षण संस्थान के रूप में कार्यरत था, जहाँ उन्हें हिंदी और हिंदुस्तानी (उर्दू) का प्रारंभिक ज्ञान कराया जाता था।

कॉलेज में जॉन गिलक्रिस्ट को हिंदुस्तानी विभाग का प्रमुख आचार्य नियुक्त किया गया। उन्होंने प्रथम बार हिंदी और उर्दू के बीच भाषिक भेद की रेखा खींची और हिंदी को देवनागरी लिपि में तथा उर्दू को फ़ारसी लिपि में लिखने का प्रोत्साहन दिया। हिंदी की पाठ्यपुस्तकों के अभाव को दूर करने हेतु गिलक्रिस्ट ने अनेक भारतीय विद्वानों से मौलिक एवं अनुवादित ग्रंथों की रचना करवाई। इनमें इंशाअल्लाह खाँ, मुंशी सदासुखलाल नियाज़, लल्लूलाल और सदल मिश्र के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

लल्लूलाल और सदल मिश्र को हिंदी अध्यापन के लिए नियुक्त किया गया, जिन्होंने हिंदी गद्य को सुसंगठित रूप देने में अमूल्य योगदान दिया। इसी संस्था में ईश्वरचंद्र विद्यासागर, तरणतारण मिश्र, मृत्युंजय विद्यालंकार तथा रामराय बसु जैसे विद्वान अन्य भारतीय भाषाओं के अध्यापक के रूप में कार्यरत थे। वहीं, उर्दू विभाग में मीर अम्मन, अफ़सोस हुसैनी और सैयद मुहम्मद मुनीर जैसे लेखकों ने विशिष्ट रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

फोर्ट विलियम कॉलेज का सर्वाधिक स्थायी योगदान यह रहा कि इसने भारतीय भाषाओं में प्रारंभिक पाठ्यपुस्तक-निर्माण की परंपरा को जन्म दिया, जिससे हिंदी भाषा के गद्य-विकास को संस्थागत आधार प्राप्त हुआ।

### 2. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

हिंदी भाषा के संवर्धन में नागरी प्रचारिणी सभा का योगदान ऐतिहासिक और अनुपम है। इस संस्था की स्थापना 16 जुलाई 1893 ई. को वाराणसी स्थित क्रीस कॉलेज के तीन प्रबुद्ध विद्यार्थियों-श्यामसुंदर दास, शिवकुमार सिंह और रामनारायण मिश्र ने की थी। इसके संस्थापक अध्यक्ष के रूप में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के फुफेरे भ्राता राधाकृष्ण दास को चुना गया। प्रारंभिक सात सदस्यों में पंडित सुधाकर द्विवेदी, जॉर्ज ग्रियर्सन, अबिकादत्त व्यास, चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन', श्यामसुंदर दास, शिवकुमार सिंह और रामनारायण मिश्र जैसे विद्वान सम्मिलित थे।

सभा का प्रमुख उद्देश्य था- देवनागरी लिपि के प्रचार, हिंदी भाषा के मानकीकरण तथा साहित्य-संपदा



के संरक्षण का कार्य। इस संस्था ने हस्तलिखित पांडुलिपियों के अन्वेषण में अभूतपूर्व कार्य किया। इसके सदस्यों ने नगर-नगर, ग्राम-ग्राम भ्रमण कर दुर्लभ ग्रंथों और साहित्यिक धरोहरों की खोज की।

सभा द्वारा हिंदी के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन किया गया, जिनमें 'हिंदी शब्दसागर', हिंदी व्याकरण, वैज्ञानिक शब्दावली, हिंदी साहित्य का इतिहास और हिंदी विश्वकोश जैसे ग्रंथ प्रमुख हैं। इसी संस्था ने हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली का व्यवस्थित निर्माण किया और उसे व्यवहारिक रूप में प्रतिष्ठित किया।

वाराणसी स्थित सभा का विशाल पुस्तकालय आज भी हिंदी साहित्य, भाषाविज्ञान और संस्कृति अध्ययन के क्षेत्र में एक अमूल्य निधि के रूप में प्रतिष्ठित है।

### 3. हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

हिंदी साहित्य सम्मेलन की स्थापना नागरी प्रचारिणी सभा के संरक्षण में 1 मई 1910 ई. को प्रयाग (इलाहाबाद) में की गई। यह संस्था हिंदी साहित्य, भाषा और संस्कृति के समग्र विकास के लिए एक राष्ट्रीय मंच के रूप में कार्यरत हुई।

सम्मेलन का उद्देश्य था- हिंदी भाषा को अखिल भारतीय संपर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना, साहित्यिक प्रतिभाओं को प्रोत्साहन देना और हिंदी में शोध, प्रकाशन तथा शिक्षण के लिए संगठित दिशा प्रदान करना।

अपने प्रारंभ से ही सम्मेलन ने हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार, मानकीकरण, शब्दावली-निर्माण, साहित्य-सम्मान तथा शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से हिंदी के संवर्धन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके वार्षिक अधिवेशनों में

देशभर के साहित्यकारों, भाषाविदों और समाजसेवियों ने भाग लेकर हिंदी को राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का स्वर प्रदान किया।

नागरी प्रचारिणी सभा और फोर्ट विलियम कॉलेज के ऐतिहासिक प्रयासों के पश्चात्, हिंदी साहित्य सम्मेलन ने इन प्रयत्नों को संस्थागत और राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया, जिससे हिंदी भाषा का आधुनिकीकरण, मानकीकरण और सांस्कृतिक एकीकरण सुनिश्चित हुआ।

अखिल भारतीय स्तर पर आयोजित अपनी बैठक में हिंदी साहित्य सम्मेलन के व्यापक आयोजन का निर्णय लिया गया था। इस निर्णय के अनुरूप प्रथम हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन 10 अक्टूबर 1910 ई. को वाराणसी में पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इसके पश्चात द्वितीय सम्मेलन 1911 ई. में पंडित गोविन्द नारायण मिश्र की अध्यक्षता में प्रयाग में आयोजित किया गया। इसी सम्मेलन के लिए गठित समिति ने आगे चलकर हिंदी साहित्य सम्मेलन के रूप में स्थायी रूप धारण किया, जिसके प्रथम मंत्री (प्रधानमंत्री) राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन बने।

प्रथम सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित किया गया कि संस्था प्रति वर्ष हिंदी साहित्य सम्मेलन का आयोजन करेगी तथा हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने हेतु उसके प्रचार-प्रसार का कार्य करेगी। इस सम्मेलन को राष्ट्रीय चेतना का स्वर प्रदान करते हुए महात्मा गांधी ने भी दो अधिवेशनों की अध्यक्षता की। हिंदी के प्रसार हेतु सम्मेलन द्वारा 1936 ई. में वर्धा (महाराष्ट्र) में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना की गई, जिसका उद्देश्य अहिंदी भाषी प्रदेशों में हिंदी का विस्तार करना था।

सम्मेलन के प्रमुख उद्देश्यों में देवनागरी लिपि में राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार को सुदृढ़ बनाना, शासकीय एवं गैर-शासकीय संस्थानों में हिंदी के प्रयोग को प्रोत्साहित करना, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, विधि, वाणिज्य तथा मानविकी विषयों में हिंदी में ग्रन्थों का प्रकाशन करना, अनुवाद के माध्यम से हिंदी को समृद्ध बनाना तथा हिंदी के विद्वानों का सम्मान करना सम्मिलित है। साथ ही, सम्मेलन का एक उद्देश्य हिंदी साहित्य में बहुलता और सृजनात्मकता की प्रवृत्ति को विकसित करना भी रहा है।

#### 4. श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इन्दौर

राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रसार और राष्ट्रीय स्तर पर भाषिक चेतना के संवर्धन हेतु 29 जुलाई 1910 ई. को श्री मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति, इन्दौर की स्थापना की गई। इन्दौर स्थित एक महाविद्यालय के दो प्राध्यापक कृष्णानन्द मिश्र एवं श्यामलाल शर्मा ने इसे प्रारम्भ में एक पुस्तकालय के रूप में स्थापित किया था। समिति की स्थापना और विकास में डॉ. सरयू प्रसाद तिवारी, सेठ हुकुमचन्द, तथा महाराज यशवंतराव होल्कर जैसे व्यक्तित्वों का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय रहा।

1915 ई. में मुम्बई और सूरत में आयोजित सम्मेलनों में समिति के तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. सरयू तिवारी तथा उनके सहयोगी प्रो. दुर्गाशंकर रावल ने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रस्ताव पारित कराया। इसके उपरांत मध्य भारत एवं राजस्थान की देशी रियासतों में हिंदी के समर्थन में एक व्यापक अभियान प्रारंभ हुआ, जिसके फलस्वरूप लगभग तीस से अधिक रियासतों ने हिंदी को राजकाज की भाषा के रूप में स्वीकार किया।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के अतिरिक्त समिति के अन्य प्रमुख उद्देश्य हैं- भारतीय भाषाओं और हिंदी के मध्य समन्वय स्थापित करना, हिंदी में शोधपरक अध्ययनों को प्रोत्साहन देना, कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में नवोन्मेष एवं सृजनशीलता को बढ़ावा देना, तथा दुर्लभ ग्रन्थों के संग्रह द्वारा समिति के पुस्तकालय को समृद्ध बनाना। इस प्रकार समिति ने हिंदी के संवर्धन एवं सांस्कृतिक एकता के क्षेत्र में अमूल्य योगदान प्रस्तुत किया है।

समिति का पुस्तकालय अत्यन्त समृद्ध एवं ज्ञान-संपन्न है, जहाँ बाईस हजार से अधिक दुर्लभ एवं मूल्यवान ग्रन्थ सुरक्षित हैं। समिति की प्रतिष्ठित पत्रिका 'वीणा' का प्रकाशन सन् 1927 ई. से निरन्तर रूप से हो रहा है, जो हिंदी साहित्य, संस्कृति एवं भाषा के संवर्धन में अमूल्य योगदान देती आ रही है। इस संस्था पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के विचारों एवं आदर्शों का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है।

#### 5. दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई —

हिंदी भाषा के प्रसार हेतु समर्पित यह संस्था देश की

पाँचवीं प्रमुख हिंदीसेवी संस्था मानी जाती है। दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार का व्यापक आंदोलन स्वयं महात्मा गाँधी के प्रेरक नेतृत्व में सन् 1918 ई. में प्रारम्भ हुआ था। उसी के फलस्वरूप दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास (वर्तमान चेन्नई) की स्थापना हुई। इसकी उद्घाटन सभा मद्रास के ऐतिहासिक गोखले हाल में सम्पन्न हुई, जिसकी अध्यक्षता डॉ. सी.पी. रामास्वामी अय्यर ने की तथा इसमें डॉ. एनी बेसेंट की गरिमामयी उपस्थिति रही।

इस संस्था में हिंदी शिक्षण का प्रथम क्रम महात्मा गाँधी के सुपुत्र देवदास गाँधी के निर्देशन में आरम्भ हुआ। देवदास गाँधी के साथ स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने भी दक्षिण भारत के विभिन्न प्रान्तों में जाकर हिंदी प्रचार की अखण्ड ज्योति प्रज्वलित की। सभा की चार प्रादेशिक शाखाएँ क्रमशः हैदराबाद, धारवाड़, तिरुचिरापल्ली तथा एर्नाकुलम में स्थापित की गईं, जो आज तेलंगाना, कर्नाटक, तमिलनाडु तथा केरल राज्यों में सक्रिय रूप से कार्यरत हैं। संस्था की प्रमुख पत्रिका 'हिंदी प्रचार समाचार' तथा त्रैमासिक 'दक्षिण भारत' निरन्तर प्रकाशित होकर हिंदी के प्रचार-प्रसार का सशक्त माध्यम बनी हुई हैं।

#### 6. गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं राष्ट्रीय शिक्षण के लिए समर्पित छोटी प्रमुख संस्था गुजरात विद्यापीठ का उद्घाटन 18 अक्टूबर 1920 को हुआ। इसका स्थापना-भाव महात्मा गाँधी के स्वदेशी सिद्धान्त तथा असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि से अभिन्न रूप से सम्बद्ध है। गाँधीजी ने उस काल में सम्पूर्ण राष्ट्र से स्वदेशी को जीवन-मार्ग के रूप में अपनाने का आह्वान किया था, जिसके प्रत्युत्तरस्वरूप यह विद्यापीठ राष्ट्रीय शिक्षण की प्रथम प्रयोगशाला के रूप में उदित हुआ।

इसके अनुकरण में वाराणसी, मुम्बई, कलकत्ता, नागपुर एवं मद्रास में भी इसी आदर्श पर आधारित विद्यापीठों की स्थापना की गई। महात्मा गाँधी जीवनपर्यन्त इसके कुलाधिपति रहे। प्रारम्भ में यहाँ हिंदी लेखन का शिक्षण देवनागरी तथा फारसी, दोनों लिपियों में कराया जाता था; किन्तु सन् 1949 ई. में जब संविधान द्वारा हिंदी को राजभाषा का गौरव प्राप्त हुआ, तब इस संस्था ने देवनागरी लिपि को अनिवार्य एवं उर्दू लिपि को ऐच्छिक घोषित किया।

यह विद्यापीठ विभिन्न स्नातक एवं स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों का संचालन करता है तथा 'सम्पर्क पत्रिका' नामक वार्षिक प्रकाशन के माध्यम से शैक्षिक एवं सांस्कृतिक विमर्श को प्रोत्साहन देता है। सन् 1963 में इसे 'डीम्ड यूनिवर्सिटी' का दर्जा प्राप्त हुआ। गाँधी के पश्चात् सरदार वल्लभभाई पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं मोरारजी देसाई जैसे राष्ट्रपुरुषों ने भी इसके कुलाधिपति पद को सुशोभित किया।

गाँधी के आदर्शों से प्रेरित होकर यह विद्यापीठ शिक्षा को केवल बौद्धिक न मानकर नैतिक, शारीरिक एवं सामाजिक उत्थान का साधन मानता है। चरित्र-निर्माण, परिश्रम, सत्य-अहिंसा का पालन, सूत कताई, ग्रामोन्नयन, सर्वधर्म समभाव एवं आत्मनिर्भरता इसके मूलाधार हैं। इस प्रकार गुजरात विद्यापीठ आज भी राष्ट्रपिता के उन शैक्षिक आदर्शों का जीवंत प्रतीक है, जिनमें शिक्षा और जीवन का अद्भुत समन्वय निहित है।

## 7. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज

हिंदी के विकास में महत्वपूर्ण संस्थाओं में सातवें स्थान पर हिन्दुस्तानी एकेडेमी का नाम आदरपूर्वक स्मरण किया जाता है। इसकी स्थापना उस कालखंड में हुई जब समूचा भारत असहयोग आन्दोलन (1920 ई.) की आँधी में राष्ट्रीय एकता की भावना से ओत-प्रोत था। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चल रहे इस आन्दोलन ने देश के कोने-कोने को एक सूत्र में बाँध दिया था—छात्र, अधिवक्ता, महिलाएँ, किसान और श्रमिक सभी एक स्वर में स्वराज्य के उद्घोष के साथ अग्रसर थे। इसी काल में सम्पर्क की सर्वाधिक सशक्त भाषा हिंदी (या हिन्दुस्तानी) बनकर उभरी। जब यह भाषा समस्त देश में जन-जन की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी, तब उसके स्वरूप को लेकर मतभेद भी प्रकट हुए। गाँधीजी 'मिली-जुली हिन्दुस्तानी' के समर्थक थे, जबकि राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन 'शुद्ध हिंदी' के पक्षधर थे। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा प्रेमचन्द गाँधीजी की भाषानीति के अनुगामी थे।

बीसवें दशक में जब राष्ट्र के भीतर राजनीतिक जागरण के साथ-साथ भाषाई एकता का प्रश्न भी उठ

खड़ा हुआ, तब एक ऐसी संस्था की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जो हिंदी एवं उर्दू, दोनों के समान विकास एवं संवर्धन का दायित्व संभाले। यद्यपि नागरी प्रचारिणी सभा और हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्थाएँ पूर्व से ही इस दिशा में कार्यरत थीं, फिर भी एक ऐसी प्रतिष्ठान की अपेक्षा थी जो अधिक व्यापक, समन्वयशील और शासन-समर्थित हो।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी के प्रथम सचिव डॉ. ताराचन्द ने सन् 1939 की वार्षिक रिपोर्ट में लिखा—'देश में एक ऐसी संस्था की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी जो देशी भाषाओं के साहित्य का समन्वित उत्थान करे, साहित्यिक मानदण्डों की स्थापना करे, कला एवं विज्ञान की महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद एवं संकलन करे तथा विद्वानों और साहित्यकारों का एक प्रामाणिक संघ निर्मित करे। ऐसी संस्था का राजकीय संरक्षण एवं आर्थिक पोषण होना भी आवश्यक है।'

इस प्रकार दो प्रमुख प्रेरणाएँ हिन्दुस्तानी एकेडेमी के गठन के आधार बनीं— पहली भाषायी समन्वय की भावना और दूसरी राजकीय संरक्षण की आकांक्षा। जहाँ नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिंदी साहित्य सम्मेलन पूर्णतया स्वायत्त संस्थाएँ थीं, वहीं अब आवश्यकता एक ऐसी शासकीय संस्था की थी जो हिंदी-उर्दू के विकास को संगठित रूप में आगे बढ़ाए।

इस दिशा में प्रारम्भिक पहल वाराणसी के विद्वान् एवं समाजसेवी पं. यज्ञनारायण उपाध्याय ने की। उन्होंने इस विषय पर एक विस्तृत प्रस्ताव तैयार कर 23 सितम्बर 1925 को तत्कालीन संयुक्त प्रान्त की धारा सभा (Local Legislative Assembly) में प्रस्तुत किया। इस प्रस्ताव के अनुसार एक अनुवाद ब्यूरो की स्थापना की जानी थी, जो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थों का हिंदी एवं उर्दू में अनुवाद कराए, जिससे भारतीय पाठकवर्ग को विश्व के साहित्यिक एवं वैज्ञानिक ज्ञान का सुलभ लाभ प्राप्त हो सके। पं. उपाध्याय ने इसके लिए एक लाख रुपये वार्षिक अनुदान की व्यवस्था का भी सुझाव दिया, जिसे सभा ने सर्वसम्मति से स्वीकृत किया।

पण्डित यज्ञनारायण उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव पर जब प्रान्तीय धारा सभा में विमर्श आरम्भ हुआ, तब

तत्कालीन शिक्षामंत्री राय राजेश्वर बली ने यह अभिव्यक्ति दी कि ऐसा ही एक विचार उनके मस्तिष्क में पूर्वकाल से उद्भूत हो रहा है तथा वे विगत कुछ मासों से इस प्रकार के एक अनुवाद-ब्यूरो की स्थापना के लिए व्यावहारिक प्रयासों पर विचाररत हैं। उन्होंने यह भी उल्लेख किया कि जून 1924 ई. में नैनीताल में संपन्न विश्वविद्यालय अधिवेशन में अनेक विद्वानों के साथ इस विषय पर उनके विचार-विनिमय हो चुके थे। साथ ही, नवम्बर 1925 ई. में इलाहाबाद के कुछ शिक्षाशास्त्रियों द्वारा भी इस दिशा में ठोस योजना-निर्माण का आह्वान किया गया था।

धारा सभा में हुई उक्त चर्चा के दौरान राय राजेश्वर बली ने पं. यज्ञनारायण उपाध्याय को यह आश्वासन दिया कि उनके प्रस्ताव का सूक्ष्म परीक्षण कर अति शीघ्र व्यावहारिक कार्यवाही की जाएगी। यह उल्लेखनीय है कि सन् 1921 ई. में ही संयुक्त प्रान्त की राजधानी लखनऊ स्थापित की जा चुकी थी, जहाँ प्रान्तीय धारा सभा का अधिवेशन भी हुआ करता था।

इसी क्रम में 7 अप्रैल 1926 ई. को धारा सभा के प्रतिष्ठित सदस्य खानबहादुर हाफिज हिदायत हुसैन ने एक नवीन प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसका सारांश इस प्रकार है—‘यह धारा सभा सरकार से अनुशंसा करती है कि इस प्रान्त में ‘हिन्दुस्तानी एकेडेमी’ नामक संस्था की स्थापना की जाए, जो हिंदी और उर्दू साहित्य के संवर्धन एवं प्रसार हेतु कार्यरत रहे तथा इसके लिए वार्षिक दो लाख रुपये की धनराशि नियत की जाए।’

हाफिज हिदायत हुसैन द्वारा प्रस्तुत यह प्रस्ताव ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि इसी में प्रथम बार ‘हिन्दुस्तानी एकेडेमी’ नाम का स्पष्ट रूप से उद्घोष हुआ। यह प्रस्ताव पं. यज्ञनारायण उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित अनुवाद ब्यूरो की संकल्पना से एक चरण आगे था, इसमें न केवल हिंदी और उर्दू साहित्य के उन्नयन की बात कही गई, अपितु भौतिक एवं सामाजिक विज्ञानों, ललित कलाओं और साहित्य की विविध विधाओं में रचित मौलिक कृतियों को प्रोत्साहन एवं पुरस्कार प्रदान करने का भी प्रावधान किया गया। इस हेतु सरकार से दो लाख रुपये वार्षिक व्यय का विनियोग अपेक्षित था। यह भी उल्लेखनीय है कि हाफिज हिदायत हुसैन इस प्रस्ताव में

पंजाब सरकार द्वारा गठित उस संस्था से प्रेरित थे, जिसका प्रतिपादन वहाँ दीवान बहादुर नरेन्द्रनाथ द्वारा किया गया था।

‘हिन्दुस्तानी एकेडेमी’ के पाँच प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किए गए थे—

प्रथम, अन्य भाषाओं की महत्त्वपूर्ण कृतियों का हिंदी एवं उर्दू में अनुवाद कराना; द्वितीय, हिंदी और उर्दू की प्राचीन पांडुलिपियों का संपादन तथा प्रकाशन करना; तृतीय, सन्दर्भग्रन्थों, विश्वकोशों एवं वैज्ञानिक शब्दकोशों का निर्माण करना; चतुर्थ, विविध विषयों की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन कर ज्ञानविस्तार करना; और पंचम, एकेडेमी के माध्यम से हिंदी-उर्दू के साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक अभ्युदय के लिए सतत प्रयत्नशील रहना।

## 8. हिंदी विद्यापीठ, देवघर

हिंदी प्रचार-प्रसार की आठवीं प्रमुख संस्था के रूप में हिंदी विद्यापीठ, देवघर (झारखंड) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसकी स्थापना सन् 1929 ई. में महात्मा गाँधी की प्रेरणा एवं पं. शिवराम शर्मा के नेतृत्व में की गई थी। यह संस्था राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार, शिक्षण एवं प्रशिक्षण के उद्देश्य से अस्तित्व में आई।

महात्मा गाँधी ने स्वयं इस संस्था के कार्यों को सराहा और 20 मई 1934 को हिंदी विद्यापीठ, देवघर में आयोजित एक विशेष समारोह में प्रत्यक्ष रूप से भाग लिया। उनकी उपस्थिति ने संस्था को नई दिशा और प्रेरणा प्रदान की।

बाद में 1936 ई. में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी इस संस्था से घनिष्ठ संबंध स्थापित किया और इसके विकास में योगदान दिया। इस प्रकार हिंदी विद्यापीठ, देवघर ने हिंदी के राष्ट्रीय प्रचार-प्रसार, शिक्षक प्रशिक्षण तथा राष्ट्रभाषा आंदोलन के सशक्त केंद्र के रूप में ऐतिहासिक भूमिका निभाई।

प्रसाद को इस संस्थान का प्रथम कुलाधिपति नियुक्त किया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौर में महात्मा गाँधी एवं अन्य स्वतंत्रता सेनानियों ने यह अनुभव किया कि अंग्रेजी माध्यम और पाश्चात्य शिक्षण पद्धति भारतीय आत्मा के अनुकूल नहीं है। अतः उन्होंने ऐसी शैक्षिक प्रणाली की आवश्यकता अनुभव की, जो राष्ट्रभाषा हिंदी में

संचालित होकर युवकों में स्वावलम्बन, चरित्र-निर्माण, राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक एकता की भावना का संचार करे। इसी राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश के विभिन्न भागों में अनेक राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना की गई, जिनमें हिंदी विद्यापीठ, देवघर (झारखण्ड) का विशेष महत्व है।

### 9. हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद

यह संस्था 1932 में निजाम शासनकाल के दौरान अस्तित्व में आई। उस समय हिंदी का प्रयोग देशद्रोह के समान समझा जाता था, अतः इस सभा को असंख्य प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना पड़ा। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात जब इस सभा को शैक्षणिक संस्था का दर्जा प्राप्त हुआ, तब इसने दक्षिण भारत में हिंदी भाषा के प्रचार, हिंदी भाषियों में भाषा-प्रेम जाग्रत करने तथा हिंदी को व्यावहारिक जीवन में प्रतिष्ठित करने का कार्य अत्यन्त समर्पण के साथ किया।

### 10. उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद, पुरी

यह संस्था 1932 ई. में महात्मा गाँधी के निकट सहयोगी बाबा राघवदास की प्रेरणा से, तथा अनुसूया प्रसाद पाठक और रामानन्द शर्मा के प्रयत्नों से पुरी में स्थापित की गई। प्रारम्भ में (1937-1954) यह संस्था पुरी राष्ट्रभाषा समिति के नाम से राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा की सहायक संस्था के रूप में कार्यरत रही। किन्तु 1954 में यह स्वतंत्र होकर उड़ीसा राष्ट्रभाषा परिषद के रूप में संगठित हुई। इसका मूल ध्येय उड़ीसा के दुर्गम ग्रामीण अंचलों में हिंदी शिक्षण एवं प्रचार-प्रसार करना था। इसके अतिरिक्त इसने असम, पश्चिम बंगाल और आन्ध्रप्रदेश जैसे प्रान्तों में भी हिंदी प्रसार का दायित्व निभाया।

### 11. केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनन्तपुरम्

यह संस्था 1934 ई. में के. वासुदेवन पिल्लै द्वारा स्थापित की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व यह 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई' की अनुषंगी इकाई थी और वहाँ की परीक्षाओं के लिए विद्यार्थियों को तैयार करने का कार्य करती थी। इसका प्रमुख उद्देश्य केरल प्रदेश में हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार को प्रोत्साहन देना था। इस

संस्था से राष्ट्रवीणा नामक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी, जो आर्थिक कारणों से बंद हो गई; तत्पश्चात् केरल ज्योति नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

### 12. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

यह संस्था महात्मा गाँधी और राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन की प्रेरणा से 1936 ई. में स्थापित की गई। इसके संस्थापक सदस्यों में गाँधीजी, पं. जवाहरलाल नेहरू और राजर्षि टंडन जैसे राष्ट्रीय नेता सम्मिलित थे। इस समिति का उद्देश्य राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को जन-जन की भाषा बनाना तथा राष्ट्रव्यापी भाषाई एकता स्थापित करना था।

नरेंद्र देव, काका कालेलकर, माखनलाल चतुर्वेदी तथा जमनालाल बजाज जैसे प्रख्यात राष्ट्रसेवक इस समिति से सम्बद्ध थे। इस समिति की अध्यक्षता हेतु डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को नियुक्त किया गया। राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रसार-प्रचार के लिए भारत के विविध प्रान्तों में 17 प्रादेशिक राष्ट्रीय समितियों की स्थापना की गई। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा के तत्वावधान में विश्व हिंदी सम्मेलन का प्रथम आयोजन 10 जनवरी 1975 को नागपुर में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन की अध्यक्षता मॉरीशस के तत्कालीन प्रधानमंत्री शिवसागर रामगुलाम ने की तथा उद्घाटन तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा किया गया।

### 13. महाराष्ट्र सभा, पुणे

यह तेरहवीं महत्वपूर्ण संस्था है जिसकी स्थापना 1937 में काका कालेलकर के अध्यक्षत्व में हुई। इस संस्था के गठन के पीछे भी महात्मा गाँधी का ही प्रेरणास्रोत भाव निहित था। संस्था का मुख्य उद्देश्य मराठी भाषी क्षेत्रों में हिंदी के प्रचार-प्रसार को सुदृढ़ बनाना था। आरम्भ में यह संस्था राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा से सम्बद्ध रही, परंतु 1945 में इसने स्वतन्त्र रूप से कार्य करना आरम्भ किया और शीघ्र ही हिंदी प्रचार की दृष्टि से यह महाराष्ट्र की प्रमुख संस्था बन गई।

### 14. सौराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति, राजकोट

यह चौदहवीं संस्था 1937 में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की एक शाखा के रूप में स्थापित हुई। उस काल में सौराष्ट्र क्षेत्र को काठियावाड़ कहा जाता था और वहाँ हिंदी

प्रचार का कार्य 'काठियावाड़ राष्ट्रभाषा प्रचार संस्था' द्वारा संचालित किया जाता था। वर्ष 1946 में यह संस्था गुजरात विद्यापीठ के सहयोग से कार्य करने लगी। तत्पश्चात् यह उत्तरदायित्व पूर्णरूपेण सौराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति, राजकोट को सौंपा गया, जिसने क्षेत्र में हिंदी शिक्षण और सांस्कृतिक जागरण का व्यापक अभियान चलाया।

### 15. बम्बई हिंदी विद्यापीठ

पन्द्रहवीं महत्वपूर्ण संस्था बम्बई हिंदी विद्यापीठ का शुभारम्भ वर्ष 1938 में हुआ। हिंदी प्रचार का कार्य सिस्टर पेरिन कैप्टन के निर्देशन में आरम्भ किया गया। यहाँ हिंदी और उर्दू दोनों भाषाएँ अनिवार्य रूप से अध्यापन में सम्मिलित थीं। विद्यापीठ का प्रमुख उद्देश्य जनसाधारण में सरल, व्यवहारिक एवं बोलचाल की हिंदी का प्रसार करना था। इसकी प्रमुख मासिक पत्रिका 'भारती' है, जो हिंदी भाषा, साहित्य तथा शिक्षण के विकास में उल्लेखनीय योगदान देती रही है। यह संस्था हिंदी शिक्षण की परीक्षाओं का संचालन एवं विविध प्रकाशन कार्य भी करती है।

### 16. हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, मुम्बई

यह सोलहवीं प्रमुख संस्था है, जिसकी स्थापना 1938 में महात्मा गाँधी की प्रेरणा से हुई। गाँधीजी ऐसी राष्ट्रभाषा की कल्पना करते थे जो आमजन की बोलचाल की भाषा हो, जो न तो शुद्ध संस्कृतनिष्ठ हिंदी हो और न ही पूर्णतः अरबी-फारसी प्रभाववाली उर्दू। इस प्रकार उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में वांछित किया। हिन्दुस्तानी प्रचार सभा इसी विचारधारा पर आधारित संस्था है, जो देवनागरी एवं फारसी दोनों लिपियों में कार्य करती है। इसकी त्रैमासिक द्विभाषी पत्रिका 'हिन्दुस्तानी जवान' हिंदी-उर्दू के सांस्कृतिक सेतु के रूप में प्रसिद्ध है।

### 17. असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

सत्रहवीं महत्वपूर्ण संस्था असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति है, जिसकी स्थापना 1938 में असम के प्रख्यात जननेता गोपीनाथ बरदोलोई जी के आग्रह पर की गई। इस समिति ने पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार का



महान कार्य किया और असम, मणिपुर, त्रिपुरा तथा मेघालय जैसे प्रांतों में हिंदी शिक्षा की जड़ें स्थापित कीं।

यद्यपि असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य महात्मा गाँधी के अनुयायी एवं उत्तर प्रदेश के सुप्रसिद्ध समाजसेवी बाबा राघवदास की प्रेरणा से सन् 1934 ई. से ही प्रारम्भ हो चुका था, तथापि उस समय इस कार्य के लिए किसी सुव्यवस्थित समिति का गठन नहीं किया गया था। बाद में सन् 1938 ई. में 'असम हिंदी प्रचार समिति' नामक एक संगठन की स्थापना की गई, जो आगे चलकर 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस समिति का मुखपत्र 'राष्ट्रसेवक' सन् 1951 ई. से निरन्तर प्रकाशित हो रहा है और हिंदी भाषा एवं संस्कृति के संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सांस्कृतिक-भाषिक अभियान के अंतर्गत प्रकाशित द्विभाषी मासिक पत्रिका 'राष्ट्रसेवक' भारतीय भाषाई समन्वय, सांस्कृतिक जागरण तथा राष्ट्रीय एकता की अखंड प्रतीक बनकर अभिव्यक्त होती है। यह पत्रिका न केवल असम प्रदेश के बहुभाषिक परिवेश में हिंदी के प्रचार-प्रसार का सशक्त माध्यम सिद्ध हुई है, अपितु इसने भारतीय जनमानस में भाषिक आत्मीयता और सांस्कृतिक एकत्व की भावना को भी पोषित किया है। हिंदी एवं असमिया- इन दो प्रमुख भाषाओं के द्विस्वरूप में निबद्ध यह मासिक पत्रिका भारत के भाषिक सौहार्द का जीता-जागता उदाहरण है।

‘राष्ट्रसेवक’ का संपादकीय दायित्व जिन प्रबुद्ध व्यक्तित्व के नेतृत्व में सतत गति एवं गरिमा प्राप्त करता रहा है, वे हैं डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया जी। वे न केवल इस पत्रिका के संपादक के रूप में समर्पण, अनुशासन और सांस्कृतिक संवेदना के आदर्श प्रतीक हैं, अपितु राष्ट्रीय चेतना के दृढ़ वाहक भी हैं। उनके संपादन में पत्रिका ने साहित्यिक, भाषिक तथा सांस्कृतिक विविधताओं के समन्वय का जो अभिनव सेतु निर्मित किया है, वह भारतीय पत्र-पत्रिका परंपरा में अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। डॉ. शङ्कीया जी की संपादकीय दृष्टि गहन, समीक्षात्मक और समाजबोध से अनुप्राणित है। वे लेखन को केवल अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि जनजागरण और राष्ट्रनिर्माण का उपकरण मानते हैं।

इस पत्रिका के विविध अंकों में हिंदी साहित्य, असमिया संस्कृति, लोकपरंपरा, शिक्षा, अध्यात्म तथा समाज-सुधार से संबंधित गम्भीर आलेख, साक्षात्कार, कविताएँ, समीक्षाएँ और समाचार प्रकाशित होते हैं। प्रत्येक अंक में भारतीय संस्कृतिपरक आदर्शों का नवप्रसार होता है। पत्रिका का उद्देश्य मात्र भाषा-प्रचार नहीं, बल्कि भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय भावसंवर्धन है। यह ‘राष्ट्रसेवक’ नाम के अनुरूप ही समर्पण, सेवा और त्याग की भावधारा से ओत-प्रोत है।

डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया जी के संपादन में इस पत्रिका ने भाषिक नीति के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय भूमिका निभाई है। उन्होंने हिंदी को उत्तर और पूर्वोत्तर भारत के बीच संवाद का सेतु बनाया है। उनका मानना है कि भाषा विभाजन का नहीं, एकता का माध्यम है। अतः ‘राष्ट्रसेवक’ के माध्यम से वे सतत यह प्रयास करते हैं कि असम की जनसंस्कृति में हिंदी का आत्मीय समावेश हो तथा देश की विभिन्न भाषाएँ एक दूसरे की सहचरी बनें।

इस पत्रिका की विशिष्टता उसकी संतुलित भाषा, संस्कृतनिष्ठ अभिव्यक्ति और विचारोत्तेजक सामग्री में निहित है। इसमें निहित लेख और संपादकीय टिप्पणी पाठकों को न केवल ज्ञानवर्धन का अवसर प्रदान करती हैं, बल्कि उन्हें भारतीय अस्मिता, राष्ट्रभक्ति और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व की दिशा में भी प्रेरित करती हैं। वास्तव में ‘राष्ट्रसेवक’ एक पत्रिका मात्र नहीं, अपितु एक जीवंत आंदोलन है, जो असम की भूमि से उठकर पूरे भारत में भाषिक एकात्मता का संदेश देता है।

इस प्रकार असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की यह द्विभाषीय मासिक पत्रिका तथा उसके प्रधान संपादक डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया जी, संपादक प्रोफेसर मोहन जी और कार्यकारी संपादक श्री रामनाथ प्रसाद जी भारतीय भाषिक चेतना के अक्षय दीप हैं, जिनकी ज्योति राष्ट्रप्रेम, सेवा और संस्कृतिपरक एकता के मार्ग को आलोकित करती रहती है।

## 18. कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति, बेंगलुरु

अठारहवीं प्रमुख संस्था के रूप में कर्नाटक हिंदी प्रचार समिति का गठन सन् 1939 ई. में बेंगलुरु में किया गया। प्रारम्भ में यह दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई की एक शाखा के रूप में कार्यरत थी, किन्तु सन् 1961 ई. में इसे स्वतंत्र रूप से कार्य करने की मान्यता प्राप्त हुई। यह समिति हिंदी शिक्षण के विविध पाठ्यक्रमों का संचालन करती है तथा ‘भाषा पीयूष’ नामक पत्रिका का नियमित प्रकाशन करती है। समिति भारत सरकार के सहयोग से लगभग पचास हिंदी विद्यालय संचालित करती है, जिनमें तीस प्राथमिक तथा बीस उच्च स्तर के हैं। इसके अधीनस्थ केन्द्रीय हिंदी पुस्तकालय में लगभग तीन हजार से अधिक ग्रन्थों का संग्रह है। साथ ही समिति हिंदी साहित्य की अनेक महत्वपूर्ण कृतियों का प्रकाशन भी करती है।

## 19. मैसूर हिंदी प्रचार परिषद

उन्नीसवीं प्रमुख संस्था मैसूर हिंदी प्रचार परिषद का गठन सन् 1943 ई. में बेंगलुरु में हुआ। इसका मूल उद्देश्य महात्मा गाँधी के राष्ट्रभाषा-प्रचार आदर्श से प्रेरणा लेकर मैसूर राज्य के अहिंदीभाषी क्षेत्रों में हिंदी का प्रसार करना था। परिषद द्वारा विभिन्न स्तरों पर हिंदी शिक्षण हेतु पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं और उनकी परीक्षाएँ भी आयोजित की जाती हैं। परिषद का पुस्तकालय अत्यन्त समृद्ध है, जिसमें पाँच हजार से अधिक पुस्तकें संग्रहित हैं। इसके अतिरिक्त परिषद एक नियमित मासिक पत्रिका का प्रकाशन कर हिंदी साहित्य एवं संस्कृति के प्रचार में योगदान देता है।

## 20. कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति, बेंगलुरु

बीसवीं महत्वपूर्ण संस्था कर्नाटक महिला हिंदी सेवा समिति की स्थापना सन् 1952 ई. में बेंगलुरु में की गई थी। इस समिति की स्थापना में शिवानन्द स्वामी तथा माता आउबाई का प्रेरक योगदान रहा। इस संस्था का

उद्देश्य महिलाओं में हिंदी के प्रति चेतना, अभिरुचि एवं राष्ट्रभाषा के प्रति समर्पण की भावना उत्पन्न करना था। समिति की विशेषता यह है कि इसके सभी पदाधिकारी महिलाएँ ही हैं। संस्था द्वारा 'हिंदी प्रचारवाणी' नामक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन किया जाता है, जो महिला समाज में हिंदी-जागरण का प्रबल माध्यम है। यह संस्था विविध हिंदी पाठ्यक्रमों का संचालन करती है तथा परीक्षाओं का भी आयोजन करती है।

### 21. मणिपुर हिंदी परिषद, इम्फाल

इक्कीसवीं संस्था के रूप में मणिपुर हिंदी परिषद का गठन सन् 1953 ई. में इम्फाल में कुछ उत्साही नवयुवकों के प्रयासों से किया गया। यह परिषद आरम्भ से ही निरन्तर रूप से हिंदी भाषा के प्रसार, शिक्षण एवं प्रचार में संलग्न रही है। संस्था विभिन्न हिंदी पाठ्यक्रमों का संचालन करती है तथा परीक्षाओं का भी आयोजन करती है। परिषद का पुस्तकालय अत्यन्त समृद्ध है और समय-समय पर यह साहित्यिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से हिंदी के विस्तार में सक्रिय भूमिका निभाती रही है।

संस्था समय-समय पर विविध साहित्यिक एवं सांस्कृतिक समारोहों का आयोजन करती रहती है तथा प्रतिष्ठित विद्वानों को सम्मानित भी करती है। इसकी त्रैमासिक पत्रिका 'महीप' का नियमित प्रकाशन निरंतर जारी है, जो हिंदी साहित्य की रचनात्मक चेतना को प्रसारित करती है।

### 22. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

हिंदी प्रचार की बाइसवीं महत्वपूर्ण संस्था के रूप में साहित्य अकादमी का विशेष स्थान है। इसकी स्थापना भारत सरकार द्वारा 12 मार्च 1954 को की गई थी। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य भारतीय भाषाओं के उच्च साहित्यिक मानदंड स्थापित करना, विविध भाषाओं की साहित्यिक गतिविधियों में समन्वय स्थापित करना, तथा भारतीय संस्कृति की एकात्मता का संवर्धन करना है। यद्यपि इसका गठन भारत सरकार के तत्वावधान में हुआ, तथापि यह एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में कार्यरत है।

अकादमी प्रतिवर्ष अपनी मान्यता प्राप्त भाषाओं की उत्कृष्ट कृतियों को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान करती

है तथा भारतीय भाषाओं के परस्पर अनुवाद कार्यों को प्रोत्साहन देने हेतु भी विशेष पुरस्कार देती है। ये पुरस्कार एक वर्ष तक चले समीक्षा, विचार-विमर्श और चयन-प्रक्रिया के पश्चात् घोषित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, अकादमी उन भाषाओं के विद्वानों को भी 'भाषा सम्मान' से अलंकृत करती है, जिन्हें औपचारिक रूप से अकादमी की मान्यता प्राप्त नहीं है।

अकादमी की प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' का प्रकाशन 1980 से अनवरत रूप से हो रहा है, जो देश की विभिन्न भारतीय भाषाओं में रचित श्रेष्ठ और नवीनतम साहित्यिक रचनाओं का परिचय कराती है।

### 23. अखिल भारतीय हिंदी संस्था संघ, नई दिल्ली

तेइसवीं प्रमुख संस्था के रूप में अखिल भारतीय हिंदी संस्था संघ का गठन 1964 में हुआ। इसका प्रमुख उद्देश्य हिंदी भाषा के प्रसार, प्रचार और उन्नयन को सुनिश्चित करना है। इस संघ में भारत सरकार के प्रतिनिधियों के साथ-साथ विभिन्न हिंदी संस्थाओं के सदस्य भी सम्मिलित होते हैं, जो सामूहिक रूप से हिंदी के विकास हेतु योजनाएँ निर्मित करते हैं।

### 24. उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ

चौबीसवीं उल्लेखनीय संस्था उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान है, जिसकी स्थापना 1976 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा की गई। यह संस्थान राज्य भाषा विभाग के अंतर्गत कार्य करता है। हिंदी के उत्थान के प्रति समर्पित यह संस्था प्रतिवर्ष 'भारत भारती' सहित अनेक प्रतिष्ठित सम्मान हिंदी साहित्यकारों एवं सेवियों को प्रदान करती है। इसकी मुख्य पत्रिका 'साहित्य भारती' निरंतर प्रकाशित हो रही है, जो साहित्यिक विमर्श एवं सृजन को प्रोत्साहन देती है।

### 25. हिंदी अकादमी, दिल्ली

पच्चीसवीं महत्वपूर्ण संस्था के रूप में हिंदी अकादमी, दिल्ली उल्लेखनीय है। इसकी स्थापना 1981 में दिल्ली सरकार द्वारा एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में की गई। यह अकादमी कला, साहित्य, संस्कृति एवं भाषा विभाग के अधीन कार्य करती है। संस्था का उद्देश्य हिंदी भाषा तथा साहित्य के संवर्धन और प्रसार के लिए विद्वानों को सम्मानित करना, पुस्तकों को पुरस्कार प्रदान करना, एवं साहित्यिक

पत्रिकाओं का नियमित प्रकाशन करना है, जिससे हिंदी की रचनात्मक परंपरा सशक्त रूप से विकसित हो सके।

सम्मेलन एवं गोष्ठियों का आयोजन करना, साहित्यिक कृतियों का प्रकाशन करना तथा अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं से हिंदी में अनुवाद कराना इस संस्था की प्रमुख गतिविधियों में सम्मिलित है।

## 26. महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

छब्बीसवीं एवं अन्तिम प्रमुख संस्था महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय है, जिसकी स्थापना महाराष्ट्र के वर्धा नगर में सन् 1997 में भारतीय संसद द्वारा पारित एक विशेष अधिनियम के अंतर्गत की गई। इस विश्वविद्यालय का मूल उद्देश्य है- हिंदी भाषा एवं साहित्य के शोध, अध्ययन और अनुसन्धान के माध्यम से उसका संवर्धन और विस्तार करना, साथ ही हिंदी को राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करना। यह विश्वविद्यालय महात्मा गाँधी के उस स्वप्न को साकार करने का प्रयत्न कर रहा है, जिसमें उन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने की परिकल्पना की थी।

आज जिस समृद्ध और व्यापक हिंदी भाषा के हम उत्तराधिकारी हैं, उसके विकास, प्रसार और प्रतिष्ठा के पीछे उपर्युक्त संस्थाओं का अमूल्य योगदान रहा है। हिंदी

के उत्कर्ष की यात्रा में ये संस्थाएँ मील के पत्थर के समान सिद्ध हुई हैं। यदि इन संस्थानों और उनसे जुड़े महनीय व्यक्तित्वों ने हिंदी को एक सशक्त आन्दोलन का स्वरूप न दिया होता, तो सम्भवतः आज हिंदी न तो राजभाषा के रूप में मान्यता प्राप्त कर पाती, और न ही राष्ट्रभाषा के रूप में करोड़ों भारतीयों के हृदय में अपना स्थान बना पाती।

## निष्कर्ष :

हिंदी भाषा के प्रचार और संवर्धन में हिंदी सेवी संस्थाओं का योगदान अमूल्य रहा है। नागरी प्रचारिणी सभा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हिंदी विद्यापीठ देवघर, साहित्य अकादमी और महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा जैसी संस्थाओं ने हिंदी को केवल भाषा नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना का माध्यम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके प्रयासों के कारण हिंदी ने राष्ट्रभाषा के रूप में अपनी मान्यता प्राप्त की और भारतीय समाज के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक प्रसार पाया। यह स्पष्ट है कि इन संस्थाओं के बिना हिंदी का यह स्तर संभव नहीं होता। अतः हिंदी सेवी संस्थाएँ हिंदी भाषा की समृद्धि, सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता और राष्ट्रीय पहचान की स्थायी नींव रही हैं। □

## संदर्भ- ग्रंथ सूची :

1. रविन्दन सिंह, खड़ी बोली ग्राम भाषा से राज भाषा तक, पृष्ठ 230
2. वही, पृष्ठ 2313. वही, पृष्ठ 232
4. वही, पृष्ठ 2335. वही, पृष्ठ 234
6. वही, पृष्ठ 235
7. हिंदी की विकास यात्रा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा, पृष्ठ 453
8. हिंदी की विकास यात्रा, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग पृष्ठ 970
9. वही, पृष्ठ 532
10. रविन्दन सिंह, राष्ट्रभाषा का संदर्भ और हिंदी संस्थाएं, पृष्ठ 41,42,54

## भारतीय ज्ञान परंपरा और प्रेमचंद की कहानियों में शिक्षा का संदर्भ

### शोध सार :



डॉ रमाकान्त राय

भारतीय ज्ञान परंपरा ज्ञान और विज्ञान के हर क्षेत्र पर अपना विशेष दृष्टिकोण रखती है। वसुधैव कुटुम्बकम् उसकी भावना है और सर्वे भवन्तु सुखिनः उसका लक्ष्य। वेदांग के अध्ययन में शिक्षा को एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में रखा गया था। इसमें उच्चारण ज्ञान सिखाया जाता है। आधुनिक अर्थ में शिक्षा का अर्थ Education से है। हिंदी के प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचंद ने अपनी कई कहानियों में शिक्षा को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विषय बनाया है। वह स्वयं शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हुए थे और भारतीय शिक्षा प्रणाली से गहरे परिचित थे। वह उस बिंदु पर थे, जहाँ प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली में संस्कृत शिक्षण, उर्दू-अरबी-फारसी की पढ़ाई के साथ अंग्रेजी ढंग की पढ़ाई भी हो रही थी। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों के माध्यम से शिक्षा का जो स्वरूप व्यक्त किया है, उसी का अध्ययन इस शोध आलेख में किया गया है।

**बीज शब्द :** भारतीय ज्ञान परंपरा, शिक्षा, संस्कृत शिक्षण, उर्दू-अरबी-फारसी, कहानी, कलम का सिपाही, पाश्चात्य शिक्षा पद्धति, पारंपरिक शिक्षा, मदरसा शिक्षा।

### शोध लेख :

भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा का अर्थ उच्चारण ज्ञान है और यह छह वेदांगों में से एक प्रशाखा है, किंतु आधुनिक काल में शिक्षा का अर्थ अंग्रेजी के Education के पर्याय के रूप में लिया जाता है। इस अवधारणा में शिक्षा का आशय है ज्ञान प्राप्ति को सुगम बनाने की प्रक्रिया। इसमें एक पीढ़ी अगली पीढ़ी तक ज्ञान संपदा का हस्तांतरण भी करती है। यह एक संस्था की तरह काम करती है। वस्तुतः शिक्षा व्यक्ति की अंतर्निहित क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने वाली प्रक्रिया है। स्वामी विवेकानंद के मत में मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। महात्मा गांधी के मत में शिक्षा से तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।

भारतीय परंपरा में शिक्षा आध्यात्मिकता पर आधारित थी। इसका मूल उद्देश्य जीवन के यथार्थ का ज्ञान कराना और भवसागर की बाधाओं को पार कर मोक्ष की प्राप्ति था। कालांतर में शिक्षा आध्यात्मिकता से अधिक भौतिकता केंद्रित हो गई। जब देश में अंग्रेजों का शासन हुआ तो यहाँ की भाषा सीखने का प्रयत्न आरंभ

-----  
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी  
पंचायत राज राजकीय महिला  
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इटावा  
उत्तर प्रदेश - 206001  
☎ 9838952426  
✉ royramakantrk@gmail.com  
-----

हुआ। इस क्रम में अंग्रेजी शिक्षा के स्कूल-कॉलेज खुलने लगे। यहाँ अंग्रेजी सरकार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षा की व्यवस्था होने लगी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है- “रीतिकाल के समाप्त होते-होते अंगरेजी राज्य देश में पूर्ण रूप से स्थापित हो गया। इस राजनीतिक घटना के साथ देशवासियों की शिक्षा विधि में भी परिवर्तन हो चला। अंगरेज सरकार ने अंगरेजी की शिक्षा के प्रचार की व्यवस्था की। अंगरेजी की पढ़ाई के लिए कलकत्ते में हिंदू कॉलेज की स्थापना हुई, जिसमें से लोग अंगरेजी पढ़-पढ़ कर निकलने और सरकारी नौकरियाँ पाने लगे। देशी भाषा पढ़कर भी कोई शिक्षित हो सकता है, यह विचार उस समय तक लोगों को न था। अंगरेजी के सिवाय यदि किसी भाषा पर ध्यान जाता था तो संस्कृत या अरबी पर।”<sup>1</sup> उन्होंने लिखा है - “सरकार की कृपा से खड़ी बोली का अरबी-फारसीमय रूप लिखने-पढ़ने की अदालती होकर सबके सामने आ गया। जीविका और मान मर्यादा की दृष्टि से उर्दू सीखना आवश्यक हो गया। देश भाषा के नाम पर लड़कों को उर्दू ही सिखाई जाने लगी। उर्दू पढ़े लिखे लोग ही शिक्षित कहलाने लगे।”<sup>2</sup> भारत में शिक्षा का पारंपरिक रूप लगभग बदल गया था।

प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद (1880-1936) की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा उनके अपने ग्राम लमही, वाराणसी में हुई थी। जीवन के आठवें साल में उनका विद्यारंभ हुआ। अमृत राय ने प्रेमचंद की जीवनी ‘कलम का सिपाही’ में लिखा है- “आठवें साल में उनकी पढ़ाई शुरू हो गई थी, ठीक वही पढ़ाई जिसका कायस्थ घरानों में चलन था, उर्दू-फारसी। लमही से मील सवा मील की दूरी पर एक गाँव है लालपुर, वहीं एक मौलवी साहब रहते थे, जो पेशे से तो दरजी थे मगर मदरसा भी चलाते थे।”<sup>3</sup> हाईस्कूल की पढ़ाई उन्होंने क्रीस कॉलेज, वाराणसी और इंटर सेंट्रल हिंदू कॉलेज से किया। स्नातक की पढ़ाई प्रेमचंद ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से की। स्नातक की उपाधि प्राप्त करने से पूर्व वह एक विद्यालय में अध्यापक हो गए थे। स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद उनकी पदोन्नति डिप्टी इंस्पेक्टर के रूप में हुई। सन 1931 में महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा आंदोलन से प्रेरित होकर प्रेमचंद ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने ‘हंस’ पत्रिका

और ‘जागरण’ पत्र का संपादन किया। डिप्टी इंस्पेक्टर के रूप में जब प्रेमचंद की नियुक्ति महोबा में हुई तो उन्होंने मदरसों और विद्यालयों की स्थिति पर यथार्थपरक विवरण लिखा। अमृत राय ने कलम का सिपाही में लिखा है- “काम का बोझ मुदर्रिसों पर बहुत है, मदरसों के लिए घर नहीं है, पाठ्यक्रम गलत है, उसमें किसानों की खास अपनी जरूरतों का ख्याल नहीं रक्खा गया है, शिक्षा पर पैसा खर्च करने में सरकार बेहद कंजूसी से काम लेती है...।”<sup>4</sup> इस प्रकार कह सकते हैं कि प्रेमचंद ने मदरसा प्रणाली और अंग्रेजी ढंग से शिक्षा प्राप्त की थी। वह उर्दू-फारसी के ज्ञाता थे। प्रेमचंद ने 1919 में अंग्रेजी, फारसी और इतिहास विषयों के साथ स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी। उनका शिक्षण कार्य भी इन्हीं विषयों से संबंधित था।

प्रेमचंद के साहित्य का अनुशीलन करने पर सहज ही पता चलता है कि वह शिक्षा व्यवस्था को लेकर बहुत संवेदनशील थे। अपने एक ले ‘नया जमाना-पुराना जमाना’ में उन्होंने देश के शिक्षित और संपन्न लोगों की जन विरोधी तथा स्वराज्य विरोधी नीति की भर्त्सना की है। प्रेमचंद ने 300 से अधिक कहानियाँ लिखी हैं, जो उर्दू और हिंदी में समान रूप से महत्व रखती हैं। उनकी कई कहानियों में शिक्षा, पठन-पाठन और चरित्र निर्माण में शिक्षा की भूमिका का संदर्भ मिलता है। इस आलेख में ऐसी ही कुछ चुनिंदा कहानियों को केंद्र में रखकर शिक्षा के प्रति प्रेमचंद के दृष्टिकोण का आकलन करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रेमचंद की शिक्षा को केंद्र में रखकर लिखी गई कुछ महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं- परीक्षा, बड़े घर की बेटी, बड़े भाई साहब, पंच परमेश्वर, नमक का दारोगा, ईदगाह, सज्जनता का दंड, पशु से मनुष्य आदि।

प्रेमचंद अपनी कहानियों में तत्कालीन शिक्षा पद्धति, जो पश्चिम आधारित है, को भ्रष्ट मानते हैं और विद्या के भारतीय अर्थ को ही स्वीकार्य मानते हैं। उनकी एक कहानी ‘पशु से मनुष्य’, जो 1920 में प्रभा पत्रिका में प्रकाशित हुई थी, के प्रेमशंकर कहते हैं- “मुझे वर्तमान शिक्षा और सभ्यता पर विश्वास नहीं है। विद्या का धर्म है

आत्मिक उन्नति और आत्मिक उन्नति का फल उदारता, त्याग, सदिच्छा, सहानुभूति, न्यायपरता और दयाशीलता है। जो शिक्षा हमें निर्बलों को सताने पर तैयार करे, जो हमें धरती और धन का गुलाम बनाए, जो हमें भोग-विलास में डुबाए, जो हमें दूसरों का रक्त पीकर मोटा होने को इच्छुक बनाए, वह शिक्षा नहीं भ्रष्टता है।”<sup>5</sup> इस कहानी में प्रेमचंद ने डॉक्टर मेहरा जैसे पात्र का हृदय परिवर्तन करवाया है। अपनी एक चर्चित कहानी नमक का दारोगा, जो हमदर्द उर्दू मासिक पत्रिका में अक्टूबर, 1913 में प्रकाशित हुई थी, में शिक्षा व्यवस्था पर उनकी टिप्पणी है। “यह वह समय था, जब अंग्रेजी शिक्षा और ईसाई मत को लोग एक ही वस्तु समझते थे। फारसी का प्राबल्य था। प्रेम की कथाएँ और शृंगार रस के काव्य पढ़कर फारसीदाँ लोग सर्वोच्च पदों पर नियुक्त हो जाया करते थे। मुंशी वंशीधर भी जुलेखा की विरहकथा समाप्त करके मजनों और फरहाद के प्रेम-वृत्तांत को नल और नील की लड़ाई और अमेरिका के आविष्कार से अधिक महत्व की बातें समझते हुए रोजगार की खोज में निकले।”<sup>6</sup> यह कहानियाँ प्रेमचंद की आदर्शवादी कहानियाँ हैं, इसलिए इन कहानियों में यथार्थ और आदर्श में बहुत फाँक है।

हिंदी में प्रेमचंद की प्रथम कहानी ‘परीक्षा’<sup>7</sup> जो अक्टूबर, 1914 में गणेशशंकर विद्यार्थी की ‘प्रताप’ पत्रिका के विजयदशमी अंक में प्रकाशित हुई थी, अंग्रेजी शिक्षा पाए नकलची युवकों के स्थान पर परदुःखकातर, परमार्थी, सेवा भावना रखने के युवक को श्रेयस्कर मानती है। इस कहानी में देवगढ़ की रियासत के दीवान पद के चुनाव में जो प्रक्रिया अपनाई जाती है, वह शिक्षा के एक महत्वपूर्ण उपादान की तरह ली जा सकती है। इस कहानी में स्वाभाविक वृत्ति और समयानुकूल रूप धरने की शिक्षित लोगों की कला पर बहुत महीन व्यंग्य मिलता है।

प्रेमचंद की एक अन्य चर्चित कहानी ‘बड़े घर की बेटी’ ‘जमाना’ पत्रिका में 1910 में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी प्रेमचंद के नाम से प्रकाशित होने वाली पहली कहानी है। इस कहानी का एक पात्र श्रीकंठ अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति हैं, किंतु वह “डिग्री के अधिपति होने पर भी अंग्रेजी सामाजिक प्रथाओं के विशेष प्रेमी न था, बल्कि वह बहुधा बड़े जोर से उनकी निंदा और तिरस्कार

किया करता था। इसी से गाँव में उनका बड़ा सम्मान था।”<sup>8</sup>

यद्यपि वह विद्वान है तथापि आनंदी के कहने पर उग्र हो उठता है। इस कहानी में आनंदी के बड़े घर की बेटी होने का श्रेय इस बात से मिलता है कि वह घर को, भाइयों के बीच संबंध टूटने से बचा लेती है। केवल समृद्ध परिवार और ऊँचे कुल की कन्या होने से ही वह बड़े घर की बेटी नहीं मानी जाएगी, ऐसी स्थापना प्रेमचंद ने रखी है।

प्रेमचंद की कहानी ‘पंच परमेश्वर’ हिंदी में सरस्वती पत्रिका में जून, 1916 में प्रकाशित हुई थी। यह कहानी पारंपरिक न्याय व्यवस्था का बहुत सुघड़ निदर्शन कराती है, किंतु इस कहानी के प्रारंभिक अनुच्छेद में प्रेमचंद ने परंपरागत शिक्षा प्रणाली पर भी टिप्पणियाँ की हैं। अलगू चौधरी के पिता मानते थे कि “विद्या पढ़ने से नहीं आती, जो कुछ होता है, गुरु के आशीर्वाद से होता है, बस गुरुजी की कृपा दृष्टि चाहिए।”<sup>9</sup> इस कहानी में शिक्षा प्रदान करने वाले जुमेराती, अलगू चौधरी को हमेशा चिलम भरने में लगाए रहते हैं और जुम्मन को उसकी गलतियों के लिए छड़ी से पीटने में अधिक विश्वास करते हैं। अधिक परिश्रम से पढ़े-लिखे जुम्मन शेख बहुत आदर का पात्र होते हैं। प्रेमचंद यह स्थापित करते हैं कि पढ़-लिखकर सहज ही आदर प्राप्त किया जा सकता है, किंतु जुम्मन के चरित्र का चित्रण करते हुए वह दर्शाते हैं कि अधिक पत्र-लिख लेने के बाद जुम्मन स्वार्थी और संकीर्णता का शिकार हो गए हैं। वह अपनी खाला की संपत्ति हड़पने के बाद उनको भरण-पोषण के लिए आवश्यक संसाधन देने में भी आनाकानी करते हैं। साथ ही अपने विपक्ष में निर्णय देने से रुष्ट होकर वह अलगू चौधरी के बैल को जहर दे देते हैं। यह संकीर्णता वाला भाव प्रेमचंद अपनी कहानी ‘मंत्र’<sup>10</sup> में भी दिखाते हैं, जहाँ डॉ. चड्ढा भगत के बीमार बच्चे का निदान नहीं करते और बैडमिंटन खेलने चले जाते हैं। यह कहानी विशाल भारत पत्रिका में मार्च, 1928 में प्रकाशित हुई थी।

प्रेमचंद की कहानी ‘बड़े भाई साहब’ ‘हंस’ में नवंबर, 1934 में प्रकाशित हुई। इस कहानी में बड़े भाई

के मुख से पश्चिमी शिक्षा की जितनी तीखी आलोचना प्रेमचंद ने की है, वह उल्लेखनीय है। अंग्रेजी भाषा, इतिहास, भूगोल आदि के पढ़ाने-पढ़ने पर प्रेमचंद ने बहुत मारक टिप्पणियाँ की हैं। वह लिखते हैं- “परीक्षकों को क्या परवाह। वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक में लिखा है। चाहे कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें और इसी रटत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है और आखिर इन बेसिर-पैर की बातों को पढ़ाने से फायदा?”<sup>11</sup> इसी कहानी में प्रेमचंद अनेकशः यह बताते हैं कि जीवन के हर क्षेत्र में अंग्रेज हमसे पिछड़े हैं और उनका बौद्धिक स्तर कमतर है।

प्रेमचंद की एक अन्य कहानी ‘ईदगाह’ (चाँद पत्रिका में 1933 में प्रकाशित) बाल मनोविज्ञान पर केंद्रित है। इस कहानी में प्रेमचंद ने मेला देखने जा रहे बच्चों से कॉलेज की शिक्षा और व्यवस्था पर व्यंग्य वचन कहलाए हैं। कहानी का प्रमुख चरित्र हामिद का पर्यवेक्षण है- “इतने बड़े कॉलेज में कितने लड़के पढ़ते होंगे! सब लड़के नहीं हैं जी! इतने बड़े हो गए, अभी तक पढ़ते जाते हैं? न जाने कब तक पढ़ेंगे और क्या करेंगे इतना पढ़कर! हमीद के मदरसे में दो-तीन बड़े-बड़े लड़के हैं, बिल्कुल तीन कौड़ी के, रोज मार खाते हैं, काम से जी चुराने वाले।”<sup>12</sup> उनकी हंस पत्रिका में सन 1933 में प्रकाशित एक कहानी ‘गुल्ली-डंडा’<sup>13</sup> में सहपाठी रहे दो युवकों के बीच कितना अंतर आ गया है, अफसर बना बालक अपनी पृष्ठभूमि से किस कदर कट गया है, इसका मार्मिक

आख्यान करती है। इस कहानी में शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त असमानता भी दिखाई गई है। प्रेमचंद की कई कहानियों में स्त्री शिक्षा के बारे में भी प्रसंग मिलते हैं। जीवन का शाप, मिस पद्मा, क्रिकेट मैच आदि कहानियों में शिक्षित स्त्रियों का चित्रांकन है। “‘मिस पद्मा’ कहानी में उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्री-पुरुष पश्चिम के प्रभाव में विवाह संस्था को टुकरा कर मित्र रूप में रहते हैं, जिसकी इधर कानूनी मान्यता देने के लिए चर्चा होती रहती है।”<sup>14</sup>

कमल किशोर गोयनका लिखते हैं- “प्रेमचंद की कहानियों में पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा तथा धन प्रभुतामय जीवन के प्रति घोर आलोचनात्मक व्यवहार मिलता है। वह आरंभ से ही अंग्रेजों द्वारा स्थापित पश्चिमी शिक्षा के केंद्रों का समाज पर पड़ते प्रभाव को देख रहे थे कि किस प्रकार अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय अपने संस्कारों और जातीय परंपराओं को हीन मानते हुए अंग्रेजी की नकल में ही गौरव एवं श्रेष्ठता का अनुभव करते हैं। प्रेमचंद इसे ही मानसिक पराधीनता मानते हैं, जो युवा पीढ़ी का चारित्रिक पतन कर रही है और जनता से दूर ले जा रही है।”

किसान जीवन, दलित समुदाय की समस्याएँ, सामाजिक समस्याएँ और स्त्रियों तथा बच्चों पर केंद्रित साहित्य प्रेमचंद के यहाँ बहुतायत है। इसमें शिक्षा एक महत्वपूर्ण घटक है, जो उनके साहित्य और चिंतन के केंद्र में रहा है। प्रेमचंद पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के कटु आलोचक और भारतीय जीवन पद्धति तथा शिक्षण प्रक्रिया के पक्षधर थे। उनके साहित्य में यह बारंबार परिलक्षित होता है। □

#### संदर्भ सूची :

1. शुक्ल, रामचन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पंचम लोकभारती संस्करण-2007, पृष्ठ-214
2. वही पृष्ठ- 215-216
3. राय, अमृत, कलम का सिपाही, लोकभारती पेपरबैक्स, प्रयागराज, प्रथम संस्करण-2021, पृष्ठ- 14
4. वही, पृष्ठ- 107
5. प्रेमचंद, पशु से मनुष्य, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-2, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010 पृष्ठ- 331
6. प्रेमचंद, नमक का दारोगा, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-1, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ-433
7. प्रेमचंद, परीक्षा, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-1, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ-475
8. प्रेमचंद, बड़े घर की बेटी, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-1, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ-177
9. प्रेमचंद, पंच परमेश्वर, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-2, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2010, पृष्ठ- 45
10. प्रेमचंद, मंत्र, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-4, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ- 340
11. प्रेमचंद, बड़े भाई साहब, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-6, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ-458
12. प्रेमचंद, ईदगाह, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-6, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण- 2010, पृष्ठ-311
13. प्रेमचंद, गुल्ली-डंडा, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-6, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ-250
14. कमल किशोर गोयनका, भूमिका, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-6, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ- 46
15. कमल किशोर गोयनका, भूमिका, प्रेमचंद कहानी रचनावली, खंड-6, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2010, पृष्ठ- 48

## राष्ट्रीय एकता के पुरोध पुरुष : डॉक्टर बी.आर. अंबेडकर



डॉ. समीर

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग  
पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय  
बठिंडा, पंजाब- 151401  
7888654739  
saksham.sameer@gmail.com



डॉ. सोनिया शर्मा

अध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग ,  
स्वामी प्रेमानंद महाविद्यालय  
मुकेरियां, पंजाब  
होशियारपुर-144211  
9888142775  
drsoniasameer@gmail.com

### शोध-सार :

भारत वास्तव में भाग्यशाली है, क्योंकि उसके पास कई प्रतिष्ठित विद्वान, बुद्धिजीवी, राजनेता और स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने अपने पराक्रम और प्रज्ञा से कई सौ वर्षों के गुलाम शासन की शक्तिशाली जंजीरों को तोड़ा तथा स्वतंत्रता के लिए खुद को बलिदान कर दिया और आने वाली पीढ़ियों को अत्याचारी और बर्बर शासन और शासन निर्मित संकुचित मानसिकता के चक्रव्यूह से आजाद करवाने का प्रयास किया। ऐसे ही प्रतिष्ठित व्यक्तित्वों में से एक थे डॉ. भीमराव राम जी अंबेडकर, जिन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता पूर्ण प्रयासों से फूट डालो और राज्य करो वाली अंग्रेजी शासन द्वारा आरोपित गुलामी की जर्जर मानसिकता से भारतवासियों को मुक्त कराया और राष्ट्रीय एकता के शंखनाथ हेतु सामाजिक एकीकरण का प्रयास किया तथा संपूर्ण राष्ट्र की एकात्मता हेतु नीति निर्धारण में अपनी महती भूमिका निभाई। यही कारण था कि स्वतंत्रता के बाद जब भारत के संविधान का मसौदा तैयार करने का एक महत्वपूर्ण कार्य करने का प्रश्न उठा तो यह कार्य इन्हें सौंपा गया। इस शोध पत्र में राष्ट्र के एकीकरण के लिए डॉ. अंबेडकर के संघर्ष और योगदान का पता लगाने और उनका विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। यह शोध पत्र भारत की बिखरी हुई आबादी को एकीकृत करने और इस हेतु बाबा साहब द्वारा किए गए उनके प्रयासों के बारे में लोगों को जागरूक करेगा। इसी के साथ इसके माध्यम से उनके द्वारा किए गए एकीकरण के बिंदुओं पर विचार कर राष्ट्रीय एकता की स्थापना में उनके योगदान को रेखांकित किया जाएगा।

### बीज शब्द :

जाति, भेदभाव, एकीकरण, एकत्व भाव, भाषा, व्ययस्था, सांप्रदायिकता, उत्पीड़न।

### प्रस्तावना :

राष्ट्रीय एकता का तात्पर्य अपने देश और देशवासियों के प्रति अपनेपन की गहरी भावना तथा विभिन्न वर्गों से संबंधित मूल निवासियों के प्रति एकजुटता और एकता का भाव है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से लोगों के मन मस्तिष्क में सद्भावपूर्ण सामाजिक बंधन बनते हैं। इससे भाईचारे की भावना विकसित होती है और संपूर्ण रूप से राष्ट्र के प्रति दृढ़ निष्ठा का भाव जागृत होता है। भारत जैसे बहु-सांस्कृतिक देश में इस सामाजिक बंधन और एकता के भाव का

मुख्य आधार प्रत्येक समूह की विशिष्टताओं का संरक्षण है ना कि भिन्नताओं के आधार पर मनुष्य की पहचान को रेखांकित करना। किसी भी राष्ट्र के सर्वांगीण विकास और सुरक्षा हेतु राष्ट्रीय एकता सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। राष्ट्रीय एकता के अभाव के कारण ही भारत बाहरी शक्तियों से पराजित होता रहा है। हमारा देश लगभग 500 वर्षों तक दूसरों के चंगुल में फँसा रहा तथा विदेशी इसका लाभ उठाते रहे। अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की नीति ने तो भारत की राष्ट्रीय एकता को सबसे गहरी चोट पहुँचाई। समस्त भारतवासी एक साथ प्रेम-भाव से जीवन यापन करते हुए अचानक ही अंग्रेजों की नीतियों का शिकार हुए और एक-दूसरे की जान के दुश्मन बन गए, जिसका परिणाम भारत को दो टुकड़ों में विभाजन के रूप में देखने को मिला। विभाजन भारत के इतिहास की सबसे दुर्भाग्यपूर्ण और मार्मिक घटना है। इस घटना के मूल को रेखांकित करें तो स्पष्ट नजर आता है कि राष्ट्रीय एकता का अभाव इसका मूल कारण था। किसी भी राष्ट्र का विकास उस राष्ट्र के एकत्व भाव में समाहित रहता है। किसी एक वर्ग या समुदाय की उपेक्षा कर कभी भी संपूर्ण राष्ट्र के विकास की परिकल्पना नहीं की जा सकती। जिस समाज या राष्ट्र में कोई भी विशेष वर्ग यदि पिछड़ा हुआ है तो उसे विकसित राष्ट्र की संज्ञा देना पूर्णतः अनुचित है। भारत जैसे लोकतांत्रिक देश में, जहाँ सत्ता लोगों की और लोगों द्वारा निर्मित होती है, वहाँ लोगों का अर्थ सीमित रहकर एक विशेष वर्ग के लोग हो जाए तो संपूर्ण राष्ट्र को एक रूप में देखना स्वप्न मात्र प्रतीत होता है। भारतवर्ष में जब-जब ऐसी स्थिति देखने को मिलती है, तब तक कोई ना कोई महान पुरुष भारत को इस स्थिति से उभारने के लिए प्रयासरत नजर आता है। ऐसे महापुरुषों के कार्य का मूल आधार भारत की राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना और एक नए भारत के निर्माण के लिए भेदभाव और अन्याय की सभी बाधाओं के खिलाफ समाज में जागरूकता लाना रहा है। “समानता और एकता के बिना स्वतंत्रता संभव नहीं है”<sup>1</sup> का उद्घोष करने वाले बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर भी उन भूमि पुत्रों में से एक थे, जिन्होंने अपने राष्ट्र भारत और उसके लोगों के कल्याण हेतु स्वयं को

समर्पित कर दिया। भारतीय जनमानस की विविध संस्कृतियों, जातियों, भाषाओं तथा पराधीन मूल निवासियों के प्रति उनकी भावनाओं और संविधान में उनके अधिकारों के बारे में उनके विचार, राष्ट्रीय एकीकरण के लिए उनके प्रयास को ही रेखांकित करते हैं। राष्ट्रीय एकता अथवा राष्ट्रीय एकीकरण में भिन्न-भिन्न विरोधी तत्व अपनी भूमिका निभाते हैं। संकीर्ण मनोवृत्ति के लोग ऐसा मानते हैं कि डॉ. अंबेडकर ने केवल दलितों और अस्पृश्य लोगों के उत्थान के लिए कार्य किया है, परंतु क्या वह लोग इस राष्ट्र का हिस्सा नहीं है? राष्ट्र में रहने वाला प्रत्येक वर्ग जब तक एकात्म नहीं होगा, तब तक राष्ट्र भी एक नहीं हो सकता। इसी दृष्टिकोण से बाबा साहेब राष्ट्र एकता के लिय प्रयासरत नजर आते हैं। उनके राष्ट्रीय एकीकरण हेतु लिए गए प्रयासों को निम्नांकित संदर्भों में देखा जा सकता है-

#### जातिवाद :

राष्ट्रीय एकता की संकल्पना का आधार भिन्न-भिन्न समाजों के एकीकरण में सन्निहित है। यदि उन समाजों में ही भेदभाव की स्थिति होगी तो संपूर्ण रूप से राष्ट्र की संकल्पना संभव नहीं। डॉ. अंबेडकर इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि जातिवाद एक ऐसा घुन है, जो देश को अंदर से खोखला करने का कार्य करता है। समाज के अलग-अलग वर्गों को जाति का नाम दिया जाता है। जातिवाद एक ऐसा संदर्भ है, जो राष्ट्र की अलग-अलग जातियों के मध्य परस्पर प्रतिस्पर्द्धा की भावना को जन्म देता है। यही कारण है कि समाज में जाति आधारित श्रेष्ठ तत्व और हीनत्व का भाव देखने को मिलता है। डॉ. अंबेडकर इस तथ्य को जानते थे, इसी लिए वह जातिवाद के प्रति समाज को सचेत करते हुए उसके दूरभावों के प्रति अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं- “जातिवाद ने लोगों की आत्मा को मार दिया है। जाति ने लोगों की दानशीलता का नाश कर दिया है। जाति ने लोगों की राय को असंभव बना दिया है और सदाचार जातिवाद का घाव बन गया है।”<sup>2</sup> यहाँ यह स्पष्ट होता है कि डॉ. अंबेडकर की दृष्टि में जातिवाद एक ऐसी बीमारी है, जो लोगों को विवेक शून्य बनाकर खुद को भेदभाव पूर्ण सामाजिक व्यवस्था के अनुयायी के रूप में खड़ा करती है। इस

व्यवस्था में यही माना जाने लगता है कि जाति ही तय करती है कि कोई समूह सम्मान और अधिकारों का कितना हकदार है और कितना नहीं, या यूँ कहें कि वह हकदार भी है या नहीं। जाति व्यवस्था समाज को नफरत और अलगाव की तरफ बढ़ाती है, जिससे राष्ट्रीय एकता की स्थापना असंभव लगती है। गुलाम मानसिकता के चलते वर्तमान संदर्भ में भी जातिवाद एक ऐसी व्यवस्था का रूप धारण कर चुका है, जिसमें एक वर्ग के लोग दूसरे वर्ग के लोगों के अधिकारों को अपमानित करने और दबाने का कार्य कर रहे हैं। उन्हें उनकी पीढ़ीगत नौकरी के साथ जुड़े रहने के लिए मजबूर करके उनकी गतिशीलता को प्रतिबिंबित कर रहे हैं, जो कि पूर्णतया असंगत है। डॉ. अंबेडकर का मानना था कि गुलाम भारत में किस व्यक्ति को क्या अधिकार देने हैं, वह अंग्रेज तय करते थे, किंतु स्वतंत्रता के पश्चात तो परिस्थितियाँ बदल सकती हैं, समाज में बदलाव लाया जा सकता है, उनके शब्दों में, “जब हमारे देश में अंग्रेजों का शासन था, तब किस वर्ग को क्या अधिकार देना है वह उन शासकों पर निर्भर था। उस समय हम अन्य वर्गों के लोगों से खींचे रहते थे। अब अंग्रेज जा चुके हैं, अतः अब अन्य वर्गों एवं दलों से सहानुभूति पूर्ण व्यवहार रखना पड़ेगा। वैधानिक रीति से हम अपनी उन्नति करना चाहते हैं तो हमें सभी के साथ मिलजुल कर ही चलना पड़ेगा, शत्रुता भूलनी होगी तथा पहले जैसा एकाकीपन अब काम नहीं देगा।”<sup>3</sup> जातिवाद का भाव विदेशी प्रभाव, छल-कपट तथा फूट डालो जैसे कुचक्रों के कारण भारतीय लोगों में इतनी गहरी जड़ें जमा चुका है कि धर्म परिवर्तन के बाद भी इसके निशान मिटते नहीं दीखते। बाबा साहब कहते थे— “हमारा समाज चार मंजिला इमारत की तरह है, जिसमें ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ नहीं हैं। इस कारण जाति भेद की पराकाष्ठा हो गई है। मैं इस इमारत में विचारों की सुरंग बनाऊँगा और इस इमारत के बंधनों को तोड़ दूँगा।”<sup>4</sup> वह जाति विभक्त समाज को राष्ट्र के रूप में स्वीकृत नहीं करते थे और बिना राष्ट्र के राष्ट्रीय एकता की बात निरर्थक है। उनका कहना है कि— “हम एक राष्ट्र हैं ऐसा मानना आत्मवंचना है। हजारों

जातियाँ में बँटे हुए लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं? यह जातियाँ और वर्ण राष्ट्र विरोधी हैं। इन बाधाओं पर विजय पाने से ही हम राष्ट्र हो सकेगे, और तभी लोगों में राष्ट्रीयता की भावना उजागर होगी।”<sup>5</sup>

यहाँ यह स्पष्ट हो जाता है कि अंबेडकर का दृष्टिकोण जातिवादी व्यवस्था के प्रतिकार और राष्ट्रवादी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में था। वह जातिवाद के दंश को समाप्त कर राष्ट्रवाद का शंखनाथ करना चाहते थे। विडंबना यह है कि उनकी दृष्टि को जातिवादी संकुचित मानसिकता से परिपूर्ण वर्ग द्वारा पुनः जातिवादी व्यवस्था की ओर मोड़ने का एक तर्कहीन निरर्थक प्रयास किया गया और किया जा रहा है, जबकि अंबेडकर इस प्रकार की संकुचित मानसिकता से कोसों दूर थे।

### सांप्रदायिकता :

सांप्रदायिकता एक ऐसा शब्द है, जिसकी पीड़ा को वर्तमान भारत आज भी भोग रहा है और इसके अतीतगत भयावह प्रभावों से परिचित भी हैं और पीड़ित भी हैं। यह वह भारत था, जहाँ हिंदू, मुस्लिम, सिख और ईसाई आदि सभी संप्रदायों के लोग परस्पर सौहार्द्र से रहते थे। अंग्रेजी हुकूमत की फूट डालो और राज करो की नकारात्मक राजनीतिक सोच के चलते सांप्रदायिक आग में भारत ऐसा झुलसा कि इसे अपने दो टुकड़ों के रूप में विभाजन की त्रासदी को झेलना पड़ा। डॉ. अंबेडकर इस सत्य से पूर्णता परिचित थे कि अगर सांप्रदायिक सौहार्द्र पैदा करना है तो इसका प्रथम नियामक राष्ट्रीय एकता का भाव है, जिसके बिना सांप्रदायिक सौहार्द्रपूर्ण वातावरण का सृजन संभव नहीं है। वह जानते थे कि भारत में सांप्रदायिक व्यवस्था की स्थिति क्या है। इस आधार को स्पष्ट करते हुए वह लिखते हैं— “सीधे-सीधे कहें तो सांप्रदायिकता का आधार ही यह धारणा है कि भारतीय समाज कई ऐसे संप्रदायों में बँटा हुआ है कि जिनके हित न सिर्फ अलग हैं, बल्कि एक दूसरे के विरोधी भी हैं। सांप्रदायिकता के जन्म के पीछे का विश्वास यह भी है कि राजनीतिक और आर्थिक से लेकर सामाजिक और सांस्कृतिक इरादों के लिए लोगों को सिर्फ धर्म की रस्सी से ही बाँधकर आँका जाता

है।”<sup>6</sup> अर्थात धर्म को आधार बनाकर किया गया भेद या विरोध ही सांप्रदायिकता है। एक समय पर सांप्रदायिकता पर अंबेडकर का विचार यह भी रहा है कि “हिंदू-मुस्लिम कभी एक राष्ट्र के रूप में विकसित नहीं हो सकते। अतीत का अनुभव तो यही है कि इनमें सामंजस्य से नहीं हो सकता। अपनी विराट असमानताओं एवं भेद-भाव के चलते यह एक राष्ट्र के रूप में कभी भी नहीं रह सकते। इन आपसी भिन्नताओं एवं मतभेदों के कारण अलग-अलग रहने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि यह कारण उन्हें युद्ध की स्थिति में हमेशा बनाए रखते हैं।”<sup>7</sup> यहाँ यह विचारणीय है कि अंबेडकर की दृष्टि सांप्रदायिकता के मूल कारण की जाँच-पड़ताल का परिणाम थी। वह यह स्वीकारते दीखते हैं कि अगर कोई धर्म किसी दूसरे धर्म से परस्पर व्यापक प्रतिरोध की भावना से परिपूर्ण है, उनकी भिन्नताएँ एक स्तर से ज्यादा एक-दूसरे के प्रति आक्रामक हैं तो उनका अलग रहना ही राष्ट्रीय-एकता के लिए श्रेष्ठस्कर है। परंतु साथ ही वह यह भी समझते थे कि इसके निराकरण के लिए समस्त लोगों को अपनी पहचान का आधार धर्म आधारित न करके राष्ट्र आधारित करना होगा। उनके शब्दों में- “राष्ट्र एक कला तथा काल के कार्यों का प्रतिफल है। यदि हिंदू और मुसलमान उन बातों पर बल देते हैं, जो उन्हें एक सूत्र में बाँधती हैं और उन बातों को भूल जाते हैं जिनके परिणामस्वरूप में विभक्त हो तो फिर ऐसा कोई कारण नहीं है कि आगे चलकर उनका एक राष्ट्र के रूप में उदय न हो। हो सकता है कि उनकी राष्ट्रीयता इतनी एकताबद्ध न हो, जितनी फ्रांस और जर्मनी की हैं, परंतु वे मन की एक समान स्थिति सरलता पूर्वक उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसी सभी समान मुद्दों के मामले में जिनका उदय राष्ट्रीयता की आत्मा के फलस्वरूप हुआ।”<sup>8</sup> इस तरह हम देखते हैं कि अंबेडकर इस समस्या से भी परिचित थे और समस्या के समाधान हेतु यह उपाय भी बताते हैं कि सभी धर्म के लोग स्वयं की पहचान को भारतीयता के नाम से देखें। इस तरह वह धर्म को पीछे रखकर राष्ट्र को आगे रखने की बात करते हैं।

### भौगोलिकता :

भौगोलिकता किसी भी राष्ट्र के एकीकरण का एक महत्वपूर्ण आयाम है। अगर किसी राष्ट्र में भौगोलिक आधार पर वैमनस्य या विरोध की भाव प्रवणता है तो निश्चित रूप से राष्ट्रीय एकता का प्रश्न संदिग्ध नजर आएगा। यही कारण है कि जब अंबेडकर राष्ट्रीय एकता की बात करते हैं तो वह भौगोलिकता का भी इसमें समावेश करते हैं। वह भारत को एक भौगोलिक इकाई के रूप में मानते हुए इसका निर्माण प्रकृति प्रदत्त स्वीकारते हैं। वह मानते हैं कि - “भारतीय निश्चय ही लड़ रहे हैं और कोई भी या भविष्यवाणी नहीं कर सकता कि वह कब लड़ना बंद करें। परंतु इस तथ्य को स्वीकारने पर यह भी प्रश्न उठता है कि यह किस बात का सूचक है? केवल यह कहना कि भारतीय विवादित होते हैं इस तथ्य को नहीं मिटा सकता कि भारत एक भौगोलिक इकाई है इसकी एकता उतनी ही प्राचीन है, जितनी की प्रकृति।”<sup>9</sup> डॉ. अंबेडकर का उक्त वक्तव्य यह स्पष्ट करता है कि उनकी दृष्टि में भारत की भौगोलिक एकता प्राचीन काल से ही परिव्याप्त है। समय अंतराल के कारण और विदेशी आक्रांताओं के चलते इसमें क्षेत्रीयता की संकुचित मानसिकता ने अपनी दस्तक जरूर दी थी, परंतु यह कहना की यह स्वाभाविक स्थिति है पूर्णतः गलत है। भारत की इस भौगोलिक एकता को वह राष्ट्रीय एकता का मूल स्वीकारते हैं।

### भाषा :

भाषायी एकता किसी भी राष्ट्र के एकीकरण का प्राण तत्व है। विशेष रूप से तब जब हम भाषायी एकता की बात उस राष्ट्र के संदर्भ में करते हैं। यहाँ भाषायी विविधता अपनी पराकाष्ठा पर नजर आ रही है। भारत क्योंकि धर्म, जाति, भूगोल और संस्कृति हर दृष्टि से भिन्नता के वातावरण से परिपूर्ण राष्ट्र की संकल्पना लिए हुए है, इसलिए इस भिन्नता में एकत्व का भाव भरने में भाषायी एकता की एक अहम भूमिका है। डॉ. अंबेडकर क्योंकि राष्ट्रीय एकता के प्रबल आग्रही थे इसलिए उन्होंने भाषायी एकता की बात को भी बड़ी सुदृढ़ता के साथ रखा। वह जानते थे

कि राष्ट्रीय एकता के नियामकों में भाषा एक महत्वपूर्ण नियामक है, जिसके बिना राष्ट्रीय एकता का ध्वजारोहण संभव नहीं। उनकी दृष्टि में भाषा एक ऐसा बिंदु है, जिसके आधार पर भारत में एकता भंग की स्थिति देखी जा सकती है। इसलिए पूरे भारत में एकता स्थापित करने हेतु उन्होंने हिंदी भाषा का समर्थन किया उनके विचार में— “एक भाषा एक जीवन पद्धति और एक धर्म राष्ट्रीयता के आधार हैं भावात्मक शुभ संवाद और राष्ट्रीय एकात्मता हिंदी भाषा द्वारा ही संभव है।”<sup>10</sup> बहुभाषी राष्ट्र होने के कारण एक भाषा के सिद्धांत के रास्ते में आने वाली चुनौतियों से भी वह परिचित थे। यही कारण है कि वह यह स्वीकारते नजर आते हैं कि यदि एक भाषा और एक राज्य के सिद्धांत को स्वीकार किया गया तो एक भाषा के कारण उत्तर भारत के एकीकरण और दक्षिण भारत के विभक्तिकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाएगी। यही कारण है कि उन्होंने एक प्रांत एक भाषा का समर्थन न कर एक ऐसी भाषा के समर्थन की बात कही, जिसे संपूर्ण राष्ट्र अपनी भाषा के रूप में स्वीकार करें।

#### लैंगिक समानता :

महिलाएँ भी राष्ट्र निर्माण का एक महत्वपूर्ण कारक हैं। परिस्थितिवश कई बार इस संदर्भ में उनकी स्थिति को नकार दिया जाता है। राष्ट्र में रहने वाला प्रत्येक नागरिक चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्र के विकास में अपनी अहम भूमिका निभाता है। एक राष्ट्रीय चिंतक होने के नाते डॉ. अंबेडकर इस तथ्य को जानते थे कि अगर एकत्व राष्ट्रीयता के भाव को जनमानस में प्रबल करना है तो इसके लिए लैंगिक असमानता की स्थिति को समूल नष्ट करना होगा। इसी लिय स्वतंत्र भारत में लैंगिक समानता के सबसे बड़े पक्षधर और सशक्त हस्ताक्षर के रूप में बाबा साहब का नाम प्रथम पंक्ति में आता है। उन्होंने स्त्रियों के उत्थान के लिए अथक प्रयास किए, जिनमें शिक्षा, विवाह, परिवार नियोजन, प्रसूति अवकाश और हिंदू कोड बिल आदि शामिल हैं। डॉ. अंबेडकर शिक्षा को ऐसे अस्त्र के रूप में स्वीकार करते थे, जो समस्त बेटियों को काट सकती है। उनका मानना था किसी भी देश और समुदाय की वास्तविक प्रगति के

लिए समस्त नागरिकों का शिक्षित होना अनिवार्य है। उन्होंने स्त्री शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा कि - “घर में एक पुरुष पढ़ता है तो सिर्फ शिक्षा लगभग वही तक सीमित हो जाती है और यदि घर में स्त्री पढ़ती है तो पूरा परिवार पढ़कर शिक्षित हो जाता है।”<sup>11</sup> विवाह और परिवार नियोजन को भी वह स्त्रियों के विकास का एक महत्वपूर्ण पहलू मानते थे। उन्होंने बाल विवाह का विरोध किया और कहा कि शादी जबरदस्ती आरोपित नहीं होनी चाहिए, अपितु जब तक स्त्री या महिला आर्थिक रूप से सशक्त ना हो जाए तब तक उस पर इसके लिए कोई दबाव नहीं बनना चाहिए। विवाह में महिलाओं के अधिकारों की वकालत करते हुए उन्होंने लिखा कि पत्नी कैसी होनी चाहिए इस बारे में पुरुषों का विचार जाना जाता है वैसे ही पति कैसा हो इस बारे में पत्नी का मत जान लेना भी जरूरी है। महिला भी व्यक्ति है और उसे भी व्यक्ति स्वतंत्रता होनी चाहिए। डॉ. अंबेडकर का लैंगिक असमानता को दूर करने में सबसे बड़े योगदान के रूप में हिंदू कोड बिल को देखा जा सकता है। इस बिल के माध्यम से उन्होंने बड़े सशक्त रूप से महिलाओं के अधिकारों का समर्थन किया है। कार्य क्षेत्र में महिलाओं के शोषण के रोकथाम के लिए प्रसूति अवकाश की सुविधा को अधिनियम 1961 द्वारा पारित करवाया। इस प्रकार लैंगिक असमानता को दूर करते हुए महिलाओं के हितों और उनके अधिकारों के प्रति डॉ. अंबेडकर एक संवेदनशील योद्धा और पुरोधा पुरुष के रूप में सामने आते हैं। उन्होंने स्त्री उत्थान के लिए उनसे जुड़े समस्त क्षेत्रों शिक्षा, विवाह, प्रसूति अवकाश, हिंदू कोड बिल और परिवार नियोजन आदि में क्रांतिकारी परिवर्तन कर स्त्री सशक्तिकरण का वह नीति निर्धारित मार्ग तैयार किया, जिस पर चलकर आज की स्त्री अपने आप को स्वतंत्र और सशक्त समझते हुए राष्ट्र निर्माण में अग्रणी भूमिका में दिखाई दे रही है।

अतः डॉ. अंबेडकर की अकादमिक प्रतिष्ठा, कानून के बारे में उनका गहन ज्ञान और सामाजिक समस्याओं का समृद्ध अनुभव ने उन्हें अपने मिशन अर्थात् राष्ट्रीय एकीकरण को सफलतापूर्वक पूरा करने में सहायक सिद्ध हुआ। वह जाति के पदानुक्रम को खत्म करना चाहते थे,

क्योंकि वह जानते थे कि यह वर्ग वैमनस्य का एक मूल आधार है। वह ऐसे समाज की घोर भर्त्सना करते हैं, जो झूठे मानकों पर आधारित है, जिसमें मनुष्य और मनुष्य की अपनी शत्रुता धार्मिक पाखंड के रूप में परिलक्षित होती है। वे लिंग, जाति, भाषा, धर्म या क्षेत्र के नाम पर होने वाले संकीर्ण संघर्षों को समाप्त कर एक ऐसे समाज के पुनर्निर्माण के लिए प्रतिबद्ध नजर आते हैं, जहाँ हर व्यक्ति को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार विकसित होने का पूरा अवसर मिले। उन्हें इस बात का ज्ञान था कि सभी प्रकार की भेदभावपूर्ण गतिविधियाँ विविधतापूर्ण समाज के एकीकरण के लिए हानिकारक हैं, क्योंकि यहीं संबंधों में दरार पैदा करती हैं और यह दरार राष्ट्र के लोगों में विभाजन के बीज पल्लवन की पृष्ठभूमि तैयार करती है। इन समस्त कठिन संघर्षों से गुजरते हुए डॉ. अंबेडकर संविधान के रूप में एक ऐसे न्याय शास्त्र को लेकर उपस्थित होते हैं, जिसमें उन्होंने संस्कृतियों, धर्मों, क्षेत्रों, भाषाओं, जातियों और उनसे संबंधित मुद्दों की विविधता को ध्यान में रखते हुए ऐसी संवैधानिक व्यवस्था तैयार करने का प्रयास किया, जिसमें राष्ट्रीय एकता के प्रति उनके विचारों का नाद स्पष्ट सुनाई देता है।

#### निष्कर्ष :

अतः डॉ. अंबेडकर आजीवन भारत और उसके लोगों की भलाई के लिए प्रतिबद्ध थे। उनके इस योगदान की वर्तमान प्रासंगिकता तब और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, जब हमारे देश के लोग व्यक्तिगत लाभ के लिए विभेदीकरण के उस रास्ते पर चल पड़े हैं, जिसके विरोध में डॉ. अंबेडकर सशक्त रूप में खड़े नजर आते हैं। बाबा साहब ने संविधान का मसौदा तैयार करते समय हर वर्ग के अधिकारों को सामने रखते हुए उन्हें समता के एक छत्र के नीचे समाहित किया न कि वर्ग विशेष को। अंततः डॉ. अंबेडकर एक ऐसे भविष्यद्रष्टा थे, जिन्होंने वर्तमान का विश्लेषण और अतीत का अन्वेषण कर नीति निर्माण द्वारा भविष्य के उस भारत की संकल्पना को साकार करने का प्रयास किया था, जिसमें समाज का प्रत्येक वर्ग समता और समरसता के धरातल पर खड़ा होकर एकत्व भाव से परिपूर्ण राष्ट्रीय विचारधारा का उद्घोष करता नजर आए। यही कारण था कि जातिवाद, सांप्रदायिकता, भौगोलिकता, भाषीय भिन्नता और लैंगिक असमानता जैसे राष्ट्रीय एकता के विरोधी तत्वों के निराकरण हेतु वह नीति-निर्धारित सुझावों और नियमों द्वारा राष्ट्रीय एकता के पुरोधा पुरुष के रूप में खड़े नजर आते हैं। □

#### संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अंबेडकर, बाबा साहब, संपूर्ण वांगमय, खंड-15. डॉ. अंबेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली, 2000, पृ. 243-362
2. अंबेडकर, भीमराव, पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन. सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2009, पृ. 306-309
3. कौर, धन्जय, अंबेडकर टु लाइफ एंड मिशन, पोपुलर पब्लिकेशंस, बॉम्बे, 1954
4. कुबेर, श्री एन. डॉ. अंबेडकर विचार मंथन, पृ. 235
5. कुमार, मनोज. डॉ. भीमराव अंबेडकर, के. के. पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2018
6. चंद्र, विपिन, सांप्रदायिकता एक परिचय. अनामिका पब्लिकेशन्स एण्ड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2004, पृ. 7
7. चंद्रा, मेरिल, सोशल एंड पोलिटिकल आइडियाज ऑफ बी.आर. अंबेडकर. आलेख प्रकाशन, जयपुर, 1967, पृ. 75
8. द्विवेदी, एच.एस. डॉ. अंबेडकर : सामाजिक लोकतंत्र के अग्रदूत. इंडियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस, 2005
9. मकवाना, किशोर. डॉ. अंबेडकर आयाम दर्शन. प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
10. एस. विक्रम, दलित महिलाएँ : इतिहास वर्तमान और भविष्य (संपा.) में आभालता चौधरी नारी स्वतंत्रता और डॉ. अंबेडकर. नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ 167
11. Velaskar, Padma .Education for Liberation: Amnedkar's Thought and Dalit Woman's Perspective, Contemporary Education Dialogue. Sage Publications, New Delhi. 2012, p 245

## काव्य का श्रेष्ठतम रूप : कविता और संगीत

### शोध-सार :



### डॉ. संतोष कुमार गुप्ता

(टीचिंग असिस्टेंट)  
रवींद्रनाथ ठाकुर विश्वविद्यालय  
होजाई-782438 (असम)  
☎ 9401024656  
✉ santoshgupta7747@gmail.com

अक्सर यह कहा गया है कि जो मनुष्य अपने देश का साहित्य नहीं जानता, कला नहीं जानता या संगीत का भी उसे ज्ञान नहीं तो वह मनुष्य मस्तिष्क धारी होकर भी पशु तुल्य है। काव्य को उसके श्रेष्ठतम रूप दिलाने में कविता और संगीत का जो अमूल्य अवदान है, उसे कदापि नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। कविता का संबंध एक गहन विषय है, जिसका संबंध जीवन, भावनाओं, समाज, प्रकृति और हमारी आत्माओं से जुड़ा होता है। कविता जीवन के अनुभवों की अभिव्यक्ति है। सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रेम-विरह जीवन के हर पहलू को कविता में उसका स्थान मिलती है। वहीं संगीत केवल ध्वनि नहीं है, वह आत्मा से आत्मा का संवाद है। जब कविता स्वर में ढलती है, तब संगीत बन जाती है। क्षेत्र के विचार से काव्य, संगीत की अपेक्षा विस्तृत है। काव्य जहाँ सभी भावनाओं की सफल अभिव्यंजना में सक्षम है, वहीं संगीत मूलतः वीर, करुण, शृंगार और शांत रस अपनी भावनाओं की ही सफल अभिव्यक्ति में समर्थ है। विकास के चरण जैसे-जैसे बढ़ते गए, वैसे-वैसे संगीत और कविता का स्वतंत्र रूप भी अधिक से अधिक स्थिर और स्पष्ट होता गया। एक दिन ऐसा आया कि कविता और संगीत ने अपनी-अपनी स्वतंत्र महत्ता को घोषित कर दिया। यह अध्ययन भारतीय साहित्यिक सर्जना में छिपे हुए उन तत्वों को उद्घाटित करती है, जो सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना से अनुप्राणित है। यह शोध आलेख समकालीन साहित्यिक आलोचना को एक नया दृष्टिकोण प्रदान करता है। विशेष रूप में न केवल हिंदी साहित्य बल्कि समग्र भारतीय साहित्य में कविता और संगीत की महत्ता और उसकी उपयोगिता को समझने के लिए यह शोध आलेख अत्यंत उपयोगी होगा।

### मूल शब्द :

कविता, संगीत, कविता और संगीत का अंतर्संबंध, कविता और संगीत का समन्वय, पिछड़ी हुई असभ्य जातियों के संगीत, काव्य की आत्मा रस आदि।

### भूमिका :

भावनाओं की कुशल अभिव्यक्ति कला है। यह देखा गया कि भारतवर्ष में जातीय जीवन की अभिव्यक्ति कलाओं के द्वारा ही अधिक हुई है। चाहे कोई कवि हो, गायक हो या अन्य कलाकार-उसने वर्षों से मनुष्य की भावनाओं एवं उसके चित्त वृत्तियों का संस्कार किया है। कविता और संगीत दोनों मिलकर



### डॉ. मनोज कुमार स्वामी

विभागाध्यक्ष  
रवींद्रनाथ ठाकुर विश्वविद्यालय  
होजाई-782438 (असम)  
☎ 8812888700  
✉ manojkswami@gmail.com

काव्य के सृष्टि सरोवर को जीवन देते हैं। कविता यदि किसी की विचार है तो संगीत उसका स्वरूप है। कविता मानव मन की बात है तो संगीत आत्मा की भाषा। तभी तो जब दोनों का संगम होता है, तब अमर कला का जन्म होता है। कविता भावनाओं की गहराई को शब्द देती है। इसके मुख्य भाव हैं। प्रेम, करुणा, पीड़ा आदि। चाँद, सूरज, फूल, वर्षा, पर्वत, गुफाएँ, लहर, झरना, प्राकृतिक तत्वों से प्रेरणा ग्रहण कर आगे बढ़ती है। संगीत काव्य का ऐसा रूप है, जिसमें शब्दों के साथ स्वर, राग और ताल जुड़ते हैं। जब कविता को सुरों में ढाला जाता है तो वह सामान्य पाठ से कई गुना अधिक प्रभावशाली बन जाती है। संगीत कविता को जीवन देता है, उसे गति देता है। कविता और संगीत जब मिलते हैं तो काव्य केवल पढ़ा नहीं जाता, बल्कि उसे जिया जाता है। यह मन को छूता है, आत्मा को आंदोलित करता है। यह रूप न केवल मनोरंजन करता है बल्कि आध्यात्मिक उन्नति, सामाजिक चेतना और नैतिक जागरूकता भी प्रदान करता है। इन्हीं सब कारणों के चलते काव्य का श्रेष्ठतम और सर्वाधिक एवं प्रभावी रूप माना जाता है। कविता और संगीत में इतना अधिक सामंजस्य दिखाई पड़ता है, जिसे कई विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। हिंदी साहित्य के प्रमुख आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भी काव्य और संगीत के मेल को आवश्यक माना है - *“काव्य एक बहुत ही व्यापक कला है। जिस प्रकार मूर्त विधान के लिए कविता चित्र विद्या की प्रणाली का अनुसरण करती है उसी प्रकार नाद-सौंदर्य के लिए वह संगीत का कुछ-कुछ सहारा लेती है। नाद-सौंदर्य से कविता की आयु बढ़ती है। तार पत्र, भोजपत्र, कागज आदि का आश्रय छूट जाने पर भी वह बहुत दिनों तक लोगों की जिह्वा पर नाचती रहती है। बहुत-सी उक्तियों को लोग उनके अर्थ की रमणीयता इत्यादि की ओर ध्यान ले जाने का कष्ट उठाए बिना ही प्रसन्नचित रहने पर गुनगुनाया करते हैं।”*<sup>1</sup>

भारतीय परंपरा में संगीत को ईश्वर प्राप्ति का मार्ग भी माना गया है। ‘नाद ब्रह्म’ की अवधारणा इस बात का प्रमाण है कि ध्वनि और सुर के माध्यम से मनुष्य ईश्वर से साक्षात्कार कर सकता है। कविता मात्र शब्दों का खेल नहीं है, यह हृदय की संवेदना है। कल्पना और अनुभूति

का सजीव चित्रण है, जो गंभीर विषयों को बड़ी आसान भाषा में शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखती है। कविता में छंद, अलंकार, रस और लय होते हैं, जो उसे अन्य काव्य रूपों से अलग बनाते हैं। काव्य और संगीत का मेल तो बहुत बाद में हुआ, उससे पहले समाज के पिछड़ी हुई असभ्य जातियों के संगीत और कविता के अध्ययन से इन दोनों के प्रारंभिक स्वरूप की कुछ कल्पना अवश्य ही की जा सकती है। किंतु यह बात इतनी पुरानी है कि इनके शुरुआती दौर के संबंध में यकीनन आज कुछ भी कह पाना संभव नहीं, क्योंकि परिवर्तन संसार का नियम है और इन जातियों के संगीत और काव्य में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। इसका कारण यह है कि यह वह समय था, जब मानव जाति अपने सामाजिकता के साँचे में ढलना सीख रहा था। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानव जाति की अभिव्यक्ति मचल रही थी। चाहे वह सुख की घड़ी हो या दुःख की। इन हालात में यदि कविता किसी अनजाने ही आँखों से उमड़-घुमड़ कर बह गई तो इसमें आश्चर्य करने वाली कोई बात नहीं। अभिव्यक्ति का संगीतात्मक रूप न केवल स्वाभाविक है, बल्कि पूरी तरह से सक्षम भी। स्वरों का अंतराल केवल मानव जाति के अंदर न होकर पशु-पक्षियों की सुख-दुःख की अभिव्यक्ति में भी विद्यमान रहता है। हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरों ने भारतीय संगीत की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि- *“हिंदुस्तान के संगीत पर केवल यहाँ के मनुष्य ही नहीं झूमते, बल्कि उसे सुनकर हिरण भी चरना भूल जाते हैं। तोता और मैना भी आदमी की बोली बोलते हैं। घोड़े ताल पर कदम उठाते हैं, बकरियाँ संतुलन के खेल दिखाती हैं और बंदर रुपए और अठन्नी का भेद बता रहे हैं।”*<sup>2</sup>

स्वरों के अंतराल-युक्त ध्वनि से संगीत विकसित हुआ। वाणी में जैसे असभ्य और पिछड़ी जातियों का रोना भी गाना है। इस तरह भाषा कुछ और विकसित हुई, तब जाकर कहीं संगीत और कविता के बीज फूट पड़े। दुनिया का कोई भी ऐसा हिस्सा नहीं, जहाँ रहने वाले लोग किसी-न-किसी रूप में संगीत से न जुड़े हों, चाहे हम ऐतिहासिकता की बात लें या पौराणिकता की-प्राचीन काल से लेकर आधुनिक कालों तक संगीत की महत्ता

दिखलाई पड़ती है। भगवान कृष्ण बाँसुरी बजाते हैं, माता सरस्वती के हाथ में वीणा, महादेव के हाथ में डमरू, मनोरंजन की दृष्टि से देखें तो इंद्र के दरबार में अप्सराओं का नृत्य, तो गंधर्वों, यक्षों अथवा किन्नरों की बात ही निराली थी। ऐतिहासिकता की दृष्टि से देखें तो हिंदुस्तान के मुगल बादशाह अकबर के दरबार में जो नवरत्न थे, उनमें तानसेन, रहीम का संगीत मनलुभावन था। कबीर की साखियाँ, तुलसीदास की विनय पत्रिका, मीरा की पदावली, रवींद्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि- ये सभी कविताएँ केवल साहित्य नहीं हैं, बल्कि मानवीय चेतना की जीती-जागती मिसालें हैं। कविता मनुष्य के भीतर छिपे विचारों, भावनाओं और आत्मा की भाषा बन जाती है। संगीत की शक्ति से भले ही पत्थर पिघले या ना पिघले पर चेतन जगत के जीव-जंतु, पशु-पक्षियों पर इसका जादू अवश्य ही चल जाता है। एक विद्वान ने संगीत की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि - *“संगीत की विशेषता इस बात में है कि उसका प्रभाव बड़ा व्यापक है और वह अनादि काल से मनुष्य मात्र पर पड़ता चला आ रहा है। जंगली से लेकर सभ्यतासभ्य मनुष्य तक उसके प्रभाव से वशीभूत हो सकते हैं। मनुष्यों को जाने दीजिए पशु-पक्षी तक उसका अनुशासन मानते हैं।”*<sup>3</sup>

कविता और संगीत से अंतःसंबंध स्थापित कराने वाला एक आधार है; विचार, भाव और मानव के संवेग-ये कवि को सामाजिक संदर्भ से प्राप्त होते हैं। काव्य भाव योग की साधना है। बाह्य घटनाओं का आत्मसातीकरण और आत्म-विलयनीकरण जब होता है, तब काव्य जन्म लेता है। भाषा काव्य रचना के लिए आधारभूत उपकरण है। यह आविष्कृत नहीं की जा सकती। यह परंपरा से प्राप्त होती है। इसमें पूर्वजों के सुदीर्घ चिंतन और अर्थ भंगिमा का मेल रहता है। मानव जीवन की विविधताओं का गान करने वाले संगीत का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। केवल सुख और दुख इन दो शब्दों से मानव की कहानी पूरी हो जाती है। आमोद-प्रमोद, हास्य-क्रंदन या जन्म-मृत्यु चाहे- जैसा भी अवसर हो, मानव के जीवन में संगीत को पहली जगह मिल ही जाती है। एक ओर यदि मीठे-मीठे स्वप्नों और संगीत के झूले में झूलते हैं तो वहीं दूसरी ओर युद्ध के मैदान में रण वाद्यों के भैरव संगीत से

संचालित होता है। कविता और संगीत एक-दूसरे के पूरक हैं। कविता भाव की जड़ है तो संगीत उसका पुष्प। कविता और संगीत में घनिष्ठ संबंध है। संगीत के संयोग से कवि की रचना में संप्रेषणीयता आ जाती है। अलंकार, छंद और संगीत एवं कला से मिलकर कविता दर्शन और विज्ञान जैसे विषयों से अलग हो जाती है।

काव्य की आत्मा रस को माना गया है, क्योंकि वही उसका प्राण है; जिस तरह मानव के शरीर से अगर प्राण निकल जाए तो शरीर सिर्फ मांस का लोथड़ा बनकर रह जाता है। संगीत ने मानव जाति के जीवन में इतनी व्यापकता से प्रवेश किया है कि मानव जीवन से संबंध रखने वाली हर एक बात से उसका कुछ-न-कुछ संबंध जुड़ गया। कविता और संगीत में इतना अधिक सामंजस्य है कि उसकी संगीतात्मकता का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकते। भाषा के शब्दों में अर्थ गौरव के साथ-साथ ध्वनि विन्यास संबंधी विशेषता भी समाहित रहती है, क्योंकि शब्दों में अपना संगीत तत्व रहता है और शब्द संगीत की झंकार अपरिमित होती है। काव्य को नाद-सौंदर्य बनाने के लिए भाषा को मधुर, कोमल और सुकुमार बनाना जरूरी होता है। काव्य और संगीत के क्षेत्र में किसी भी प्रचलित भाषा के स्वीकृत शब्द रूपों में प्रायः नाना प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं, जिनकी ओर संकेत करके साहित्य के कुछ लोगों ने असहमति प्रकट की और कभी समर्थन भी किया। जहाँ इस तरह के विकारों का समर्थन भी किया, वहाँ किसी-न-किसी रूप में कवियों की संगीतात्मकता पर ही बल दिया गया। कविता और संगीत दोनों ही आत्मा की गहराइयों में उतरने की सामर्थ्य रखते हैं। इनका संबंध सीधे हृदय से होता है। जब कविता को संगीत में पिरोया जाता है, तो यह सिर्फ शब्दों का उच्चारण नहीं रह जाती, बल्कि एक ऐसी अनुभूति बन जाती है, जिसे केवल महसूस किया जा सकता है। भारतीय परंपरा में भी इसे विशेष स्थान प्राप्त है। हिंदी साहित्य के भक्ति काल में संत कवियों में कबीरदास, तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई और आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवियों ने अपने काव्य को संगीत के माध्यम से जनमानस तक पहुँचाया है। आज भी उनके काव्य लाखों लोगों के हृदय को आनंद पहुँचाते हैं।

“उहर बाल गोपाल कन्हैया।  
 राहुल राज भैया  
 कैसे धाँऊ पाँव तुझको हार गई मैं दैया।  
 सद् दूध प्रस्तुत है बेटा, दुग्ध फेन-सी शैया।  
 तू ही एक खिवैया, मेरी पड़ी भंवर में नैया।  
 आ मेरी गोदी में आ जा, मैं हूँ दुखिया मैया।  
 मैया है तू अथवा मेरी दो थन वाली गैया।  
 रने से यह रिस ही अच्छी, तिली लिलि ता थैया।”<sup>4</sup>

प्रस्तुत उदाहरण में गीत का सामंजस्य एवं शब्दों का भंडार है। कृष्ण के लिए कन्हैया, नाव के लिए नैया, माँ के लिए मैया, गाय के लिए गैया आदि शब्दों का प्रयोग काव्यों में शब्द के लचीलेपन से संगीत उत्पन्न करने के लिए ही किया गया है। शास्त्रीय दृष्टि से संगीत के कई तत्व हैं। लेकिन भाषिक विचार से अगर देखा जाए तो संगीत के दो तत्त्व अधिक महत्वपूर्ण हैं। पहला राग और दूसरा नाद। राग भारतीय संगीत की नींव है। नाद शब्द की दूसरी और अधिक व्यापक शक्ति है। प्रत्येक वाक्य, जिसके द्वारा हम अपने विचार प्रकट करते हैं, यह नाद शक्ति विचार संबद्ध होते हैं। भारतीय संस्कृति में काव्य का विशेष स्थान रहा है। यह न केवल मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति है, बल्कि आत्मा की पुकार भी है। काव्य अनेक रूपों में प्रकट होता है। नाटक, महाकाव्य, गद्य-काव्य, किंतु उसका सबसे प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी रूप कविता और संगीत है। इनका प्रभाव तात्कालिक न होकर दीर्घकालिक होता है। कविता और संगीत ने सदियों से समाज को न केवल भावनात्मक रूप से समृद्ध किया है, बल्कि समय-समय पर समाज के लोगों को जगाने और समाज में बदलाव लाने का कार्य भी किया है। स्वतंत्रता की लड़ाई के समय गीतों और कविताओं ने लाखों लोगों को एक जुट करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका भी निभाई है।

“बरसेंगे अग्निबाण  
 बन करके बंधु कभी  
 झुकी हुई कमर के प्रणाम।  
 मुर्दा साँसों के बल

तना रहेगा कब तक  
 जर्जर पाखंडों का यह किला  
 अंदर-बाहर के अघातों से  
 टूटेगी एक दिन  
 आदिम सम्बन्धों की अर्गला”<sup>5</sup>

भारतीय समाज दो तरह का है। एक सुविधा संपन्न और दूसरा सुविधाहीन। बच्चन सिंह की इस कविता यानी गीत में संपन्न वर्ग को चेतावनी दी गई है कि यदि सुविधाहीन और कमजोर लोगों को उनके हक नहीं मिले तो उनके ‘प्रणाम’ अग्निबाण बनकर संपन्न वर्ग को तबाह कर देंगे। कविता स्वयं एक व्यापक और लचीला साहित्यिक रूप है। फिर भी साहित्यिक दृष्टिकोण से कविता के श्रेष्ठतम रूप का मूल्यांकन कई आधारों पर किया जा सकता है। कविता का श्रेष्ठतम रूप वह है, जिसमें भावनाएँ, संवेदनाएँ और विचार सबसे अधिक प्रभावशाली तरीके से संप्रेषित होते हैं। यह रूप किसी भी छंद, शैली या संरचना में हो सकता है। हिन्दी साहित्य के कवियों में रामधारी सिंह ‘दिनकर’, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी ‘निराला’ आदि कवियों ने मनुष्य की आंतरिक पीड़ा प्रकृति से संबंध और आध्यात्मिक चेतना को जिस रूप में व्यक्त किया, वह सचमुच में श्रेष्ठ माने गए। छायावादी काव्य में लय, संगीतात्मकता और पारंपरिक सौंदर्य होता है। यह कई बार श्रेष्ठतम माना जाता है, क्योंकि उसमें अनुशासन और कलात्मक नियंत्रण होता है। कविता का श्रेष्ठतम रूप वह है, जिसमें शब्दों की शक्ति से पाठक या श्रोता के हृदय को स्पर्श किया जाए, सुमित्रानंदन पंत की कविता ‘वाणी’ की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

“युग कर्म शब्द, युग रूप शब्द, युग सत्य शब्द,  
 शाब्दित कर भावी के सहस्त्र शतमूक शब्द;  
 ज्योतित कर जन मन के जीवन का अंधकार,  
 तुम खोल सको मानव उस के निः शब्द द्वार,  
 वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलंकार।”<sup>6</sup>

वाणी सिर्फ सुनने के लिए नहीं, बल्कि मानवता और भविष्य के निर्माण का आधार बनती है। यह सिर्फ कल्पना नहीं, बल्कि जनता की चेतना विचार और भावी

दिशा को संगीत के माध्यम से स्वर भी प्रदान करता है।

#### निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि कविता और संगीत काव्य के ऐसे रूप हैं, जो हमारी आत्मा को छू जाते हैं। ये मानव जीवन के हर पहलू को दर्शाने और उसे दिशा प्रदान करने की क्षमता रखते हैं। कविता और संगीत मिलकर काव्य का श्रेष्ठतम रूप बनाते हैं। ऐसा रूप जो भाषा, जाति और धर्म की सीमाओं को लांघकर समस्त मानवता को एक सूत्र में बाँधता है। कविता और संगीत का जब संगम होता है, तब काव्य एक दिव्य अनुभव बन जाता है। उदाहरणस्वरूप कबीर, सूर, तुलसी, रसखान, मीराबाई जैसे साधकों की वाणी कविता और संगीत के रूप में जनमानस में आज भी जीवित है। भले ही कविता शब्दों द्वारा रची जाती है, पर

संगीत उसे स्पंदन प्रदान करता है। यह संयोग केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और सामाजिक जागरण का साधन है। भारतवर्ष में जातीय जीवन की अभिव्यक्ति कलाओं के द्वारा ही अधिक हुई है। भावाभिव्यक्ति की मार्मिकता जिन बाहरी उपादानों पर निर्भर है, वे उपादान काव्य के कला पक्ष पर ही आधारित हैं और इस कला पक्ष के लिए संगीत निसंदेह रूप से उत्कर्षधायक प्रमाणित होता है। कविता जब संगीत के साथ जुड़ती है तो वह सिर्फ एक साहित्यिक रचना नहीं रह जाती, बल्कि एक जीवंत अनुभव बन जाती है। यह हृदय, मस्तिष्क और आत्मा तीनों को एक साथ स्पर्श करती है। वर्तमान समय में गुलजार, जावेद अख्तर या अन्य कवियों की रचना जब संगीतबद्ध होकर हिंदी फिल्मों में आती है तो वे सिर्फ गीत नहीं, बल्कि समाज की भावनाओं, संघर्षों और संवेदनाओं का प्रतिबिंब बन जाती है। □

#### संदर्भ संकेत :

1. चिंतामणि (प्रथम भाग) - आचार्य रामचंद्र शुक्ल - पृष्ठ - 179
2. अमीर खुसरों की भारत भक्ति-रामधारी सिंह 'दिनकर' - पृष्ठ - 74
3. हिंदी भाषा और समाज -श्यामसुंदर दास - पृष्ठ -256
4. यशोधरा-मैथिलीशरण गुप्त - पृष्ठ - 76
5. आधुनिक काव्य संग्रह - अग्निवाण बच्चन सिंह - पृष्ठ - 300
6. पूर्ववत् वाणी - सुमित्रानंदन पंत - पृष्ठ - 99

## स्त्री जीवन के आत्मसंघर्ष का सशक्त दस्तावेज 'नदी' उपन्यास



डॉ. मृणालिनी पारीक

### शोध-सार :

अमेरिका की सुप्रसिद्ध प्रवासी साहित्यकार डॉ. उषा प्रियंवदा का उपन्यास 'नदी' स्त्री जीवन के कठोर यथार्थ को पाठक के सामने रखता है। लेखिका ने अपने इस तीन खंडों में विभाजित एवं 170 पृष्ठों वाले लघु उपन्यास के जरिए स्त्री के हर रूप को शब्दों में बाँधकर सूक्ष्मता से दर्शाने का ईमानदारी से प्रयास किया है। स्त्री विमर्श की नई ऊँचाइयों को छूता यह उपन्यास विदेशी धरती पर स्त्री जीवन के आत्मसंघर्ष का सशक्त विवरण है। विदेशी परिवेश में असहाय भारतीय स्त्री के संघर्ष को अपने उपन्यास का विषय बनाने वाली लेखिका उषा प्रियंवदा का अमेरिका के प्रवासी भारतीय समाज के प्रति विशिष्ट विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण रहा है, जो उनके इस उपन्यास में भी झलक रहा है। इस उपन्यास में लेखिका प्रेम, घृणा, सहानुभूति, आकर्षण-विकर्षण, ईर्ष्या-द्वेष, ममता, लगाव आदि स्त्री मन की विविध संवेदनाओं, भावनाओं को चित्रित करती है। 'नदी' स्त्री के उस जीवन प्रवाह का प्रतीक है, जो संघर्ष, उत्पीड़न, शोषण, अविश्वास, द्वंद्व, कुंठा, संत्रास, रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, अविश्वास, अभाव आदि के पथरीले उतार-चढ़ाव से होकर गुजरती है या कहीं निरंतर बहती है।

**बीज शब्द :** स्त्री संघर्ष, समकालीन महिला लेखन, स्त्री अस्मिता, अंतर्द्वंद्व आत्मसंघर्ष, दमन, शोषण।

### मूल आलेख :

हिंदी को अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाने में प्रवासी हिंदी रचनाकारों के योगदान को नकारा नहीं जा सकता। प्रवासी हिंदी साहित्यकारों की संख्या भी कम श्लाघनीय नहीं है। इन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं द्वारा नीति-मूल्य, मिथक-इतिहास, सभ्यता-संस्कृति के माध्यम से भारतीयता को सुरक्षित रखा है। हिंदी को प्रवाहित रखा, जिंदा रखा। "इन प्रवासी हिंदी रचनाकारों ने न केवल विदेशों में रह रहे भारतीय समाज की जीवन शैली को अभिव्यक्त किया है, बल्कि उनके जीवन संघर्षों और सुख-दुःख पर भी कलम चलाई है।" इन प्रवासी साहित्यकारों में प्रमुख नाम है- अमेरिका में स्थायी रूप से बसी हुई हिंदी की सुविख्यात साहित्यकार उषा प्रियंवदा का। समकालीन प्रवासी महिला कथाकारों में अग्रगण्य, बहुचर्चित, सार्थक कथाकार के रूप में समादृत उषा प्रियंवदा की गणना उन साहित्यकारों में होती है, जिन्होंने आधुनिक जीवन की ऊब, छटपटाहट, घुटन, संत्रास, कुंठा और अकेलेपन की स्थिति को पहचाना और व्यक्त किया। विरासत

-----  
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग  
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय  
उदयपुर, राजस्थान-313004  
☎ 7240745211  
✉ mrinalinipareek456@gmail.com  
-----

में प्राप्त भारतीयता और दीर्घकालीन प्रवास से अर्जित अनुभवों का अनूठा संगम उनकी कृतियों में दिखाई देता है। वर्ष 2007 के पद्म भूषण एवं डॉ. मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार से सम्मानित उषा प्रियंवदा ने अपने कहानी संग्रह- 'जिंदगी और गुलाब के फूल, एक कोई दूसरा, मेरी प्रिय कहानियाँ तथा उपन्यास-पचपन खंभे, लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा अंतर्वशी से हिंदी साहित्य जगत में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई।

उषा प्रियंवदा का साहित्य (चाहे वह कथा साहित्य हो अथवा उपन्यास साहित्य) उनकी स्त्री पक्षधरता को प्रबलता के साथ स्थापित करता है। उनके उपन्यास पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा, अंतर्वशी, नदी आदि में उनके स्त्री पात्र एक भिन्न धरातल पर सामाजिक विद्रूपताओं को झेलते नजर आते हैं। इन्हीं उपन्यासों में से प्रवासी स्त्री जीवन की गाथा को प्रस्तुत करने वाला, प्रवासी स्त्री जीवन के दस्तावेज को चित्रित करने वाला इनका उपन्यास है 'नदी', जिसका पहला संस्करण 2014 में व दूसरा संस्करण 2017 में राजकमल प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में लेखिका ने भारतीय पुरुषों द्वारा ब्याहता पत्नी के साथ अमेरिकी परिवेश में किए जाने वाले छल और अन्याय का चित्रण सहजता के साथ किया है। लंबे समय से विदेश में रहने के कारण लेखिका उषा जी के लेखन पर भारतीय संस्कृति के साथ ही पाश्चात्य संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। अपने जीवन में इलाहाबाद से लेकर अमेरिका तक के सफर में उषा जी की औपन्यासिक यात्रा का छठा पड़ाव है- 'नदी'। इस उपन्यास में प्रवासी स्त्री जीवन के विविध पक्षों को उजागर किया गया है। चाहे वह विस्थापन की समस्या हो, स्त्री जीवन का संघर्ष हो, वैचारिक वैमनस्यता के कारण पारिवारिक-दांपत्य संबंधों के विखंडन से जूझना हो, मानसिक तनाव, आधुनिकता की दौड़ में भागती मध्यम वर्गीय प्रवासी स्त्री मन का अंतर्द्वंद्व अपने परिवार से कोसों दूर विदेशी धरती पर एकाकीपन, कुंठा, दुख, निराशा, घुटन, संत्रास से पीड़ित अकेली स्त्री के जीवन-यापन की समस्या, कामतृप्ति, एक स्त्री का माँ-पत्नी-बहू-बेटी जैसे विभिन्न रूपों में अपने दायित्वों का निर्वहन हो - लेखिका ने हर एक पक्ष को इतनी सूक्ष्मता, संजीदगी,

दिव्यता एवं वास्तविकता से उद्घाटित किया है कि वह पाठक के हृदयतल को स्पर्श किए बिना नहीं रहता।

*“बस-बहने दो जीवन सरिता को कहीं-न-कहीं, जल्दी या देरी से कोई-ना-कोई हल तो निकलेगा। यही सूत्र है 'नदी' उपन्यास का। हिंदी कथा साहित्य में अविस्मरणीय ख्याति प्राप्त कर चुकी उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास पठनीयता का पुनर्नवन है। नियति, अबूझ जीवन, प्रारब्ध - क्या नाम दें उस घटनाक्रम को, जो 'नदी' की नायिका आकाशगंगा को जाने किस-किस रूप में कहाँ-कहाँ से विस्थापित करता है।”<sup>2</sup>*

उपन्यास का कथानक इस प्रकार से है कि अपने पति एवं बच्चों के साथ विदेश (अमेरिका) में निवास करती आकाशगंगा अपने पुत्र भविष्य की बाल-ल्यूकेमिया नामक बीमारी से मृत्यु के लिए इस सीमा तक अपने पति द्वारा उत्तरदायी मानी जाती है कि परिवार से ही विच्छिन्न कर दी जाती है। पति गगनेंद्र उसे अमेरिका में बेसहारा छोड़ कर अपनी सारी संपत्ति के साथ आकाशगंगा का पासपोर्ट और बीजा भी समेटकर दोनों बेटियों सहित भारत आ जाते हैं। यहीं से एकाकी छूट गई आकाशगंगा का संघर्ष प्रारंभ होता है। वह अमेरिका में दर-बदर भटकती है। इसी दौरान अर्जुन सिंह और एरिक के प्रगाढ़ संपर्क में आती है। सही-गलत का निर्णय ना कर सकने की स्थिति में पहुँचकर विवाहित और दो बच्चों की माँ होते हुए भी दोनों से संबंध स्थापित करती है। परंतु भारतीय संस्कृति में पत्नी-बढ़ी आकाशगंगा को अपनी बेटियों के प्रति मोह भारत की ओर खींच लाता है। भारत लौटकर सास-ससुर, बेटियों की आत्मीयता में घिरने लगती है कि एक अप्रत्याशित स्थिति उसे पुनः अमेरिका पहुँचा देती है। जब उसे पता लगता है कि वह एरिक के बच्चे की माँ बनने वाली है तो भारतीय पारंपरिक कुटुंब व्यवस्था से स्वयं को अलग कर अपने गर्भ में पल रहे एरिक के शिशु को बचाकर उसे जन्म देने के लिए अमेरिकी परिवेश में वापस लौट जाती है, क्योंकि वह जानती है कि इस मोड़ पर उसका निर्दिष्ट जीवन विदेशी परिवेश में ही संभव है। वापस अमेरिका लौट कर प्रवीण दंपति के साथ रहकर आकाशगंगा जीवन का नया अध्याय शुरू करती है और एरिक के साहचर्य से उत्पन्न उसका वर्ण-संकर बेटा स्तव्य

स्टिबेन! जिसे उसके जन्म के समय ही उसकी कैसरग्रस्त सहेली किसी को गोद दिलवा देती है, उपन्यास के अंतिम खंड में आकाशगंगा के एकरस जीवन में आशा का संचार करने अचानक आ जाता है। यह आवागमन इसलिए भी और आह्लादकारी बन जाता है, क्योंकि वह ल्यूकेमिया से लड़कर और जीतकर आया है और उसी एक जीत से गंगा अपने जीवन का कुल यथार्थ जोड़ लेती है।

आकाशगंगा अपने जीवन प्रवाह में जिन ऊँचाइयों, गहराइयों, मैदानों-घाटियों, संकीर्ण प्रशस्त पाटों से गुजरती है- उन्हें लेखिका ने जीवंत कर दिया है। उषा जी ने आकाशगंगा के बहाने स्त्री जीवन के कटु-कठोर यथार्थ का मार्मिक चित्रण किया है। “नदी जीवन प्रवाह का ऐसा दृश्य, जिसमें अदृश्य के अंधेरे देर तक चमकते रहते हैं।”<sup>3</sup>

नदी कहानी है-एक लूटी, पीटी और छली गई ऐसी महिला की, जो अपनी समझ और परिस्थिति के अनुसार जीवन का एक नया मार्ग स्वयं चुनती है और उस मार्ग पर उसे जो मिलता है उसे बिना किसी को दोष दिए स्वीकारती है। “स्त्री वह नदी है, जो कभी कहीं ठहरती नहीं है। वह निरंतर प्रवाहमान है। उसके मार्ग में पत्थर, चट्टान, पहाड़, बीहड़ जंगल, दलदल सब आते हैं, वह अपनी धार को मोड़ लेती है, परंतु बहना नहीं छोड़ती।”<sup>4</sup>

उषा जी की एक उल्लेखनीय विशेषता ये है कि वे अपने साहित्य के जरिए स्त्री के हर रूप को शब्दों में बाँधकर बारीकी से दर्शाने का ईमानदारी से प्रयास करती हैं। इन्होंने अपनी पारखी नजरों और पैनी कलम से स्त्री के संघर्ष, त्याग, अंतर्द्वंद्व, साहस, बुद्धिमत्ता को उकेरा है। इन्होंने एक और नारी हृदय को विभिन्न कोनों से परखकर ईमानदार अभिव्यक्ति प्रदान की तो दूसरी और नारी को परंपरा पोषित मान्यताओं के पाश से मुक्त करके ‘मानवी’ के रूप में प्रतिष्ठित किया। भारतीय आदर्शों में रची-बसी सती नारी के स्थान पर उस नारी का चेहरा सामने लाने का प्रयास किया, जिसे अपनी महत्ता और अस्मिता पर गर्व था। इस उपन्यास में एरिक जब आकाशगंगा से कहता है- “तुम तो परंपरागत संस्कृति से आई हो-कब तक अपने नाम की तरह इधर से उधर भटकती रहोगी”<sup>5</sup> तब आकाशगंगा उससे कहती है कि “नहीं एरिक कुछ भी हो, मैं उनसे समझौता नहीं करूँगी। उन्होंने मुझे बहुत

राँदा, बहुत कुचला और अंत मेंफटे चिथड़े की तरह कूड़े-कचरे की तरह घर से निकाल कर फेंक दिया। मैं सम्मान से जीना चाहती हूँ भले ही मुझे झाड़ू लगाने का काम करना पड़े- यह बात कैसे, स्पष्ट रूप से अपने आप उभर आई? और उच्चरित होते ही गंगा को लगा कि यही सही और सटीक है।”<sup>6</sup> स्पष्ट है कि उपन्यास की नायिका आकाशगंगा हर तरफ से बेसहारा होकर भी अपने स्वाभिमान से समझौता नहीं करना चाहती और ससम्मान जीना चाहती है। उषा जी के स्त्री पात्र अपने अस्तित्व की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाते हैं और अपनी आत्मनिर्भरता को सिद्ध करने में सक्षम होते हैं।

आकाशगंगा के माध्यम से लेखिका ने प्रवासी धरती पर अकेलेपन की दारुण परिस्थिति से गुजरती नारी का चित्रण किया है। आकाशगंगा अपने पति के द्वारा त्यागे जाने पर नितांत अकेली रह जाती है। अपने दुख को किसी से बाँट नहीं पाती है। “माँ, कहां हो तुम? वह बुदबुदाती है, सभी कोई क्यों मुझे छोड़ कर चले जाते हैं - तुम आओ ना माँ, मुझे उठा कर अपनी बाँहों में भर लो। मुझे दुलराओ माँ - मुझे उठाकर बैठाओ, अरे कोई तो हो जो...।”<sup>7</sup> एक अनजाने देश में पति द्वारा त्यागी महिला सहारे और अपनेपन के लिए दर-दर भटकती है।

गंगा का जीवन एक ऐसे छोर पर जा अटका था, जिसमें कोई सगा-संबंधी था ही नहीं। भारत लौटकर सास-ससुर और बेटियों की आत्मीयता से, प्रेम से घिरने लगती है कि तभी जीवन में फिर से एक ऐसी अप्रत्याशित स्थिति (एरिक के संसर्ग से गर्भवती होना) से सामना होता है, जो उसे पुनः दूर देश में जाने के लिए मजबूर कर देती है। एक ऐसे पराए देश में जहाँ न कोई परिवार न कोई रिश्ता। वह सोचती है- “क्या लौटना पड़ेगा - यह सब, बेटियों को छोड़कर, उस दूर देश में, जहाँ कोई सगा-संबंधी नहीं है, जहाँ न रहने का ठिकाना है, न रोजी रोटी का। हाय...।”<sup>8</sup>

आकाशगंगा जीवन प्रवाह में अनेकानेक कठिनाइयों से गुजरते हुए अपना रास्ता चुन लेती है। उषा जी ने अपने उपन्यास साहित्य में नारी संघर्ष, उसका अंतर्द्वंद्व, स्त्री के अधिकारों और उसकी सामाजिक चेतना को बखूबी उभारने का प्रयत्न किया है। समाज में नए-पुराने मूल्यों की

टकराहट तथा स्त्री के द्वारा लिए गए निर्णयों से आने वाली जीवन की कटु सच्चाई को भी लेखिका ने बहुत ही सहज ढंग से उभारा है। डॉ. फिरोज जफर अली ने कहा भी है कि “नारी, नारी दृष्टि से ही रचनात्मकता का सृजन करना चाहती है। सृजनात्मकता की रूपरेखा बनाने में वह समाज में निश्चित भागीदारी चाहती है। देह से परे, बुद्धि और मन की निर्भरता से निजता व सम्मान का हक माँगती है। स्त्री को शोषण से, दमन से, पुरुषवादी सोच से मुक्ति चाहिए, मुक्ति ऐसी जो गरिमामय उड़ान के लिए आकाश प्रदान करे।”<sup>9</sup> नायिका गंगा भी पति के अन्याय, अनादर, भर्त्सना, अपमान, शिकायतों, उल्टे-सीधे इल्जाम सभी से तंग आकर समाज की खोखली मान्यताओं को तोड़कर और नैतिकता का आवरण छोड़कर अपने पति से अलग होने का निर्णय करती है।

“उसे लगा था कि उस समय सारे बंधन टूट चुके थे। उस समय कुछ भी अनैतिक नहीं लगा था। डॉ. सिन्हा उसे धोखा देकर, कपट से उसे अकेला असहाय छोड़कर, घर बेचकर, सामान समेटकर, बैंक अकाउंट खाली कर, बेटियों को लेकर चोरों की तरह भारत लौट गए थे। उसके पास कुछ भी नहीं बचा था, सिर्फ एक हफ्ते भर के कपड़े, और पर्स में साठ-सत्तर डॉलर। क्या सोचा था पति ने तब? वह क्या करेगी, कहाँ जाएगी? क्या दूसरे बेघर लोगों की तरह असहाय स्त्रियों के शेल्टर में जाकर पनाह लेगी या सड़क पर बैठी रहेगी। यह डॉ. सिन्हा ने उसे सजा दी थी, उन्होंने उसे पूर्णतया त्याग दिया था। बिना आगे-पीछे का सोचे हुए, वह ऐसे ही हैं, दंभी, स्वार्थी, क्रूर, दुख से अंधे।”<sup>10</sup>

अमेरिका में रहने वाली भारतीय महिला आकाशगंगा की मनःस्थिति का अत्यंत सजीव चित्रण लेखिका ने इस उपन्यास में किया है। नायिका आकाशगंगा नारी मन की समस्त कोमलताओं और भारतीय संस्कृति की तमाम विशेषताओं से मंडित होने के बावजूद उसके जीते-जागते स्वाभिमान और कठोर जीवन-संघर्ष का प्रतीक भी है। “मैंने तो अभी तक सोचा ही नहीं कि मैं क्या कर रही हूँ? कहाँ जाऊँगी? क्या करूँगी? क्या सही है क्या गलत, क्या डॉ. सिन्हा का मुझे भविष्य की बीमारी का पूरा-पूरा दोष देना सही था? क्या बिना बताए सारे

कागज पत्र लेकर, सब कुछ बांध-बंध कर, मेरी बेटियों को मुझसे दूर कर वापस लौट जाना सही था? कितनी बार मन हुआ कि ससुराल फोन करके बेटियों के बारे में पूछें। मालूम नहीं डॉ. सिन्हा ने क्या कहा होगा? ...हल तो बस एक ही है, उसका भी भारत लौट जाना - डॉ. सिन्हा से सुलह का प्रयत्न करना- अपने लिए नहीं- बेटियों के लिए वह सब लाँछन, प्रताड़ना सह लेगी कि बेटियों के साथ रह सके - पर अपनी अस्मिता, अपने आत्मसम्मान का गला घोटकर कैसे जी पाएगी? वही भूल-भुलैया, वही चक्रव्यूह- जिसका अभी कोई अंत नहीं दीखता।”<sup>11</sup> स्पष्ट है कि आकाशगंगा एक तरफ भारतीय नारी की तरह अपने पति द्वारा अपने साथ किए गए दुर्व्यवहार को दरकिनार कर अपनी बेटियों के लिए सुलह करना चाहती है, परंतु उसका स्वाभिमान, आत्मसम्मान इसकी आज्ञा नहीं देता। वह द्वंद्व से ग्रस्त है।

प्रवासी भारतीयों की एक अन्य समस्या पारिवारिक विघटन है। आज विदेशों में पति-पत्नी का संबंध शाश्वत नहीं है। वह केवल एक समझौता बनकर रह गया है। इस उपन्यास में लेखिका ने विवाह संबंधों की असफलता को दिखाया है। पति गगनेंद्र अपने बेटे की मृत्यु का आक्षेप अपनी पत्नी पर लगाते हैं और इसी कारण अपनी पत्नी एवं उसके प्रेम को भूलकर सदैव के लिए उससे संबंध तोड़कर और अकेला छोड़कर भारत चले जाते हैं। पुत्र भविष्य का अंतिम संस्कार कर लौटने के बाद पति डॉ. सिन्हा के कटु वचन पुत्र-बिछोह से छलनी गंगा के हृदय को तोड़कर रख देते हैं। ऐसे समय में उसे जिसके साथ की सबसे अधिक आवश्यकता थी वही उस पर लाँछन लगाता है। “तुमसे शादी करने की गलती की मैंने, गोरे चेहरे को देख माताजी दुल गई थी, पर तुम्हारा रक्त ही दूषित है, तुम्हारे दो भाई ल्यूकीमिया से मरे और मेरा भविष्य भी तुम्हारे जहर भरे रक्त की भेंट चढ़ गया। तुमसे मुझे अब कुछ लेना-देना नहीं। जो चाहो करो, जहाँ चाहो जाओ....।”<sup>12</sup>

आधुनिक प्रभाव विशेष तौर पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने मनुष्य के यौन संबंधी दृष्टिकोण में भी व्यापक परिवर्तन ला दिया है। वहाँ यौन नैतिकता अब सेक्स की स्वाभाविक मांग में परिवर्तित हो गई है, क्योंकि

आधुनिक युग की आत्मनिर्भर नारी प्रेम को किसी आदर्श या पवित्रता के बंधन में बाँधकर नहीं देखती। उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में भी नगरीय पात्र सामाजिक मर्यादाओं से विद्रोह करते हुए जिंदगी को अपनी संपूर्णता में, स्वच्छ रूप में जीने को लालायित नजर आते हैं। नायिका आकाशगंगा भी कहीं-ना-कहीं अपनी यौन तृप्ति के लिए विवाहित होते हुए भी पर-पुरुष अर्जुन सिंह और एरिक से संबंध बनाती है। “कभी-कभी लगता है कि वह अपने को झुठला रही है, एक नादान बालक की तरह मन को बहला रही है। सच्चाई तो दूसरों को यही लगेगी कि उसका पर पुरुषों से संबंध था - अर्जुन सिंह पर-पुरुष तो थे ही। वह स्वयं एक परंपरागत माँ की बेटा है। उस माँ की, जिसने पति के अतिरिक्त कभी किसी पुरुष को आँख उठाकर भी नहीं देखा।”<sup>13</sup> भारतीय परंपराओं के बीच पली-बढ़ी आकाशगंगा अक्सर अपने इस कार्य पर ग्लानि भी महसूस करती है। वह सोचती है - “क्या वह लौट कर आना चाहेगी? इस ठंडे पराए देश में, जहाँ आकर लोग इतना बदल जाते हैं कि उन्हें सही-गलत का आभास भी नहीं रहता - अपनी संस्कृति और सभ्यता से अपने को उखाड़ कर न यहाँ के पूर्णतः हो पाते हैं, न वहाँ के। ‘मैंने भी तो यही किया’ - वह अपने को तोलती है, फिर समझाती है, ‘मैं कितनी घबरा गई थी, पेड़ों के नीचे, पार्क की बेंच पर सोना पड़ता। कहाँ जाती, क्या करती?...’<sup>14</sup> स्पष्ट है कि नायिका आकाशगंगा अमेरिकी परिवेश में रहते हुए पर-पुरुष से संबंध स्थापित करने के अपने कार्य पर, अपने विचारों पर एक तरफ तो अफसोस करती है तो दूसरी तरफ अपनी परिस्थितियों का हवाला देकर इसे सही साबित करने की कोशिश भी करती है।

भारतीय समाज में लड़की का विवाह सामान्यतया माता-पिता और समाज की जिम्मेदारी होती है। विवाह उनके द्वारा अरेंज किए जाते हैं। लड़की की उसमें कोई भूमिका नहीं होनी चाहिए और केवल शादी-ब्याह ही नहीं, बल्कि भारतीय समाज में तो अधिकांशतः लड़की के जीवन की दशा एवं दिशा परिवार एवं समाज ही तय करता है। सत्य तो यह है कि परिवार व समाज का निर्णय ही लड़की पर थोपा जाता है। ऐसे ही निर्णय उपन्यास की नायिका आकाशगंगा पर भी थोपे गए, जिसका प्रतिकार

गंगा ने नहीं किया अथवा जिसके प्रतिकार की हिम्मत ही वह नहीं जुटा पाई। कभी उसे अपने जीवन की दिशा स्वयं निर्धारित करने का विकल्प ही नहीं दिया था। शादी से पहले सारे निर्णय ताऊजी व चाचाजी ने लिए और शादी के बाद सारे निर्णय डॉक्टर सिन्हा ने। इस कारण जीवन के विभिन्न महत्वपूर्ण मोड़, जिस पर उसके द्वारा लिए गए स्वयं के निर्णय उसके आगे के जीवन की दशा एवं दिशा निर्धारित करने में अहम योगदान देते, वह सदैव स्वयं निर्णय लेने में असमर्थ ही रही। यहाँ तक कि अपनी सहेली के निर्णय के वशीभूत होकर अपना बच्चा भी न चाहते हुए किसी को गोद दे देती है। “कमजोर थी मैं - गंगा मन ही मन स्टीवेन के अनपूछे सवाल का जवाब दे रही थी - हम सब अपने परिवेश, अपने संस्कारों और समाज के द्वारा ही गढ़े जाते हैं। बिना प्रतिवाद किए सब कुछ स्वीकारना, सबके निर्णयों के आगे सिर झुका देना - मुझे ऐसे ही गढ़ा गया था - गगनंद्र बिहारी के साथ विवाह कर दिया गया - मैंने दूसरा विकल्प जाना ही नहीं, प्रवीण बहन ने सहारा दिया तो उसे भी स्वीकार कर लिया - और परिस्थितियों के तकाजे के अनुसार जिंदगी काटती गई। उन्हीं बेतरतीब विचारों, अंधविश्वासों और मन के डर के वश अपना बच्चा कैथरीन बसबी को दे दिया।<sup>15</sup>

उपन्यास की नायिका आकाशगंगा आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर ना होने के कारण भी विपरीत परिस्थितियों का सामना करते-करते, परिस्थितियों से लड़ते-लड़ते थक चुकी थी। पैसों के अभाव में वह न चाहते हुए भी अपने बेटे स्तव्य स्टीवेन को गोद दे देती है। यहाँ तक कि आर्थिक तंगी के कारण अपनी कैंसर ग्रस्त सहेली की मृत्यु के बाद उसके बूढ़े पति से शादी कर लेती है। “मुझमें हिम्मत नहीं थी तुम्हें अकेले बड़ा करने की - पालने-पोसने की.... वह मन ही मन स्टीवेन को संबोधित कर रही थी - देखो, सही ही निश्चय था। कैथरीन ने तुम्हें कैसे प्यार से पाला-पोसा... केवल प्यार, माँ का प्यार ही काफी नहीं होता - वह होठों-होठों में बुदबुदाई - मेरे पास उपेक्षित, बेकदरी से पलते - कहाँ से दे पाती मैं यह ऊँची शिक्षा- कहाँ से लाती इलाज के पैसे? तड़प-तड़प कर रह जाती।...<sup>16</sup>

उषा प्रियंवदा के स्त्री पात्र आदर्श से अधिक यथार्थ

से जुड़े प्रतीत होते हैं। उनकी दिलचस्पी समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत करने में नहीं है। वे सब की सब आधुनिक सामाजिक जीवन में अपनी स्थिति तय करने के लिए पुख्ता संघर्ष करती हैं। वे सब गहराई से यह इंगित करती हैं कि कुछ करना है तो स्त्रियों को स्वयं करना है। उनके लिए कोई दूसरा संघर्ष नहीं कर सकता और यदि करता भी है तो उसके खास मायने नहीं होते। इस उपन्यास की नायिका के माध्यम से भी लेखिका का इशारा है कि ज्ञान सत्ता के बल पर ही स्त्रियों की मुक्ति संभव है। उन्हें जितना जल्द हो सके पुरुषों की आर्थिक गुलामी से मुक्त हो जाना चाहिए, क्योंकि आर्थिक परतंत्रता के होते न बराबरी के अधिकार हासिल हो सकते हैं और ना ही मित्र भाव हासिल हो सकता है। आकाशगंगा अपने बेटे स्तव्य से कहती है, “...मुझे तो सभी रिश्ते में घाटा ही हुआ। गगन बिहारी ने भी छोड़ दिया, बेटियाँ अलग कर दीं, और प्रवीण जी? पहले उनकी पत्नी की सेवा की, और फिर बरसों उनकी। पत्नी को कैंसर था और उन्हें स्वयं लकवा लग गया था। न पहले पति से कुछ मिला, न प्रवीण जी से...। पर जाने दो, इन सब बातों से क्या फायदा। मेरी जिंदगी चल रही है...।”<sup>17</sup>

#### उपसंहार :

उपन्यास ‘नदी’ विदेशी परिवेश में स्त्री जीवन के आत्मसंघर्ष का सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है। वैयक्तिक

तथा सामाजिक, दोनों मोर्चों पर स्त्री अपने अस्तित्व की रक्षा और स्वाभिमानपूर्ण जीवन के अधिकार की लड़ाई लड़ती है। ‘नदी’ स्त्री के उस उत्पीड़ित जीवन प्रवाह का प्रतीक है, जो आत्मसंघर्ष, उत्पीड़न, रूढ़ियों, अभावों और अविश्वासों के पथरीले उतार-चढ़ावों से होकर गुजरती है। स्त्री जीवन की रिक्तता, अकेलेपन, शून्यता, नीरसता, उदासीनता, उसकी दुविधा, घुटन, व्यर्थ की सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा, मोहभंग, स्त्री-पुरुष के बदलते संबंधों तथा उनसे उपजने वाले मानसिक अंतर्द्वंद्व आदि का चित्रण करते हुए स्त्री स्वाधीनता के अनेक प्रश्नों को उठाने का प्रयत्न उषा जी ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से किया है। ‘नदी’ नाम है गंगा की खोज भरी जीवन यात्रा का, जो बारंबार यही सवाल पूछती है कि क्यों हमारी आदर्श सिर्फसीता ही हो। आकाशगंगा के माध्यम से यह उपन्यास इस तथ्य पर विचार करने के लिए मजबूर करता है कि औरत ही हमेशा त्याग की, बलिदान की मूर्त क्यों बनी रहे? इस समाज में उसी से हमेशा सीता बनने की उम्मीद क्यों रखी जाती है? पुरुष चाहे भारत की जमीन पर रहता हो या विदेशी धरती पर-उसे कुछ भी करने का, किसी को भी त्यागने का हक है। उषा प्रियंवदा का यह उपन्यास प्रेम और नैतिकता के परंपरागत प्रतिमानों पर ना केवल प्रश्नचिह्न लगाता है, अपितु मानवीय संबंधों के यथार्थ को भी प्रस्तुत करता है। □

#### संदर्भ :

1. रोहिणी अग्रवाल, समकालीन कथा साहित्य – सरहदें और सरोकार, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2007
2. उषा प्रियंवदा, नदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, मुख पृष्ठ
3. वही, मुख पृष्ठ
4. डॉ. एम. वेंकटेश्वर, प्रवासी कथा साहित्य में स्त्री जीवन की अंतर कथा, साहित्य कुंज साहित्यिक वेबसाइट, अप्रैल 2019
5. उषा प्रियंवदा, नदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण – 2017, पृ.सं. 44
6. वही, पृ.सं. 44
7. वही, पृ.सं. 25
8. वही, पृ.सं. 86
9. डॉ. फिरोज जाफर अली, स्त्री अस्मिता का प्रश्न और चुनौतियाँ, सन 2011
10. उषा प्रियंवदा, नदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2017, पृ.सं. 71
11. वही, पृ.सं. 34
12. वही, पृ.सं. 22
13. वही, पृ.सं. 74
14. वही, पृ.सं. 36
15. वही, पृ.सं. 160
16. वही, पृ.सं. 161
17. वही, पृ.सं. 163

## दलित महिला जीवन-लेखन में पर्यावरण संबंधी आलोचना : कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' में भूमि, पर्यावरण और स्त्री-सक्रियता का अध्ययन



रीना कुमारी राय

### शोध-सार :

यह लेख कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' (1999) का पर्यावरण संबंधी आलोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। लेख का उद्देश्य जाति, लिंग और पारिस्थितिक वंचना के पारस्परिक संबंधों को उजागर करना है। दलित महिलाओं के जीवन में भूमि-हीनता, जल-संकट और वन-संसाधन तक सीमित पहुँच ने उत्पीड़न को गहरा किया है, इस पर अब तक पर्याप्त शोध नहीं हुआ है। इस अध्ययन में लॉरेंस बुएल (1995), चेरिल ग्लोटफेल्टी एवं हैरोल्ड फ्रॉम (1996) जैसे पर्यावरण-आलोचनात्मक सिद्धांतों के साथ-साथ दलित इको-आलोचनात्मक हस्तक्षेप (कुरंकार, अनुराधा 2015; कोनेस्वरण, गीताश्री एवं निर्मल, कुमार 2018) को जोड़ा गया है। तर्क दिया गया है कि कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा में कृषि श्रम, जल-प्राप्ति के संघर्ष, भूमि विलोपन और सामुदायिक संसाधन-प्रबंधन की अवस्थाएँ जाति-लिंग आधारित उत्पीड़न को पर्यावरणीय आयाम देती हैं। अंततः यह अध्ययन 'दलित पर्यावरण-आलोचनात्मक अध्ययन' को दलित साहित्य और पर्यावरण संबंधी आलोचनात्मक सिद्धांत में एक आवश्यक विस्तार के रूप में प्रस्तुत करता है।

### मूल शब्द :

दलित महिला आत्मकथा, भूमि-आधारित वंचना, जल-संकट और न्याय, वन-संसाधन प्रतिबंध, पारिस्थितिक अन्याय, प्रतीकात्मक पारिस्थिति की अंतर्संबंध, दलित सक्रियता और प्रतिरोध, पारिस्थितिक नैतिकता, दलित इको-आलोचनात्मक अध्ययन।

### प्रस्तावना :

दलित जीवन-लेखन (रेगे, शर्मिला, 2006; गुजराती, स्मिता, 2010) में जातिगत उत्पीड़न और लैंगिक असमानता को व्यापक रूप से प्रस्तुत किया गया है। बामा की 'करुक्कु' (1992) और उर्मिला पवार की 'आयदान' (2003) ने खासकर 'द्वैध उत्पीड़न' (जाति व लिंग दोनों) पर ध्यान केंद्रित किया। इन आत्मकथाओं ने दिखाया कि दलित महिलाएँ परिवार, समुदाय और सामाजिक-राजनीतिक संस्थाओं में दोगुनी मार झेलती हैं। सोनाली मौर्या (2020) ने

शोधार्थी, हिंदी विभाग  
नगालैंड विश्वविद्यालय  
कोहिमा परिसर, मेरिमा, कोहिमा  
नगालैंड 797004  
☎ 9954416737  
✉ rinarai345@gmail.com

कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' को दलित महिला आत्म-चेतना की आधुनिक अभिव्यक्ति कहा, वहीं वचस्पति द्विवेदी (2020) ने उनमें अंतर्निहित उत्पीड़न और जागरूकता को रेखांकित किया। परंतु इन अध्ययनों ने पारिस्थितिक मुद्दों - भूमि, खेत, जंगल, जल पर पर्याप्त जोर नहीं दिया, जबकि बैसंत्री के अनुभवों में ये सभी तत्व मौलिक भूमिका निभाते हैं। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह समझना है कि कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में भूमि संबंधी घटनाएँ जातिगत पारिस्थितिक अन्याय को किस प्रकार प्रकट करती हैं तथा जल-संकट, जंगल निर्भरता और कृषि अस्थिरता किस तरह दलित महिलाओं के उत्पीड़न को और गहरा बनाते हैं। साथ ही यह देखा जाएगा कि मिट्टी, जल और वृक्ष जैसे प्राकृतिक तत्व अपने प्रतीकात्मक अर्थों के माध्यम से दलित महिला सक्रियता या उसकी कमी को किस तरह उजागर करते हैं, और अंततः एक पर्यावरण संबंधी आलोचना बैसंत्री की आत्मकथा तथा समग्र रूप से दलित अध्ययन दोनों को किस तरह समृद्ध कर सकता है।

दलित आत्मकथाएँ जातिगत गोरखधंधे, आर्थिक अभाव और सामाजिक कलंक को उजागर करती हैं। उदाहरणतः ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' (1997) ने 'अच्छूत' जीवन की झलक दी, जबकि बामा की 'करुकु' (1992) और उर्मिला पवार की 'आयदान' (2003) ने दलित महिलाओं पर दोगुने अत्याचार की कहानी कही। विगत अध्ययनों में इन आत्मकथाओं ने नारीवादी दृष्टिकोण से जाति उत्पीड़न की तह दिखाई, परंतु पारिस्थितिक आयामों को गौण माना। पर्यावरण संबंधी आलोचनात्मक शोध मुख्यतः पश्चिमी साहित्य को समाहित करता रहा। भारत में इसका प्रयोग शहरी पर्यावरण विषयों (रंगन, सीआर, 2000) या प्रगतिशील लेखकों तक सीमित रहा, जबकि दलित समुदायों की पारिस्थितिक पीड़ा पर बहुत कम ध्यान गया। कुछ अध्ययनों (कुरंकार, अनुराधा 2015; कोनेस्वरण, गीताश्री एवं निर्मल, कुमार 2018) ने जाति और पर्यावरण की अंतर्संबंधिता पर प्रकाश डाला - यह दिखाते हुए कि गाँव में भूमि, जल और वन संसाधनों तक पहुँच जातिप्रथा द्वारा निर्धारित होती है, लेकिन दलित महिलाओं के जीवन-लेखन में इसका अभ्यास अब तक

सीमित रहा। 'दलित पर्यावरण-आलोचनात्मक अध्ययन' (Dalit Eco-Criticism) ने हाल के वर्षों में दलित लेखन में पर्यावरणीय अन्याय को प्राथमिकता दी। इस उप-क्षेत्र का तर्क है कि दलित साहित्य अक्सर पारिस्थितिक पीड़ा को जातिगत हिंसा के साथ सरेखित करता है। उदाहरणतः बामा की 'करुकु' में दूषित जल स्रोतों का उल्लेख मिलता है। फिर भी, दलित महिलाओं की आत्मकथाएँ जैसे कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' पर विस्तृत पारिस्थितिक विश्लेषण नहीं हुआ। अतः कौशल्या बैसंत्री की आत्मकथा एक मौलिक अवसर प्रदान करती है, जिसमें पारिस्थितिक असमानता दलित महिलाओं के उत्पीड़न की मूल परत बताए।

लॉरेस बुएल (1995), चेरील ग्लोटफेल्टी एवं हैरोल्ड फ्रॉम (1996) द्वारा प्रतिपादित पर्यावरण-आलोचनात्मक सिद्धांतों के अनुसार साहित्य में तीन प्रमुख पहलू होते हैं : पहली, गैर-मानव (जैसे मिट्टी, खेत, तालाब, जंगल, पशु-पक्षी) की मौजूदगी, जो बैसंत्री की आत्मकथा में बार-बार उभरकर सामने आती है; दूसरी, पर्यावरणीय संकट का उल्लेख, जैसे सूखा, जल-संकट, भूमि अधिग्रहण और वन-पहुँच प्रतिबंध, जो पाठक को दर्द-संवेदनशील स्थिति की अनुभूति कराते हैं; और तीसरी, पर्यावरण न्याय की तलाश, जहाँ जल, भूमि और वन-संसाधनों पर जातिगत प्रतिबंध 'न्यायहीन वितरण' के रूप में प्रकट होते हैं। इसी क्रम में, किम्बर्ले क्रेंसॉ (1989) द्वारा प्रतिपादित अंतर्संबंधिता सिद्धांत यह बताता है कि दलित महिलाएँ 'निम्न जाति, निम्न वर्ग, स्त्री' की तिहरी पहचानों से ग्रस्त होकर पारिस्थितिक असमानता को और तीव्रता से महसूस करती हैं। इसलिए इस अध्ययन में दलित नारीवादी दृष्टिकोण और पर्यावरण संबंधी आलोचनात्मक सिद्धांतों को एक साथ गूँथकर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जातिगत सत्ता निर्माण किस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों तक दलित महिलाओं की पहुँच को अवरुद्ध करके उनके उत्पीड़न को पर्यावरणीय आयाम प्रदान करती है।

**दोहरा अभिशाप में भूमि, श्रम और**

**पारिस्थितिक वंचना:**

कौशल्या बैसंत्री का जन्म 8 सितंबर 1927 को महाराष्ट्र के एक दलित परिवार में हुआ था। उनके माता-

पिता डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारों से प्रभावित थे, किंतु आर्थिक एवं सामाजिक अभावों ने उनकी शिक्षा यात्रा को कठिन बना दिया। प्रारंभिक विद्यालय अकाल – पानी और संसाधन की कमी के कारण बेहद कमजोर था, “विद्यालय का एक कोना भी नहीं था, जहाँ बैठकर पढ़ाई की जाती” (बैसंत्री, कौशल्या, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999-15)। कम आयु में विवाह और घरेलू जिम्मेदारियाँ उनकी आत्म-चेतना के संघर्षों को गति देती हैं। उनका गाँव एक कृषि प्रधान, मानसून-निर्भर स्थान – एक पारिस्थितिक जीवन-दृश्य प्रदर्शित करता है, जहाँ भूमि, जंगल और जल स्रोत का सघन सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक महत्व है। स्वातंत्र्य पश्चात् भारत में भूमिसुधारों के बावजूद, कई दलित परिवार भूमि-वितरण से वंचित रहे। बैसंत्री के पिता भी लगभग दो बीघे भूमिहीन किसान बने रहे, जिन्हें जमींदारों द्वारा उत्पीड़ित किया गया। यह कहानी व्यापक “पर्यावरणीय संसाधन वंचना” (Land-Based Marginalization) को दर्शाती है, जहाँ औपचारिक सुधार दलितों को भूमिहीनता से नहीं बचा पाते।

गाँव का एकमात्र शुद्ध जल-स्रोत एक सामुदायिक तालाब था, जो जातिगत ‘अछूत-क्षेत्र’ में स्थित था। दलित परिवारों को घंटों प्रतीक्षा कर जल भरना पड़ता, जिससे रोजगार या शिक्षा बाधित होती। बैसंत्री लिखती हैं, “तालाब के किनारे पहुँचते ही ऊँची जाति की महिलाएँ हमें ताने मारने लगतीं- कहाँ लड़की यहाँ पानी भरने आ गई?” (बैसंत्री, कौशल्या, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999-45)। वर्षा अनिश्चितता के कारण सूखे के महीनों में तालाब का जल खारा हो जाता, जिससे पीने योग्य जल की कमी और बढ़ जाती। कथा में बार-बार बैसंत्री की माँ का जंगल से लकड़ी, महुआ फूल इकट्ठा करने का जिक्र है। किंतु गाँव की वन समिति ने दलितों को केवल सप्ताह में दो दिन ही जंगल में प्रवेश करने दिया, “हमने याचना की कि मनाही क्यों? पर वनरक्षक बोले, आज नहीं, तुम्हारी बारी फिर अगले हफ्ते आएगी” (बैसंत्री, कौशल्या, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999-58)। यह प्रतिबंध जातिगत सत्ता-तंत्र का पर्यावरणीय स्वरूप है, जो संसाधनों तक दलितों की पहुँच को नियंत्रित करता। गीताश्री कोनेस्वरण एवं कुमार निर्मल (2018) के अनुसार, दलित पर्यावरण-

आलोचनात्मक अध्ययन को यह उजागर करना चाहिए कि कैसे जातिगत संरचनाएँ पारिस्थितिक शासन में हस्तक्षेप करती हैं और सामुदायिक संसाधनों तक वंचित समुदायों की पहुँच सीमित करती हैं।

दूसरे अध्याय में बैसंत्री वर्णन करती हैं कि उनके पिता ने सरकारी पट्टा ले लिया, पर स्थानीय जमींदार ने “कागजात मिलने के कुछ ही महीनों बाद बिना बताए उस जमीन पर अपना कब्जा जमा लिया” (बैसंत्री, कौशल्या, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999 : 23)। यह न केवल जातिगत उत्पीड़न का उदाहरण है, बल्कि भूमि-वंचना को एक पर्यावरण संबंधी आलोचनात्मक संदर्भ में प्रस्तुत करता है। लॉरेंस बुएल के अनुसार, साहित्य में भूमि असुरक्षा व्यापक पर्यावरणीय अन्याय का सूचक होती है। भूमि अधिग्रहण और मजबूरी – कर्ज का चक्र दलित परिवारों को कृषि अस्थिरता के हवाले कर देता है। मानसून-निर्भर कृषि के कारण बैसंत्री का परिवार जमींदार के खेतों में बंधुआ मजदूरी करता था। सूखे के वर्षों में जब फसल बर्बाद होती, तब उच्च-ब्याज पर कर्ज लेकर खेतों को बनाए रखना पड़ता – जिससे कर्ज के बोझ में बाँधकर बंधुआ मजदूरी मजबूरी बन जाती (स्वामीनाथन, मधुरा, 2008)। ग्रामीण कर्ज प्रणाली और कृषि अस्थिरता ने दलित जनजीवन को आर्थिक गुलामी में जकड़ दिया।

पाँचवें अध्याय में बैसंत्री एक वटवृक्ष का उल्लेख करती हैं, जो कभी सामुदायिक महुआ उत्सव का स्थल हुआ करता था, पर कटाई के कारण “वटवृक्ष, जो कभी बगिया का गर्व था, अब सूखकर काठ की तरह खड़ा था” (बैसंत्री, कौशल्या, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999 : 72)। यह वटवृक्ष ‘प्रकृति का मरण’ और सामाजिक/सांस्कृतिक पहचान की हानि का प्रतीक बन जाता है। तालाब के सूखने की तलहटी की मिट्टी को वे “रक्त-भूखी जानवर का मुँह” कहकर संबोधित करती हैं (बैसंत्री, कौशल्या, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999 : 49), जो सामाजिक हिंसा का प्रतीकात्मक प्रतिबिंब है। इन प्रतीकों के माध्यम से बैसंत्री दिखाती हैं कि जब प्रकृति पीड़ित होती है तो दलित समुदाय पर पड़े दमन की गूँज और तीव्र हो जाती है।

**पारिस्थितिक अन्याय और दलित महिला सक्रियता :**

सातवें अध्याय में बैसंत्री बताती हैं कि उनकी माँ ने

वन-अधिकारी से बहस कर महीने भर के लिए कुछ वनउत्पाद (तेंदू पत्ती, महुआ) इकट्ठा करने का अधिकार माँगा, प्रारंभ में असफल रहें पर बाद में एक सामूहिक याचिका (दलित पुरुषों के हस्ताक्षर) से उन्हें थोड़ी सी मात्रा में अनुमति मिली - “हमने अखबारों में पढ़ा था कि ‘यह जमीन पिछड़े वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित है,’ तभी पंचायत अध्यक्ष से भिड़कर आग्रह किया” (बैसंत्री, कौशल्य, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999 : 200)। यह सामूहिक ‘संसाधन अधिकार’ की माँग महिला सक्रियता का उदाहरण है। वहीं शिक्षा के प्रति बैसंत्री की जिद उच्च जाति के बच्चों द्वारा जातिगत अपमान और जल-आवागमन (बाढ़, सूखा) जैसी बाधाओं के बावजूद उनकी व्यक्तिगत प्रतिरोध क्षमता को दर्शाती है, “बारिश के दिनों में जब नाले उफान पर थे, तब भी मैंने कहा पानी चाहे कितना भी गहरा हो, मैं स्कूल जाऊँगी” (बैसंत्री, कौशल्य, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999 : 121)।

आत्मकथा के अंतिम हिस्सों में बैसंत्री एक स्थानीय आंदोलन का उल्लेख करती हैं, जहाँ दलित महिलाओं ने गाँव के एक ‘अछूत’ माने गए जमीन के टुकड़े को पुनः प्राप्त कर किचन-गार्डन के लिए प्रयोग किया। 0.1 हेक्टेयर भूमि पर पालक, भिंडी, बैंगन आदि जैविक तरीके से उगाए गए, “तैयार स्याही में कागज़ था कि यह जमीन दलित महिलाओं को मिलेगी, हमने उसी का जिक्र किया” (बैसंत्री, कौशल्य, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999 : 215)। यह ‘सतत प्रतिरोध’ और आत्मनिर्भरता का प्रतीक बना। भूमि पुनः अधिग्रहण ने दलित महिलाओं के पारिस्थितिक अधिकारों के प्रति नई जागरूकता जगाई।

पर्यावरण संबंधी आलोचनात्मक विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ‘दोहरा अभिशाप’ में पारिस्थितिक वंचना केवल पृष्ठभूमि का सवाल नहीं, बल्कि दलित महिलाओं के जीवन की बुनियादी स्थिति है। भूमि-हीनता, बंधुआ मजदूरी, जल-प्रतिबंध और वन-पहुँच की सीमाएँ उनके प्रत्येक विकल्प (शिक्षा, विवाह, सामुदायिक सक्रियता) को सीमित करती रहीं। अंतर्संबंधिता (क्रेंसॉ, किम्बर्ले, 1989) के आधार पर यह माना जा सकता है कि एक दलित महिला की पारिस्थितिक संवेदनशीलता उच्च जाति की महिलाओं या दलित पुरुषों से व्यापक और जटिल

थी। यह अध्ययन सुझाता है कि दलित आत्मकथाओं में ‘जातिगत सत्ता’ केवल सामाजिक-राजनीतिक विमर्श तक सीमित नहीं, बल्कि पारिस्थितिक शासन (ecological governance) में भी प्रवेश करती है। बैसंत्री की आत्मकथा ने यह साबित किया कि जातिगत नियंत्रण पारिस्थितिक निर्णय-प्रक्रियाओं का हिस्सा है, जिसने दलित समुदाय की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं दोनों को दबाया। बैसंत्री द्वारा प्रस्तुत प्राकृतिक प्रतीक - सूखी मिट्टी, मुरझाए वृक्ष, सूखा तालाब लॉरेस बुएल (1995) की ‘प्रतीकात्मक पारिस्थितिकता’ की अवधारणा से उपयुक्ततापूर्वक मेल खाते हैं। परंतु उन्होंने प्रकृति को प्रतिरोध एवं पुनरुत्थान का स्थल भी बनाया: एक ओर मरणासन्न वटवृक्ष तो दूसरी ओर पुनः प्राप्त ‘किचन-गार्डन’ में अंकुरित सब्जियाँ। यह दृष्टिकोण वंदना शिवा (2000) के इकोफेमिनिज्म के साथ संगत है, जो बताता है कि सतत कृषि और पारिस्थितिक संरक्षण किस प्रकार स्त्रियों के सशक्तिकरण का आधार बन सकते हैं।

#### निष्कर्ष :

यह अध्ययन कौशल्य बैसंत्री की आत्मकथा ‘दोहरा अभिशाप’ के माध्यम से दलित महिला जीवन के पर्यावरणीय पक्ष को समझने का प्रयास है। आत्मकथा में प्रकृति - जैसे जल, जंगल, जमीन और खेती के साथ दलित स्त्री का संबंध केवल आर्थिक नहीं, बल्कि अस्तित्वगत है। जब बैसंत्री लिखती हैं, “तालाब का पानी जब सूख जाता, तब वो खारा हो जाता, मानो खून पिये जानवर की चोंच हो” (बैसंत्री, कौशल्य, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999 : 49), तो यह जल की अनुपलब्धता के साथ-साथ उसमें निहित सामाजिक वंचना को भी प्रकट करता है। दलित महिलाओं को जंगल से लकड़ी लाने, खेतों में काम करने, या सार्वजनिक जलस्रोतों तक जाने में बार-बार जातिगत प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है। यह केवल श्रम की कठिनाई नहीं, बल्कि उनके पर्यावरणीय अधिकारों के हनन का रूप है। एक अन्य स्थान पर बैसंत्री लिखती हैं, “जंगल में जाने से पहले हमें परमिशन लेनी पड़ती थी, मानो हम कोई चोरी करने जा रहे हों” (बैसंत्री, कौशल्य, ‘दोहरा अभिशाप’, 1999:

57), जो संसाधनों से उनके कटाव और सामाजिक संदर्भ में पर्यावरणीय असमानता को उजागर करता है।

यह स्पष्ट होता है कि दलित स्त्रियों के पर्यावरणीय अनुभव मुख्यधारा की पारिस्थितिकी चर्चा से अलग हैं और अधिक जटिल हैं। पश्चिमी इकोफेमिनिज्म स्त्री और प्रकृति के संबंध को तो पहचानता है, लेकिन जाति जैसे भारतीय सामाजिक कारकों को नहीं समझता। ऐसे में 'दोहरा अभिशाप' जैसी आत्मकथाएँ हमें एक नया दृष्टिकोण देती हैं, जिसमें पारिस्थितिक असमानता, जातिगत अपमान और स्त्री-श्रम एक साथ जुड़ते हैं। पारंपरिक पर्यावरण

आलोचना जहाँ प्रकृति को एक सौंदर्य या प्रतीक के रूप में देखती है, वहीं दलित महिला लेखन प्रकृति को एक संघर्ष-क्षेत्र के रूप में प्रस्तुत करता है। इस शोध से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'पर्यावरण न्याय' की अवधारणा तब तक अधूरी रहेगी जब तक उसमें जाति, वर्ग और लैंगिक संरचनाओं को शामिल न किया जाए। आगे के शोध में अन्य दलित महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं का तुलनात्मक अध्ययन कर एक व्यापक 'दलित पारिस्थितिकी विमर्श' की स्थापना की जा सकती है, जो साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि से समान रूप से समृद्ध हो। □

#### संदर्भ :

1. बैसन्त्री, कौशल्या, "दोहरा अभिशाप", नई दिल्ली, भारतीय दलित साहित्य अकादमी, 1999.
2. बुएल, लॉरेंस, *The Environmental Imagination: Thoreau, Nature Writing, and the Formation of American Culture*. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995.
3. चंद्रभान, एस., एवं वर्मा, पी, 'Land Reforms and Dalit Access in Central India's', *Journal of Rural Studies* 30 (2014) : 45-61.
4. क्रेंसॉ, किम्बर्ले, 'Mapping the Margins: Intersectionality, Identity Politics, and Violence against Women of Color', *Stanford Law Review* 43, no. 6 (1989) : 1241-1299.
5. द्विवेदी, वचस्पति, KAUSALYA BAI SANTRIÓS DOHRA ABHISHAP : A TREATISE ON DALIT WOMEN'S MARGINALISATION International Journal of English Literature and Social Sciences 5, no. 9 (2020) : 271-278.
6. ग्लोटफेल्टी, चेरील, एवं फॉम, हैरोल्ड (eds.). 'The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology', यूनिवर्सिटी ऑफ जॉर्जिया प्रेस, 1996.
7. गुजराति, स्मिता, 'Dalit Life Writing: Politics and Aesthetics', ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2010.
8. कोनेस्वरण, गीताश्री, एवं निर्मल, कुमार, *Subaltern Ecocriticism: Caste and Environmental Justice in Indian Literature*. *South Asian Review* 39, no. 2 (2018) : 201-220.
9. कुरंकार, अनुराधा, 'The Caste-Environment Nexus: Dalit Experiences of Environmental Injustice', *Economic and Political Weekly* 50, no. 15 (2015) : 23-29.
10. मौर्या, सोनाली, 'Reading Kaushalya Baisantri's Dohra Abhishap: A Modern Idiom of Dalit Female Subjectivity', *International Journal of English Literature and Social Sciences* 5, no. 10 (2020) : 130-138.
11. मणकेकर, मीरा, 'Narratives of Ecology: A Dalit Lens on Environmental Justice', पीएचडी शोध प्रबंध, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, 2019.
12. NABARD (National Bank for Agriculture and Rural Development), *Land Holdings and Resource Access in Madhya Pradesh: Report*. नाबार्ड, 2018.
13. नायर, सुरेश, 'Water Scarcity and Rural Marginality in Central India', *Water Policy Journal* 12, no. 4 (2016) : 58-74.
14. ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, *State of Rural Development Report*, भारत सरकार, 2019.
15. निक्सन, रॉब, 'Slow Violence and the Environmentalism of the Poor', हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2011.
16. पाटिल, सीमा, 'दलित आत्मकथाओं में पारिस्थितिक विमर्श: एक अध्ययन' मास्टर का शोध प्रबंध, पुणे विश्वविद्यालय, 2018.
17. रंगन, सीआर, 'Urban Environmentalism in Indian Literature', *Asiatic: Journal of Language, Culture and Media Studies* 2, no. 1 (2000) : 45-56
18. रेगे, शर्मिला (eds.). *Writing Caste/Writing Gender: Reading Dalit Women's Testimonios*, जुबान, 2006.
19. शिवा, वंदना, 'Staying Alive: Women, Ecology and Survival in India.' काली फॉर वीमेन, 2000.
20. स्वामीनाथन, मधुरा, *Drought, Debt, and Dalit Indebtedness: An Agrarian Crisis*. *Economic and Political Weekly* 43, no. 18 (2008): 101-107.

## राम राज्य : एक समग्रात्मक विश्लेषण



डॉ. आनंद सक्सेना

### शोध-सार :

प्रस्तुत लेख में तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस में निरूपित राम-राज्य की संकल्पना, उसमें बाधक कारकों व उसकी पुनर्स्थापना के सिद्धांतों की विवेचना की गई है। जनसाधारण की दैहिक, भौतिक व दैविक संतापों से मुक्ति को राम राज्य की कसौटी बताते हुए, सिद्धांत विहीन राजनीति, श्रम-विहीन धन व प्रतिष्ठा, मानवीयता से रिक्त विज्ञान, मूल्य-विहीन शिक्षा, त्याग बिना तप, अंतरात्मा के विकास के बिना भोग और नैतिकता के बिना वाणिज्य को इस आदर्श की प्राप्ति में बाधक बताया गया है। परहित-परक जीवनशैली एवं व्यवस्था व विषम परिस्थितियों में भी चारित्रिक दृढ़ता को राम-राज्य की संभाव्यता के रूप में प्रस्तुत लिया गया है व अंतस्थ चेतन, अमल, सहज सुख राशि स्वरूप के साक्षात्कार को ही राम-राज्य की पुनर्स्थापना की कुँजी बताया गया है।

### परिचय :

कोई भी देश, केवल एक भौगोलिक इकाई न होकर एक राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक चेतना व व्यवस्था का सतत, समग्र एवं क्रियाशील स्वरूप होता है। प्रस्तुत लेख में राम राज्य की संकल्पना का एक समग्रात्मक विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस, 'मानस', का अवलंबन लेते हुए लेखक ने व्याख्यात्मक बहिर्वेशन के माध्यम से राम राज्य की संकल्पना को आधुनिक राजनीति, समाज एवं अर्थशास्त्र के कुछ चुनिंदा सरोकारों का हेतु बनाया है। उदाहरणतया, मानस नैतिकता को राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था एवं व्यवहार के मूल में स्थापित करती है व इसके अभाव को पतन का कारण बताती है। जीवन के इन सभी पक्षों में पतन का प्रत्यक्ष अनुभव हम सब कर ही रहे हैं और चाहे-अनचाहे इसे प्राप्त भी हो ही रहे हैं। आज सामाजिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से संधारणीय विकास एक वैश्विक चुनौती बन चुका है। मानस में सुफला प्रकृति एवं खनन रहित खनिज निष्कर्षण, जुताई रहित कृषि, अनुकूल वृष्टि इत्यादि के निश्चित संकेत मिलते हैं। लेखक का मानना है कि मानस निजी एवं सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक जीवन में नैतिक मूल्यों व संधारणीय विकास की संस्थापना का एक व्यावहारिक ग्रंथ है। इससे भी अधिक, मानस आध्यात्मिक उत्कर्ष - निजी एवं सामूहिक का संचालक ग्रंथ है; यह एक ऐसा पक्ष है जो कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रतिपादित सतत विकास के लक्ष्यों से भी अछूता रह गया है व जिसकी अपरिहार्यता को कम करके नहीं आँका जा सकता।

### उद्देश्य :

प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य यद्यपि इसके शीर्षक में ही अंतर्निहित है-राम

-----  
प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग  
दीन दयाल उपाध्याय महाविद्यालय  
दिल्ली विश्वविद्यालय  
सेक्टर-3, द्वारका  
नई दिल्ली- 110078  
☎ 9953080564  
✉ asaxena@ddu,du.ac.in  
-----

राज्य की अवधारणा का समग्र विश्लेषण- तथापि इसके उप-उद्देश्य इस प्रकार हैं :-

• मानस में वर्णित राम-राज्य के भावार्थ व गूढ़ार्थ को जानने का प्रयास

• राम-राज्य के प्राकट्य में बाधक सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक पापों का विश्लेषण

• राम-राज्य के पुनर्स्थापना के हेतुओं का चिन्हीकरण व उनसे तादात्म्य के माध्यमों की व्याख्या

**पद्यति :**

मूलतः यह लेख तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस की चौपाइयों, दोहों, सोरठों और छंदों के व्याख्यात्मक बहिर्वेशन एवं आंतरिक चिंतन व मनन पर आधारित है और संभवतः इसी में इस लेख की आधारभूत सीमाएँ भी मुखर होती हैं। श्रीरामचरितमानस जैसे ग्रंथों का अर्थ सांसारिक व्यावहारिक ज्ञानार्जन के माध्यमों से जाना भी नहीं जा सकता-सोइ जानइ जेहि देहु जनाई [अयोध्याकांड/126 (2)]। धार्मिक ग्रंथों के गूढ़ार्थ भागवतिक दृष्टि से प्रकाश्य होते हैं, सांसारिक दृष्टि से नहीं। अतएव इस लेख में प्रस्तुत विश्लेषण अत्यंत साधारण प्रकृति का बौद्धिक प्रयास भर है।

**लेख-योजना :**

यह लेख इस परिचयात्मक खंड के अतिरिक्त चार अन्य खंडों में नियोजित है। द्वितीय खंड में श्रीरामचरितमानस में वर्णित राम राज्य की विशेषताओं को व्याख्यित किया गया है। तृतीय खंड में राम राज्य की संस्थापना में बाधक पापों का वर्णन है। चतुर्थ खंड में उन आदर्शों की विवेचना है, जिन्हें व्यैक्तिक एवं सामूहिक व्यवहार में आत्मसात करने की आवश्यकता है। पंचम खंड इस लेख के निष्कर्षों व उनके अभिप्रायों को व्याख्यित करता है।

**मानस में राम राज्य की व्याख्या :**

तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस में राम-राज्य की रूपरेखा एक बहुआयामी परिदृश्य के रूप में प्रस्तुत की गई है। इस खंड में इस रूपरेखा के जो आयाम व्याख्यित किए गए हैं वे इस प्रकार हैं : राम-राज्य की कसौटी; पर्यावरण परक चिंतन; मानवीय व्यवहार एवं उसके नियंत्रण की प्रकृति।

**राम राज्य की कसौटी :**

तुलसी राम-राज्य अथवा किसी भी शासन व्यवस्था की अनिवार्य कसौटी कुछ इस प्रकार कसते हैं।

दैहिक दैविक भौतिक तापा।

राम राज नहीं काहुहि ब्यापा।

सब नर करहिं परस्पर प्रीती।

चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं।

पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।

राम भगति रत नर अरु नारी।

सकल परम गति के अधिकारी।

अल्पमृत्यु नहीं कवनिउ पीरा।

सब सुंदर सब बिरुज सरीरा।

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।

नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।

सब निर्दभ धर्मरत पुनी।

नर अरु नारि चतुर सब गुनी।

सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी।

सब कृतग्य नहीं कपट सयानी।

दो0-राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।

काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं।

(उत्तरकांड/21)

एक लोकहित, जन-कल्याणकारी राज्य-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये जहाँ किसी को भी दैहिक, दैविक अथवा भौतिक कष्टों से न भोगना पड़े। जहाँ सभी के लिए परस्पर प्रेम व सौहार्द्र से जीना व स्व-धर्म युक्त आजीविका का अर्जन संभव हो। स्वास्थ्य सेवाएँ ऐसी हों कि कोई भी अल्प-मृत्यु को प्राप्त न हो व सभी जन निरोगी शरीरों को प्राप्त हों। अर्थव्यवस्था-प्रबंधन ऐसा कि निर्धनता एवं हर प्रकार की दीनता का ह्रास हो। शिक्षा व्यवस्था ऐसी कि सभी का बौद्धिक एवं चारित्रिक विकास हो।

राम राज्य वस्तुतः धर्म के साम्राज्य की साक्षात् एवं संपूर्ण अभिव्यक्ति है, जहाँ धर्म अपने चारों चरणों - यानि सत्य, शुचिता, तप और दान-पर स्थापित रहता है। एक भी चरण का क्षय व्यवस्था में असंतुलन व अराजकता ला सकता है। अतएव तुलसी राम-राज्य में किसी भी

पाप का निषेध करते हैं। ऐसे राम-राज्य में मनुष्य मानो काल, कर्म, स्वभाव व निज गुण कृत जनित दुःखों से प्रभावित नहीं होता। सामाजिक सुरक्षा का अटल आश्वासन सा देता प्रतीत होता है राम-राज्य।

#### राम-राज्य में पर्यावरण-परकता :

जल-थल-वायु प्रदूषण, परिवर्तन व प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पृथ्वी के भविष्य पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। ऐसे में पर्यावरणविद खनन रहित खनिज निष्कर्षण, जुताई रहित कृषि, प्रजाति संरक्षण व पर्यावरण-परक जीवनशैली की आवश्यकता पर बल देते हैं। धर्म आधारित राज-सत्ता व सामाजिक व्यवस्था प्रकृति से सामंजस्य को पोषित करती है न कि उसके दोहन की। प्रकृति रक्षति रक्षितः। मानस पर्यावरण परक राज सत्ता के उत्कर्ष को निम्न प्रकार से रेखांकित करती है।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन ।  
 रहहि एक सँग गज पंचानन ॥  
 खग मृग सहज बयरु बिसराई ।  
 सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥  
 कूजहिं खग मृग नाना बृंदा ।  
 अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥  
 सीतल सुरभि पवन बह मंदा ।  
 गूजत अलि लै चलि मकरंदा ॥  
 लता बिटप मागें मधु चवहीं ।  
 मनभावतो धेनु पय स्त्रवहीं ॥  
 ससि संपन्न सदा रह धरनी ।  
 त्रेताँ भइ कृतजुग के करनी ॥  
 प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी ।  
 जगदातमा भूप जग जानी ॥  
 सरिता सकल बहहिं बर बारी ।  
 सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥  
 सागर निज मरजादाँ रहहीं ।  
 डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ॥  
 सरसिज संकुल सकल तड़ागा ।  
 अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥

दो0-बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज ।  
 मार्गें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज ॥

(उत्तरकांड/ 23)

राम-राज्य में जैविक विविधता व ऋतु-चक्र की अनुकूलता की परिकल्पना ऐसे की गई है कि पेड़ सदा फले-फूले रहते हैं। ऐसी प्रचुरता में पशुओं में भी अपने अस्तित्व को लेकर वैर पालने व झगड़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। जल (नदी), वायु की अनुकूलता जीवन को सुखमय बनाती है। खनिजों व मूल्यवान धातुओं व मणियों का निष्कर्षण करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि धरती स्वयंमेव ही उन्हें उलीच देती है और सागर की लहरें विभिन्न मूल्यवान मणियों को तट पर ला डालती हैं। राम-राज्य में मेघ आवश्यकतानुसार स्वयं ही वर्षा-जल से धरा को सिंचित करते हैं व उसे सुफला बनाए रखते हैं। चंद्रमा पृथ्वी को पूर्णता व जलजीवों को अनुकूलता प्रदान करते हैं। सूर्य उतना ही ताप देते हैं जितनी आवश्यकता हो। दसों दिशाएं प्रसन्नता के नित नए सोपान सी सृजित करती प्रतीत होती हैं।

पर्यावरण-असंतुलन के दुष्प्रभावों से त्रस्त धरा के लिए राम-राज्य के आदर्श संजीवनी का काम कर सकते हैं।

#### राम-राज्य संस्थापना में बाधक कारक :

तुलसी हमें सचेत करते हैं कि राम-राज्य की संस्थापना में बाधक जीवन-मूल्य कौन से हैं :-

राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा ।  
 हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥  
 बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ ।  
 श्रम फल पढ़े किएँ अरु पाएँ ॥  
 संग ते जती कुमंत्र ते राजा ।  
 मान ते ग्यान पान तें लाजा ॥  
 प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी ।  
 नासहि बेगि नीति अस सुनी ॥

(अरण्यकांड / (21)

लोक सेवा एवं सिद्धांत विहीन राजनीति, श्रम-विहीन धन व प्रतिष्ठा, मानवीयता से रिक्त विज्ञान, मूल्य-विहीन शिक्षा, त्याग बिना तप, अंतरात्मा के विकास के बिना भोग और नैतिकता के बिना वाणिज्य- मानस के अनुसार ये सभी पाप के मूल हैं और अतएव राम-राज्य की संस्थापना में बाधक हैं। व्यैक्तिक स्तर पर ये पाप,

विषयों के संग से संन्यासी, बुरी सलाह से नेतृत्व, अभिमान से ज्ञान, मदिरा पान एवं अन्य व्यसनों से लज्जा के हास का कारण बनते हैं।

विडंबना यह है कि हम सहज ही यह मान लेते हैं कि राजनीति, युद्ध, व्यवसाय व विज्ञान में नैतिक मूल्यों का कोई स्थान ही नहीं है। राजनीति प्रजा पर शासन हेतु नहीं, अपितु उसके सर्वांगीण उत्थान का हेतु होनी चाहिए। व्यवसाय एवं अर्थव्यवस्था संसाधनों के हरण व शोषण नहीं, अपितु सामूहिक एवं पारस्परिक समृद्धि का माध्यम होना चाहिये।

आज जिस तरह की युद्ध-विभीषिका से विश्व जूझ रहा है व हथियारों का व्यापार मानो संपूर्ण व्यवस्था का अपहरण किए ले रहा है, ऐसे समय में राम-राज्य की पुनर्स्थापना अपरिहार्य होते हुए भी एक दिवास्वप्न सी प्रतीत होती है।

#### राम-राज्य की संभाव्यता :

राम कालातीत हैं व राम-राज्य की प्रासंगिकता भी। आवश्यकता है तो व्यैक्तिक एवं सामूहिक व्यवहार में उन जीवन मूल्यों को आत्मसात करने की जिन्हें राम ने अपने जीवन द्वारा आदर्श के रूप में स्थापित किया। शोध-पत्र के इस खंड में उन मूल्यों में से कुछ का उल्लेख राम-राज्य की संभाव्यता की व्याख्या हेतु नीचे किया गया है।

#### परहित-परक जीवनशैली एवं व्यवस्था :

चाहे अर्थव्यवस्था हो अथवा सामान्य सामाजिक, राजनैतिक व्यवहार निजी एवं निहित स्वार्थ ही भ्रष्ट-आचरण को बढ़ावा देते हैं। दुर्भाग्यवश निज-हित-साधना को आधुनिक अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान व अन्य सामाजिक शास्त्र मूल नियम के रूप में अनुमोदित करते हैं। भागवतिक नियम इसके परे परहित की भावना को अधिक महत्व देते हैं।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई ।  
पर पीडा सम नहिं अधमाई ॥  
निर्नय सकल पुरान बेद कर ।  
कहेउँ तात जानहिं कोबिद नर ॥  
नर सरीर धरि जे पर पीरा ।  
करहिं ते सहहिं महा भव भीरा ॥  
करहिं मोह बस नर अघ नाना ।  
स्वारथ रत परलोक नसाना ॥

(उत्तरकांड/41)

यदि सभी व्यक्ति व संस्थाएँ लोक कल्याण एवं परहित-साधना को अपना उद्देश्य बना लें तो क्या सभी के हितों की पूर्ति न हो पाएगी? श्रीरामचरितमानस इसी सिद्धांत को प्रतिपादित करती है। लोककल्याण व परहित से बड़ा कोई धर्म नहीं और पर-पीड़ा से बड़ा अधर्म। यही सभी वेदों और पुराणों का सार है, जिसे सुविज्ञ व प्रबुद्ध जानते हैं और मानते हैं। मनुष्य शरीर को प्राप्त कर जो लोग अन्य की पीड़ा व आपदा में अवसर देखते हैं, वे स्वयं भी असहनीय दुःखों को प्राप्त होते हैं। हम निज स्वार्थ, मोह व महत्वाकांक्षावश कई पाप कर बैठते हैं, जो हमारे स्वयं और समाज के लिए घातक होते हैं। ऐसे ही मंतव्य और कृत्य राम-राज्य की संस्थापना में बाधा प्रस्तुत करते हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों पर विजय राम-राज्य की संभाव्यता की कुँजी है।

#### जीवन के संघर्षों में भी चारित्रिक दृढ़ता :

राम-रावण युद्ध वस्तुतः दो जीवन मूल्य-प्रणालियों का द्वंद्व है-सत्य-असत्य, नैतिक-अनैतिक। युद्ध व युद्धक्षेत्र से बड़ा शायद कोई शिक्षक नहीं। क्या यह मात्र एक संयोग है कि भारतीय दर्शन के सर्वोच्च मूल्य व सांसारिक-भागवतिक सिद्धांत युद्धक्षेत्र में ही प्रतिपादित हुए-चाहे वह भगवद्गीता हो अथवा श्रीरामचरितमानस का लंकाकांड?

सुनहु सखा, कह कृपानिधाना ।  
जेहिं जय होई सो स्यन्दन आना ॥  
सौरज धीरज तेहि रथ चाका ।  
सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥  
बल बिबेक दम पर-हित घोरे ।  
छमा कृपा समता रजु जोरे ॥  
ईस भजनु सारथी सुजाना ।  
बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥  
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा ।  
बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥  
अमल अचल मन त्रोन सामना ।  
सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥  
कवच अभेद बिप्र-गुरुपूजा ।  
एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥  
सखा धर्ममय अस रथ जाकें ।

जीतन कहूँ न कतहूँ रिपु ताकें ॥  
दो0-महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर ।  
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सनहु सखा मतिधीर ॥  
(लंकाकांड/80)

रावण को रथ पर और श्री रघुवीर को बिना रथ के देखकर विभीषण अधीर हो गए। प्रभु विजय के हेतु का निरूपण करते हुए कहते हैं कि सखा सुनो जीवन के संघर्षों में जिससे जय होती है वह रथ दूसरा ही है। शौर्य और धैर्य रथ के पहिये हैं। सत्य और शील उसकी ध्वजा और पताका हैं। बल, विवेक, दम (जितेंद्रियता) और परोपकार-ये उसके चार घोड़े हैं, जो क्षमा, दया और समता रूपी डोरी से रथ में जुड़े हुए हैं। ईश्वर का भजन ही उस रथ को चलाने वाला चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और संतोष तलवार है। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है। श्रेष्ठ विज्ञान धनुष है। निर्मल और अचल मन तरकस के समान है। शम (मन का वश में होना), अहिंसा आदि यम और शौच आदि नियम ये बहुत से बाण हैं। ब्राह्मणों और गुरु का पूजन अभेद्य कवच है। इसके समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है। हे सखे! ऐसा धर्ममय रथ जिसके पास हो उसके लिए जीतने को कहीं कोई शत्रु है ही नहीं। जिसके पास ऐसा दृढ़ रथ हो, वह वीर संसार (जन्म-मरण) रूपी महान् दुर्जेय शत्रु को भी जीत सकता है [रावण की तो बात ही क्या है] ॥

जीवन रूपी रण व रँग भूमि में कई बार हमारा सामना दुर्जनों व दुर्भावना से होता ही है। प्रश्न यह है कि क्या हम भी इसी दुर्भावना के चक्र-व्यूह में फंस जाएं अथवा बुराई को अच्छाई से जीतने का प्रयास करें? स्पर्धा येन-केन-प्रकारेण अँधी दौड़ को जीतने की हो अथवा, धैर्य, संयम, सत्य और शील की सत्ता को सुदृढ़ करने की?

#### संदर्भ सूची :

1. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकांड 126 (2)
1. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीरामचरितमानस, अरण्यकांड 21।
1. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीरामचरितमानस, लंकाकांड 80।
1. तुलसीदास, गोस्वामी, श्रीरामचरितमानस, उत्तरकांड 21, 23, 41, 125, 141।

#### निष्कर्ष :

संत-हृदय व्यक्ति राम-राज्य की नींव के पत्थर हैं। श्रीरामचरितमानस ऐसे हृदयों का निरूपण बहुत ही विलक्षणता से करती है।

संत हृदय नवनीत समाना ।  
कहा कबिन्ह परि कहै न जाना ॥  
निज परिताप द्रवइ नवनीता ।  
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता ॥

(उत्तरकांड/125)

तुलसी कहते हैं कि कवियों ने संतों का हृदय नवनीत (मक्खन) के समान कहा है। परंतु उन्होंने यह नहीं जाना कि जहाँ मक्खन अपने को ताप मिलने से पिघलता है, संत हृदय तो दूसरों के संताप से पिघल जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने संतत्त्व को पहचानें, उजागर करें, स्वयं प्रकाशित होकर जग को प्रकाशित करें। शुभ सूचना यह है कि यह आदर्श हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है! राम हमें आश्वस्त करते हैं।

सुनहु तात यह अकथ कहानी ।  
समुझत बनइ न जाइ बखानी ॥  
ईस्वर अंस जीव अबिनासी ।  
चेतन अमल सहज सुख रासी ॥

(उत्तरकांड/141)

हम इस सत्य को अंतर्मुखी होकर ही अनुभव कर सकते हैं कि हम उस सर्वव्याप्त, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान अंशी के अंश हैं। चूँकि पूर्ण में से यदि पूर्ण को निकाल भी लें तो भी पूर्ण ही शेष रहता है, हम सब भी अविनाशी, चेतन, निर्मल और स्वभाव से ही सुख की राशि हैं। स्वयं से यह साक्षात्कार ही राम-राज्य की पुनर्स्थापना की कुँजी है। □

## राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : परिकल्पना एवं संभावनाएँ



नेहा साव

### शोध-सार :

शिक्षा ज्ञान का स्रोत और समाज में बदलाव का मूल आधार है। अतः शिक्षा की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारतीय विचारकों एवं विद्वानों ने शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने पर बल दिया। आजादी के बाद भारतीय शिक्षा प्रणाली तकनीकी विकास की दृष्टि से बहुत व्यवस्थित नहीं थी। शिक्षा के वैश्विक परिदृश्य में भारत लगातार प्रतिस्पर्धा में पिछड़ता जा रहा था। इसलिए संस्थागत पुनर्गठन और शैक्षिक गुणवत्ता के लिए प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा की रिक्तता को समाप्त करना वर्तमान शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है। अतः 'नई शिक्षा नीति 1986' के साढ़े तीन दशक पश्चात 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' 21वीं सदी में मील के पत्थर के समान है। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के जरिए संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में कई बदलाव किए गए हैं। इसका उद्देश्य प्रारंभिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा तथा व्यावसायिक शिक्षा में सकल नामांकन के अनुपात में वृद्धि करना है। सभ्यता-संस्कृति के आधुनिक मानदंडों के साथ शिक्षा के डिजिटलाइजेशन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, भाषा, रोजगार जैसे सभी महत्वपूर्ण मुद्दों को जोड़ने की व्यवस्था की गई है। 21वीं सदी के भूमंडलीय युग में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' भारत की शिक्षा नीति का आधार स्तंभ है।

### बीज शब्द :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, संस्कृति एवं मूल्य संरक्षण, प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, भाषिक संरक्षण, डिजिटल शिक्षा।

### मूल आलेख :

समय के पायदान पर बढ़ता हुआ भारत आजादी के अमृत महोत्सव वर्ष को पूरा कर चुका है। देखते-देखते भारत प्रौद्योगिकी उन्नति के अपरिमित क्षेत्र में प्रवेश करते हुए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस अर्थात् कृत्रिम मेधा की दुनिया में शोधरत है। इसके बावजूद वैश्विक स्तर पर देश स्वास्थ्य एवं शिक्षा के सूचकांक में 116वें स्थान पर है—“*स्वास्थ्य व शिक्षा के क्षेत्र में दुनिया के 174 देशों में भारत का 116वाँ स्थान है। इसका खुलासा विश्व बैंक के वार्षिक मानव पूँजी सूचकांक के नवीनतम संस्करण में हुआ है।*”<sup>1</sup> बहरहाल, इस उन्नति और अवनति के विरोधाभास को पाटने की पुरजोर कोशिश हर स्तर पर जारी है, किंतु इसके लिए शिक्षा व्यवस्था का चौकस तथा दुरुस्त होना अति अनिवार्य है। जगतगुरु की उपाधि से विभूषित भारत की शिक्षा व्यवस्था वैदिक काल में अति उन्नत थी। 'नालंदा', 'तक्षशिला', 'विक्रमशिला', 'पुष्पगिरी' और 'बल्लभी'

-----  
सहायक अध्यापिका  
तेलिनीपाड़ा महात्मा गांधी विद्यापीठ  
हाई स्कूल  
हुगली (पश्चिम बंगाल)  
☎ 08646843757  
✉ nehashawy68@gmail.com  
-----

जैसे विश्वविद्यालयों का नाम आज भी इतिहास में जीवित है, जहाँ देश-विदेश के हजारों विद्यार्थी अध्ययन और शोध कार्य के लिए प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। इतना ही नहीं, शास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, योग, संगीत, नृत्य तथा स्थापत्य कला में देश अग्रणीय रहा लेकिन शनैः-शनैः विदेशी आक्रमण, अयोग्य उत्तराधिकारी और संरक्षण के अभाव में इस समृद्ध धरोहर का उत्तरोत्तर विकास संभव न हो सका। परिणामस्वरूप शिक्षा व्यवस्था पतनोन्मुख होने लगी, जिसके तत्पर सुधार की अनुगूँज आधुनिक काल में देश के प्रबुद्ध मनीषियों द्वारा प्रारंभ हुई। राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले, दयानंद सरस्वती, गोपाल कृष्ण गोखले, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, एनी बेसेंट, डेरेजियो, बाल गंगाधर तिलक और गाँधी जी जैसे विचारक भारतीय शिक्षा प्रणाली के सुधार के लिए सक्रिय हुए। आजादी पूर्व ब्रिटिश शासन काल में शिक्षा की जड़बद्ध स्थिति से मुक्ति के लिए कई आयोग, समिति, नियम और अधिनियम तैयार किए गए, जिसमें 'मैकाले मिनट' (1935), 'वुड्स डिस्पैच' (1954), 'कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग' (1917), 'सर्जेंट रिपोर्ट' (1944) आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। परंतु ये आयोग, समितियाँ और रिपोर्ट भारतीय शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेजी शिक्षा तथा संस्कृति को विशेष तरजीह देते नजर आते हैं।

इसके पश्चात स्वातंत्र्योत्तर भारत में संवैधानिक अधिनियम के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के बच्चों की शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य करने पर बल दिया गया है। उच्च शिक्षा के लिए 'राधाकृष्णन आयोग' (1948) ने असंख्य सुझाव दिए, जिससे देश में नेतृत्व क्षमता का विकास हो सके। माध्यमिक स्तर की शिक्षा में एकरूपता एवं सुधार के लिए 'मुदालियर आयोग' (1952-53) का गठन किया गया। इस प्रकार शिक्षा के किसी एक पक्षीय विकास हेतु कई आयोग व समितियाँ गठित किए गए। इन विभिन्न प्रयत्नों से शिक्षा के एकांगी विकास की कई तस्वीरें सामने आईं। गौरतलब है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली के समरूप और संपूर्ण उन्नयन पर भारत सरकार का ध्यान संभवतः 'कोठारी आयोग' (1964-66) के गठन के साथ प्रारंभ हुआ। इस परिप्रेक्ष्य में जे.सी. अग्रवाल का कथन स्पष्ट है—“The commission will advise

government on national pattern of education and on the general principles and policies for the development of education at all stages and in all its aspects.”<sup>2</sup> अतएव, शिक्षा के विशद तथा गहन अन्वेषण द्वारा सुधार के लिए निर्मित 'कोठारी आयोग' 'राष्ट्रीय शिक्षा आयोग' के नाम से भी प्रसिद्ध हुई, जिसमें सम्मिलित विशारद सदस्य प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा के तत्कालीन स्वरूप का सर्वेक्षण कर भविष्य की रूपरेखा तैयार करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहें। इसके बावजूद देश की शिक्षा व्यवस्था सुगठित नहीं हो पा रही थी, जिससे वैश्विक स्तर पर तकनीकी विकास की होड़ में भारत लगातार पिछड़ता जा रहा था। इस प्रकार तमाम यत्नों के बावजूद तत्कालीन समय में देश की शिक्षा व्यवस्था में गुणात्मक सुधार की मात्रा अत्यंत कम दृष्टिगत हुई।

प्राथमिक शिक्षा से लेकर माध्यमिक व उच्च शिक्षा संबंधी विभिन्न प्रावधानों तथा नियमों की विस्तृत रूपरेखा 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968', 'नई शिक्षा नीति 1986' तथा 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में प्रमुख रूप से उल्लिखित है। सर्वप्रथम संवैधानिक अनुच्छेद 45 (6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा) को 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968' द्वारा पूर्ण करने के लिए प्रावधान तैयार किया गया। शैक्षिक समानता के लिए विविध योजनाएँ गढ़ी गईं। इस नीति में अंतर्भूक्त उपबंधों में कृषि, उद्योग, विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा को केंद्रीय महत्व दिया गया। अंशकालिक और पत्राचार शिक्षा के माध्यम से प्रौढ़ शिक्षा संबंधी प्रावधान निर्मित किए गए। 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968' समसामयिक परिवेश में मील का पत्थर सिद्ध हुई, क्योंकि इस नीति के सिफारिशों के अनुकूल शिक्षा व्यवस्था में 10+2+3 प्रतिरूप को मान्यता दी गई। भाषायी विविधता की समस्या को 'त्रिभाषा सूत्र' द्वारा पाटने का प्रयत्न किया गया, जो कुछ हद तक कारगर सिद्ध हुई। लेकिन अंततः यह नीति भी अपने समग्र रूप में देश की जनता के बौद्धिक विकास में अधिक सार्थक तथा युक्तिसंगत सिद्ध न हो सकी! वर्ष 1968 के लगभग दो दशक पश्चात 'नई शिक्षा नीति 1986' लागू हुई। इस शिक्षा नीति के विभिन्न पहलुओं पर नजर डालें तो इसमें शिक्षा के विविध आयामों एवं चरणों का गहन विश्लेषण कर शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप को प्रतिपादित किया गया।

‘कॉमन स्कूल’ के तर्ज पर पूरे देश में शैक्षिक एकरूपता लाने का प्रयास जारी रहा। शिक्षा विशेषज्ञों ने ‘राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968’ के अनुरूप शिक्षा के समानाधिकार को राष्ट्र के लिए प्रगतिसूचक माना। यही वजह है कि ‘ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड’ द्वारा प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाने की पैरवी की गई। इस संबंध में एस. सैमुएल रवि ‘ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड’ के निमित्त को उजागर करते हैं—“Operation blackboard is undertaken throughout the country as part of the school improvement programme. It is to provide essential facilities in primary schools. It envisages two reasonably large rooms that can be used in all weathers with necessary toys, game materials, blackboard, equipment, maps, charts and other learning materials.”<sup>3</sup> किंतु इसके संरचना काल से लेकर वर्तमान परिदृश्य में इन योजनाओं का कार्यकारी रूप निष्क्रिय नजर आता है।

देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी के नेतृत्व में ‘नई शिक्षा नीति 1986’ राष्ट्रीय शैक्षिक विकास की नई बुलंदी तैयार करने के लिए अग्रसर हुई। इस नीति में युवाओं, बच्चों के साथ स्त्रियों की शिक्षा को केंद्रीय महत्ता दी गई। स्त्रियों को तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए समुचित नीतियाँ गढ़ी गईं। ‘इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय’ की सिफारिश से उच्च शिक्षा के लिए इच्छुक युवाओं को बड़ी राहत मिली। जो व्यक्ति औपचारिक शिक्षा को ग्रहण करने में असमर्थ थे, वे मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से उच्च डिग्रियाँ प्राप्त कर बेहतर रोजगार से जुड़ने में काबिल होने लगे। अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिए इस नीति में कई प्रकार की सुविधाएँ और अनुदान की व्यवस्था की गई। इसके साथ नई शिक्षा नीति के इन सिफारिशों को मान्यता देने के अलावा 10+2+3 की चरणबद्ध शिक्षा प्रणाली को पूरे देश में मान्यता दी गई। कुल मिलाकर ‘नई शिक्षा नीति 1986’ भारत के शिक्षा संबंधित कई ज्वलंत मुद्दों को सुलझाने में सफल तो कई उद्देश्यों को पूर्ण करने में विफल सिद्ध हुई। लगभग 2 दशकों के इस लंबे समयावधि में ‘नई शिक्षा नीति 1986’ के तर्ज पर भारत की शैक्षिक दशा तथा

दिशा से गतिशीलता बनी हुई है। इस शिक्षा नीति में सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत खर्च करने की कवायद सरकार आज तक पूरी करने में नाकामयाब रही है। साक्षरता, शिक्षा और बौद्धिक विकास एक-दूसरे पर अन्योन्याश्रित हैं। इस आधार पर देश की अर्थव्यवस्था को वैश्विक स्तर पर शीर्ष पर लाने के लिए सरकार पूर्णतः सचेष्ट है, किंतु शिक्षा व्यवस्था की मजबूती के बिना अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता संभव नहीं है। इस प्रारूप को श्याम बिहारी के आलोचनात्मक कथन द्वारा पुष्ट किया जा सकता है—“क्या आपने कभी यह सोचा है कि विश्व के अन्य जितने भी विकसित देश हैं, वह विकसित क्यों हैं? क्योंकि इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि वे अपने कुल जीडीपी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा शिक्षा के क्षेत्र में निवेश करते हैं। इसलिए वहाँ की शिक्षा पद्धति इतने उत्तम किस्म की है। यहाँ पर कुछ देश हैं, जिनकी शिक्षा क्षेत्र में निवेश को बताया गया है—जैसे भूटान अपनी कुल जीडीपी का 7.5 प्रतिशत खर्च शिक्षा के क्षेत्र में करता है। इसी प्रकार जिंबाब्वे, स्वीडन, कोस्टारिका और फिनलैंड भी अपनी कुल जीडीपी का 7 प्रतिशत शिक्षा के क्षेत्र में खर्च करते हैं, जो कि एक बहुत बड़ा और अहम निवेश है। इसलिए वहाँ की शिक्षा क्षेत्र का बुनियादी ढाँचा, प्रयोगशाला और शिक्षक कुशल और सुदृढ़ है।”<sup>4</sup> लेकिन देश के लिए यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है कि शिक्षा नीति में सकल उत्पादन का 6 प्रतिशत खर्च करने के सुझाव को अमलीजामा नहीं पहनाया जा सका है, जबकि अल्प विकसित और पिछड़े मुल्क अपनी शिक्षा व्यवस्था की परिपक्वता के लिए सकल घरेलू उत्पाद का एक बड़ा अंश शिक्षा पर निवेश करते हैं।

‘नई शिक्षा नीति 1986’ के पारित होने के लगभग साढ़े तीन दशकों के उपरांत ‘राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020’ का आगमन हुआ। दरअसल, साढ़े तीन दशकों के लंबे अंतराल में शिक्षा के वैश्विक मानकों में व्यापक परिवर्तन लक्षित हुआ। अतः शिक्षा में नवाचार, अनुसंधान और कौशल वृद्धि के लिए ‘नई शिक्षा नीति, 2020’ में शिक्षा के आधारभूत ढाँचे को नया स्वरूप प्रदान करने की चेष्टा की गई—“राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास

के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए, 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों, जिनमें एसडीजी 4 शामिल हैं, के संयोजन में शिक्षा व्यवस्था, उसके नियमन और गवर्नेंस सहित, सभी पक्षों के सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है।<sup>5</sup> इन संभावित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु सर्वप्रथम 10+2+3 के परंपरागत स्वरूप को 5+3+3+4 के खाँके में रूपांतरित कर चार चरणों में विभक्त किया गया है। शिक्षा के इस नई बुनावट के अंतर्गत प्रथम चरण में 3 से 8 आयु वर्ग के बच्चों के लिए 5 साल की पूर्व प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था की गई है, जिसमें बच्चे खेल के माध्यम से अपने वातावरण एवं आसपास के परिवेश के प्रति जागरूक हो सकें। द्वितीय चरण में 3 वर्षों की शिक्षा के तहत बच्चों के भीतर गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के व्यावहारिक विद्या पर बल दिया गया है। तृतीय चरण में 11 से 14 आयु वर्ग के किशोर-किशोरियों के लिए तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के संरचनागत पद्धति का सैद्धांतिक व व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने की व्यवस्था की गई है। चतुर्थ चरण में शिक्षार्थियों को पूर्ववर्ती विज्ञान, वाणिज्य, कला वर्ग के विकल्पों से परे अपने पसंदीदा विषयों के चयन की स्वतंत्रता दी गई है। शैक्षिक आकलन एवं मूल्यांकन के लिए वार्षिक परीक्षा के स्थान पर अर्द्धवार्षिक (सेमेस्टर सिस्टम) परीक्षा पद्धति के अधीन विद्यार्थियों को सम्मिलित करने का प्रबंध किया गया है। अतएव, पिछले अकादमिक प्रणाली में 6 से 14 वर्ष के विद्यार्थियों की शिक्षा को नई शैक्षणिक प्रणाली एवं पाठ्यक्रम रूपरेखा में 3 से 18 वर्ष के बच्चों के क्रमिक विकास के साथ चार चरणों में विभक्त किया गया है।

‘राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020’ द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। डिजिटलाइजेशन के बढ़ते प्रभाव से आधुनिक भारतीय युवा पीढ़ी अछूती नहीं है। शिक्षार्जन के साथ-साथ रोजगार की बढ़ती प्रवृत्ति के प्रतिपूर्ति हेतु उच्च शिक्षा में लचीली व्यवस्था का प्रावधान किया गया है, जिसके तहत शिक्षा विशेषज्ञों एवं नीति-नियामकों ने उच्च शिक्षा में पहली बार बहुविध प्रवेश और प्रस्थान का प्रबंधन किया है। वास्तव में युवा

वर्ग उच्च शिक्षा से पूर्णतः वंचित न हों एवं उनके शिक्षार्जन में व्यय समय की प्रयोजनीयता बनी रहे, इसके लिए स्नातक कोर्स को 4 वर्षों का कर दिया गया है। यदि विपरीत परिस्थितिवश विद्यार्थी बीच में कोर्स छोड़ देता है तो उसे 1 वर्ष के लिए सर्टिफिकेट, 2 वर्ष के शिक्षार्जन के लिए डिप्लोमा, 3 वर्ष के अंतराल पर इंटरमीडिएट सर्टिफिकेट तथा 4 वर्ष के कोर्स समाप्ति पर स्नातक की डिग्री प्राप्त होगी। इस स्थिति सापेक्ष शिक्षण प्रणाली से समस्त भारतीय युवा शिक्षार्थियों को लाभ मिलेगा, जो विविध कारणों से अपनी शिक्षा को पूर्ण करने में असमर्थ होते थे। विशेषकर स्त्रियाँ जो विवाह एवं पारिवारिक जिम्मेदारी के कारण उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर पातीं, इस ‘मल्टीपल एंट्री एंड एग्जिट सिस्टम’ के कारण वे पारंपरिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम हो सकेंगी। ‘राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020’ के इन प्रावधानों से स्त्री सशक्तिकरण और आत्मनिर्भर महिला जैसी अवधारणा को वैचारिक और व्यावहारिक संबलन मिल सकेगा। इस संबंध में जे.पी. पांडेय की उक्ति समीचीन प्रतीत होती है—“व्यावसायिक शिक्षा पर इस प्रकार बल दिया गया है कि प्रत्येक छात्र कम से कम एक व्यवसाय से जुड़े कौशल को सीख सके, इससे विशेषकर महिलाएँ आत्मनिर्भर बन सकें। उच्च शिक्षण संस्थाओं को सॉफ्ट स्किल्स सहित विभिन्न कौशलों तथा ‘लोक विधाओं’ में सीमित अवधि के सर्टिफिकेट कोर्स करवाने की भी अनुमति होगी। इससे उच्च शिक्षण में महिलाएँ अपनी रुचि एवं सुविधा के अनुसार कौशल प्राप्त करके आत्मनिर्भर बन सकेंगी।”<sup>6</sup>

भारत बहुभाषिक देश है। भारतीय भाषाएँ और उनसे जुड़ी कला, साहित्य और संस्कृति यहाँ की अक्षुण्ण धरोहर हैं। अतः ‘राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020’ में भाषायी धरोहर की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए कई प्रावधान तैयार किए गए हैं, जिसमें पिछली शिक्षा नीति 1968 और 1986 के अंतर्गत लागू ‘त्रिभाषा सूत्र’ के सतत संवर्धन और क्रियान्वयन पर जोर दिया गया है। विद्यालयी छात्रों में कला, कौशल और संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए क्षेत्रीय, स्थानीय और मातृभाषा में शिक्षार्जन की अनिवार्यता के निर्देश दिए गए हैं। भारतीय भाषाओं के संरक्षण व

परिवर्धन के लिए व्यावहारिक धरातल पर सतत प्रयोग पर बल दिया गया है, किंतु नीति के प्रस्तावित सिफारिशों में भाषा संबंधित किसी योजना की रूपरेखा सुनिश्चित नहीं की गई है। इतना अवश्य है कि प्रतियोगी परीक्षाओं में अंग्रेजी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं में भी प्रश्न-पत्र तैयार करने की सुविधा प्रदान की गई है। आठवीं अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं में विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के प्रश्न पत्र तैयार करने से विविध भाषा-भाषी विद्यार्थियों को लाभ प्राप्त होगा। यद्यपि 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' प्राथमिक से उच्च प्राथमिक कक्षा तक मातृभाषा एवं स्थानीय भाषाओं में शिक्षा मुहैया कराने की पक्षधर है, तथापि आठवीं कक्षा के पश्चात विद्यालयी और उच्च शिक्षा में संस्कृत तथा अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं का शिक्षण विकल्प के रूप में मौजूद होना इसे अप्रयोजनीय बनाने जैसा प्रतीत होता है।

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' में ऑनलाइन और डिजिटल शिक्षा को व्यापक स्तर तक पहुँचाने की योजना प्रस्तावित है। इसके लिए 'राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी मंच' गठन करने की योजना तैयार की गई है। शैक्षिक संसाधनों के डिजिटलाइजेशन को प्रमुखता दी जा रही है। डिजिटल सामग्री तैयार करने से लेकर मूल्यांकन प्रक्रिया में भी प्रौद्योगिकी अभिवृद्धि के लिए अलग-अलग प्रौद्योगिकी इकाई गठित की जाएगी। उच्च शिक्षा के समग्र विकास हेतु देश भर में उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए एकल नियामक संस्था 'भारतीय उच्च शिक्षा परिषद' की परिकल्पना की गई है। केवल चिकित्सा और वैधानिक शिक्षा को छोड़कर यह परिषद सम्पूर्ण उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एकल निकाय के रूप में कार्यरत होगी। कुशल कार्य क्षमता की वृद्धि के लिए इस निकाय के अंतर्गत कई इकाइयों का गठन किया जाएगा। इस संबंध में डॉ. एनके श्रीधर तथा डॉ. मनसा नागभूषणम का कथन स्पष्ट है—

“एनईपी 2020 की एक प्रमुख सिफारिश उच्चतर शिक्षा को विस्तृत आधार वाली और समग्र बनाने की है। विश्वविद्यालय और महाविद्यालय उच्चतर शिक्षा के बहु विषयक संस्थान में तब्दील हो जाएँगे। वे गुणवत्तापूर्ण शिक्षण, अनुसंधान और सामुदायिक भागीदारी के साथ स्नातकोत्तर और स्नातक कार्यक्रम संचालित करेंगे।

बहुविषयक दृष्टिकोण से उनके लचीले और नवोन्मेषी पाठ्यक्रम समाज की जरूरतों से जुड़ेंगे। चयन आधारित क्रेडिट प्रणाली च्वाइस बेस्ड क्रेडिट सिस्टम (सीबीसीएस) पाठ्यक्रमों के विविधतापूर्ण सम्मिश्रण को जन्म देगी। ज्ञानार्जन के आधार को विस्तृत बनाने के लिए सामुदायिक सेवा, पर्यावरण और मूल्य आधारित शिक्षा जैसे क्षेत्रों से संबंधित पाठ्यक्रमों का सुझाव दिया गया है।” उच्च शिक्षा संबंधी यह प्रारूप अंतरराष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली से प्रभावित दृष्टिगत होती है, जिसका मूल उद्देश्य विद्यार्थियों को वैश्विक शिक्षा के अनुकूल परिपक्व बनाना है। साथ ही शिक्षा एवं ज्ञान के नए-नए क्षेत्रों का संधान कर युवाओं के लिए रोजगार का मार्ग प्रशस्त करना है।

मुख्यधारा की शिक्षा से वंचित विकलांग बच्चों के भविष्य निर्माण के लिए भी वर्तमान शिक्षा नीति कटिबद्ध दिखती है। ऐसे बच्चों के प्रशिक्षण, संसाधन केंद्र, आवास, प्रौद्योगिकी संपन्न उपकरणों के विकास, शिक्षकों के प्रशिक्षण आदि क्षेत्रों को सहज, सुगम और सुरुचिपूर्ण बनाने की नई योजनाएँ परिकल्पित की गई हैं। हमारे देश में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से हाशियाकृत वर्ग में स्त्री, विकलांग के साथ किन्नर समुदाय आदि सम्मिलित हैं। अतः किन्नर समुदाय के शिक्षा पर भी विचार-विमर्श के कई आयाम इस नीति के अंतर्गत ध्यातव्य हैं। उनके विविध समस्याओं के विघटन के लिए 'जेंडर इंकलूजन फंड' की स्थापना की जाएगी। इस नीति के अंतर्गत शिक्षा व्यवस्था व शिक्षा प्रणाली की एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इन सभी घटकों के साथ शिक्षक की योग्यता, उपलब्धता, प्रशिक्षण भी अति महत्वपूर्ण मुद्दा है। देश में दक्ष, प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी से हम सभी भिन्न हैं। इसलिए 'राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद' द्वारा वर्ष 2022 तक शिक्षकों के लिए 'राष्ट्रीय व्यावसायिक मानक' तैयार करने की उद्घोषणाएँ की गई हैं। 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद' (NCERT) के परामर्श से अध्यापक शिक्षा हेतु राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में परिवर्तन करने के असंख्य सुझाव दिए गए हैं। इसके साथ ही दक्ष शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए 4 वर्षीय एकीकृत पारंगत (बी.एड.) डिग्री प्रदान करने की योजना है, जिससे विद्यार्थी व्यावसायिक शिक्षा में निपुण हो सकें।

## निष्कर्ष :

निःसंदेह, 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' एक विस्तृत एवं सर्वव्यापी शिक्षा नीति की रूपरेखा प्रस्तुत करने के साथ ही शिक्षा के केंद्रीकृत स्वरूप को वरीयता प्रदान करती है, जबकि शिक्षा के समवर्ती सूची में सम्मिलित होने से राज्य इस नीति के सभी प्रावधानों को अंगीकार करने के लिए बाध्य नहीं है। 'त्रिभाषा सूत्र', वित्तीय मामले, शिक्षा की माध्यम भाषा, उच्च शिक्षा के लिए एक नियामक परिषद आदि कई ऐसे बिंदु हैं, जो नई 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के बुनियादी संरचना में अनिश्चितता और चुनौती की स्थिति उत्पन्न करता है। इस नीति के तहत सरकार उच्च शिक्षा को पूर्ण मनोयोग के साथ वैश्विक शिक्षा के समकक्ष स्थापित करने के लिए प्रतिबद्ध है, किंतु अंतरराष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के अनुकरण के नाम पर उच्च स्तरीय ग्लोबल विश्वविद्यालयों को भारत में शाखा स्थापित करने की खुली छूट शैक्षिक परिदृश्य में विरोधाभास उत्पन्न करेगा। एक तरफ शिक्षा के निजीकरण और व्यवसायीकरण की नई शाख पनपेगी तो दूसरी तरफ विदेशी शिक्षा की गुणवत्ता के एवज में महँगाई के स्लैब में बढ़ोतरी होगी। इन सब से परे आने वाले दिनों में शिक्षा की एक नई संस्कृति का जन्म होगा, जिसमें धन के एवज

में बड़ी-बड़ी विदेशी डिग्रियों की खरीद-फरोख्त से डॉक्टर, इंजीनियर, मैनेजर की नई नस्ल खड़ी होगी तो दूसरी तरफ धनाभाव के कारण मेधावी तथा योग्य विद्यार्थी इन बौद्धिक क्षेत्रों में प्रवेश पाने से वंचित रह जाएँगे। नीति के अनुकूल सर्वोपरि बात यह है कि इस नीति में पिछले शिक्षा नीति 1968 और 1986 के तरह 6 प्रतिशत वित्तीय पोषण की सिफारिश की गई है, लेकिन सकल घरेलू उत्पाद के 6 प्रतिशत खर्च का कोई ब्योरा जारी नहीं किया गया है। 'नई शिक्षा नीति 1986' के दौरान 'शिक्षा का अधिकार 2009' लागू हुआ था, जो देश व्यापी जनता के अधिकार सीमा में पूर्णतः प्रविष्ट नहीं हो पाया है, वहीं वर्तमान नीति के प्रावधानों के अंतर्गत शिक्षा के अधिकार को 6 से 14 वर्ष के स्थान पर 3 से 18 वर्ष के बच्चों के लिए अंतर्भूत करने की योजना है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 2035 तक ग्राँस इनरोलमेंट अनुपात (जी.ई.आर.) को 50 प्रतिशत तक पहुँचाने के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। कुल मिलाकर, इन सभी योजनाओं को सफलतापूर्वक लागू करने के लिए वित्तीय संसाधन के साथ योग्य तथा कुशाग्र पर्यवेक्षक, सर्वेक्षणकर्ता और विस्तृत नियोजन की आवश्यकता है। इन चुनौतियों का सफलतापूर्वक निराकरण कर भारत की शिक्षा व्यवस्था के स्वर्णिम भविष्य की आकांक्षा संभाव्य है। □

## संदर्भ :

1. <http://www.samaylive.com/international-news-inhindi/426196/education-health-india-s-116th-place-in-the-world.html> (retrived on 10.12.2022)
2. अग्रवाल, जे.सी., 'लैंडमार्क्स इन द हिस्टोरी ऑफ मॉडर्न इंडियन एडुकेशन, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्कारण - 2013, पृ. 177.
3. रवि. एस. सैमुएल, ए कॉमग्रिहेंसिव स्टडी ऑफ एडुकेशन, पी.एच. आई. लर्निंग, नई दिल्ली, पृ. 811.
4. <https://mayukhedu.com> (retrived on 07.12.2022)
5. [https://www.education.gov.in/sites/upload\\_files/mhrd/files/NEP\\_final\\_HINDI\\_0.pdf](https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf) (retrived on 05.12.2022)
6. पांडेय, जे.पी., 'समग्र विकास के लिए महिला शिक्षा', कुरुक्षेत्र पत्रिका, मासिक, अप्रैल 2022, पृ. 22.
7. श्रीधर, एमके, नागभूषणम, मनसा, 'शिक्षा और समुदाय को जोड़ती है एनईपी 2020', योजना पत्रिका (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विशेषांक) मासिक, फरवरी 2020, पृ. 36.

## दांपत्य संबंधों के यथार्थ को अभिव्यक्ति देता नासिरा शर्मा का 'शाल्मली' उपन्यास

### शोध-सार :



भारती

शोधार्थी, हिंदी विभाग  
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय  
हरिद्वार, उत्तराखंड  
पिन कोड-249404  
☎ 9588377017  
✉ bhartisharmaz664@gmail.com

आधुनिकता के पीछे भागदौड़ ने मानवीय जीवन एवं उसके विकास से जुड़े विभिन्न क्षेत्रों को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। ऐसे में सामाजिक एवं परिवारिक स्तर पर मानवीय संबंधों के ताने-बाने भी इससे अछूते कैसे रह सकते हैं। विज्ञान एवं तकनीक के इस दौर में, शिक्षा के क्षेत्र में आए बड़े बदलाव एवं एक-दूसरे से आगे निकलने की होड़ में मनुष्य भी कहीं न कहीं यंत्रवत होता जा रहा है और मानवीय संवेदनाएं जैसे दम तोड़ती नजर आ रही हैं। पारिवारिक संबंधों का ताना-बाना बुनने वाली स्नेहमयी डोर आधुनिक युग में समयभाव के कारण, अपनी अस्मिता के अहम् के कारण या फिर रोजी-रोटी कमाने के दबाव में शिथिल होती नजर आ रही है। परिवार की रीज कहे जाने वाला दांपत्य रिश्ता भी इससे अछूता नहीं रहा है। समाज में आने वाले इस परिवर्तन को साहित्यकारों ने भी महसूस किया है। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते लेखक अपनी पैनी दृष्टि से समाज में घटित होने वाली सामाजिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं राजनीतिक घटनाओं का विश्लेषण करता है। लेखक का यही दृष्टिकोण पाठक को समाज के यथार्थ और उसके परिणामों से भी अवगत कराता है। समकालीन लेखिका नासिरा शर्मा ने 'शाल्मली' उपन्यास के माध्यम से आधुनिक युग में बिखरते दांपत्य जीवन तथा उससे उत्पन्न होने वाली समस्याओं के यथार्थ को दिखाने का प्रयास किया है।



डॉ. निशा यादव

शोध निर्देशिका  
गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय  
हरिद्वार, उत्तराखंड  
पिन कोड-249404  
☎ 9917750501  
✉ nishayadav@gkv.ac.in

पुरुष अपनी संकीर्ण मानसिकता के कारण स्त्री को भोग्य वस्तु मात्र समझ उसे अपने अधीन व सीमित दायरे में रखना चाहता है। इस बात से नकारा नहीं जा सकता कि आज के समय में स्त्री वैचारिक विकास के साथ ही आर्थिक दृष्टि से भी काफी मजबूत हुई है। इसके बावजूद भी आधुनिकता के इस दौर में आज भी नारी शारीरिक व मानसिक यातनाओं से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई है। नासिरा शर्मा ने 'शाल्मली' उपन्यास के माध्यम से यह दिखाया है कि किस प्रकार आज की पढ़ी-लिखी लड़की 'शाल्मली' जो कि उपन्यास की नायिका है, अपने घर तथा बाहर दोनों की जिम्मेदारियां अच्छे से निभाती है, फिर भी उसका पति नरेश उसके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता। पर शाल्मली हर विपरीत परिस्थिति का सामना करते हुए जीवन जीने में विश्वास रखती है।

### बीज शब्द :

यथार्थ, सेमल, त्रिया चरित्र, पितृ सत्तात्मक समाज, नारी मुक्ति, व्यष्टि,

समष्टिगत चेतना।

### विश्लेषण :

निरंतर परिवर्तित होते सामाजिक, पारिवारिक ढांचे एवं परिस्थितियों ने परस्पर रिश्तों को भी प्रभावित किया है। ऐसा आभास होता है, जैसे रिश्तों में भी मिठास धीरे-धीरे कम होती जा रही है। सामाजिक व पारिवारिक स्तर पर हो रहे इन बदलावों ने ऐसे में साहित्यकारों का ध्यान भी अपनी तरफ खींचा है क्योंकि वह सजग और संवेदनशील प्राणी है। हिंदी साहित्य की प्रसिद्ध लेखिका उषा महाजन ने 'विवाह पवित्र बंधन या बेड़ी' नामक आलेख में इस समस्या के बारे में लिखा है- 'पिछले कुछ दशकों में भारत के शहरी समाज में, लोगों के संबंधों में आमूल चूल परिवर्तन आए हैं। लोगों के पास-पड़ोसियों, रिश्तेदारों और यहां तक की अपने बच्चों और माता-पिता के लिए भी वक्त नहीं रहा है। जीवन के हर क्षेत्र में एक अजीब-सी कमरतोड़ प्रतिस्पर्धा और आपाधापी हावी हो गई है। 'आपसी समझ और संवेदनशीलता धीरे-धीरे हमारे स्वभाव से कटते जा रही है घ जीवन मूल्यों के संक्रमण काल में जो संबंध सबसे अधिक प्रभावित हुए हैं - वह पति-पत्नी के बीच के रिश्ते।'<sup>1</sup>

दाम्पत्य संबंधों की टूट, खिंचाव व टकराहट और उसके कारण तथा परिणामों को कथा साहित्य के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति मिली। समकालीन कथाकारों ने तो इसको बहुत सहज एवं कलात्मक तरीके से चित्रित किया है। महिला लेखकों की अगर बात करें तो मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा, शिवानी, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया के साथ ही समकालीन महिला लेखिका नासिरा शर्मा ने भी अपने उपन्यासों में दाम्पत्य संबंधों के बिखराव व टकराहट को चित्रित किया है। पिछले कुछ दशकों में स्त्री शिक्षा को लेकर समाज में बड़ा बदलाव देखने को मिलता है जिससे स्त्री का सामाजिक दायरा भी बढ़ा लेकिन शताब्दियों से एक बने बनाए ढर्रे को चरमराने में उसको कई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है।

आज रिश्तों में भावनाओं की अपेक्षा स्वार्थपरकता अधिक प्रधान हो गई है घ पति-पत्नी, पिता-पुत्र, मां - बेटा सभी स्वार्थ की दृष्टि से एक दूसरे का मूल्यांकन करने

लगे हैं। आधुनिकता तथा उदारवादी सोच के बावजूद भी स्त्री के सामाजिक तथा पारिवारिक स्थिति में कोई बड़ा बदलाव या कहीं क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया है।

वर्तमान समाज में स्त्री की स्थिति तथा पुरुषों द्वारा उनके दृष्टिकोण को लेकर नासिरा शर्मा कहती हैं। 'बहस का विषय आज यह नहीं है कि आज समाज कहां खड़ा है, बल्कि सवाल यह है कि समाज में आज नारी कहाँ खड़ी है? इसमें दो राय नहीं हैं कि स्त्रियों के जीवन में पिछले एक दशक में खासी तब्दीली आई है। यह तब्दीली केवल दिखने वाली तब्दीली नहीं, बल्कि इस तब्दीली की छाप समाज पर भी गहरी दिखाई देती है। आज भी हमारे पुरुष सत्तात्मक समाज में स्त्री का दर्जा दोगुना है। वह अपने परिवार की कर्ता नहीं है, वह आज भी सच्चे 'अर्थों में गृहस्वामिनी नहीं बन सकी है। हम कुछ उदाहरणों से स्त्री जीवन की तब्दीलियाँ को रेखांकित नहीं कर सकते, फिर भी समाज में स्त्री- परिवर्तन की आहटें तेज हुई हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।'<sup>2</sup>

नासिरा शर्मा ने 'शाल्मली' के रूप में एक ऐसी नारी पात्र गढ़ा है, जिसकी छवि पुरानी पीढ़ी की छवि से भिन्न है जो अपने मां-बाप की लाडली है। पति के प्रति तन, मन, धन से पूरी तरह समर्पित है। सास को भी माँ से ऊंचा सम्मान देती है घ यह सब उसके द्वारा ग्रहण की गई शिक्षा एवं संस्कारों का ही परिणाम है, क्योंकि शिक्षा ही हमें हमारे अधिकारों तथा दूसरों के प्रति हमारे कर्तव्य का बोध कराती है घ शिक्षा की सार्थकता के विषय में नासिरा शर्मा लिखती हैं- 'शिक्षा का अर्थ है व्यवहार में व्यापकता और सोच में परिवर्तन घ प्रत्येक परिवर्तन, विरोध तथा प्रतिक्रिया का अपना एक गणित होता है।'<sup>3</sup>

शाल्मली जिसका विवाह नरेश से होता है वह दोहरी मानसिकता से ग्रस्त है, उसे पत्नी की कमाई तो चाहिए लेकिन अपनी पत्नी का दूसरे मर्द से बात करना उनके साथ घूमना फिरना उसे पसंद नहीं है। नरेश को पढ़ी-लिखी लड़की तो चाहिए किंतु पति के इर्द-गिर्द चक्कर काटती उसकी सेवा करती हुई घ शाल्मली नरेश की इस संकुचित मानसिकता से तंग आकर उससे कहती है। 'जब औरत अनगढ़ मिलती है, तो पुरुष उस कुड़े-कुड़े

बाहर की तरफ भागते हैं और जब शिक्षित, चुस्त औरतें पत्नी के रूप में मिल जाती हैं तो उन्हें उनसे घबराहट का एहसास होता है तब और भयभीत होकर तीसरी किस्म की औरत की तरफ भागते हैं। क्या वह जानते हैं कि उन्हें कैसी औरतें चाहिए, कैसी पत्नियां चाहिए।<sup>4</sup> उपन्यास में शाल्मली का यह कथन पुरुष सत्तात्मक समाज की सोच को दर्शाता है।

नरेश शाल्मली के साथ दुर्व्यवहार करता है बात-बात पर उसे अपमानित करता है। वह उस सोच का प्रतिनिधित्व करता नजर आता है जो स्त्री को एक वस्तु मात्र समझते हैं वह शाल्मली से कहता है- 'तुम जानना चाहोगी पुरुष की दृष्टि में औरत क्या है केवल मात्र भोग की वस्तु, वही उसकी पहचान है। इसीलिए तुम औरत हो औरत की तरह रहो, इसी में तुम्हारा कल्याण है और इस घर का सुख।'<sup>5</sup>

शाल्मली पढ़ी-लिखी विवेकवान है, वह नरेश की दोहरी मानसिकता को समझते हुए करते हुए कहती है। 'मैं तुम्हारी छाया, तुम्हारी प्रतिध्वनि, तुम्हारा विस्तार नहीं हूँ, नरेश! इस भ्रम में मैं नहीं जीती। इसे मेरी कमी कह लो या खूबी कि मैं अपनी अच्छाई और बुराई दोनों को जानती हूँ। यह भी जानती हूँ कि मैं कोरा कागज नहीं थी, जिस पर तुम अपने अधिकार का हस्ताक्षर कर सकते...।'<sup>6</sup>

शाल्मली हर समय नरेश को समझाने का प्रयास करती है वह कहती है कि- 'पुरुष और स्त्री एक सिक्के के दो पहलू हैं, दोनों का संबंध बराबरी का है। उसमें एक दूसरे के प्रति आदर की भावना होनी चाहिए न कि अपमान की।'<sup>7</sup> शाल्मली आगे कहती है- 'एक स्तर के बाद हम औरत मर्द नहीं रह जाते हैं। बल्कि हमारा काम हमारी पहचान होती है हमारी अक्ल हमारी कसौटी होती है।'<sup>8</sup>

शाल्मली उपन्यास के माध्यम से नासिरा शर्मा ने स्त्री के संघर्षशील जीवन को दिखाया है। किस प्रकार एक औरत अपने जीवन में आने वाली सभी समस्याओं का डटकर सामना करती है लेकिन एक क्षण ऐसा आ जाता है, जब शाल्मली की हर कोशिश नाकामयाब हो जाती है तो वह अंदर से टूटा हुआ सा महसूस करती है।

शाल्मली का चरित्र सेमल के वृक्ष की दर्ज पर गढ़ा

गया है घ सेमल का फूल बड़ा ही कोमल होता है और इसकी लकड़ी बड़ी मुलायम होती है, लेकिन जब उस लकड़ी को पानी में डाल दिया जाता है तो वह पहले से अधिक मजबूत बन जाती है। उसी प्रकार शाल्मली जीवन की हर समस्याओं से थक हारकर भी तो हर परिस्थिति का डटकर मुकाबला करती है।

लेखिका ने शाल्मली के रूप में ऐसी स्त्री पात्र को गढ़ा है, जो परिस्थितियों के सामने घुटने नहीं टेकती, बिखरती नहीं है, हार नहीं मानती। हम देखते हैं कि शाल्मली की समस्या सिर्फ शाल्मली की समस्या नहीं है बल्कि नायिका उसे एक सामाजिक समस्या के रूप में देखते हुए उसके उन्मूलन की बात करती है। वह उन समस्याओं से जुझकर और उनके पार जाकर एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहती है, जहां सबको समान अधिकार मिले घ लेखिका समाज में बढ़ते विवाह विच्छेद के मामलों को भी अपने लेखन में चिन्हित करती है, जब शाल्मली की सहेली सुमन उसे नरेश से तलाक लेने की सलाह देती है तो शाल्मली उसे मना कर देती है फिर सरोज उससे पूछती है कि। 'दूसरे शब्दों में मैं यह अर्थ लगाऊंगी कि तुम पुरुष समाज की दासी बनकर जीना चाहती हो? इसके जवाब में शाल्मली अपना रुख स्पष्ट करते हुए कहती है- 'तुम्हारी सोच तो केवल एक मुद्दे पर आकर जड़ हो गई है, मेरा यह अर्थ हरगिज नहीं है। मैं पहले भी कई बार कह चुकी हूँ कि मेरे मन मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की कल्पना है, जहां कोई किसी का दास नहीं है, फिर एक बात में बता दूँ कि मैं पुरुष विरोधी ना होकर अत्याचार विरोधी हूँ, 'तुम्हारे सामने समस्या केवल पति से निपटने और उससे मुक्त होने की है मगर मेरी नजर में सही नारी मुक्ति और स्वतंत्रता, समाज की सोच और स्त्री की स्थिति बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो हर स्थान पर पुरुष तुमसे टकराएगा।'<sup>9</sup> यहां शाल्मली केवल एक पुरुष को ही नहीं बल्कि उस दूषित व्यवस्था और उस मानसिकता को बदलना चाहती है जिसमें नारी के लिए ऐसी समस्याएं या ऐसे हालात पैदा होते हैं।

आज के समय में औरत को अपनी समस्याओं का सामना करना, मजबूती से डट के खड़े रहना और उसका

समष्टिगत समाधान को अपना लक्ष्य बनाना बेहद जरूरी है। यहाँ लेखिका शाल्मली के माध्यम से एक ऐसे समाज की परिकल्पना प्रस्तुत करती हैं, जहाँ कोई किसी के अधिकार को न छीने, चाहे वो शोषक व शोषित के रूप में हो या फिर लैंगिक भेद की बात हो। लेखिका नासिरा शर्मा ने अपनी सृष्टि चेतना को शाल्मली के द्वारा बेहतरीन ढंग से दिखाया है। यह कथानक में आई हुई घटनाएं, दृश्य जहाँ शाल्मली के ऊपर कष्ट आते हैं, उन्हें अनदेखा किया जाता है। यह शोषण या उपेक्षा की शिकार होती है। यह दांपत्य संबंधों के बिखराव के कारण जब वह प्रेम चाहती है, स्त्रीमन की बात रखना चाहती है तो वह दोहरी प्रतिक्रिया की शिकार होती है।

आज के समय में पति-पत्नी के संबंधों की परिभाषा बदल गई है। अब स्त्री पुराने समय की नहीं रह गई है, आज की शिक्षित स्त्री समाज द्वारा आरोपित सामाजिक व पारिवारिक बंधनों को सिर्फ परम्परा के नाम पर ढोने को बाध्य नहीं है, वह अपने विवेक के आधार पर निर्णय लेने में सक्षम है। जाहिर है इससे बने बनाए ढर्रे टूटेंगे और विरोध के स्वर भी मुखर होंगे, यही सब शाल्मली भी झेल रही है। दांपत्य संबंधों की सफलता के लिए पुरुष और स्त्री दोनों की मानसिकता में बदलाव लाना बेहद

जरूरी है। यह नासिरा शर्मा समाज में औरत की स्थिति के विषय में जागृत करते हुए अपनी पुस्तक 'औरत के लिए औरत' में लिखती हैं। 'औरत को परिवार तथा समाज एक इंसान समझ कर उसे संतुलित रूप से फलने फूलने का मौका दे। यह उसकी इच्छा का सम्मान करें। यह औरत इन्हीं दो बातों को पाकर एक जिंदा इंसान की तरह सांस लेने का अधिकार पा लेगी।' <sup>10</sup>

#### निष्कर्ष :

अंत में हम कह सकते हैं कि नासिरा शर्मा समकालीन हिंदी साहित्य की बहुत सजग संवेदनशील व सफल लेखिका हैं। शाल्मली के माध्यम से नासिरा शर्मा ने आधुनिक युग के बदलते, बिखरते संबंधों से पाठक को रु-ब-रू करवाने का प्रयास किया और साथ ही साथ स्त्री तथा पुरुष दोनों की मानसिकता में बदलाव लाने की बात रखी है। इस कृति के जरिए लेखिका ने दांपत्य जीवन में बनते बिगड़ते संबंधों की पीड़ा को बड़े ही मार्मिक ढंग से उकेरा है, उसका संतुलित एवं सम्यक समाधान भी शाल्मली जैसे पात्रों के माध्यम से सुझाया है। कोई भी रिश्ता पूर्णता को तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसमें पारदर्शिता हो, आपसी प्रेम और सम्मान का भाव हो। □

#### संदर्भ ग्रंथ-

1. नासिरा शर्मा : शब्द और संवेदना की मनोभूमि, पृ 32
2. नासिरा शर्मा : 'शब्द और संवेदना की मनोभूमि' पृष्ठ सं. 30
3. नासिरा शर्मा : मेरे साक्षरता पृष्ठ सं. 177
4. नासिरा शर्मा : शाल्मली पृ. सं. 67
5. नासिरा शर्मा : 'शाल्मली' पृष्ठ सं. 75
6. नासिरा शर्मा : शाल्मली पृ. सं. 56
7. नासिरा शर्मा : शाल्मली पृष्ठ सं. 3
8. नासिरा शर्मा : शाल्मली पृष्ठ सं. 165
9. डॉ ज्योति किरण : हिंदी उपन्यास और स्त्री जीवन पृ. सं. 89
10. नासिरा शर्मा, औरत के लिए औरत, पृ. सं. 303

## पूर्वोत्तर भारत में हिंदी साहित्य : अरुणाचल प्रदेश के विशेष संदर्भ में

### शोध-सार :



प्रिया साहू

भारतवर्ष का पूर्वोत्तर भाग अपनी भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि के कारण वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध है। पूर्वोत्तर अनेक जाति-जनजातियों का निवास स्थान है, जहाँ कई भाषाएँ तथा सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं। पूर्वोत्तर में बोली जाने वाली इन विभिन्न भाषाओं के साहित्य को यहाँ के स्थानीय रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के जरिए समृद्ध किया है। पूर्वोत्तर के हिंदीतर प्रांत अरुणाचल प्रदेश के हिंदी साहित्यकारों ने साहित्य की अनेक विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। हिंदीतर प्रांत होने के कारण इस क्षेत्र में हिंदी साहित्य में रचना कम हुई है, लेकिन यहाँ के स्थानीय साहित्यकारों, पत्रिकाएँ, समाचार-पत्रों आदि का पूर्वोत्तर भारत में हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। पूर्वोत्तर भारत के आठ राज्यों में से एक अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय साहित्यकारों ने हिंदी भाषा में उपन्यास, कहानी, लोक कथा, कविता आदि में लेखन कार्य किए हैं। इन स्थानीय साहित्यकारों में प्रमुख हैं - जुमसी सिराम, जोराम यालाम नाबाम, जमुना बीनी तादर, तारो सिन्दिक, तुम्बम रीबा जोमो, मोर्जुम लोयी, ओकेन लेगो आदि।

### बीज-शब्द :

हिंदी, पूर्वोत्तर भारत, अरुणाचल प्रदेश, स्थानीय, साहित्य, लेखनकार्य।

### प्रस्तावना :

हिंदी भारतीय सभ्यता और संस्कृति का वाहक है। संपूर्ण देश में यह संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जाती है। किसी भी भाषा के सृजनात्मक लेखन के विकास में उस भाषा को बोलने वाले लोगों की अहम भूमिका होती है। पूर्वोत्तर के राज्य अरुणाचल प्रदेश में हिंदी भाषी प्रदेशों से आए अनेक हिंदी साहित्यकारों के अलावा यहाँ के स्थानीय साहित्यकारों ने हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। यहाँ के साहित्यकार अपनी संस्कृति को, परंपराओं को हिंदी भाषा के जरिए विश्व पटल तक ले जाने में सक्षम हुए हैं। पूर्वोत्तर भारत के साहित्य एवं संस्कृति, जनजातीय समाज में प्रचलित लोक विश्वास तथा मान्यताएँ कहानी, कविता तथा लोक कथा के माध्यम से लिखे गए हैं। प्रस्तुत शोधालेख में अरुणाचल प्रदेश को केंद्र में रखकर जिन स्थानीय रचनाकारों ने हिंदी में रचनाएँ की हैं, जो यहाँ के मूल निवासी हैं, उनकी रचनाओं पर प्रकाश डाला गया है। वैज्ञानिक शोधालेख-लेखन की प्रक्रिया की माँग के तहत प्रस्तुत शोधालेख में सर्वेक्षणात्मक शोध पद्धति द्वारा सामग्रियों का संकलन किया गया

शोधार्थी, हिंदी विभाग  
गौहाटी विश्वविद्यालय, असम  
7002874548  
Priyasahu0111@gmail.com

है, इसके साथ ही साथ व्याख्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है।

### विश्लेषण :

साहित्य किसी भी समाज के इतिहास, संस्कृति तथा परंपराओं का वाहक होता है। किसी एक समाज को अगर सही तरीके से जानना हो तो वहाँ के साहित्य को पढ़ना अति आवश्यक है, क्योंकि साहित्य और समाज दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पूर्वोत्तर भारत अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, नगालैंड, सिक्किम और त्रिपुरा-इन आठ राज्य का समूह है। इन आठों राज्यों में अरुणाचल प्रदेश एक ऐसा राज्य है, जहाँ छब्बीस से भी अधिक जनजातियाँ तथा सैकड़ों उप-जनजातियों का रहवास है। किसी एक जनजाति के लोग दूसरी जनजाति की भाषाएँ नहीं बोल सकते, इसलिए यहाँ की जनजातियाँ आपसी संपर्क हेतु हिंदी भाषा का प्रयोग करती हैं। हिंदी एक ऐसी भाषा है, जो अरुणाचल प्रदेश के अधिकतर क्षेत्रों में, वहाँ के जनजातियों द्वारा बोली तथा समझी जाती है। इस जनजाति बहुल प्रदेश में हिंदी भाषा एक ऐसी कड़ी है, जो सभी जनजातियों को जोड़ने में अहम भूमिका निभाती है। अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय हिंदी साहित्यकारों में प्रमुख हैं :-

**जुमसी सिराम :** अरुणाचल प्रदेश में हिंदी में रचना करने वाले साहित्यकारों में प्रथम हिंदी साहित्यकार जुमसी सिराम हैं। उन्होंने हिंदी भाषा की प्रमुख विधाओं उपन्यास, कहानी, लोक कथा में लेखनी चलाई है। वर्ष 1992 में प्रकाशित प्रथम उपन्यास 'आयी-आलुक' की विषय-वस्तु प्रेम कथा पर आधारित है। वर्ष 2001 में दूसरी पुस्तक 'शिला का रहस्य' प्रकाशित हुई, जिसकी विषय-वस्तु भारत और चीन की सीमा पर केंद्रित है। इस रचना के लिए उन्हें अरुणाचल प्रदेश के 'अरुण नागरी संस्थान' द्वारा 'हिंदी साहित्य अवार्ड' से सम्मानित किया गया था। इनकी 'मेरी आवाज सुनो' नामक उपन्यास में अरुणाचल के गालो समुदाय में प्रचलित कुप्रथा 'नेप्प न्यीदा' का वर्णन किया गया है। 'नेप्प न्यीदा' का अर्थ है-पेट विवाह अर्थात् माँ के गर्भ में ही पल रही संतान का किसी के साथ विवाह तय कर देना। उपन्यास की नायिका अट्टारह वर्षीय आयि का विवाह उसके अपने पच्चास वर्षीय जीजा ताकार

से बचपन में ही तय किया जाता है, क्योंकि ताकार के पिताजी ने आयि के घरवालों को कई गायें, मिथुन और दूसरी कीमती चीजें दी थीं। जबकि आयि इस विवाह के खिलाफ थी, वह आलुक नाम के लड़के से प्रेम करती थी। आयि अपने भाई से इस विवाह को रोकने के लिए अनुनय-विनय करती है, अनेक शारीरिक-मानसिक यातना को झेलती है, यहाँ तक कि विवाह के लिए बुलाए गए गाँव के मुखिया के सम्मुख भी वह अपने जीजा से शादी न करने का फैसला सुनाती है। लेकिन भाई मोकिर ताकार से ली गई सामग्री को वापस करने के डर से बहन आयि का जोर-जबरदस्ती ताकार के साथ विवाह कर देता है। अंत में आयि 'नेप्प न्यीदा' प्रथा के खिलाफ आवाज उठाती है, आस-पास के महिलाओं को सचेत करती है। लेकिन ताकार आयि और उसके प्रेमी आलुक-दोनों को ही मरवा देता है। उपन्यासकार के शब्दों में, "आयि एक अभियुक्त थी, एक बंदिनी थी, निरपराधिन अभियुक्त। इस निरपराधिन अभियुक्त को मसल डालने से कोई भी नहीं रोक सकता था, क्योंकि कर्ज या बहुमूल्य आभूषण वापस न लौटा सकने के कारण ही आयि को बलिवेदी पर चढ़ाया गया था। आयि का पाँव बिल्कुल ही उठ नहीं रहा था। मोकीर आयि को घसीट-घसीटकर तथा गालियाँ बकते हुए ताकार के घर तक ले जाने लगा। आयि को असहनीय कष्ट हो रहा था, लेकिन वह बेबस थी, लाचार थी।" (सिराम: 2021:42)

वर्ष 2003 में प्रकाशित उपन्यास 'जायी बोने' का शीर्षक कथा-नायिका के नाम पर रखा गया है। इस उपन्यास की विषय-वस्तु गालो लोक कथा पर आधारित है। नायिका जायी बोने अत्यंत सुंदरी थी, उसके रूप-सौंदर्य की चर्चा चारों ओर फैली थी। जब वह बड़ी हुई तब उसके विवाह के लिए कई रिश्ते आने लगे और इसी क्रम में जायी बोने की रूप-लावण्य से मुग्ध होकर जलदेवता बिरतापु और वर्षा के राजकुमार दीदुकूब दोनों ही उससे विवाह करने के लिए लालायित हो उठे तथा दोनों ही जायी के माता-पिता को खुश करने के लिए भिन्न-भिन्न सामग्रियाँ लाकर देने लगे। उधर जायी बोने निर्णय नहीं कर पा रही थी कि वह किससे विवाह करे। कई

महीनों के बीत जाने पर जलदेवता बिरतापु से जोयी का विवाह होता है। जब दिदुकूब को जोयी के विवाह का पता लगने पर वह क्रोधित हो जाता है और बदला लेने के लिये 'ओजोर' नामक विषैले पेड़ के फल और पत्ते को पीसकर नदी में बहा देता है। उधर जोयी नदी में अपने पति के साथ जलकेली करने में निमग्न थी। नदी के जहरीले पानी के कारण दोनों की मृत्यु हो जाती है।

इसके अलावा 'गालो लोक जीवन एवं संस्कृति' नामक पुस्तक में गालो समाज की संस्कृति, लोक साहित्य तथा समाज का चित्रण किया गया है। वर्ष 2012 में प्रकाशित ऐतिहासिक उपन्यास 'स्वतंत्रता सेनानी श्री मात्सुर जामोह' एक सत्य ऐतिहासिक घटना सन 1911-12 की एंग्लो-आबोर वॉर पर आधारित है। मात्सुर जामोह आदी जनजाति के क्रांतिकारी व्यक्ति थे, जिन्होंने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनजातीय लोगों के प्रतिरोध में उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी। उन्होंने तत्कालीन सहायक राजनीतिक अधिकारी नोएल विलियमसन की हत्या की थी, जो उस समय आदी पहाड़ों के दौरा कर रहे थे। इन रचनाओं के साथ ही साथ उन्होंने देव नागरी में अरुणाचली लोक कथाओं को लिखकर उसे संरक्षित करने का कार्य किया था। इनकी भाषा सहज-सरल तथा बोधगम्य है। जुमसी सिराम ने अपनी रचनाओं के जरिए अरुणाचल के हिंदी लेखन को उस समय समृद्ध किया, जब अरुणाचल के किसी भी स्थानीय लेखक द्वारा हिंदी में नहीं लिखा गया था।

**जोराम यालाम नाबाम :** अरुणाचल प्रदेश के स्थानीय हिंदी साहित्यकारों में जोराम यालाम नाबाम प्रमुख हैं। अरुणाचल प्रदेश को केंद्र में रखकर उन्होंने कहानी, कविता, संस्मरण, उपन्यास आदि अनेक विधाओं में लेखन कार्य किया है। इनकी अधिकतर कहानियों का विषय स्त्रियाँ रही हैं। वर्ष 2012 . में प्रकाशित 'साक्षी है पीपल' इनकी प्रथम कहानी संग्रह है, जिनमें कुल दस कहानियाँ हैं। इस कहानी संग्रह में संग्रहीत कहानियों का शीर्षक तथा विषय-वस्तु निम्नलिखित हैं- 'साक्षी है पीपल' नामक कहानी में बेटे-बेटियों में अंतर रखना, बहुविवाह के कारण गृह कलह, अंधविश्वास, अज्ञानता आदि का चित्रण है। वहीं 'उसका नाम यापी था' नामक कहानी में पेट विवाह यानी गर्भावस्था के दौरान ही विवाह करा देने

की प्रथा, युवती यापी का अनेक बार बलात्कार होना, यौन अनाचार आदि का वर्णन है। इस कहानी को पढ़ने के बाद जहाँ स्त्री के प्रति संवेदना तथा दया के भाव उपजती है, वहीं पुरुष वर्ग के प्रति द्वेष तथा आक्रोश जगता है। इस कहानी संग्रह की तीसरी कहानी है 'यासो'। इस कहानी में एक ऐसी स्त्री की कहानी है, जो डरपोक, कमजोर पति को छोड़ देती है तथा उसके मन में एक साहसी, शक्तिशाली पुरुष की चाह होती है। बहुविवाह का प्रश्न, उसकी समस्याएँ आदि का उल्लेख भी इस कहानी में किया गया है। वहीं 'चुनौती' नामक कहानी की विषय-वस्तु जंगल का राजा को लेकर बंदरों और टिड्डियों में हो रहा युद्ध है। 'क्या सच में वे कभी मिले भी थे' नामक कहानी में नायिका आमिन के पति का अपनी सौतेली माँ के साथ अनैतिक यौन संबंध रखना, आमिन का अपने पति को छोड़ना तथा दूसरा विवाह करना आदि अनेक तरह की समस्याओं को दिखाया गया है। 'नदी' नामक कहानी में भी अवैध प्रेम, स्त्री की संघर्षपूर्ण जीवन, एक स्त्री की दूसरी स्त्री के प्रति विद्वेष भाव का चित्रण किया गया है। 'कामेश्वर बरुवा हालुवा बन गया' कहानी में छलपूर्वक बहुविवाह करना, पति से पत्नी का बदला लेना तथा 'वह बरसात की एक रात' कहानी में राजीव गांधी विश्वविद्यालय में काम करते हुए मजदूरों का दुर्घटना का शिकार होना, उनकी दयनीय स्थिति आदि का उल्लेख है। वहीं 'मैं यामी हूँ' नामक कहानी में भी अवैध प्रेम, एकाधिक विवाह, नायिका का संघर्षपूर्ण जीवन को विषय बनाया गया है। इस कहानी संग्रह की अंतिम कहानी है - 'क्या कहेंगे लोग'। इस कहानी की नायिका अपनी शिक्षा संपूर्ण करने के लिए बाध्य होकर वेश्यावृत्ति करने लगती है। और जब एक दिन नायिका के पिता ही ग्राहक के रूप में अपने बेटे के ही पास पहुँच जाते हैं और उसके बाद की स्थिति का चित्रण और अंत में पिता की मृत्यु हो जाती है।

वर्ष 2023 में प्रकाशित अरुणाचल प्रदेश के न्यीशी आदिवासी समुदाय के पूर्वज 'आबोतानी' पर केंद्रित 'जंगली फूल' नामक उपन्यास में अरुणाचल प्रदेश के लोगों के पूर्वज तानी के व्यक्तित्व के कई पहलुओं को दर्शाया है। इसके साथ ही लेखिका ने न्यीशी समुदाय की परंपरा, जीवन-शैली, संस्कृति, समाज-जीवन, स्त्रियों के

मानसिक स्थिति आदि का वर्णन किया है। लेखिका के शब्दों में- “सभी तरह के बंधनों से मुक्त स्वतंत्रता का नाम जंगल है। वह स्वतंत्रता, जो परम अनुशासन से उत्पन्न होती है। मौत कदम-से-कदम मिलाकर चलती रहती है। सतर्कता का नाम जंगल है। चुनौती का नाम जंगल है। जो भटके हुए से लगते हैं वही रास्ता ढूँढ़ सकते हैं। जंगल भटका सकता है, लेकिन वही जिंदा भी करता है। बचने का आनंद भी उसी में है। तानी जंगली फूल था। तभी तो वह पिता कहलाया। तभी तो उसने प्रेम को जीया। कोई रुकावट, कोई नियम, कोई डर उसे रोक नहीं पाया। वह उग-उग आता था-हर परिस्थिति में।”

(नाबाम: 6:2023)

वर्ष 2023 में ‘गाय-गेका की औरतें’ नाम से प्रकाशित संस्मरण में लेखिका ने अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख न्यीशी आदिवासी समुदाय के रोजमर्रा के जीवन शैली, ग्रामीण जीवन, परंपरा, संस्कृतिगत विशेषताओं तथा न्यीशी समुदाय में व्याप्त अनेक प्रथाओं का उल्लेख किया है। वर्ष 2022 में प्रकाशित ‘तानी कथाएँ’ (अरुणाचल के तानी आदिवासी समाज की विश्वदृष्टि) नामक लोक कथा संग्रह ‘तानी समुदाय’ के समाज में प्रचलित लोक कथाओं का लिखित रूप है। इसके अलावा इनकी ‘न्यीशी जनजाति का समाजभाषिक अध्ययन’ नामक शोधपरक पुस्तक प्रकाशित हुई है।

**डॉ. जमुना बीनी तादर :** अरुणाचल प्रदेश की हिंदी साहित्य लेखिकाओं में डॉ. जमुना बीनी तादर अग्रणी हैं। साहित्य की कई विधाओं में मौलिक लेखन के साथ-साथ वे अनुवाद कार्य से भी जुड़ी हुई हैं। वर्ष 2017 में ‘दो रंग पुरुष - मोहन राकेश और गिरीश कर्नाड’ नाम से इनका शोधग्रंथ प्रकाशित हुआ है, जिनमें मोहन राकेश और गिरीश कर्नाड के नाट्यचिंतन, रंग दृष्टि, शिल्प आदि का आलोचनात्मक तरीके से गहन अध्ययन किया गया है। वर्ष 2018 में प्रकाशित ‘जब आदिवासी गाता है’ नामक कविता संग्रह में कुल सैंतीस कविताएँ हैं। इन कविताओं में विविध भावों का समाहार है। लेखिका ने अरुणाचल प्रदेश के न्यीशी समुदायों में प्रचलित लोक कथाओं, अरुणाचली स्वतंत्रता सेनानी, परंपरागत जीवन-

शैली, न्याय-व्यवस्था, झूमखेती आदि को विषय-वस्तु के तौर पर रखा है। इस संग्रह की ‘युवा अरुणाचली’ शीर्षक कविता में लेखिका कहती हैं -

युवा अरुणाचली  
अब नहीं बोलते  
अपनी बोली  
अंग्रेजी और हिंदी  
में ही बतियाते  
औरों की बोली  
अधिक सहज  
और  
सम्मानजनक लगता।

(तादर : 37:2018)

इसके अतिरिक्त वर्ष 2019 में ‘उईमोक’ नामक न्यीशी लोक कथा संग्रह तथा वर्ष 2021 में ‘अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ’ नाम से कहानी संग्रह प्रकाशित हुआ है, जिसमें कुल दस कहानियाँ हैं। इन कहानियों की पृष्ठभूमि पूर्वी अरुणाचल प्रदेश के वांचो आदिवासी समुदाय तथा अरुणाचल प्रदेश के समाज, संस्कृति हैं। पूर्वोत्तर के समाज-जीवन से परिचय करवाती हुई इनकी ‘नालाइ’, ‘पुरोइक’, ‘फिफोट’ आदि कहानियों में परंपरा तथा आधुनिक विचार की द्विधात्मक स्थिति, रूढ़िवादी आग्रह, परंपरा के नाम पर स्त्री की स्वतंत्रता का हरण, उनके प्रति हो रही अन्याय आदि का चित्रण है। लेखिका कहती हैं कि जनजातीय समाज में अन्य समाजों के तुलना में अधिक अधिकार तथा स्वतंत्रता प्राप्त है, लेकिन परंपराओं के नाम पर सदैव स्त्रियाँ को शोषित होना पड़ता है। जमुना बीनी की कहानियों में अरुणाचल प्रदेश की भाषा, संस्कृति, स्थानीय समाज, राजनैतिक परिदृश्य आदि का सटीक उपस्थापन हुआ है।

**डॉ. तारो सिन्दिक :** तारो सिन्दिक अरुणाचल प्रदेश के प्रथम स्थानीय कवि हैं, जिनकी ‘अक्षरों की विनती’ नाम से हिंदी भाषा में प्रथम काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ है। वर्ष 2017 में प्रकाशित इस काव्य संग्रह के लिए उन्हें 2017 के साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। काव्य-संग्रह की कविताओं की विषय-

वस्तु मातृभाषा, हिंदी, माँ, अरुणाचल प्रदेश का प्राकृतिक सौंदर्य, प्रेम, पर्यटन, स्थानीय लोगों की रोजमर्रा का जीवन आदि हैं। वर्ष 2021 में प्रकाशित 'फिर आना तुम' तारो सिन्दिक का दूसरा काव्य संकलन है। इस काव्य संकलन को 'जननी', 'जन्मभूमि' तथा 'विविधा' नाम से तीन खंडों में विभक्त किया गया है। तारो सिन्दिक की कविताओं में अरुणाचल प्रदेश की जीवन-स्थिति, वहाँ की समाज-संस्कृति, राजनीतिक वातावरण, राष्ट्र-प्रेम आदि अनेक विषयों का समाहार है। इन दोनों कविता-संग्रह के अलावा कवि की चुनिंदा पचहत्तर कविताओं का संग्रह 'चयनित कविताएँ' नाम से वर्ष 2023 प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह की कविताओं की विषय-वस्तु समकालीन समाज है। 'सड़क किनारे' शीर्षक कविता में कवि कहता है-

“एक दुनिया हाशिये की  
बसती है सड़क किनारे  
जीवन जीते खानाबदोश की  
सोते-जागते सड़क किनारे।”

(सिन्दिक : 34 : 2023)

**तुम्बम रीबा जोमो 'लिली'** : अरुणाचल प्रदेश की उभरती हुई हिंदी लेखिका हैं। इन्होंने 2018 में 'उस रात की सुबह' नाम से सामाजिक उपन्यास लिखा है। सदियों से स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ा है। उपन्यास की नायिका यापि परंपरागत समाज के नीति-नियमों की बलि चढ़ती है। वह चाहकर भी पति तथा ससुराल वालों के खिलाफ आवाज नहीं उठा सकती, लेकिन अंत में नायक तामार के सहयोग से वह सामाजिक खोखली विचारधारा से संघर्ष करते हुए अपने अस्तित्व की रक्षा करने की चेष्टा करती है। समाज में आए इस सकारात्मक बदलाव को देखकर लेखिका कहती हैं - “कौन कहता है कि इस रात की सुबह नहीं होती? हर काली अंधेरी रात के बाद स्वर्णिम सुबह अवश्य होती है, बस देर है तो सूरज के उगने की।” (जोमो: 7: 2018)

उपन्यास के साथ ही लेखिका ने 'काताम' नाम से अरुणाचल प्रदेश की अनेक जनजातियों की लोक कथाओं का संकलन प्रस्तुत किया है। 2020 ई. में प्रकाशित कुल बीस कहानियों के इस संग्रह में लेखिका ने अरुणाचल प्रदेश की गालो, न्यीशी, आदी समुदाय की संस्कृति को,

मौखिक रूप से प्रचलित लोक कथाओं का संरक्षण करने के साथ ही तथा युवा पीढ़ी के मन में अपनी संस्कृति के प्रति जुड़ाव उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है।

**मोर्जुम लोयी** : अरुणाचल प्रदेश की गालो आदिवासी समुदाय की लेखिका मोर्जुम लोयी अपनी लेखनी के जरिए अरुणाचल प्रदेश की समाज तथा संस्कृति को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करने में सफल हुई हैं। उन्होंने गालो समुदाय की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर हिंदी में उपन्यास, लोक कथा तथा लोक गीत का संकलन प्रस्तुत की है। वर्ष 2020 प्रकाशित 'मिनाम' नामक उपन्यास कई स्त्रियों के संघर्ष गाथा है। गालो समुदाय में प्रचलित 'नेप्प जिदा' नामक कुप्रथा, बहुविवाह, बाल-विवाह शारीरिक शोषण, लिंग-भेद आदि के साथ ही गालो जनजाति की परंपरा, लोक कथा आदि का चित्रण किया है। उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र 'मिनाम' के जरिए लेखिका कहती हैं- “आज समाज के हर तबके के लोग नारी सम्मान, नारी सशक्तिकरण आदि के बारे में बड़ी-बड़ी बातें कर रहे हैं। नेतागण अपने राजनैतिक फायदे के लिए इसी मुद्दे पर जोर-शोर से भाषण-बाजी करते हैं। पर आज भी औरत शोषण का शिकार हो रही है। यह सत्य कभी नहीं बदलेगा, जब तक पूरा समाज, पूरी तरह शिक्षित न हो जाए। मर्द औरत के हक की बात करता है, पर वहीं मर्द अपनी बीवी को वह हक नहीं दे पाता, कारण हम औरतों को अपने हक का पता ही नहीं है। आज भी समाज के कई क्षेत्रों में नारी पर शोषण हो रहा है। वक्त बदल गया है, आज दुनिया में स्त्री और पुरुष दोनों कदम से कदम मिलाकर चल रहे हैं, फिर भी हम आज भी कहीं-न-कहीं इस पुरुष प्रधान समाज में एक लाचार, निर्बल अबला नारी हैं।” (लोयी: 59:2020)

उपन्यास के अतिरिक्त उन्होंने गालो समुदाय में मौखिक रूप से चली आ रहे लोक गीतों का हिंदी में 'ननम पोनू' नाम से संकलन प्रस्तुत किया है। लेखिका ने त्योहारों में, विवाह में, प्रकृति तथा स्त्री विषयक आदि अनेक अवसरों में गाए जाने वाले गीतों को संग्रहीत किया है तथा गालो जनजाति पर केंद्रित 'काबू' नाम से लोक कथा तथा कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

अरुणाचल प्रदेश के अन्य हिंदी साहित्यकारों में

ओकेन लेगो भी प्रमुख हैं। 'आदी जनजाति : समाज और लोक साहित्य' तथा 'दादू पंथ : साहित्य और समाज दर्शन' नाम से इनकी दो महत्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वहीं युवा हिंदी रचनाकारों में ताई तुगुंग, दोरजी लोन्यु, रेमोन लोंगू तथा जोराम आनिया ताना, तुनुड ताबिड, रबोम बेलो आदि भी जाने-माने नाम हैं।

#### निष्कर्ष :

समाज के विकास में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य के विकास के लिए भाषा की व्यापकता

तथा प्रचार-प्रसार अनिवार्य है, जिससे उस भाषा का साहित्य सशक्त हो सके। अरुणाचल प्रदेश में हिंदी साहित्य-लेखन की तादाद को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यहाँ हिंदी साहित्य का भविष्य उज्वल है। स्थानीय साहित्यकार अपनी लेखनी के माध्यम से अरुणाचल प्रदेश की संस्कृति, परंपरा, सामाजिक जीवन, लोक कथा, लोक गीत आदि को देश के अन्य प्रांतों के लोगों तक पहुँचाने में सफल हुए हैं, जिससे अन्य प्रांत के लोगों को यहाँ के समाज जीवन से परिचय होने में तथा आपसी संपर्क स्थापित करने में सहूलियत हुई है। □

#### संदर्भ सूची :

1. सिराम, जुमसी, मेरी आवाज सुनो, प्रथम संस्करण, दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स, 2021
2. तादर, जमुना बीनी, जब आदिवासी गाता है, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली : परिंदे प्रकाशन, 2018
3. नाबाम, जोराम यालाम, जंगली फूल, प्रथम संस्करण, दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2023
4. जोमो, तुम्बम रीबा. उस रात की सुबह. प्रथम संस्करण, नई दिल्ली : पृथ्वी प्रकाशन, 2018
5. सिन्दिक, तारो, चयनित कविताएँ, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली : न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, 2023
6. लोयी, मोर्जुम, मिनाम, प्रथम संस्करण, जयपुर : बोधि प्रकाशन, 2020

## पूर्वोत्तर राज्य की भूमि मणिपुर और मेघालय के संगीत एवं नृत्य पर विवेचन



डॉ. नीरज कुमारी

### प्रस्तावना :

पूर्वोत्तर भारत अपने संगीत और नृत्य कुशलता के लिए काफी प्रसिद्ध है। पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न राज्यों में कई अनोखे और विशिष्ट प्रकार के नृत्य और संगीत विद्यमान हैं। पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्यों की अपनी-अपनी विशेषता एवं अस्मिता विद्यमान है। पूर्वोत्तर भारत के असम, मेघालय, मणिपुर, मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश, नगालैंड राज्यों की जीवन प्रणाली, वेशभूषा, खान-पान, संगीत एवं नृत्य में विशिष्ट प्रकार का सांस्कृतिक लगाव एवं संगीत के प्रति प्राकृतिक सौंदर्य देखने को मिलता है। पूर्वोत्तर के हर राज्य के जीवन मूल्य, संस्कृति, एवं परंपरा उनके संगीत व नृत्य के माध्यम से दृष्टव्य होते हैं। पूर्वोत्तर का प्राकृतिक सौंदर्य देखा जाए तो यह अद्वितीय प्रतीत होता है। यहाँ की घाटियाँ एवं पहाड़-पर्वत प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ यहाँ के लोगों का शांत वातावरण, उनके कुशल विवेक एवं शौर्य और साहसपूर्ण व्यवहार को प्रस्तुत करते हैं। भारत का स्कॉटलैंड यहीं पूर्वोत्तर की घाटियों में बसा हुआ है। मेघालय की राजधानी शिलोंग को स्कॉटलैंड भी कहा जाता है। यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य, पक्षियों की चहचहाहट मानव हृदय को मंत्र मुक्त कर देता है। सर्वप्रथम सूर्य भी यहीं पूर्वोत्तर की घाटियों में उदित होता है। सबसे पहले सूर्योदय अरुणाचल में होता है। अरुणाचल में ही परशुराम कुंड भी है। यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य सूर्य उदय के समय अति भव्य एवं मनमोहक लगता है। पूर्वोत्तर भारत, भारत का एक अभिन्न अंग है।

### बीज शब्द :

पूर्वोत्तर भारत, संगीत, नृत्य, मणिपुर, मेघालय, खासी जनजाति, प्राकृतिक, सृष्टि, ग्रामीण, प्रेम, गीत इत्यादि।

### विवेचन :

पूर्वोत्तर भारत के अंतर्गत मणिपुर और मेघालय के मुख्य नृत्य और संगीत को निम्न प्रकार से देख सकते हैं :-

**मणिपुरी नृत्य :** मणिपुर पूर्वोत्तर भारत का अभिन्न अंग है। यह अपने प्राकृतिक सौंदर्य एवं धरोहर के साथ-साथ अपनी अनोखी नृत्य कला एवं संगीत के लिए संपूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। मणिपुरी नृत्य की अनूठी शैली, ताल और रंगीन वेशभूषा विशिष्ट और मनमोहन स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। यह नृत्य संपूर्ण भारत में अपनी अनूठी विशेषताओं के कारण एक खास पहचान रखता है। यह

-----  
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग  
अरुणाचल यूनिवर्सिटी ऑफ स्टडीज  
9085049308  
bijayshillong@gmail.com  
-----

नृत्य धार्मिक और सांस्कृतिक समारोह का एक अभिन्न अंग है। भारतीय शास्त्रीय नृत्य की विभिन्न शैलियों में एक शैली मणिपुरी नृत्य भी है। मणिपुरी नृत्य प्राचीन समय से ही यहाँ की जनजातियों में प्रचलित रहा है। इसका स्वरूप इतिहास में भी लिपिबद्ध रूप में मिलता है। मणिपुरी नृत्य यहाँ के धार्मिक एवं परंपरागत उत्सव से संबंधित है। यहाँ के देवी-देवताओं, लोगों की आस्थाओं से जुड़ी विभिन्न दंत कथाएँ संगीत और नृत्य के माध्यम से सहज ही समझी जा सकती हैं। भगवान शिव एवं माँ पार्वती के नृत्य, अन्य देवी-देवताओं एवं जिन्होंने इस सृष्टि की रचना की, उनसे संबंधित दंत कथाएँ नृत्य एवं संगीत के माध्यम से प्रस्तुत किए जाते हैं। जैसे -

*लाई हाराओबा* : यह मणिपुर के मुख्य उत्सवों में से एक है। मणिपुर के निवासी बहुत ही उत्साह से इस उत्सव को मनाते आ रहे हैं। इस नृत्य का उद्भव पूर्व वैष्णव काल में हुआ था। लाई हारोबा नृत्य मणिपुर के प्राचीनतम रूप को प्रस्तुत कर, उसकी सभी शैलियों के रूपों के महत्व को बढ़ता है। इस नृत्य का शाब्दिक अर्थ है 'देवताओं का आमोद'। यह नृत्य अनुष्ठानिक अर्पण के रूप में यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। इस अनुष्ठान में मायबा और मायबी; पुजारी और पुजारिनें प्रमुख अनुष्ठानकर्ता के रूप में विद्यमान होते हैं। इस अनुष्ठान के माध्यम से सृष्टि की रचना की विषय-वस्तु को दोबारा अभिनीत किया जाता है।

लाई हाराओबा एशेई को लयबद्ध ग्रामीण प्रेम गीत कहते हैं और साथ ही खुल्लंग एशेई भी ग्रामीण प्रेम जीते हैं, जिसके बोल कामुक रहस्यवाद के संदर्भ में है। इसके अतिरिक्त पेना एशेई, जिसके साथ एक पेना होता है- यह पेना बाँस की छड़ और लौकी या नारियल के खोल से बना एक वाद्य यंत्र है। पेना एक प्राचीन वाद्य यंत्र है, जो मणिपुरियों के लिए एक तरह का राष्ट्रीय प्रतीक है। यहाँ शास्त्रीय नाट्य संगीत विशेष अवसरों पर विभिन्न रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं। नुपी पाला, गौड़ पद, चैतन्य महाप्रभु की स्तुति में गाए जाते हैं और धोब, झाल, एक बड़ी झाँझ के साथ दिखाया जाता है। मनोहर साईं गीतों का एक और

महत्व पूर्ण वर्ग है, जो 19वीं सदी के इसी नाम के एक व्यक्ति को समर्पित है। खूबकेशी इस तरह का गीत है, जो पूरी तरह से ताली बजा कर गया जाता है।

15वीं सदी ई. में वैष्णव काल के आगमन के साथ क्रमशः राधा और कृष्ण के जीवन की घटनाओं पर आधारित रचनाएँ भी प्रस्तुत की गईं। ऐसा राजा भाग्यचंद्र के शासन काल में हुआ। इसी समय मणिपुर में प्रसिद्ध रासलीला नृत्यों का प्रवर्तन हुआ था। यहाँ यह किंवदंतियाँ हैं कि 18वीं सदी के इस दार्शनिक राजा ने एक स्वप्न में इस संपूर्ण नृत्य की उसकी विशिष्ट वेशभूषा और संगीत सहित कल्पना की थी। मणिपुरी नृत्य एक विशिष्ट रंग पटल है। यहाँ के रास, संकीर्तन और थंग बहुत प्रसिद्ध हैं।

यहाँ प्रमुखतः पाँच रास नृत्य प्राप्त होते हैं, जिनमें से चार का संबंध विशेष प्रकार की ऋतुओं से है तथा पाँचवाँ साल में किसी भी समय प्रस्तुत किया जाता है। मणिपुरी रास नृत्य में कृष्ण-राधा और गोपियाँ ही मुख्य पात्र होते हैं। इस रास की विषय-वस्तु के अंतर्गत राधा और गोपियों के कृष्ण से अलग होने की व्यथा को प्रस्तुत किया जाता है। रासलीला के रूप में परेंग या शुद्ध नृत्य क्रम भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किए जाते हैं। इसमें निर्दिष्ट लयात्मक भंगिमाओं और शरीर की गतिविधियों का विशेष रूप से अनुकरण किया जाता है। यह परंपरागत रूप से अनुसरणीय होते हैं। रास में प्रयुक्त होने वाली वेशभूषा में प्रचुर मात्रा में कसीदे का काम किया जाता है। इसके अंतर्गत एक सख्त घाघरा शामिल होता है, जो पूर्णतया पैरों तक फैला होता है। इसके ऊपर महीन मलमल का घाघरा पहना जाता है। शरीर का ऊपरी भाग गहरे रंग के मखमल के ब्लाउज से ढँका रहता है। इसके साथ ही एक परंपरागत घूँघट तथा विशेष केस की सजावट भी होती है। कृष्ण का पीली धोती, गहरी मखमल का जैकेट और मोर पंखों का एक मुकुट से शृंगार किया जाता है। इनके अलंकरण उत्कृष्ट होते हैं तथा उनकी बनावट प्रदेश की विशेषताओं को प्रस्तुत करने में सक्षम होते हैं।

सामूहिक गान का कीर्तन यहाँ नृत्य के साथ जुड़ा हुआ है। इस प्रकार के नृत्य को मणिपुर में संकीर्तन के

रूप में मान्यता प्राप्त है। पुरुष नाटक-नृत्य करते समय पुंग और करताल बजाते हैं। चोलोम और संकीर्तन नृत्य परंपरा का ही एक भाग है। सभी सामाजिक और धार्मिक त्योहारों पर पुंग, करताल और चोलोम प्रस्तुत किए जाते हैं। थंगता मणिपुर का युद्ध संबंधी नृत्य है। इसकी उत्पत्ति के पीछे कुछ किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। मान्यता है कि मनुष्य ने जब जंगली सूअरों से अपनी रक्षा करना सीख लिया था, वह अपनी क्षमता पर निर्भर रहने लगा था, तभी से इस नृत्य का उद्भव मणिपुर में हुआ। वर्तमान समय में यहाँ के युद्ध संबंधी नृत्यों में तलवारों, ढोलों और भालों का भी उपयोग सटीक रूप से नृत्य की विशेषता के अनुकूल किया जाता है, जो इसकी उत्सर्जक तथा कृत्रिम रंगपटल के महत्व को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करने में सक्षम है। नर्तकों के बीच वास्तविक लड़ाई के दृश्य से स्पष्ट होता है कि नृत्य के लिए शरीर के नियंत्रण और विस्तृत प्रशिक्षण आवश्यक होते हैं। मणिपुरी नृत्य में तांडव और अलसी दोनों का समावेशन मनोरम रूप से दृष्टव्य होता है। मणिपुरी नृत्य की एक दुर्लभ विशेषता यह भी है कि इसे लयात्मकता और मनोहरी गतिविधियों के रूप में जाना जाता है। मणिपुरी नृत्य में चेहरे के भाव स्वाभाविक दृष्टव्य होते हैं और अतिरिजित दिखाई नहीं पड़ते। संपूर्ण शरीर का उपयोग एक निश्चित रस को संप्रेषित करने के लिए ही किया जाता है। यह नृत्य की विशेषता है। प्रमुख अभिनकर्ता को बहुत अधिक महत्व नहीं दिया जाता। यहाँ का नृत्य और संगीत एक उच्च विकसित ताल और तंत्र है। यहाँ की शास्त्रीय शैली को नाट कहा जाता है, जो उत्तर तथा दक्षिण भारतीय संगीत दोनों से बहुत अलग है। यह शैली निश्चित प्रकार के स्वर कंपन और अनुकूल उच्च स्वरमान के साथ जल्दी पहचानी जा सकती है। यहाँ का मुख्य संगीत वाद्य पुंग या मणिपुरी शास्त्रीय ढोल है। यहाँ ढोलों की विभिन्न किस्म भी सहजतापूर्वक प्राप्त होती हैं। पेना एक तारदार वाद्य, लाई हारोबा और पेना गायन प्रयोग में लाया जाने वाला वाद्य यंत्र है। स्वरों के अनुकूल गायन में बाँसुरी का भी प्रयोग सहज रूप से किया जाता है।

जयदेव द्वारा रचित गीत गोविंद की अष्ट पद्धतियाँ बहुत प्रचलित हैं और इन्हें मणिपुर में भी धर्मोत्सव के साथ गया जाता है तथा नृत्य भी प्रस्तुत किया जाता है।

मणिपुर के पश्चात अब हम मेघालय के नृत्य एवं संगीत पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हैं।

पूर्वोत्तर भारत का राज्य मेघालय अपने प्राकृतिक सौंदर्य, संस्कृति, परंपरा, वेशभूषा, खान-पान, संगीत एवं नृत्य के लिए भी प्रसिद्ध है। मेघालय को मेघों का घर भी कहा जाता है, क्योंकि यहीं पर चेरापूँजी है, जहाँ अत्यधिक वर्षा होती है। यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर ही हृदय मंत्र मुग्ध हो जाया करता है। मेघालय की राजधानी शिलोंग को प्राकृतिक सौंदर्य के कारण है स्कॉटलैंड कहा गया है। गारो, खासी और पनार जनजातियाँ संगीत और नृत्य के साथ राज्य की संस्कृति को और परंपराओं को समृद्ध करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत करती हैं। नोंगक्रेम नृत्य, लाहो नृत्य, वांगला नृत्य और शाद सुक मिनसेइम नृत्य इत्यादि मेघालय के नृत्य और संगीत से संबंधित सांस्कृतिक विरासत को प्रस्तुत करते हैं।

मेघालय के संगीत और नृत्यों में से कुछ प्रमुख का वर्णन निम्न प्रकार से है:-

**नोंगक्रेम नृत्य :** यह नृत्य हर साल खासी जनजाति द्वारा भगवान के प्रति सम्मान और प्रार्थना व्यक्त करने के लिए किया जाता है। यह एक धार्मिक नृत्य है। यह शिलोंग के पास स्थित स्मित गाँव में हर साल स्वदेशी देवता यू लेई के प्रति कृतज्ञता और सम्मान अभिव्यक्त करने हेतु किया जाता है। यह नृत्य अपने सुंदर भाव और विस्तृत कदमों के लिए जाना जाता है। युवा महिलाओं द्वारा यह नृत्य प्रस्तुत किया जाता है, जिन्हें का शाद किंथेई कहा जाता है। यह नृत्य युवा महिलाओं की मासूमियत तथा प्रजनन क्षमताओं की अवधारणा को दर्शाता है। इस नृत्य के दौरान खासी युवा स्त्रियाँ अपने आप को चमकीले परंपरागत कपड़ों से सुशोभित करती हैं तथा रंग-बिरंगे आभूषणों से स्वयं को सजाती हैं। वे परंपरागत खासी संगीत के साथ तालमेल बैठते हुए, अति मनोहारी नृत्य प्रस्तुत करती हैं। इस नृत्य में ड्रम और बाँसुरी जैसे वाद्ययंत्र की मधुर ध्वनि नृत्य को और उत्तम बना देती है। यह एक उच्च पुजारी की उपस्थिति में होता है, जो एक ऊँचे मंच पर बैठकर नर्तकियों को आशीर्वाद देता है।

**वांगला नृत्य :** इस नृत्य को सौ ड्रम नृत्य भी कहा जाता है। यह गारो समुदाय का एक परंपरागत नृत्य है।

यह नृत्य उत्सव फसल के दौरान बड़े धूमधाम से पुरुष और महिलाओं द्वारा परंपरागत वेशभूषा पहन कर मनाया जाता है। इस नृत्य में पुरुष सींग और लोक ड्रम बजाते हैं तथा महिलाएँ मिसी सालजोंग के सम्मान में नोकमा की चारों ओर आकृतियाँ बनाती हैं। मेघालय के पश्चिमी गारो हिल्स जिले के सदोलपारा जैसे दूरदराज के गाँव में यह परंपरागत त्योहार मनाया जाता है। इस नृत्य में पुरुष और महिला दोनों को ही जीवंत सामग्रियों से सजाया जाता है और सौ ड्रमों की आवाज से उत्साहित होकर प्रतिभागी संगीत पर शानदार तरीके से अपना नृत्य प्रस्तुत करते हैं। यह परंपरागत नृत्य समुदाय के भीतर कृषि की प्रचुरता और एकता को प्रस्तुत करता है।

**शाद सुक मिसिएम नृत्य :** इस नृत्य को हर्षित हृदय का नृत्य भी कहा जाता है। इस नृत्य को शाद सुक उत्सव के दौरान प्रस्तुत किया जाता है। खासी समुदाय का यह एक परंपरागत नृत्य है। यह नृत्य वसंत के आगमन की याद दिलाता है। यह नृत्य अपनी हरकतों के माध्यम से जोश और उत्साह का संचार करता है और चारों तरफ हर्ष और उल्लास का वातावरण का निर्माण करता है।

**डोरेगाटा नृत्य :** यह गारो जनजाति का नृत्य है, जो त्योहार और उत्सवों के अवसर के दौरान प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में गोंग और बाँसुरी जैसे परंपरागत वाद्ययंत्रों की ध्वनियों के माध्यम से, रोजमर्रा के जीवन, शिकार अभियानों और आदिवासी संघर्षों की विभिन्न पहलुओं को नृत्य के माध्यम से कुशलतापूर्वक प्रस्तुत किया जात है।

**बेहदीनखलम नृत्य :** यह नृत्य पनार जनजाति का एक सांस्कृतिक तमाशा नृत्य है, जिसे बेहदीनखलम उत्सव के दौरान प्रस्तुत किया जाता है। इस गतिशील प्रदर्शन में जीवंत चाल और समन्वित फुटवर्क शामिल है, जो समुदाय के भीतर धार्मिक और सामूहिक एकजुटता की जीत का प्रतिनिधित्व करता है।

**लाहो नृत्य :** इस नृत्य को चिपिया नृत्य के रूप में भी जाना जाता है। यह नृत्य पनार जनजाति द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य में पुरुष और महिला दोनों ही बड़-चढ़कर भाग लेते हैं। यह नृत्य ढोल और बाँसुरी

वाद्य यंत्रों की मधुर ध्वनि के साथ किया जाता है।

**गारो लोक संगीत :** गारो लोक संगीत मेघालय के लोग, परंपरा का अभिन्न हिस्सा है। इसमें प्राकृतिक प्रेम तथा सामाजिक एकता का एक अनूठी मिठास देखने को मिलता है। मेघालय की वादियों में संगीत और नृत्य का मनमोहक दृश्य दृष्टव्य होते हैं, जो यहाँ की संस्कृति और परंपराओं का तथा रीति-रिवाज, रहन-सहन और लोक मान्यताओं का कुशलता पूर्वक बखान करते हैं।

निम्न प्रकार से वाद्य यंत्रों के बारे में समझा जा सकता है:-

मेघालय के सांस्कृतिक संगीत में ढोल, बाँसुरी एवं गुठली तथा विभिन्न प्रकार के वाद्य यंत्रों का संगीत और परिस्थिति के अनुकूल कुशलपूर्वक प्रयोग किया जाता है।

हाल के संगीतकार और बैंड : मेघालय में कुछ हाल संगीतकारों और बैंड में सोलमेत, लू माजा, स्त्रो व्हाइट, प्लेग थ्रोए केरियोस वाहलाग और क्रिप्टोग्राफिक स्ट्रीट पोएट्स आदि शामिल हैं। वाद्य यंत्रों का प्रयोग समय और स्थान के अनुकूल संगीत और नृत्य के अनुसार बदलता रहता है। जैसे ढोल बजाना एक लोकप्रिय कला है और बड़े पैमाने पर धार्मिक और भक्ति संगीत के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

**कसिंग लम पेड :** एक प्रकार का ड्रम होता है, जिसे नृत्य के आरंभ को इंगित करने के लिए बजाया जाता है। कसिंग दमदम का उपयोग योग लोगों की काउंसलिंग इत्यादि के लिए प्रयोग में किया जाता है। इनमें विभिन्न प्रकार के ड्रम, बाँस और हार्नविंड उपकरण घंटिया और झांझ होते हैं। गौम्बल (गरेया आरबरिका) पेड़ का उपयोग ड्रम का फ्रेम म बनाने के लिए किया जाता है।

**दामा :** यह एक प्रकार का लंबा और संकरा ड्रम है, जो केंद्र में सबसे मोटा होता है और प्रत्येक सिरे पर पतला होता जाता है। यह चार से पाँच फीट लंबी लकड़ी से बना होता है।

**क्राम :** यह एक प्रकार का ढोल होता है, जो दामा से भी बड़ा होता है, जिसके दोनों छोरों को गोचर्म से ढँका जाता है। यह लकड़ी से बना होता है। क्राम एक छोर पर बड़ा और दूसरे छोर पर पतले आकार का होता है।

उनका उपयोग केवल अंतिम संस्कार और प्रकृति के वार्षिक समारोह में ही किया जाता है, जबकि दामा का उपयोग किसी भी समय किया जाता है।

**नागरा :** यह एक ड्रम होता है, जिसमें गोचर्म से ढँके मिट्टी के बर्तन होते हैं। इसे केवल नोकमा के घर पर इकट्ठा होने के लिए और लोगों को बुलाने के लिए बजाया जाता है। जब वह उन्हें दावत या मनोरंजन के लिए बुलाते हैं, तब ऐसे वाद्य यंत्र का प्रयोग किया जाता है।

समय के साथ-साथ मेघालय के संगीत और नृत्य में भी काफी विकास देखने को मिलता है। यहाँ की सांस्कृतिक धरोहर, परंपरा तथा संगीत एवं नृत्यों को संरक्षित एवं बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

### निष्कर्ष :

पूर्वोत्तर भारत, भारत का एक अभिन्न अंग है। यहाँ के हरेक राज्य की अपनी सांस्कृतिक और पारंपरिक विशेषताएँ, भाषाएँ, लिपियाँ हैं। हरेक राज्य के विशिष्ट नृत्य और संगीत हैं, जो विभिन्न समुदायों की सभ्यता, संस्कृति, परंपरा तथा रीति-रिवाज को सहज रूप से प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। पूर्वोत्तर भारत के संगीत एवं नृत्य केवल यहाँ की जनजातियों का ही बखान नहीं करते, अपितु यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य एवं धरोहर तथा आध्यात्मिक एवं धार्मिक महत्व को भी उजागर करते हैं। संगीत एवं नृत्य प्रकृति के प्रति वात्सल्य, प्रेम एवं संघर्षमय जीवन को भी सहज रूप से प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। इनमें भावनाओं एवं लयबद्धता का गुंफन द्रष्टव्य होता है। □

### संदर्भ सूची :

1. <https://en.wikipedia.org>
2. <https://ccrtindia.gov.in>
3. <http://www.sahapedia.org>

## नई कविता में प्रकृति और आत्मसंघर्ष : मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य



**योगेश कुमार**

शोधार्थी, हिंदी विभाग  
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय  
महेंद्रमड - 123031  
8209898440  
indisahitya003@gmail.com

### शोध-सार :

हिंदी साहित्य में 'नई कविता' नई संवेदना, शिल्प और दृष्टिकोण को लेकर सामने आई। यह कविता पारंपरिक काव्य-रूपों में तो भिन्न थी ही, साथ में मानव-मन की गहराइयों, अस्तित्व की विडंबनाओं और सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ को भी इसमें अभिव्यक्त किया गया है। नई कविता में जहाँ मनुष्य की सामाजिक, मानसिक और आत्मिक स्थिति का चित्रण प्रमुख है, वहीं प्रकृति का चित्रण भी एक विशिष्ट दृष्टिकोण से सामने आता है। इस युग की कविताओं में प्रकृति अब एक सक्रिय पात्र की तरह व्यवहार करती है, जो कभी मनुष्य के साथ होती है, तो कभी उसके विरुद्ध। यह चित्रण अब मात्र सौंदर्य बोध या शृंगार रस तक सीमित न रहकर जीवन की जटिलताओं, पर्यावरणीय चेतना और मानसिक द्वंद्व को भी अभिव्यक्त करता है। नई कविता में प्रकृति का चित्रण केवल प्रकृति के रूप-सौंदर्य तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह मनुष्य की आंतरिक स्थिति, सामाजिक यथार्थ और अस्तित्वगत संकटों का संवाहक बन जाती है।

### बीज शब्द :

प्रकृति, सौंदर्य, पर्यावरणीय चेतना, विडंबना, अकेलापन, संघर्ष, आत्म-संवाद, उद्दीपन, आलंबन, मानसिक द्वंद्व।

### मूल आलेख :

नई कविता में प्रकृति का चित्रण अब केवल रमणीय दृश्यों, फूलों, चाँदनी या वनों तक सीमित नहीं रहा। ये कविताएँ अब मनुष्य के अस्तित्व, समाज और मानसिक द्वंद्व का प्रतिनिधित्व करने लगी हैं। प्रकृति के माध्यम से कवि आधुनिक जीवन की विडंबनाओं, अकेलेपन, संघर्ष और आत्म-संवाद को व्यक्त करते हैं। वैसे तो प्रकृति पर कविताएँ हिंदी साहित्य में आदिकाल से लिखी जाती रही हैं, लेकिन छायावाद से पहले तक प्रकृति का उद्दीपनकारी चित्रण ही देखने को मिलता है। छायावाद में ही मुख्यतः इसका आलंबनकारी चित्रण सामने आया। आलंबनकारी चित्रण ही प्रकृति का प्राकृतिक चित्रण है, क्योंकि उद्दीपनकारी चित्रण में भावरोपण के कारण उसमें कृत्रिमता आ जाती है। छायावाद में हम पाते हैं कि अधिकतर प्रकृति का कोमल और मधुर रूप के साथ काल्पनिकता का सहारा लेकर प्रकृति का मानवीकरण भर किया गया है। प्रगतिवाद में प्रकृति का चित्रण तो आलंबनकारी है, लेकिन यहाँ घोर सामाजिकता के कारण प्रकृतिवादी कविताएँ किनारे कर दी गईं।



**डॉ. कमलेश कुमारी**

सह-आचार्य, हिंदी विभाग,  
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय,  
महेंद्रमड - 123031  
7015405750  
kamlesh@cuha.ac.in

नई कविता में हमें प्रकृति प्रतीकात्मक रूप में दिखलाई पड़ती है- जैसे 'पेड़' जीवन की जड़ता या संघर्ष का प्रतीक, 'धूप' आशा, स्मृति या कटु यथार्थ की पहचान, 'बादल' मन की बेचैनी या अधूरी आकांक्षाओं के प्रतीक के रूप में आते हैं। इस समय की कविता में प्रकृति विविध रूपों में उपस्थित दिखलाई पड़ती है, जैसे-कोमल, कठोर, माधुर्य, उल्लास आदि रूपों में। इसमें प्रकृति का यथार्थ चित्रण मुखरता के साथ हुआ है। भवानी प्रसाद मिश्र 'सतपुड़ा के जंगल' कविता में लिखते हैं,

“अटपटी उलझी लताएँ  
डालियों को खींच खाएँ  
पैर को पकड़ें अचानक  
प्राण को कस लें कंपाएँ  
साँप-सी काली लताएँ  
बला की पाली लताएँ  
लताओं के बने जंगल  
नींद में डूबे हुए-से  
ऊँघते अनमने जंगल।”<sup>1</sup>

इस कविता में जंगल के घने पेड़-पौधों और वहाँ के पर्यावरण का सजीव चित्रण करते हैं।

नई कविता में प्रकृति, व्यक्ति की आंतरिक मनःस्थितियों की प्रतिनिधि बनकर सामने आती है। मुक्तिबोध, शमशेर और अज्ञेय जैसे कवियों ने प्रकृति के माध्यम से आत्मसंघर्ष और अस्तित्ववादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है। मुक्तिबोध ने 'अंधेरे में' कविता में प्रकृति का जो चित्रण किया है, वह बेचैनी और भय के रूप में उभरकर आता है। कविता में अंधेरा और तिमिर जीवन की कठिनाइयों और संघर्षों के प्रतीक के रूप में सामने आते हैं। वे लिखते हैं,

“तालाब के आस-पास  
अंधेरे में वन-वृक्ष  
चमक-चमक उठते हैं हरे-हरे, अचानक  
वृक्षों के शीश पर नाच-नाच उठती हैं बिजलियाँ शाखाएँ,  
डालियाँ झूमकर झपटकर चीख,  
एक-दूसरे पर पटकती हैं सिर कि अकस्मात  
वृक्षों के अंदरे में छिपी हुई किसी एक तिलिस्मी खोह  
का शीला-द्वार  
खुलता है धड़ से।”<sup>2</sup>

इन कवियों ने अपने मानसिक द्वंद, अकेलेपन और अस्तित्व संकट को व्यक्त करने के लिए प्रकृति के बिंबों का उपयोग किया है। अज्ञेय की कविताओं में प्रकृति आंतरिक जीवन का विस्तार बन जाती है। 'बावरा अहेरी' कविता में कवि सूर्य के रूप का चित्र खींचते हुए लिखते हैं,

“भोर का बावरा अहेरी  
पहले बिछता है आलोक की  
लाल-लाल कनियाँ  
पर जब खींचता है जाल को  
बाँध लेता है सभी को साथ  
छोटी-छोटी चिड़ियाँ, मँझोले परेवे, बड़े-बड़े पंखी।”<sup>3</sup>

यहाँ 'तट का पत्थर' मनुष्य की अपनी अस्मिता, स्थायित्व और अलगाव का प्रतीक है। अज्ञेय की प्रकृति-दृष्टि दार्शनिक हैं। वे प्रकृति में आत्मचिंतन और अस्तित्व की संभावनाएँ देखते हैं। 'नदी के द्वीप' कविता में वे लिखते हैं,

“किन्तु हम हैं द्वीप  
हम धारा नहीं हैं  
स्थिर समर्पण है हमारा।  
हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के  
किन्तु हम बहते नहीं हैं।  
क्यों कि बहना रेत होना है।”<sup>4</sup>

यहाँ नदी केवल एक प्राकृतिक तत्व नहीं है, बल्कि समय का प्रतीक बन जाती है। कवि अपने ठहराव और जड़ता को नदी के बहाव के बरक्स रखता है। प्रकृति एक गहरे मनोवैज्ञानिक संघर्ष का माध्यम बन जाती है। अज्ञेय की कविता में 'मौन' और 'प्रकृति' आपस में गहरे जुड़े हुए हैं। उनके लिए प्रकृति संवाद से अधिक आत्मसंवाद की भूमि है।

प्रकृति के दृश्य कितने जल्दी-जल्दी बदलते हैं, यह हम सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'सूरों के सहारे-2' में देख सकते हैं। वे लिखते हैं,

“दूर-दूर तक  
सोयी पड़ी थीं पहाड़ियाँ  
अचानक टिले करवट बदलने लगे  
जैसे नींद में उठ चलने लगे  
एक अदृश्य विराट हाथ बादलों-सा बड़ा

पत्थरों को निचोड़ने लगा  
निर्झर फूट पड़े  
फिर घूमकर सब कुछ रेगिस्तान में  
बादल गया।”<sup>5</sup>

नई कविता में प्रकृति केवल सौंदर्य का ही स्रोत नहीं है, अपितु समाज की विसंगतियों, अकेलेपन और अस्तित्व की विडंबनाओं को भी प्रतिबिंबित करती है। ‘दूब’ कविता में शमशेर की अपनी प्रेमिका से मिलने की चाह देखी जा सकती है। वे लिखते हैं,

“मोटी, धुली लॉन की दूब  
साफ मखमल की कालीन  
ठंडी धुली सुनहरी धूप  
हलकी मीठी चा-सा दिन  
मीठी चुस्की-सी बातें  
मुलायम बाहों-सा अपनाव।”<sup>6</sup>

प्रकृतिवादी रचनाओं में विषय वैविध्यता देखी जा सकती है। छायावाद से शुरू होने वाली प्रकृतिपरक रचनाएँ नई कविता तक पहुँचते-पहुँचते पर्यावरणीय विषयों को केंद्रित करके लिखी जाने लगी। नई कविता में प्रकृति का वर्णन मानव जीवन की समृद्धता और आत्म-चिंतन के रूप में आता है। रघुवीर सहाय के यहां दैनंदिन की घटनाओं जैसे ‘सूरज को देर तक डूबते हुए देखना’ मनुष्य का अपने जीवन को समझने से है। ‘आज फिर शुरू हुआ जीवन’ कविता में कवि मानव को किसी भी समय अपने जीवन में सरसता भरकर नव निर्माण करने के लिए प्रेरित करते हैं। जीवन की नैरंतर्यता में सार्थकता लिए रघुवीर सहाय की कविताएँ नई कविता को पथ प्रदर्शक का कार्य करती हैं।

सहाय जी ने प्रेम और प्रकृति पर भी कविताएँ लिखी हैं, जो कि एक नयापन लिए हुए हैं। इनकी कविताओं में जहाँ बाहरी जटिलता मिलती है, वहीं गहराई में जाने पर अर्थ की समृद्धता और अर्थ-बाहुल्यता देखी जा सकती है। प्रकृति की कविताओं में ‘पानी के संस्मरण’, ‘वसंत आया’, ‘बौर’ आदि प्रमुख हैं। इनकी कविताओं में प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंधों में आत्मीयता देखी जा सकती है। सहाय लिखते हैं कि -

“वही आदर्श मौसम  
और मन में कुछ टूटता-सा  
अनुभव से जानता हूँ कि यह वसंत है।”<sup>7</sup>

इस कविता में कवि ने वसंत के सौष्ठव रूप का वर्णन नहीं किया है, बल्कि अनुभव पर अधिक जोर दिया है। इस उल्लास भरे मौसम में कुछ मन में टूटता-सा इस वसंत जैसे जीवन में विडंबना भर देता है।

मानव समाज प्रकृति की गोद में रहकर ही अपना जीवन-यापन करता है। भौतिकता का प्रभाव गाँवों की अपेक्षा शहरों में अधिक देखा जा सकता है। नई कविता के कवियों का जुड़ाव शहरों से हो गया हो, लेकिन उनका मन गाँवों में ही बसता है। केदारनाथ सिंह की अनेक प्रकृतिवादी कविताएँ देखी जा सकती हैं, जैसे - ‘पतझड़ की एक शाम’, ‘फागुन का गीत’, ‘दुपहरिया’, मार्च की सुबह आदि। इन कविताओं में प्रकृति के सौम्य दृश्य स्पष्टतः दिखलाई पड़ते हैं। केदारनाथ सिंह अपने को प्रकृति से जोड़ते हुए लिखते हैं, “प्रकृति बहुत शुरू से मेरे भावों का आलंबन रही है। मेरा घर गंगा और घाघरा के बीच में है। घर के ठीक सामने एक छोटा सा नाला है, जो दोनों को मिलाता है। मेरे भीतर भी गंगा और घाघरा की लहरें बराबर टकराती रहती हैं।”<sup>8</sup>

केदारनाथ सिंह की कविताओं में प्रकृति का चित्रण ग्राम्य परिवेश, स्मृति और सामाजिक बदलाओं के संदर्भ में हुआ है। वे नदी, पेड़, पक्षी, मिट्टी आदि के माध्यम से मानवीय अनुभवों को बुनते हैं। नई कविता में प्रकृति मनुष्य की भावनात्मक, मानसिक और सामाजिक स्थितियों को व्यक्त करने का माध्यम बन जाती है। प्रकृति और व्यक्ति के बीच एक संवाद दिखाई देता है, जो कई बार संघर्ष, विसंगति और विछोह से भरा होता है। ‘पानी था मैं’ कविता में पानी के संकट देखा जा सकता है। ‘घोंसलों का इतिहास’ कविता में मानव का पक्षियों के जीवन में हस्तक्षेप को दिखलाया है। कवि मनुष्य को उनके घोंसले से दूर रहने की ही सलाह देता है। किस प्रकार मनुष्य उनकी स्वतंत्रता छीन लेता है, इस पर कवि लिखते हैं,

“सच यही है कि बाजार में मिलते नहीं घोंसले  
वहाँ सिर्फ पिंजड़े मिलते हैं

... घोंसलों का इतिहास  
 एक गहरे शोध और अध्ययन का विषय है  
 पर मुझे डर है कि रख दो कोर्स में  
 तो दुनिया के सारे घोंसले  
 भहराकर गिर पड़ेंगे!  
 इसलिए अच्छा यही होगा  
 कि घोंसलों को छोड़ दिया जाए पेड़ पर ही  
 जहां अपनी छोटी-सी गरिमा में।”<sup>10</sup>

‘विद्रोह’ कविता में बिस्तर, कुर्सी, मेज, आलमारी, शाल आदि सभी मनुष्य की कैद से मुक्ति चाहकर पुनः अपने मूल रूप में जाना चाहते हैं। कवि की अपने पर्यावरण के प्रति सजग चेतना देखी जा सकती है। केदारनाथ लिखते हैं,

“आज घर में घुसा  
 तो वहाँ अजब दृश्य था  
 ‘सुनिये’- मेरे बिस्तर ने कहा  
 यह रहा मेरा इस्तीफा  
 मैं अपने कपास के भीतर  
 वापस जाना चाहता हूँ  
 ... यानी आपके सारे के सारे कैदी  
 आदमी की जेल से  
 मुक्त होना चाहते हैं  
 अब जा कहाँ रहे हैं  
 मेरा दरवाजा कड़का  
 जब मैं बाहर निकाल रहा था।”<sup>11</sup>

नई कविता में कवियों ने प्रकृति के पारिस्थितिक पक्षों को भी छूआ है। पर्यावरणीय चेतना का आरंभिक रूप इन कविताओं में देखा जा सकता है। प्रकृति का अनुभव सीधे मन की स्थितियों से जुड़ता है।

दुष्यंत कुमार की गज़लों में जहाँ एक ओर राजनीतिक चेतना है, वहीं प्रकृति के विघटन पर भी चिंता व्यक्त की गई है।

“कहाँ तो तय था चिरागाँ हर एक घर के लिए  
 कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए”<sup>12</sup>

यहाँ ‘चिराग’ न केवल सामाजिक असमानता का प्रतीक है, बल्कि ऊर्जा संसाधनों की अनुपलब्धता का संकेत भी देता है। विश्व निरंतर अपनी उन्नति के पथ पर अग्रसर है। नई-नई खोज मानव जीवन को सरल और

आरामदेह बना रहा है, लेकिन उसकी कीमत प्रकृति को चुकानी पड़ रही है। नई कविता में तथाकथित आधुनिक नगरीय जीवन और प्रकृति के बीच के संघर्ष को दिखाया गया है। यह द्वंद्व मानवीय संवेदना के ह्रास और कृत्रिमता को उजागर करता है। रघुवीर सहाय की कविताओं में यह द्वंद्व स्पष्टतः उभरकर सामने आता है। कवि प्रकृति के ह्रास के साथ मनुष्य की आत्मा के संकुचन हैं। कवि प्रकृति की गतिविधियों को कैलेंडर से नहीं, वरन स्वयं महसूस करते हैं, उन पलों को जीना चाहते हैं। ‘बसंत आया’ कविता में कवि को फुटपाथ पर चलते-चलते ये अहसास होता है कि बसंत आ गया है।

सहाय की कविता में प्रकृति शहरी जीवन के संकट और विस्थापन की पृष्ठभूमि बनकर आती है। ‘पानी के संस्मरण’ कविता में प्रकृति का उद्दीपनकारी चित्रण करते हुए सहाय लिखते हैं, “कौंध । दूर घोर वन में मूसलाधार वृष्टि/ दुपहर : घना ताल : ऊपर झुकी आम की डाल/ बयार : खिड़की पर खड़े, आ गयी फुहार/ रात : उजली रेती के पर; सहसा दिखो शान्त नदी गहरी/ मन में पानी के अनेक संस्मरण हैं।”<sup>13</sup> शहरीकरण के कारण अब अपनी उपयोगिता खो चुके इन पेड़ों का यथार्थवादी दृष्टिकोण उभरकर सामने आता है। औद्योगिकीकरण के कारण निरंतर दूषित होते पर्यावरण और उसके कुप्रभावों पर तीखा व्यंग्य नई कविता में किया गया है। हवा, जो कविता और सौंदर्य का प्रतीक थी, अब शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण एक त्रासदी का रूप ले चुकी है। ‘नदियाँ’ कविता में केदारनाथ लिखते हैं, “नदियाँ जो कि असल में/ शहरों का आरंभ हैं/ और शहर जो कि असल में/ नदियों का अंत।”<sup>14</sup>

आधुनिकता और उपभोक्तावाद के कारण मनुष्य और प्रकृति के मध्य के आत्मीय और गहरे संबंधों में टूटन देखने को मिली है। इस प्रकार नई कविताएँ प्रकृति का एक नया और गहन दृष्टिकोण प्रकट करती हैं।

#### निष्कर्ष :

हम कह सकते हैं कि नई कविता ने हिंदी साहित्य को एक नई दृष्टि, नई संवेदना और नई भाषिक अभिव्यक्ति दी। इसमें कवियों ने प्रकृति को दार्शनिक, प्रतीकात्मक और आत्मीय धरातल पर चित्रित किया है, जिससे वह और भी समकालीन

तथा संवेदनशील बन जाती है। इसमें प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि एक सक्रिय, संवेदनशील और विचारशील तत्व है, जो मनुष्य के अस्तित्व और चेतना से जुड़ी हुई है। प्रकृति का यह नया दृष्टिकोण हिंदी कविता को एक वैश्विक मानवीयता और पर्यावरणीय चेतना से भी जोड़ता है। इस काव्यधारा में प्रकृति का चित्रण न केवल सौंदर्यबोध का हिस्सा रहा, बल्कि सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक और आत्मीय संदर्भों में भी प्रस्तुत किया। शमशेर की सूक्ष्मता, अज्ञेय की दर्शनिकता, केदारनाथ की स्मृतिपरकता

और मुक्तिबोध की बेचैनी आदि में प्रकृति विविध रूपों में दृष्टिगोचर होती है। इस युग की कविता में प्रकृति एक सजीव चरित्र के रूप में उपस्थित हुई है, जो कभी मनुष्य की विवशता को प्रकट करती है, तो कभी चेतावनी बनकर उसका मार्गदर्शन करती है। नई कविता का प्रकृति चित्रण आधुनिक जीवन की विडंबनाओं, पर्यावरणीय संकटों और आत्मचिंतन की यात्रा का साक्षी है। यह चित्रण हमें न केवल साहित्यिक रूप से समृद्ध करता है, बल्कि एक जागरूक और संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाने को भी प्रेरित करता है। □

#### संदर्भ सूची :

1. सिंह, विजय बहादुर (सं.); प्रतिनिधि कविताएं भवानी प्रसाद मिश्र; राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली; पाँचवाँ संस्करण : 2022; पृ. 22
2. वाजपेयी, अशोक (सं.); प्रतिनिधि कविताएं गजानन मा. मुक्तिबोध; राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली; इकतीसवाँ संस्करण : 2023; पृ. 128
3. पालीवाल, कृष्णदत्त (सं.); स. ही. वात्स्यायन 'अज्ञेय' पचास कविताएं; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली; प्रथम संस्करण आवृत्ति : 2019; पृ. 38
4. वही; पृ. 33
5. शुक्ल, प्रयाग (सं.); प्रतिनिधि कविताएं सर्वेश्वर दयाल सक्सेना; राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली; सत्रहवाँ संस्करण : 2023; पृ. 55
6. सिंह, नामवर (सं.); प्रतिनिधि कविताएं शमशेर बहादुर सिंह; राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली; ग्यारहवाँ संस्करण : 2022 ; पृ. 51
7. शर्मा, सुरेन्द्र (सं.); प्रतिनिधि कविताएं रघुवीर सहाय; राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली; दसवाँ संस्करण : 2023; पृ. 30
8. अज्ञेय (सं.); तीसरा सप्तक; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली; चतुर्थ संस्करण : 1964, पृ. 136
9. श्रीवास्तव, परमानन्द; त्रिपाठी, अनिल (सं.); प्रतिनिधि कविताएं केदारनाथ सिंह; राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली; चौदहवाँ संस्करण : 2023; पृ. 22-23
10. वही; पृ. 13-15
11. कुमार, दुष्यंत; साये में धूप; राधाकृष्ण पेपरबैक्स, दिल्ली; सत्तरवाँ संस्करण : अगस्त 2020; पृ. 13
12. शर्मा, सुरेन्द्र (सं.); प्रतिनिधि कविताएं रघुवीर सहाय; राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली; दसवाँ संस्करण : 2023; पृ. 32
13. श्रीवास्तव, परमानन्द; त्रिपाठी, अनिल (सं.); प्रतिनिधि कविताएं केदारनाथ सिंह; राजकमल पेपरबैक्स, नई दिल्ली; चौदहवाँ संस्करण : 2023; पृ. 50

## पुराणों में पर्यावरणीय चेतना : एक समीक्षात्मक अध्ययन

### शोध-सार :



डॉ. निलाक्षी मिलि मेदक

पर्यावरण 'शब्द' परि और 'आवरण' से मिलकर बना है। पर्यावरण शब्द का अर्थ है- हमारे चारों ओर का आवरण। पृथ्वी पर पाए जाने वाले भूमि, जल, वायु, पेड़, पौधे एवं जीव-जंतुओं के समूह, जो हमारे चारों ओर हैं, ये सभी मिलकर वातावरण का निर्माण करते हैं। अतः इसे पर्यावरण कहते हैं। पर्यावरण चेतना एक ऐसा विषय या मुद्दा है, जिसके न रहने से मानव जीवन का अस्तित्व स्वयं समाप्त या खत्म हो जाएगा। यदि कहा जाए कि पर्यावरण है तो ही मानव है या मानव है तो ही पर्यावरण है तो इसमें कोई अतिशयोक्त न होगी। अतः अपने जीवन को बचाए रखने के लिए मानव को पर्यावरण के प्रति जागरूक होना ही पड़ेगा। यह नितांत आवश्यक है, क्योंकि मानव का शरीर जिन्हें पाँच तत्वों से मिलकर बना है, वे पर्यावरण के प्रमुख घटक हैं। प्रस्तुत शोधपत्र में पुराणों में पर्यावरणीय चेतना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

### बीज शब्द :

पुराण, पर्यावरण, संरक्षण, चेतना, वृक्षारोपण।

### प्रस्तावना :

पुराण संस्कृत साहित्य का गौरव ग्रंथ हैं। संस्कृत वाङ्मय में वेद एवं उपनिषद् साहित्य के उपरांत पुराण साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक साहित्य ही पुराणों का आधार है। जो मनुष्य इतने विद्वान नहीं थे कि वेद के गूढ़ तत्वों को ग्रहण कर पाएँ, उन्हें भी अपने कर्तव्यों तथा परम तत्वों का ज्ञान करवाने के लिए ही महर्षि व्यास ने पुराणों की रचना की। उन्होंने वैदिक ज्ञान-विज्ञान के तत्वों को सर्व-जन-संवेद्य बनाने के लिए रोचक कथा रूप में प्रस्तुत किया। भागवत पुराण में इसे पञ्चम वेद माना गया है-

इतिहास पुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वर :।<sup>1</sup>

अथर्ववेद के अनुसार पुराण, ऋक, साम, छन्दस् तथा यजुस् सभी का आविर्भाव एक साथ हुआ है-

ऋच : सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।

बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार पुराण, ऋकवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद इतिहास, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान तथा व्याख्यान की भाँति ही महाभूत के रूप में अंकित हैं।

याज्ञवल्क्यस्मृति में पुराण चौदह विद्या स्थानों में परिगणित है-

-----  
सहायक अध्यापिका, संस्कृत विभाग  
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी-1

7099808909

✉ nilakshimili1981@gmail.com  
-----

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रा-मिश्रिता ।  
वेदा स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

देखा जाए तो पुराण के अंतर्गत प्राचीन कथानक, इतिहास, भूगोल, वंशावली, ज्ञान-विज्ञानादि अनेक तत्व समाहित हैं ।

शास्त्रों में पुराणों की बड़ी महिमा है । उन्हें साक्षात् श्रीहरि का रूप बताया गया है-

यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः ।  
सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे ॥  
तथैवान्त प्रकाशाय पुराणावयवो हरिः ।  
विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम् ॥ <sup>2</sup>

अर्थात् जिस प्रकार संपूर्ण जगत् को आलोकित करने के लिए भगवान् सूर्य रूप में प्रकट होकर हमारे बाहरी अंधकार दूर करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदय में व्याप्त अंधकार को दूर करने के लिए श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं ।

मत्स्य पुराण के अनुसार वेदों से भी पुराण अधिक महत्वपूर्ण हैं और उनकी रचना वेदों से पूर्व ब्रह्मा ने की-  
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा कृतम् ।  
अनंतरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता ॥ <sup>3</sup>

भागवत पुराण के अनुसार ब्रह्मा ने वेदों के अनंतर पुराणों की रचना की । उन्होंने जहाँ प्रत्येक वेद की रचना अपने एक-एक मुख से की, वहीं चारों मुखों से पञ्चम वेद रूप पुराण की रचना की-

ऋग्यजु सामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः ।  
शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥  
इतिहास पुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वर ।  
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्य ससृजे सर्वदर्श ॥ <sup>4</sup>

सामान्य रूप से सभी पुराणों का रचयिता व्यास को माना गया है । पुराणों ने अपना स्वरूप तीसरी शताब्दी ई.पू. में ही प्राप्त कर लिया था ।

पुराण का अर्थ : पुराण शब्द का अर्थ है-प्राचीन । निरुक्तकार यास्क पुराण की व्युत्पत्ति करते हुए कहते हैं-

पुरा नवं भवतीति पुराणम् <sup>5</sup>

अर्थात् जो प्राचीन सिद्धांत होकर भी नया होता है, वह पुराण है ।

पुराण का वास्तविक अर्थ प्राचीन है । पुराण के संबंध में प्राचीन मनीषियों का यह शंखनाद है कि कोई द्विज चारों वेदों तथा वेदांग-उपनिषदों का ज्ञाता भले ही हो, यदि वह पुराण से अनजान है तो उसे विचक्षण-चतुर एवं शास्त्र-कुशल नहीं माना जा सकता । वेद तो हमारे सनातन धर्म के सर्वप्रामाणिक एवं प्राचीन ग्रंथ हैं ही-इसमें कोई संदेह की बात नहीं, परंतु वेद का उपवृंहण करने वाला पुराण इसी कारण वेद का पूरक माना जाता है ।

पुराण शब्द की व्युत्पत्तियों में पुराणात् पुराणम्, प्रमुख व्युत्पत्ति है, जिसका अभिप्राय यही है कि वेदार्थ के पूरण करने के कारण ही पुराण नामकरण हुआ ।

**विश्लेषण :** भारतीय वाङ्मय में पुराणों के आविर्भाव ने विनष्ट होती हुई आर्य जाति को बचाया है । अतः यदि पुराण युग को भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं आचार-विचार का सुधारक युग कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी ।

यदि यह कहा जाए कि संपूर्ण सृष्टि वृक्षों पर आश्रित है तो अतिशयोक्ति न होगी । जहाँ वृक्षों की उपेक्षा हुई, वहाँ विनाश हुआ, जहाँ इन्हें महत्व दिया गया, वहाँ सतयुगी सुख की अविरल गंगा प्रवाहित होती रही । पुराणों के अनुसार वृक्षों की सेवा से संपूर्ण सृष्टि की सेवा करने का पुण्य कार्य संपन्न होता है । वृक्षों की सेवा में जल से सिंचन का स्थान सर्वोपरि है । पर्याप्त जल पाने से वृक्ष के जीवन की रक्षा होती है, ये तेजी से बढ़ते हैं, इन पर आश्रित प्राणियों को सुख मिलता है व पर्यावरण सुधरता है ।

मानवी चेतना पर शोध करने वाले ऋषियों, विद्वानों का मानना है कि तरुसेवा में व्यक्ति जो श्रम और पुरुषार्थ व्यय करता है, उससे उसका पाप क्षीण होता है । पुण्य बल बढ़ता है व इसके प्रभाववश सभी प्रकार के दुख-दुर्भाग्य दूर होते हैं व सुख-सौभाग्य का अभ्युदय होता है । यह अर्जन बिना श्रम के नहीं, बल्कि तपस्या के बदले होता है ।

आज चारों ओर वृक्षों का विनाश हो रहा है । इसी कारण हर प्रकार की विपत्तियाँ हम पर बरस रही हैं । भूमि का कटाव, उपजाऊ मिट्टी का क्षरण होकर उसका समुद्र में

बहकर चले जाना एवं क्रमशः कवच हटते चले जाने से पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है।

भारतीय ऋषियों ने धर्म ग्रंथों में वृक्षों को संतान से भी अधिक महत्व दिया है। अपना कल्याण करने के लिए वृक्ष को पुत्र रूप में ग्रहण करने का विधान निर्धारण करना ऋषियों की इसी सोच का अंग है। इस विषय में मत्स्य पुराण स्पष्ट कहता है-

दशकूप समोवापी दशवापीसमोहदः ।

दशहृदसमः पुत्रो दशपुत्रसमःद्रुमः ॥

(विधान पारिजात खण्ड 4. अ. 49)

अर्थात् एक सरोवर के निर्माण में जो पुण्य होता है, वह दस कुँओं के निर्माण के समान है और दस सरोवर के निर्माण में जो पुण्य होता है, वह एक हृद का निर्माण में प्राप्त होता है। दस विशाल सरोवरों को एक पुत्र के समान माना गया है और एक वृक्ष का रोपण दस पुत्रों के समान कहा गया है।

पुराणकार ने पर्यावरण संरक्षण तथा उससे होने वाले हानि-लाभ का विविध पुराणों में स्पष्ट विधान बताया है। उन्होंने तो प्रसन्न होकर वृक्षों को तरु की संज्ञा तक दे डाली अर्थात् तारने-वाला। पुराण के अनुसार सामान्य रूप में तः को वृक्षों के पर्यायवाची के रूप में मानते हैं, किंतु तः का शाब्दिक अर्थ है तारने वाला। वृक्ष अपने रोपणकर्ता को नरक से तारते हैं, रक्षा करते हैं, इसलिए उन्हें तः कहा जाता है। तः शब्द की व्याख्या वाचस्पत्यम् में इस प्रकार है-

तारन्त्यनेन नरकमारोपकाः इति तरुः (पुं)

तृ उन् (रोपणकर्ता को नरक से तारते हैं)

अमरकोश की रामाश्रमी टीका में तः की व्याख्या इस प्रकार है -तरुः तरति। तरन्त्येन इति वर तृ प्लवन संतरणयोः।

शब्दकल्पद्रुम में तः की व्याख्या इस प्रकार है-

तरुः -तरति समुद्वादिकमनेनेति।

पुराणों में पर्यावरण को बचाने के लिए इसे पुण्य से जोड़ा गया है। पुराणों में वृक्षों के रोपण से कई पुण्य बताए गए हैं, जिससे मानव पुण्यों के कारण भी वृक्षों का रोपण कर सके। शिवपुराण में कहा गया है कि जो बागीचा लगाते हैं, छायादार वृक्ष का रोपण करते हैं, वह

बिना कष्ट उठाए यमलोक प्रस्थान करते हैं। जो मनुष्य बहुत ज्यादा मात्रा में फूल लगाते हैं, वह बिना कष्ट उठाए यमलोक प्रस्थान करते हैं। जो मनुष्य बहुत ज्यादा मात्रा में फूल लगाते हैं, वह पुष्पक विमान के द्वारा यमलोक को प्रस्थान करते हैं। जल को समस्त जीव समुदाय को तृप्त करने वाला बताया गया है, क्योंकि वृक्षों का और मानवीय सभ्यता का आधार पर्यावरण तो है ही, लेकिन पर्यावरण का मुख्य आधार भी जल है। बिना जल के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, या यून कहा जाए तो ज्यादा उचित रहेगा कि पंच महाभूत तत्व जीवन का मुख्य आधार हैं, क्योंकि उनके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती-

पानीयदानं परमं दानामुत्तमं तदा ।

सर्वेषां जीवपुंजानां तर्पणं जीवनं स्मश्रतम् ॥<sup>6</sup>

श्रीमद्भागवत महापराण दशमस्कंध के बीसवें अध्याय के 32.33.34 वें श्लोक में भगवानम श्रीकृष्ण ने ग्वाल वालों को संबोधित करते हुए कहा है-

पश्येतान् सहाभागान् परार्थेकान्तजीवितान् ।

वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्तिन ॥

अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ।

सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिन ॥

पत्र पुष्पफलच्छायामूल वल्कलदारुभिः ।

गन्धनिर्याससभस्मास्थितोवमै कामान् वितन्वते ॥

अर्थात् मेरे प्यारे मित्रो-ये वृक्ष कितने भाग्यवान हैं। इनका सारा जीवन केवल दूसरों की भलाई करने के लिए ही है। ये स्वयं तो हवा के झोंके, वर्षा, धूप और पाला सब कुछ सहते हैं, परंतु हम लोगों की उनसे रक्षा करते हैं। मैं कहता हूँ कि इन्हीं का जीवन सबसे श्रेष्ठ है, क्योंकि इसके द्वारा सब प्राणियों को सहारा मिलता है। उनका जीवन निर्वाह होता है, जैसे किसी सज्जन पुरुष के घर से कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता है, वैसे ही इन वृक्षों से भी सभी को कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है। ये अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गंध, गोंद, राख, कोयला अंकुर और कोपलों से भी लोगों की कामना पूर्ण करते हैं।

सभी मनुष्यों को बावड़ी (तालाब) बनाना चाहिए।

जब कुएँ से पानी आता है, तब वह पापी पुरुष के पापकर्म का आधा भाग समाप्त कर देता है। जिसके खुदवाए हुए तालाब से गाय, ब्राह्मण, साधु संत, ऋषि जल ग्रहण करते हैं, वह अपने सारे वंश का उद्धार कर देता है। महात्माओं, ऋषियों व मुनियों का कथन है- जो दुर्गम स्थानों पर वृक्ष लगाते हैं, वह अपना भूत और आने वाली संपूर्ण पीढ़ियों का उद्धार करते हैं, जिसके लिए वृक्षों को लगाना अति आवश्यक है और इससे पर्यावरण की संरक्षा और सुरक्षा होती रहेगी-

अतीतानागतान् सर्वान् पितृवंशास्तु तारयेत् ।

कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षास्तु रोपयेत् ॥

अर्थात् जो मनुष्य वृक्ष या पेड़-पौधे लगाते हैं, उन्हें पुत्र की प्राप्ति होती है। वृक्ष लगाने वाले पुरुष लोक से जाने के पश्चात परलोक में अच्छे लोकों को प्राप्त करते

हैं। तालाब को खुदवाने वाला, वृक्ष को लगाने वाला और यज्ञ करवाने वाला पुरुष कभी भी स्वर्ग से नीचे का स्थान प्राप्त नहीं करता है।

#### उपसंहार :

निष्कर्षतः विष्णु पुराण, अग्नि पुराण, मत्स्य पुराण, वराह पुराण, वामन पुराण और अन्य पुराणों में भी धर्म पर आधारित पर्यावरण संरक्षण से संबंधित निर्देश दिए गए हैं और समाज प्राचीन काल से ही उसे स्वीकार करता आ रहा है। पर्यावरण की शुद्धि के लिए पुराण वृक्ष उगाना, अग्निहोत्र करना, अग्नि, सूर्य एवं औषधियों का उपयोग करना आदि उपाय सुझाते हैं। आज पर्यावरण संरक्षण के प्रति समस्त मानव समुदाय को सचेत और जागरूक बनाए जाने और वेद-पुराणों में उल्लिखित विचारों से प्रेरणा प्राप्त करने की आवश्यकता है। □

#### संदर्भ सूची :

1. भागवत पुराण 3-12-39
2. पद्म पुराण स्वर्ग. 62-60
3. ( मत्स्य पुराण 23-3)
4. भागवत पुराण 3-12-37,39
5. निरुक्त 3,19-24
6. शिव पुराण, स,स12/1

#### संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सिंह, आशुतोष. (2021). पर्यावरण संरक्षण का वैदिक व पौराणिक चिंतन. लेख-नवभारतटाइम्स. 22 जनवरी
2. शिव महापुराण. (1962). गीता प्रेस. गोरखपुर
3. गोंयंदका, जयदयाल. (1994). पद्मपुराण. गीता प्रेस. गोरखपुर
4. शर्मा, प. श्रीराम. मत्स्य महापुराण. संस्कृति संस्थान. बरेली
5. शास्त्री, पं. माधवाचार्य. पुराण दिग्दर्शन. मानव पुस्तकालय कमला नगर, दिल्ली
6. त्रिपाठी, डॉ. अनंतमणि, पुराणों में पर्यावरण, manavbhartilive.com
7. राठौर नंजला, पुराण साहित्य में पर्यावरण-संरक्षण
8. मिश्र डॉ. संतोष कुमार, संस्कृत साहित्य में पर्यावरण का महत्त्व

## अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान और द्वितीय भाषा शिक्षण

### शोध-सार :



डॉ. नवनाथ गाडेकर

मानव समाजप्रिय प्राणी है, इसी कारण वह समूह से रहना पसंद करता है। आपसी व्यवहार के लिए वह किसी न किसी भाषा का प्रयोग करता है। वाकप्रतिकों या अंग-प्रत्यंगों द्वारा वह भाषा का काम चलाता है। भाषा विज्ञान में मनुष्य के वाकप्रतिकों के द्वारा उत्पन्न भाषा का अध्ययन किया जाता है, अंग प्रत्यंगों की भाषा का अध्ययन नहीं। भाषा विज्ञान का अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान उप विषय क्षेत्र है। इसमें भाषा विज्ञान के सिद्धांतों का व्यावहारिक रूप से अध्ययन करके समस्याओं का समाधान किया जाता है। कहने का तात्पर्य कि भाषा विज्ञान के सिद्धांतों को समझना और समझाने में अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसमें भाषा आधारित प्रश्नों का अध्ययन और समाधान किया जाता है। अतः यह एक भाषा विज्ञान का उप विषय क्षेत्र है, जो विभिन्न प्रकार के शोध विश्लेषण, समस्या का समाधान और उपयुक्त जानकारी देने का महत्वपूर्ण काम करता है।

द्वितीय भाषा शिक्षण में यह देखने में आया है कि इसे छात्रों को बार-बार कोशिश करके सीखना पड़ता है। मातृभाषा सीखते समय बच्चों को किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना करना नहीं पड़ता। वे उसे सहजता से घर-परिवार और समाज में रहते हुए अनुकरण के द्वारा सीखते हैं। द्वितीय भाषा शिक्षण मातृभाषा की तुलना में कठिन माना जाता है। इसका कारण यह है कि मातृभाषा और द्वितीय भाषा में व्याघात निर्माण हो जाता है। इस समय अध्यापक को अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की सहायता से बच्चों को द्वितीय भाषा को सीखानी पड़ती है। संविधान की अष्टम् अनुसूची में समाविष्ट सभी भारतीय भाषाओं की प्रकृति भिन्न है। व्याकरणिक संरचना भी भिन्न है। परंतु प्रयास के द्वारा मातृभाषा के साथ-साथ किसी भी भारतीय भाषा को सीखा जा सकता है। इतना ही नहीं त्रिभाषा सूत्र के कारण बच्चों को इच्छा न होते हुए भी अंग्रेजी भाषा सीखनी पड़ती है, ठीक उसी प्रकार वह किसी भी विदेशी भाषा को भी द्वितीय भाषा के रूप में सीख सकता है। इसमें अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की अहम् भूमिका होती है। वह दुनिया की किसी भी भाषा की समस्याओं का अध्ययन और समाधान करता है।

### बीज शब्द :

भाषा विज्ञान, अनुप्रयुक्त, मानव, वाकप्रतीक, द्वितीय भाषा, मातृभाषा, विदेशी भाषा, समस्या, समाधान, व्यावहारिक, अध्ययन, जानकारी, सिद्धांत, शिक्षक, सामग्री, कौशल, सीखना, औपचारिक, अनौपचारिक, शिक्षा आदि।

-----  
सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग,  
भारत महाविद्यालय, जेऊर (म.रेल)  
तहसील-करमाला, जिला-सोलापुर  
महाराष्ट्र-413202  
☎ 9960949298  
✉ nawnathgadekar@gmail.com  
-----

## मूल आलेख :

मनुष्य समाजप्रिय प्राणी है, अतः वह समूह से रहना पसंद करता है। समाज में रहने के कारण उसे एक दूसरे के साथ संपर्क स्थापित करना पड़ता है। मनुष्य समाज में जीवन जीते समय आपसी व्यवहार के लिए एक दूसरे से अपने भावों और विचारों के आदान-प्रदान के लिए अनेक साधनों का प्रयोग करता है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि वह कोई संकेत जिसके माध्यम से एक व्यक्ति अपना मंतव्य दूसरे व्यक्ति तक स्पष्ट कह सके वह भाषा है। कहने का तात्पर्य कि अंग-प्रत्यंगो- आँख, कान, मुँह के अतिरिक्त चेहरे के भाव, हाथ हिलाना, झंझिया फहराना आदि इशारे भी सम्मिलित हैं। अर्थात् भावाभिव्यक्ति के समस्त साधनों को सामान्यतः भाषा कहा जाता है। ऐसा भी कह सकते हैं कि व्यक्ति अपने विचार, भाव दूसरे व्यक्ति तक जिस पद्धति या माध्यम से पहुँचाता है उसे ही भाषा कहा जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भाषा को दो अर्थों में लिया जाता है - (1) संकुचित तथा (2) विस्तृत अर्थ के रूप में। भाषा के विस्तृत अर्थ में सभी संकेत आते हैं, जिनके माध्यम से हम अपने मंतव्य को स्पष्ट करते हैं। परंतु वे सभी संकेत अर्थात् इंगित पूर्ण भाषा नहीं है। इंगित से अर्थबोध होता है और इंगितों को अर्थबोध का साधन भी माना जाता है परंतु वह गौण है। इसका कारण यह है कि इस साधन का प्रयोग व्यक्ति केवल प्रसंग के अनुकूल ही करता है। व्यक्ति जहाँ बोलने के अवसर से बचना चाहता है या उसे बोलने का अवसर प्राप्त नहीं होता वहाँ वह संकेतों या इंगितों का प्रयोग करके काम चलता है। भाषा की परिभाषा देते हुए देवी शंकर द्विवेदी ने लिखा है, भाषा यादृच्छिक वाक्प्रतिकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से मानव समुदाय परस्पर व्यवहार करता है।<sup>1</sup> इस परिभाषा के द्वारा वे यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि वाक्प्रतीक का तात्पर्य है कि उसका उच्चारण मुँह से हुआ हो और उसका कुछ अर्थ हो। यदि अर्थ नहीं तो प्रतीकात्मकता नहीं मानी जाएगी। यदि हम दीवार पर चिड़ियाँ लिखें या किसी को अंगुली से इशारा करके बुलाएँ तो यह भी एक प्रतीक है। लेकिन वह वाक्प्रतीक नहीं है। वाक्प्रतीक वही होते हैं जिनमें 'वाक' या 'वाणी' कार्य करें। भाषा की परिभाषा देते हुए

भाषा विज्ञान के प्रसिद्ध ज्ञाता डॉ. भोलानाथ तिवारी ने लिखा है, भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं।<sup>2</sup> वे इस परिभाषा के द्वारा कहते हैं कि जिनके द्वारा विचारों को व्यक्त करते हैं वह भाषा है। इसमें पशु-पक्षियों की भाषा, गूँगे मनुष्य की भाषा नहीं आती केवल मनुष्य के द्वारा बोली जानेवाली को भाषा कहा जाता है।

भाषा विज्ञान भाषा शिक्षण की किसी नवीन तकनीक को प्रस्तुत नहीं करता। जो कुछ वह प्रस्तुत करता है, वह भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन हमें समझाने में सहायता करता है कि भाषा कैसे कार्य करती है और मानव मस्तिष्क उसे कैसे समझता है। अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का लक्ष्य भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं प्रणाली का प्रयोग ही है। मूलतः इसकी प्रकृति प्रकार्यात्मक होती है। आज भी भाषा विज्ञान का युग अपेक्षाकृत नया है। भारत में भाषा विज्ञान के क्षेत्र में भाषा शिक्षण युग का नवोदयात्मक सर्वोदय हो रहा है। हर्ष की बात है कि भारत के भारतीय भाषा संस्थान तथा कई विश्वविद्यालयों में भाषा विज्ञान और भाषा शिक्षण पर आधुनिक ढंग से अनुसंधानात्मक प्रयोग होने लगे हैं। अनेक भाषा विद्वान भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान के अधुनातन सिद्धांतों को व्यवहार में लाने का प्रयत्न कर रहे हैं और वे प्रयोग सफल भी हो रहे हैं। आज भाषा विज्ञान का अनुप्रयुक्त पक्ष भाषा शिक्षण का शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी कार्यों को वैज्ञानिक रूप से संचालित करने की दिशा में गतिशील हुआ है। भाषा शिक्षण के संदर्भ में शिवेंद्र किशोर वर्मा कहते हैं, भाषा का शिक्षण सीखनेवालों को अपनी अंतर्निहित भाषा को व्यक्ति योग्य करने की दिशा में और पर्याप्त संख्या में संदर्भ एवं भाषा से प्रतिबंधित विकल्पों को चुनने की तथा उन्हें वाक्य साँचों में संघटित करने की दिशा में सहायता करनेवाली जटिल प्रक्रिया है।<sup>3</sup> भाषा विज्ञान भाषा के संबंध में विशेष रूप से ज्ञान देने वाला विषय है। किसी भाषा विशेष से नहीं बल्कि समग्र भाषण पर विचार करता है। शास्त्रीय और व्यावहारिक भाषा रूपों पर यह विचार करता है। इसके मूल में भाषा ही है, भाषा ब्रह्मांड की विपुल एवं सूक्ष्म संपदा है, जिसका विकास जीव के विकास के साथ-साथ हुआ है। यह न दैवी संपदा है न

व्यक्ति विशेष की बल्कि यह सामाजिक एवं अर्जित संपदा है। इसका साध्य है - भाषा बोध को कथन से श्रवण या प्रस्तोता से गृहीता तक ले जाना। भाषा का माध्यम हैं - ध्वनि, संकेत और लिपि। इनके माध्यम से वह चलती और व्यवस्थित होती है। इसी भाषा का विशेष या सर्वांगीण रूप से भाषा विज्ञान में अध्ययन किया जाता है। भाषा विज्ञान भौतिकी, रसायन और चिकित्सा विज्ञान जैसा न विज्ञान है, और न चित्रकला, संगीतकला, ललित कला और वास्तुकला के समान कला है। परंतु यह कला से अधिक विज्ञान है। इधर विज्ञान शब्द का उपयोग बढ़ता जा रहा है। आज विश्व में भाषा विज्ञान विषय स्वतंत्र रूप से प्रतिष्ठित हो चुका है।

अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान भाषा विज्ञान का एक उप विषय क्षेत्र है जो अन्य अनेक विषयों के ज्ञान, शोध विधियों और प्रथाओं का उपयोग करके भाषा से संबंधित समस्याओं का अध्ययन और समाधान करने का प्रयास करता है। अर्थात् अनुप्रयुक्त भाषाविज्ञान व्यावहारिक उपयोग पर आधारित है। भाषा किसी न किसी रूप में मानव अस्तित्व के लगभग प्रत्येक पहलू का हिस्सा है। अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का प्रारंभिक विकास विशेष रूप से अमेरिका में द्वितीय विश्व युद्ध के समय लियोनार्ड ब्लूमफील्ड और चार्ल्स सी. फ्राइज के द्वितीय भाषा सीखने और अभ्यास के अनुप्रयोग पर काम के साथ शुरू हुआ। भाषा शिक्षण का अर्थ है - शिक्षा देना अर्थात् ज्ञान प्रदान करना। वह ज्ञान किसी भी प्रकार का हो सकता है। जैसे सैद्धांतिक या व्यवहारिक ज्ञान। भाषा शिक्षण के संदर्भ में केवल सैद्धांतिक ज्ञान प्रदान करना पर्याप्त नहीं माना जाता। श्रव्य ज्ञान से संबंधित विषयों से भिन्न माध्यम से बच्चों के भाषाई व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। औपचारिक शिक्षा के माध्यम से बच्चा अध्यापक के संपर्क में आता है। भाषा शिक्षण की पद्धति के संदर्भ में डॉ. मुकेश अग्रवाल ने कहा है, *शिक्षा का अर्थ है किसी प्रकार का ज्ञान या विद्या प्राप्त करने के लिए सीखने-सिखाने का क्रम।*<sup>4</sup> शिक्षण के लिए अध्यापक जिस सामग्री का उपयोग करता है, उसके संबंध में माना जाता है कि वह ज्ञानवर्धक के साथ ही बच्चे की रूचि के अनुकूल एवं रोचक हो। परिणामस्वरूप छोटे बच्चों को

प्राथमिक शिक्षण देते समय प्रायः पहले चित्र दिखाकर उसे वर्णों का ज्ञान दिया जाता है। वर्णों के ज्ञान से परिचित होने के बाद अगली कड़ी के रूप में उसे शब्दों का ज्ञान दिया जाता है। बच्चे की ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता के अनुसार शिक्षक शिक्षण सामग्री को प्रयुक्त करता है। शिक्षक का उद्देश्य केवल बच्चे को शिक्षित बनाना है।

द्वितीय भाषा शिक्षण मातृभाषा शिक्षण के कुछ अर्थों में भिन्न होता है। मातृभाषा में बच्चे अपने घर-परिवार में रहते हुए अनुकरण और भाषाई कौशल - श्रवण, भाषण, पढ़ना और लिखना के माध्यम के द्वारा सहजता से सीखते हैं। इसी कारण उनका इस भाषा में अध्ययन करते समय कौशलों का आधार लेकर शिक्षण पूरा किया जा सकता है। परंतु यह देखने में आया है कि द्वितीय भाषा शिक्षण में अध्येता अपनी आवश्यकतानुरूप दो, तीन अथवा चार कौशलों में रूचि रखता है। कहने का तात्पर्य कि शिक्षण सामग्री और इसका स्तर भी उसी के अनुरूप परिवर्तित हो जाता है। द्वितीय भाषा शिक्षण में अध्येता की उम्र और भाषण अनुभव भी मातृभाषा भाषी से भिन्न होता है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि बच्चे मातृभाषा अनौपचारिक वातावरण में सीख कर आते हैं। विशेषतः श्रवण और भाषण अर्थात् सुना और बोलना इन दो कौशलों पर विद्यार्थी का अधिकार होता है। अध्यापक का यह कर्तव्य बनता है कि उसमें जो गलतियाँ हैं उसकी ओर बच्चे का ध्यान केंद्रित करके उसको शिक्षित बनाना। मातृभाषा और द्वितीय भाषा शिक्षण के संदर्भ में डॉ. अंबादास देशमुख कहते हैं, *मातृभाषा वह भाषा है जिस वातावरण में बच्चा जन्म लेता है, पलता है, घर, बाहर, स्कूलों आदि में भी जिस प्रकार का वातावरण रहता है और इसके प्रयोग और उपयोग के लिए वहाँ सहज रूप से उपयुक्त स्थितियाँ प्राप्त होती हैं। अर्थात् हम अपने जीवन में हर समय, हर जगह बचपन से जिस भाषा को सीखना प्रारंभ करते हैं। यह भी आवश्यक नहीं कि उसका सामाजिक परिवेश लक्ष्य भाषा का ही हो। अध्यापक जब शिक्षण प्रारंभ करता है तो ध्वनि, शब्द, वाक्य रचना, अर्थ और संस्कृति के प्रत्येक स्तर पर मातृभाषा व्याघात उत्पन्न करती है।*<sup>5</sup> जब मातृभाषा और द्वितीय भाषा शिक्षण में व्याघात निर्माण हो जाता है तब अध्यापक को बड़ी कुशलता से विद्यार्थी को शिक्षण

देना पड़ता है। सभी भारतीय भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा को कहा जाता है। संविधान की अष्टम् अनुसूची में समाविष्ट सभी भारतीय भाषाओं की प्रकृति भिन्न है। स्वतंत्र शब्दावली है और व्याकरण के नियम भी अलग-अलग हैं। हिंदी में दो लिंग हैं तो मराठी और अंग्रेजी में तीन लिंग प्रयुक्त होते हैं। हिंदी के तू, तुम, आप सर्वनाम रूपों के लिए अंग्रेजी में 'you' एक ही शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिंदी के दो स्वनिमों 'ट' तथा 'त' के लिए अंग्रेजी में एक ही स्वनिम 'T' का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार हिंदी में चाय, दूध, सिगरेट को पिया जाता है तो असमिया भाषी इन्हें खाते हैं। इस प्रकार से प्रत्येक भाषा की व्याकरणिक संरचना कहीं समान तो कहीं भिन्न है। ऐसे समय में अध्यापक को अपने अध्यापन कौशल को प्रयुक्त करके द्वितीय भाषा शिक्षण देना पड़ता है। साथ ही द्वितीय भाषा शिक्षण में निर्माण हुए व्याघात को भी दूर करना पड़ता है। द्वितीय भाषा का ज्ञान देकर विद्यार्थी को सक्षम बनाना पड़ता है।

द्वितीय भाषा शिक्षण मातृभाषा की तुलना में कठिन माना जाता है। इसका कारण यह कि मातृभाषा को सहज रूप में सीखा जाता है और द्वितीय भाषा को सप्रयोजन बार-बार प्रयास करके सीखना पड़ता है। बिना प्रयास के द्वितीय भाषा को सिखाना और ज्ञान प्राप्त करना बड़ा मुश्किल का काम माना जाता है। द्वितीय भाषा शिक्षण में प्रयोजनों की चर्चा दो प्रकार से की जाती है एक शिक्षण संस्थान किस स्तर पर विद्यार्थी में किस कुशलता को विकसित करना चाहता है इस दृष्टि से अलग-अलग शिक्षण संस्थान अपनी-अपनी पद्धति से चिंतन मनन करके अपने लक्ष्य को पूरा करते हैं। दूसरा प्रकार यह है कि विद्यार्थियों में श्रवण, भाषण, वाचन और लेखन कौशल की योग्यता का विकास करना ही द्वितीय भाषा शिक्षण का उद्देश्य है। प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तरों पर कौनसे कौशल को विकसित किया जाए इसका निर्धारण करना आवश्यक है। भाषा शिक्षण के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कृष्ण गोपाल रस्तोगी लिखते हैं, *शिक्षा के क्षेत्र में उद्देश्य कोई नवीन तथा अपरिचित संकल्पना नहीं है। अनेक शिक्षा आयोग द्वारा शिक्षा के उद्देश्य उनके प्रतिवेदनों में प्रस्तावित किए गए हैं तथा शिक्षाशास्त्रियों*

*द्वारा पाठ्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न विषयों के शैक्षणिक उद्देश्यों को स्थान दिया गया है।<sup>6</sup> इस प्रकार मातृभाषा के साथ-साथ द्वितीय भाषा को सीखने के लिए पाठ्यक्रम में शैक्षणिक उद्देश्यों को स्थान दिया जाता है।*

द्वितीय भाषा शिक्षण के उद्देश्यों को विद्यार्थी की दृष्टि से देखना महत्वपूर्ण माना जाता है। द्वितीय भाषा शिक्षण विद्यार्थी को केंद्र में न रखकर उसकी रुचि आदि की विशेष परवाह न कर उसे द्वितीय भाषा सिखाई जाती है। जैसे भारत में त्रिभाषा सूत्र के अंतर्गत विद्यार्थी को अंग्रेजी और मातृभाषा के अतिरिक्त एक अन्य भाषा भी सीखने पड़ती है। इस स्थिति में शिक्षण संस्थान अथवा सरकार ही अन्य भाषा शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण करती है जैसे राष्ट्रीय एकता को बढ़ाना, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, भावात्मक एकता बढ़ाना आदि परंतु कई बार विद्यार्थी शिक्षा से ही द्वितीय भाषा सीखने की और प्रेरित होते हुए दिखाई देते हैं। द्वितीय भाषा शिक्षण की पद्धति में लिपि चिन्ह की पहचान में उनकी बनावट को पहचानना, लिपि चिन्ह और ध्वनि के संबंध तथा इनसे बननेवाले शब्दों, पदों और वाक्यों को पहचानने की योग्यता शामिल है। परंतु यह प्रक्रिया अर्थ ग्रहण के बिना अधूरी है। अर्थ ग्रहण में शब्दों, वाक्यों, वाक्यांशों आदि को उनके संदर्भ में समझना आवश्यक है। इसमें शब्द भंडार के विकास पर ध्यान देना भी अपेक्षित है। महेशचंद्र गुप्ता और प्रीतम प्रसाद शर्मा ने हिंदी शिक्षण इस पुस्तक में ल्यूमिनस के कथन को प्रतिपादित करते हुए कहा है, *वाचन एक साधन है जिसके माध्यम से बालक संपूर्ण मानव के द्वारा संचित ज्ञान राशि से परिचित होता है।<sup>7</sup> इससे स्पष्ट होता है कि वाचन का महत्व असंदिग्ध है। वाचन साक्षरता का पर्याय है। इसके बिना समाज के किसी भी क्षेत्र में व्यक्ति का कार्य नहीं चल सकता। परंतु द्वितीय भाषा शिक्षण की दृष्टि से इसका शैक्षिक महत्व अधिक है।*

#### **निष्कर्ष :**

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भारतीय भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान के उप विषय क्षेत्र अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण संबंध रहा है। अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान लक्ष्य है कि भाषा विज्ञान के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप से समझने में अध्येताओं की सहायता

करना। सामान्य भाषा विज्ञान तो भाषा शिक्षण की प्रक्रिया में बहुत ही उपयोगी है। भाषा विज्ञान की सहायता से अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान ने द्वितीय भाषा के साथ-साथ विदेशी भाषाओं पर भी बहुत ही कम समय में अत्यधिक निपुणता प्राप्त की है। यूरोप एवं अमेरिका के बहुत से क्षेत्रों में और जापान जैसे एशिया के छोटे से देश में भी भाषा सीखने के लिए प्रयोग भाषा विज्ञान का अत्यधिक किया जा रहा है। बहुत ही मुश्किल है कि अत्यधिक कोशिश करने पर द्वितीय भाषा में संस्था से योग्यता नहीं आ सकती। यहाँ पर यह कहने में संकोच नहीं लगता

कि लगातार प्रयास करने से निपुणता प्राप्त होती है। ईसाई पादरियों ने विश्व की कठिन से कठिन भाषा पर अधिकार प्राप्त करके सिद्ध कर दिया है कि यदि मन की इच्छा एवं सही दिशा में प्रयास हो तो निश्चित समय के अंदर दुनिया की कोई भी भाषा सहजता से सीखी पढ़ी और लिखी जाती है। कहने का तात्पर्य कि प्रयास के कारण द्वितीय भाषा के रूप में विश्व की किसी भी भाषा में लिखना पढ़ना संभव है। इसका कारण यह है कि अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान का लक्ष्य भाषा वैज्ञानिक सिद्धांतों एवं प्रणाली का अनुप्रयोग ही है। □

#### संदर्भ ग्रंथ सूची

1. देवीशंकर द्विवेदी, भाषा और भाषिकी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993, पृ.27
2. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद, सत्तावनवां संस्करण, 2013, पृ.2
3. शिवेंद्र किशोर वर्मा, भाषा विज्ञान की अधुनातन प्रवृत्तियाँ और हिंदी भाषा शिक्षण, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1990, पृ.2
4. डॉ. मुकेश अग्रवाल, हिंदी भाषा शिक्षण, के. एल. पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण, 2003, पृ.1
5. डॉ. अंबादास देशमुख, भाषिकी, हिंदी भाषा तथा भाषा शिक्षण, अतुल प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 1999, पृ. 229-230
6. कृष्ण गोपाल रस्तोगी, भाषा सम्प्राप्ति मूल्यांकन, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, द्वितीय संस्करण, 1987, पृ.21
7. महेशचंद्र गुप्ता और प्रीतम प्रसाद शर्मा, हिंदी शिक्षण, साहित्यगार प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2009, पृ. 114

## कारक : हिंदी और असमीया व्याकरण के परिप्रेक्ष्य में



एन. ओकेन्द्रो सिंह

### सारांश :

प्रत्येक भाषा में किसी न किसी रूप में कारक व्यवस्था का स्वरूप देखा जाता है। इससे अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है। कारक रहित वाक्य की कल्पना नहीं की जा सकती। कारक, वाक्य संरचना की महत्वपूर्ण व्याकरणिक कोटि है। इस तथ्य को विद्वान आरंभ से ही मानते आए हैं। किंतु कारक के सांगोपांग परिचय के संबंध में पूरे संसार के व्याकरण शास्त्रियों में कहीं न कहीं मतभेद दिखता है। इस मतभेद में कारक की संख्या से लेकर कारकों की विभक्ति, उनके नाम आदि आते हैं। इसके अतिरिक्त कारक कोटि के संबंध में भी विद्वान अलग-अलग तरह के विचार रखते। संस्कृत भाषा के लिए पातंजलि, पाणिनि की परिभाषाओं में कारक तत्व का क्रिया से संबंध दिखता है, किंतु उनकी दूसरी परिभाषा में कारक तत्व अधिक स्पष्ट नजर आता है। पश्चिम के व्याकरणाचार्य येस्पर्सन, जॉन लिओन्स ने कारक का संबंध क्रिया से स्वीकार किया है। परंतु आधुनिक काल में पाश्चात्य विद्वानों ने कारक और क्रिया संबंध को स्वीकार किया है और इसे अधिक स्पष्ट भी किया है। इस संदर्भ में सी.हॉकेट, जाफन आयओन्स, फिलमोर ने व्याकरण में कारक संबंधों को भाषा की संरचना का आधार माना गया है।

असमीया व्याकरणविद उपेंद्रनाथ गोस्वामी, हेमचंद्र बरूवा, सत्यनाथ बरा, कालीराम मेधि ने ने कारक को क्रिया के साथ जोड़ा है। दूसरी ओर, हिंदी भाषा के लिए भी प्रसिद्ध व्याकरणाचार्य बाबूराम सक्सेना, अम्बिका प्रसाद वाजपेयी और किशोरीदास बाजपेयी की परिभाषाओं में भी कारक का क्रिया के संपादन में उपयोग की बातों का उल्लेख किया है।

फादर एथरिंगटन, कामता प्रसाद गुरु, आयेन्द्र शर्मा ने थोड़े मतभेद के साथ कारकों पर अलग से प्रकाश डाला है।

विश्व की तमाम भाषाओं में कारक विद्यमान है, किंतु कारकों की संख्या एक समान नहीं हैं। भाषाओं की अभिव्यक्ति की दृष्टि से वे आपस में समान नहीं होतीं। अनेक भाषाओं में अनेक संख्या में कारक पाए जाते हैं। कुछ भाषाओं में कारक की संख्या दो हैं तो कुछ में तीस भी हैं। पूर्वी मसाई भाषा में दो ही कारक हैं (पूर्वी अफ्रिकी भाषा)। इसी तरह हिंदी और असमीया में छह कारक हैं, जबकि संस्कृत, ग्रीक, लेटिन आदि भाषाओं में कारक की संख्या आठ मानी गई है। परंतु अधिकांश विद्वानों ने छ-कारक को ही मान्यता दी है। फिनीशी भाषा में कारक की संख्या पंद्रह है तथा हंगेरियन भाषा में यह संख्या चरम तक पहुँच जाती है। दूसरे, भाषाविद् मेक्समूलर के अनुसार आदि आर्य भाषा में केवल एक ही अधिकरण कारक था- और वर्तमान समय में भी कुछ भाषाओं में एक ही कारक है! मैथिली भाषा में एक ही केवल करण कारक है। मसाई भाषा के कारक दो हैं। हिंदी और असमीया में

-----  
पीएच.डी. शोधकर्ता, हिंदी विभाग  
मणिपुर विश्वविद्यालय, मणिपुर  
☎ 9854113243  
✉ luwangoken@gmail.com  
-----

छह कारक हैं जो क्रिया सम्पादन से संबंध रखते हैं। संस्कृत, ग्रीक, लेटिन आदि भाषाओं में कारक की संख्या आठ मानी गई, किंतु इनमें भी अधिकांश विद्वानों ने छह कारक को ही मान्यता प्रदान की है। अफ्रीका की अनेक भाषाओं में कारक अभिव्यक्ति सुर (Tone) से होती है। मेसाइ भाषा इनमें उल्लेखनीय है। चीनी भाषा में 36 स्थान परिवर्तन से कारक की सूचना मिलती है।

अधिकतर प्रत्यय प्रधान भाषाओं में कारक अभिव्यक्ति विभिन्न प्रत्ययों से होती है। किंतु कुछ भाषाओं में ये विभक्ति के रूप में मान्य हैं तथा कुछ में इन्हें प्रत्यय माना जाता है। दूसरे, किसी भाषा में ये पूर्वसर्ग हैं और किसी में परसर्ग। कुछ भाषाओं में कर्ता का कारक चिह्न नहीं होता, जैसे- अंग्रेजी और बांग्ला भाषा में। कुछ भाषाओं में कर्ता कारक का चिह्न न केवल कुछ संदर्भों में ही प्रयुक्त होता है - जैसे हिंदी में कर्ता चिह्न ने केवल भूतकाल (सकर्मक) में ही प्रयुक्त होता है। दूसरे, कुछ भाषाओं में एक ही कारक चिह्न अन्य कारकों को भी व्यक्त करते हैं। अतः संख्या और अभिव्यक्ति की दृष्टि से भाषाओं में कारकों का अंतर होता है।

#### कारकीय पृष्ठभूमि :

भारतीय परिवेश में लगभग सभी विद्वान कारक का क्रिया से संबंध स्थापित करते हैं। यूरोप में भी हॉकेट, जॉन आयन और फिल्मोर जैसे विद्वान सीधे-सीधे कारक का क्रिया से अनिवार्य और अंतरंग संबंध मानते हैं। भारत में प्रसिद्ध व्याकरणविद पातंजलि भी दो तरह से क्रिया जनकत्वं हि कारकम् और क्रियान्वयित्वं कारकत्वम् कहते हैं। अर्थात् क्रिया को जो करता है या क्रिया के साथ जिसका सीधा अथवा परम्परा से सम्बन्ध होता है, वह 'कारक' कहा जाता है।

पाणिनि परंपरा का अनुसरण करनेवाले असमिया और हिंदी व्याकरणविद भी कारक और क्रिया का अन्योन्याश्रित संबंध मानते हैं। हिंदी में बाबूराम सक्सेना और किशोरीदास बाजपेयी क्रिया के संपादन में उपयोग की जानेवाली तत्व को कारक कहते हैं। उसी प्रकार असमिया भाषा के भाषाविद उपेन्द्र नाथ गोस्वामी<sup>2</sup>, कालिराम मेधि<sup>3</sup>, सत्यनाथ बरा<sup>4</sup>, हेमचंद्र बरूवा<sup>5</sup> भी यही संकेत देते हैं कि क्रिया के साथ जिसका अन्वय हो, वही कारक है।

विश्व के विद्वान भारत के विद्वान, हिंदी के विद्वान और असमिया के विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं कि

कारक और क्रिया का संबंध अन्योन्याश्रित है।

परंतु इन भाषाओं के कुछ विद्वान संस्कृत परंपरा से हटकर कारक की परिभाषा देते तो हैं, पर ये परिभाषाएं कारक के संबंध में स्पष्ट नहीं हैं, जैसे- कामता प्रसाद गुरु, आर्येन्द्र शर्मा, गोलोक चंद्र गोस्वामी<sup>6</sup> आदि की परिभाषाएं कुछ हटकर हैं।

फिल्मोर के व्याकरण 'ए केस ग्रामर ऑफ हिंदी - विद ए स्पेशल रिफरेंस टू दि केजुएटिव सेन्टेन्स' में कारक संबंधों को भाषा की संरचना का आधार माना गया है। ये कारक संबंध संख्या में सीमित और सार्वभौम प्रकृति के समझे जाते हैं। प्रत्येक वाक्य अपने मूल रूप में कुछ निश्चित कारक संबंधों का समुच्चय है। इस व्याकरण में वाक्य का विस्तार संज्ञापद + क्रियापद में न करके प्रकारता + प्रतिज्ञप्ति में किया जाता है। प्रतिज्ञप्ति वाक्य का वह अंश होता है, जिसमें एक क्रिया और एक या उससे अधिक संज्ञाएँ सम्मिलित होती हैं। सभी संज्ञाएँ विशिष्ट अर्थों में क्रिया से अन्वित होती हैं। उन्होंने क्रिया से संज्ञाओं के इन विभिन्न आर्थी सम्बन्धों को ही कारक कहा है। इस प्रकार वाक्य का प्रतिज्ञप्ति वाला अंश कारक-सम्बन्धों का समुच्चय मात्र है। वाक्य के अन्य गुण, जैसे- काल, निषेध, वृत्ति और अवस्था आदि प्रकारता के अन्तर्गत रखे जाते हैं। कारक सम्बन्धों के इस महत्व को देखते हुए ही फिल्मोर के व्याकरण को कारक-व्याकरण भी कहा जाता है।

#### असमिया भाषा की कारकीय पृष्ठभूमि :

असमिया में सामान्यतः क्रिया के साथ जिसका अन्यय हो या संबंध स्थापित हो, उसे कारक कहा जाता है, जैसे- निरंजने पढ़िछे। इस वाक्य में पढ़िछे क्रिया है और उसका संबंध निरंजन के साथ स्थापित किया गया है।

इसलिए निरंजन कारक है। इस दृष्टि से ऊपर उल्लेखित आठ भेदों को छोड़कर कारक के छह भेद होते हैं- (1) कर्ता, (2) कर्म (3) करण, (4) निमित्त, (5) अपादन और (6) अधिकरण।

संबंध कारक और सम्बोधन कारक का संबंध क्रिया के साथ नहीं रहने के कारण इन्हें कारक नहीं माना जा रहा है, परन्तु उनका संबंध वाक्य के दूसरे शब्दों के साथ रहता है। इस दृष्टि से इन्हें भी कारक के अंतर्गत रखा जाता रहा है। यदि इन दोनों को कारक के अन्तर्गत परिगणित कर लिया

जाए, तो कारक की संख?या आठ हो जाएगी। असमीया गोलोक व्याकरण में व्याकरणविद गोलोक चंद्र गोस्वामी के अनुसार नाम शब्दों में विभक्ति लगने पर ही उसे पद कहा जाता है। वाक्य में प्रयुक्त पर का आपस में संबंध होता है। अतः इन विभक्तियों के अर्थ और कार्य को ही दूसरे शब्दों में कारक कहा जाता है।<sup>7</sup> असमीया कारकों के साथ विभक्तियां लगती हैं। ये विभक्तियां कारक के चिह्न होते हैं, जैसे- प्रथमा विभक्ति के लिए-0,-ए (व्यंजनांत के पीछे) और -0,-ए,-ई (स्वरांत शब्द के पीछे), द्वितीया विभक्ति के लिए-0,-अक(व्यंजनांत के पीछे) और -0,-क (स्वरांत शब्द के पीछे), तृतीया विभक्ति के लिए-एरे, -दि, -द्वारा(व्यंजनांत के पीछे) और -रे (स्वरांत शब्द के पीछे), चतुर्थी विभक्ति के लिए-अलै (व्यंजनांत के पीछे) और -लै (स्वरांत शब्द के पीछे), पंचमी विभक्ति के लिए-0- , षष्ठी विभक्ति के लिए-अर(व्यंजनांत के पीछे) और -र(स्वरांत शब्द के पीछे), सप्तमी विभक्ति के लिए-अत(व्यंजनांत के पीछे) और -त (स्वरांत के पीछे), सम्बोधन विभक्ति के लिए- ए, हे, हेरि इत्यादि। असमीया भाषा में अपादान कारक समझानेवाली पंचमी विभक्ति उपलब्ध नहीं है। दरअसल संस्कृत के कारक विभक्तिसमूह असमीया भाषा में बहुत-से परिवर्तन हुए हैं।<sup>8</sup>

कारक के साथ विभक्तियों के प्रयोग देखें तो कर्ता कारक के साथ प्रथमा विभक्ति आती है, जबकि कर्म कारक के साथ द्वितीया विभक्ति आती है। उसी प्रकार, करण के साथ तृतीया विभक्ति लगती है और सम्प्रदान के साथ चतुर्थी विभक्ति लगती है। पंचमी विभक्ति नहीं है, परंतु स्कूली पठन-पाठन में इसे अपादान के साथ लगाया जा रहा है। संबंध कारक के साथ षष्ठी और अधिकरण कारक के साथ सप्तमी विभक्ति।

असमीया के कुछ व्याकरण ग्रन्थों में अधिकरण के दो भाग स्वीकार किये गए हैं- (क) कालबोधक अधिकरण और (ख) स्थानबोधक अधिकरण। कालबोधक अधिकरण कारक में क्रिया के आधार का काल का बोध कराता है जबकि स्थानबोधक अधिकरण कारक में क्रिया के आधार का स्थान का बोध कराता है।

सम्बोधन कारक के अंतर्गत किसी को पुकारने, सचेत करने आदि के भाव बोध निहित होते हैं, जिसके साथ

प्रथमा विभक्ति होती है किन्तु इसके स्वीकृत चिह्न पद के प्रारंभ में लगते हैं और क्रिया कर्ता के अनुसार होती है, यथा- हेरि, डाडरिया (अजी सम्?मानीय) इत्यादि।

### हिंदी भाषा की कारकीय पृष्ठभूमि :

हिंदी भाषा में कारक एक महत्वपूर्ण विषय को संदर्भित करता है तथा एक महत्वपूर्ण भाषा-घटक भी हैं। मूलतः कारक वह शब्द है जो किसी क्रिया या क्रियापद के साथ जुड़कर उसके कार्य का निर्देशन करता है। कारकों का उपयोग करके वाक्यों को सुगठित किया जाता है और वाक्य के व्यापक अर्थ को स्पष्ट किया जाता है। क्रिया के प्रत्येक कार्य में कारक उपयोगी भूमिका निभाते हैं और उस कार्य को विशेष ढंग से संकेत करते हैं तथा ये संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया को व्यक्त करने के अलावा विस्मयादिबोधक शब्द और विस्मयादिबोधक वाक्यों को भी व्यक्त करते हैं। इनके अतिरिक्त, कारक वाक्य को स्पष्ट, संपूर्ण और सही बनाते हैं और वाक्य के अर्थ को समझने में मदद करते हैं। इसके अलावा, कारक वाक्य में कार्य के अवसर, संदर्भ और संबंध को भी दर्शाते हैं।

असमीया की तरह हिंदी के कारकों के भी आठ भेद हैं, यथा- कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, संबंध, अधिकरण और संबोधन। इनकी पहचान के लिए क्रिया के साथ प्रश्न पूछना उपयोगी होता है, जैसे- किसने(कर्ता कारक), किसको (कर्म कारक), किससे? (करण कारक), किसके लिए?(सम्प्रदान कारक), से कहाँ?(अपादान कारक), किसका?(संबंध कारक), कहाँ?(अधिकरण कारक), हे! (संबोधन कारक)।

### कारकीय व्यतिरेक :

जैसाकि हिंदी और असमीया में संख्या की दृष्टि से कारक समान हैं, किंतु अभिव्यक्ति की दृष्टि से इनमें भिन्नताएँ नजर आती हैं। दूसरे, हिंदी में कारक सूचक चिह्नों को कुछ विद्वान विभक्ति कहते हैं तथा अधिकांश विद्वान परसर्ग कहते हैं। पहले ही उल्लेख किया गया है कि असमीया में कारक सूचक चिह्नों को विभक्ति कहा जाता है। दोनों भाषाओं के कारक संबंधी व्यतिरेक को दो स्तरों परीक्षण किया जा सकता है। पहला, शब्द स्तर पर और दूसरा वाक्य के स्तर पर। नीचे कुछ उदाहरणों के साथ दोनों भाषाओं में मिलनेवाले व्यतिरेकियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है।

**शब्द स्तर पर कारकीय स्वरूप :**

रूपात्मक दृष्टि से देखा जाए तो संज्ञा या सर्वनाम के जिन रूपों से कारक की अभिव्यक्ति होती है, वे दो प्रकार के हैं- सरल और तिर्यक। इन रूपों से कारक के साथ-साथ वचन भी प्रकट होता है। हिंदी में संज्ञा के तीसरे प्रकार के रूप भी दृष्टिगत होते हैं, इन्हें संबोधन रूप कह सकते हैं। यह रूप असमीया में उपलब्ध नहीं है। इन तीनों रूपों के आधार पर दोनों भाषाओं के कारकीय स्वरूप में अंतर प्रकट होता है।

यहाँ सरल, तिर्यक एवं संबोधन रूप से संबंधित कुछ तथ्य द्रष्टव्य हैं-

जहाँ तक सरल रूप की बात है, वे संज्ञा या सर्वनाम के सरल रूप हैं, जो कारक और वचन की विभक्तियों के साथ कारक चिह्न रहित स्थिति में वाक्य के अंतर्गत अपना संबंध स्थापित करते हैं। इसलिए इन्हें मूलरूप भी कह सकते हैं। परंतु कारकीय स्वरूप में ये सरल रूप कहलाएंगे। उदाहरणार्थ, लड़का आ रहा है। वाक्य में लड़का सरल रूप के अंतर्गत आएगा। इसी प्रकार %लड़के आ रहे हैं। वाक्य में लड़के वचन विभक्ति युक्त सरल रूप के अंतर्गत आएगा। असमीया में वचन परप्रत्ययों का स्वतन्त्र अस्तित्व है, किंतु कारक चिह्न रहित संज्ञा-सर्वनामों का प्रयोग वाक्य में देखा जाता है। अतः ये सरल रूप के अंतर्गत आएंगे।

संज्ञा-सर्वनाम के तिर्यक रूप वे रूप हैं जो कारक वचन की विभक्तियों के साथ ही कारक सूचक चिह्न (परसर्ग या विभक्ति) भी रखते हैं। इन्हें विकारी, ऋजु या परिवर्तित रूप भी कहा जाता है।

हिंदी में संज्ञा का तीसरा रूप संबोधन रूप है, जो वाक्य में अपना कारकीय संबंध स्थापित तो नहीं करता पर यह केवल संबोधनात्मक लघु वाक्य का रूप धारण किया हुआ रहता है। उदाहरणार्थ लड़का संज्ञा और वह सर्वनाम के शब्द स्तर पर विभिन्न रूप धारित होगा।

यहाँ पर हम हिंदी से 'लड़का' एक वचन शब्द और असमीया का 'लरा' एक वचन शब्द के लिए सरल, तिर्यक और संबोधन रूप को प्रस्तुत कर सकते हैं। 'लड़का' शब्द हिंदी का एक वचन है जो सरल रूप में लड़का ही रहेगा परंतु तिर्यक रूप में लड़के ने/ लड़के से/ लड़के को / लड़के के लिए लड़के में आदि स्वरूप मिल जाते हैं और संबोधन में लड़के (!) लड़कों (!) बन सकता है।

असमीया भाषा में 'लरा' शब्द एक वचन में है जो सरल रूप में 'लरा' ही रहता है, परंतु तिर्यक रूप में लराइ/ लराक/लराये/लरात आदि स्वरूप मिल जाते हैं। संबोधन में लॅरा (!) ही बना रहता है। बहुवचन में सरल रूप में लॅराबिलाक के बदले तिर्यक रूप में लॅराबिलाके/ लॅराबिलाकक/ लॅराबिलाकरे/ लॅराबिलाकलै/ लॅराबिलाकत बन जाता है। नीचे के टेबल से यह तथ्य पुष्ट हो सकता है :

उक्त उदाहरणों में देखा जा सकता है कि हिंदी की संज्ञाओं के सरल रूपों में कारक एवं वचन विभक्ति एक साथ व्यक्त हो रही हैं। असमीया में बहुवचन परप्रत्यय - बिलाक एवं -हँत, स्वतंत्र रूप में व्यक्त हो रहे हैं। दूसरा, तिर्यक रूप में हिंदी की संज्ञाएँ कारक-वचन विभक्ति के

हिंदी- लड़का	सरल रूप	तिर्यक रूप	संबोधन रूप
एक वचन	लड़का (0)	लड़के (ने, को, से, के लिए, में) आदि	लड़के (!)
बहु वचन	लड़के(0)	लड़कों (ने, को, से, के लिए, में) आदि	लड़को (!)
<b>असमीया-लॅरा</b>			
	लरा (0)	लॅरा- (इ, क, रे, लँ, त) आदि	लॅरा (!)
एक वचन	लॅराबिलाक (0)	लॅबिलाक - (ए, क, रे, लँ, त) आदि	लॅराबिलाक (!)
बहु वचन	वह (0)	उस- (ने, को, ए, से, के लिए, में) आदि	
	वे	उन्हें- (ने)/ उन-हँ (ए) उन(को), से, के लिए, में) आदि	
<b>असमीया- खि</b>			
एक वचन	खि (0)	खि (0) / ता- (क, रे, लँ, त)	
बहु वचन	खिहँत/सिहँत (0)	खिहँत/सिहँत- (ए, क, रे, ले, त आदि)	

साथ ने, को आदि परसर्गों को भी ग्रहण कर रहे हैं। असमीया में तिर्यक रूप की संज्ञाएँ इ, क आदि विभक्तियों को ग्रहण कर रही हैं। विभक्तियों के योग से संज्ञारूपों में परिवर्तन नहीं हो रहा है। इसलिए, असमीया की संज्ञाओं में सरल-तिर्यक रूप का विभेद नहीं है। संज्ञा का जो रूप सरल रूप में होता है, वही तिर्यक या संबोधन में होता है। आगे, संबोधन रूप कारक, नहीं हैं, किंतु हिंदी की संज्ञाओं का संबोधन रूप सरल या तिर्यक से भिन्न दृष्टिगत होता है। इसलिए शब्दस्तर पर इसका महत्व है। असमीया में संबोधन रूप में संज्ञा में परिवर्तन नहीं होता, स्वरमाता से ही यह अभिव्यक्त होता है। इनके अतिरिक्त, दोनों भाषाओं के सर्वनामों में सरल एवं तिर्यक रूप के अनुसार परिवर्तन होता है। हिंदी में सर्वनाम तिर्यक रूपों से अधिक प्रभावित रहते हैं। असमीया में यह प्रभाव एकवचन के सर्वनामों में ही दृष्टिगत होता है, क्योंकि बहुवचन के सर्वनाम प्रायः बहुवचन परप्रत्ययों के योग से व्यवहृत होते हैं, इसलिए बहुवचन के सर्वनामों का तिर्यक रूप-परिवर्तित नहीं होता। दूसरे, प्रथम पुरुष बहुवचन का सर्वनाम स्वतंत्र है, इसलिए उसमें तिर्यक रूप के अंतर्गत रूप परिवर्तन होता है, जैसे- आमि (0), आमा-(क) (आमाक)। यह भी पता चल जाता है कि दोनों भाषाओं का संबोधन रूप नहीं होता। आगे, हम यह भी देख सकते हैं कि सरल-तिर्यक रूप भेद से हिंदी वाक्यों में आकारांत घटकों तथा क्रिया-रूपों की लिंग, वचन, पुरुष-अन्विति पर प्रभाव पड़ता है। असमीया में सरल-तिर्यक रूप भेद से वाक्य संरचना की अन्विति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

संज्ञा पदबंध के आकारांत घटक हिंदी में एकवचन तिर्यक रूप में एकारांत हो जाते हैं। असमीया में ये परिवर्तित नहीं होते, जैसे- मेरा काला घोड़ा (सरल रूप) मेरे काले घोड़े (ने, को, आदि) (तिर्यक रूप), मेरे काले घोड़े (संबोधन रूप)। उसी प्रकार, असमीया में मोर कॅला घोरा (सरल रूप), मोर कॅला घेराइ/घोराक (तिर्यक रूप), मोर कॅला घोरा (संबोधन रूप)

#### वाक्य स्तर पर कारकीय स्वरूप :

देखा गया है कि हिंदी और असमीया दोनों भाषाओं में वाक्य स्तर पर कारकीय स्वरूप क्रिया द्वारा दृष्टिगत होता रहा है। क्रिया निष्पादन में वाक्यगत संज्ञा या सर्वनाम किस

तरह सहयोग करते हैं, इसी आधार पर कारक निश्चित किए जाते हैं। हिंदी में कुछ विद्वानों ने आठ कारक निश्चित किए हैं तथा कुछ ने सात। कारकों की संख्या और कारक चिह्नों के संबंध में व्याकरणविदों में मतभेद मिलते हैं- -

पादरी एथिरिंगटन<sup>9</sup>, केलॉग<sup>10</sup> तथा पं. कामता प्रसाद गुरू<sup>11</sup> हिंदी में आठ कारक मानते हैं। इन्होंने संबन्धपद एवं संबोधन रूप को भी कारकों में सम्मिलित किया है। आचार्य किशोरीदास बाजपेयी<sup>12</sup> हिंदी में सात कारक मानते हैं। वे संबन्धपद में क्रमशः क- र- न तथा के -रे -ने रूपों के आधार पर भेद मानकर संबन्धकारक को कारकों के अंतर्गत स्थान देते हैं। उक्त आठ और सात कारकों की मान्यताएँ हमें हिंदी प्रकृति के अनुकूल दृष्टिगत नहीं होती। आठ कारकों की मान्यता का आधार लैटिन या अंग्रेजी-कारक व्यवस्था<sup>13</sup> हो सकती है। हिंदी के सात कारक होते हुए भी इसके अनुकूल तो हैं पर संबन्ध कारक के कारण हिंदी की प्रकृति के प्रतिकूल है।

डॉ. आर्येन्द्र शर्मा<sup>14</sup> द्वारा प्रतिपादित दो कारकीय व्यवस्था रूपस्तर के लिए ठीक है। अतः वाक्यस्तर पर हम हिंदी में छः कारक मानते हैं, जो हिंदी प्रकृति और अधिकांश विद्वानों के दृष्टिकोणों के अनुकूल हैं। ये हैं- कर्ता, कर्म, करण, अपादान, प्रयोजन, अधिकरण।

असमीया में कारकों की संख्या छह हैं, जो असमीया की प्रकृति के अनुकूल है तथा सभी विद्वानों का इस संबंध में एक मत है, तथापि गोलोक चंद्र गोस्वामी का दृष्टिकोण थोड़ा-सा हटकर है।

देखा जाता है कि हिंदी में कारक चिह्नों के संबंध में व्याकरणविदों का मतभेद द्रष्टव्य है। पं0 कामता प्रसाद गुरू<sup>15</sup> तथा आचार्य किशोरीदास बाजपेयी<sup>16</sup> कारक चिह्नों को संस्कृत परंपरा के अनुसार कारक विभक्ति मानते हैं। दूसरी ओर, केलॉग, डॉ. बाबूराम सक्सेना<sup>17</sup>, डॉ. आर्येन्द्र शर्मा<sup>18</sup> हिंदी के कारक चिह्नों को परसर्ग मानते हैं। जहां तक हिंदी की प्रकृति की बात है उसके अनुसार परसर्ग की मान्यता सर्वाधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि हिंदी के कारक चिह्नों में संस्कृत-कारक विभक्ति के तुल्य प्रयोगगत समता नहीं है। दूसरे, असमीया के कारक-चिह्न संस्कृत कारक विभक्ति से कुछ सीमा तक प्रयोगगत समता रखते हैं। इसलिए ये विभक्ति के रूप में सर्वमान्य हैं, जैसे-

संस्कृत में शब्द और विभक्ति के मध्य कोई अन्य निपात आदि प्रयुक्त नहीं होते हैं। असमीया में भी यही व्यवस्था है, किंतु हिंदी में निपात का प्रयोग देखा जाता है। 'ए केस ग्रामर ऑफ हिंदी - विद ए स्पेशल रिफरेन्स टू दि केजुएटिव सेन्टेन्स' में फिल्मोर ने निम्नलिखित मुख्य कारक सम्बन्ध निश्चित किए हैं<sup>19</sup>

1. अभिकर्ता, (Agent) 2. करण (Instrument), 3. अनुभावक (Experiencer), 4. स्थान और कर्म (place and object), 5. अधिकरण (Locative) आदि।

रचनान्तरण-व्याकरण की तरह फिल्?मोर के व्याकरण में भी आन्तरिक और बाह्य संरचना का भेद है। कारक सम्बन्ध भाषा की आन्तरिक संरचना से सम्बद्ध होता है। बाह्य संरचना में जो संज्ञा पदबन्ध कर्ता के रूप में दिखाई पड़ता है, वह आन्तरिक संरचना में अभिकर्ता, अनुभावक, करण आदि किसी भी कारक में हो सकता है। इसलिए दोनों स्तरों के सम्बन्धों को उक्त व्याकरण में अलग-अलग शब्दों से अभिहित किया गया है। आन्तरिक संरचना में कर्ता को अभिकर्ता कहा गया है और बाह्य संरचना में कर्ता को कर्ता कहा गया है। बाह्य कर्ता का निर्धारण वाक्य में शब्दों का क्रम देखकर या संज्ञा की क्रिया से अन्विति आदि को देखते हुए किया जाता है। आन्तरिक तथा बाह्य

कर्ता के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित अंग्रेजी उदाहरण को देखा जा सकता है-

1. Ram opens the door.
2. The door is opened by Ram.

दूसरे वाक्य में Ram बाह्य दृष्टि से कर्ता है किंतु दूसरे वाक्य में बाह्य दृष्टि से कर्ता the door है और आन्तरिक दृष्टि से कर्ता अभिकर्ता राम है।

ऊपर गिनाये गए कारक सम्बन्ध आन्तरिक संरचना से सम्बद्ध हैं। ये आन्तरिक कारक-सम्बन्ध भाषा के अनेक नियमों द्वारा बाह्य संरचना में कर्ता तथा बाह्य कर्म के रूप में बदल जाते हैं।

वाक्य संरचना तथा अर्थ से संबंधित अनेक सूक्ष्म तत्वों को स्पष्ट करने के लिए आन्तरिक संरचना तथा बाह्य संरचना के भेद को मानना आवश्यक होता है। अभिकर्ता, अनुभावक आदि कारकों का उपयोग वाक्यों में निहित गूढ़ भेदों को स्पष्ट करने में किया जाता है।

**उपसंहार :** कारकों की संख्या को लेकर विश्व में अनेक मतभेद रहते हुए भी भाषा में वे किसी न किसी प्रकार प्रयुक्त हो रहे हैं। असमीया और हिंदी भाषा व्याकरण में कारक भले ही समान-समान हों किंतु कारक संकेतों में प्रयोगगत भिन्नताएं देखने को मिल रही हैं। असमीया भाषा में कारक एक व्याकरणगत विषय है जिसका पर्याप्त अध्ययन की आवश्यकता है। □

#### संदर्भ ग्रंथ/ सहायक ग्रंथ :

- (1) अष्टाध्यायी पाणिनि पर महाभाष्य, 1.4.22
- (2) असमीया भाषा रूपकथा, उपेन्द्र नाथ गोस्वामी, निड बुक स्टाल, गुवाहाटी, 1974, पृ.20
- (3) असमीया व्याकरण आरू भाषा तत्व, कालिराम मेधि, असम प्रकाशप परिषद, गुवाहाटी, 1978, पृ.162
- (4) असमीया भाषा बहल व्याकरण, सत्यनाथ बरा, सचिबंश ताडरण, गुवाहाटी, 1973, पृ.77
- (5) असमीया व्याकरण, हेमवद बरूवा, हेमचंद्र पुँथिभराल शिवसागर, पंचिबंशति ताडरण, 1970, पृ.89
- (6) असमीया गोलोक व्याकरण, गोलोक चंद्र गोस्वामी, वाणी प्रकाशन, गुवाहाटी, 1974, पृ.278
- (7) असमीया गोलोक व्याकरण, गोलोक चंद्र गोस्वामी, वाणी प्रकाशन, गुवाहाटी, 1974, पृ.170-184
- (8) भाषा विज्ञान आरू असमीया भाषा, डॉ. अनुराधा शर्मा, बांधव, पानबजार, गुवाहाटी-1, 2020 पृ.369
- (9) स्ट्रेंट्स ग्रामर ऑफ हिंदी लेंगेज, विलियम एथरिंगटन, इ.जे.लेजारस एंड कोम्प., बेनारस, 1873, पृ.45, (पब्लिक डोमेन मार्क 1.0)
- (10) अ ग्रामर ऑफ हिंदी, केलॉग एस.एच, फर्स्ट इंडियन एडिशन, 1972, पृ.221
- (11) हिंदी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरू, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1921-1952, पृ.368
- (12) हिंदी शब्दानुशासन, आचार्य किशोरीदास बाजपेयी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1921-1952, पृ.140
- (13) हिंदी असमीया : व्याकरण कोटियाँ, रामलाल वर्मा, हिंदी संस्थान, आगरा, 1986, पृ.19
- (14) हिंदी के क्रियारूप, डॉ. आर्येन्द्र शर्मा, भारतीय साहित्य, अंक-3-4, 1972, पृ.20
- (15) हिंदी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरू, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1921-1952, पृ.369
- (16) हिंदी शब्दानुशासन, आचार्य किशोरीदास बाजपेयी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1921-1952, पृ.35
- (17) सामान्य भाषा विज्ञान, केलॉग, डॉ. बाबूराम सक्सेना, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1961, पृ.196
- (18) अ बेसिक ग्रामर ऑफ मॉडर्न हिंदी, डॉ. आर्येन्द्र शर्मा, सेंट्रल हिंदी डायरेक्टरेट नई दिल्ली, 1975, पृ.34
- (19) हिंदी का कारक व्याकरण, लक्ष्मीबाई बालचन्द्रन, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 1973, पृ.78/79

## रवाँई में प्रचलित जागर लोक गीत विधा : एक साहित्यिक विमर्श



प्रमोद प्रसाद

### शोध-सार :

रवाँई क्षेत्र, उत्तराखंड की एक समृद्ध सांस्कृतिक और लोक परंपराओं से भरपूर भू-भाग है, जहाँ अनेक लोक गीत विधाओं का प्रचलन है। इन विधाओं में जागर एक प्रमुख और विशिष्ट लोक गीत शैली है, जिसका संबंध लोक-आस्था, पौराणिक गाथाओं और देव-आराधना से जुड़ा होता है। जागर न केवल एक धार्मिक अनुष्ठान है, बल्कि यह एक जीवंत साहित्यिक विधा भी है, जो सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संदर्भों को उजागर करती है। इस शोध में रवाँई अंचल में प्रचलित जागर लोक गीत विधा का साहित्यिक विश्लेषण किया गया है। इसमें जागर की मौखिक परंपरा, काव्यात्मक, प्रतीकात्मकता, कथात्मकता और उसकी सांस्कृतिक भूमिका का आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह विमर्श यह दर्शाता है कि किस प्रकार जागर लोक गीत न केवल देवताओं की गाथाओं का संकलन है, बल्कि वह लोक जीवन की संवेदनाओं, संघर्षों और सामूहिक चेतना का भी प्रतिनिधित्व करता है। साथ ही, इसमें यह भी विश्लेषण किया गया है कि आधुनिक समय में इस परंपरा के संरक्षण और संवर्धन की क्या संभावनाएँ और चुनौतियाँ हैं। यह शोध जागर लोकगीत को एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित करने का प्रयास है।

### बीज-शब्द :

रवाँई क्षेत्र, जागर लोकगीत, लोक साहित्य, सांस्कृतिक विमर्श, मौखिक परंपरा।

### प्रस्तावना :

उत्तराखंड के गढ़वाल अंचल में स्थित रवाँई घाटी एक ऐसी सांस्कृतिक इकाई है, जो हिमालय की छाँव में बसी जनजातीय और ग्रामीण परंपराओं को अपने भीतर संजोए हुए है। उत्तरकाशी जिले के पश्चिमोत्तर भाग में फैली यह घाटी भौगोलिक रूप से दुर्गम, परंतु सांस्कृतिक रूप से अत्यंत समृद्ध है। इसकी पारंपरिक धार्मिकता, स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा पद्धति, उत्सवों और लोक कलाओं ने एक विशिष्ट सांस्कृतिक लय का निर्माण किया है, जो आज भी जीवित और प्रासंगिक है। इसी सांस्कृतिक ताने-बाने में एक महत्वपूर्ण और विशिष्ट लोक विधा के रूप में 'जागर' उभरकर सामने आती है- "जागर शब्द संस्कृत मूल के 'जागरण' से व्युत्पन्न है, जिसका तात्पर्य है- किसी देवता की चेतना को जागृत करना। यह विधा न केवल भूत-प्रेत और दैविक शक्तियों की

-----  
शोध-छात्र, हिंदी एवं आधुनिक  
भारतीय भाषा-विभाग  
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल  
(केंद्रीय) विश्वविद्यालय,  
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड-246174  
☎ 9458930957  
✉ mbbsbobyuniyal1993@gmail.com  
-----

शांति के लिए आयोजित होती है, बल्कि इसमें पुरातन कथाओं, पौराणिक प्रसंगों और स्थानीय नायकों की गाथाओं का भी गायन होता है।<sup>1</sup> रवाई क्षेत्र में यह विधा आज भी सामाजिक संरचना, धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक पहचान का एक अभिन्न अंग बनी हुई है।

“जागर गायन को ‘देववाणी’ भी कहा जाता है क्योंकि इसे देवताओं की उपस्थिति में गाया जाता है। इसमें कथा कहने वाला मुख्य गायक (जगरिया) लोकदेवता की गाथा प्रस्तुत करता है, जिसे सामूहिक गायन और पारंपरिक वाद्य यंत्रों जैसे ढोल, दमाऊ और हुड़का की संगत प्राप्त होती है।”<sup>2</sup>

जागर एक प्राचीन परंपरा है। यह परंपरा प्राचीनतम मौखिक साहित्यिक विधाओं में से एक मानी जाती है, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी श्रुति परंपरा के माध्यम से स्थानांतरित होती रही है। जागर केवल धार्मिक अनुष्ठान भर नहीं है, बल्कि ये सांस्कृतिक स्मृति, इतिहास, लोकनीति और आध्यात्मिक चिकित्सा के भी सशक्त माध्यम है। रवाई क्षेत्र में प्रचलित जागरों की विशिष्टता इस बात में है कि यहाँ के जागरों में स्थानीय भूगोल, सामाजिक संरचना और ऐतिहासिक संघर्षों की छाया स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

“जागर गायन में सोमेश्वर देवता, गंगनाथ, बासदेव या ब्याणू देवता जैसे स्थानीय नायकों की गाथाएँ प्रमुखता से आती हैं, जो शौर्य, न्याय और सामाजिक मूल्यों के वाहक हैं।”<sup>3</sup>

इसके अतिरिक्त जातिगत असमानताओं, स्त्री पीड़ा और सामाजिक न्याय जैसे विषय भी जागर में परोक्ष रूप से प्रस्तुत होते हैं, जिससे यह विधा सामाजिक विमर्श का भी माध्यम बन जाती है।

आज के संदर्भ में जब परंपरागत लोक विधाएँ आधुनिकता और बाजारीकरण के प्रभाव से क्षीण होती जा रही हैं, तब रवाई की जागर परंपरा एक जीवंत विरासत के रूप में खड़ी है, जो परंपरा और परिवर्तन के द्वंद्व को झेलते हुए भी अपनी पहचान बनाए रखे हुए है। यद्यपि इसका स्वरूप अब बदल रहा है—कई जागर अब रिकॉर्डेड, म्यूजिक, मंचीय प्रस्तुति और डिजिटल प्लेटफार्मों पर

उपलब्ध हैं—फिर भी इसकी आत्मा अब भी जगरिया और श्रोताओं के बीच के पवित्र संवाद में सुरक्षित है।

इस शोधपत्र का उद्देश्य रवाई घाटी की जागर लोक गीत विधा का साहित्यिक विश्लेषण करना, जिसमें इसकी कथात्मक संरचना, विषय-वस्तु, प्रतीकात्मकता, सामाजिक भूमिका और समकालीन बदलावों को समाहित किया गया है। यह अध्ययन सांस्कृतिक नृविज्ञान लोक साहित्य और प्रदर्शन कला के अंतःविषयी दृष्टिकोण से संचालित है।

उत्तराखंड राज्य का रवाई क्षेत्र प्राचीन काल से ही अपनी देवीय संस्कृति के लिए अग्रणी भूमिका में रहा है। रवाई क्षेत्र की इस दिव्य संस्कृति में गढ़वाली बोलियों में गाए जाने वाले जागृत गीतों के अर्थ पर प्रकाश डालते हुए इसके विविध प्रकारों एवं इसकी पूर्ण प्रक्रिया का वर्णन करते हुए विशिष्ट रूप से इसके महत्व को यह शोध पत्र उल्लेखित करता है।

जागर गीत उत्तराखंड के कुमाऊँ तथा गढ़वाल दोनों ही क्षेत्र में गाए जाते हैं और इन जागर गीतों का इतिहास काफी प्राचीन रहा है। यहाँ के लोग समय-समय पर अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए तथा अपने दुखों का निवारण करने के लिए अपने स्थानीय देवी देवताओं को याद करते हैं तथा उनकी पूजा अर्चना करते हैं। पूजा अर्चना की इसी स्थानीय विधि को उत्तराखंड राज्य के रवाई क्षेत्र में हारुल (जागर) कहा जाता है।

जागर एक लोक गीत की शैली होने के साथ-साथ देव शक्तियों तथा भूत-प्रेतों को मानव शरीर के अंदर जागृत करने की एक संपूर्ण प्रक्रिया होती है, उत्तराखंड में जागर शैली के गीतों के महत्व को यहाँ के जनमानस की लोक भाषा में हारुल या जागर कहा जाता है। इस शोध पत्र में लोक प्रक्रिया से प्रभावित लोगों के जीवन में जागर के प्रभाव की पूर्ण प्रक्रिया का अध्ययन कर विवरण दिया गया है। इसके लिए संबंधित क्षेत्र में जाकर साक्षात्कार वह क्षेत्र अध्ययन के माध्यम से यह शोध कार्य पूर्ण किया गया है तथा संबंधित प्रसंग इस शोध पत्र में समाहित किए गए हैं।

संगीत को सार्वभौमिक रूप में अनादि काल से ही

मानव सभ्यता का महत्वपूर्ण पक्ष स्वीकार किया गया है, जो मानव के सांस्कृतिक पक्ष के साथ-साथ उसके विकास क्रम तथा प्राचीन इतिहास का भी आभास कराता है। संगीत के विभिन्न रूप हमें देखने को मिलते हैं, जो अपने-अपने क्षेत्र के लोक जीवन तथा लोक संस्कृति के विविध रूपों को उजागर करते हैं।

इसी प्रकार उत्तराखंड का लोक संगीत भी पहाड़ की दैवीय संस्कृति की अलौकिक छटा बिखरने के साथ-साथ यहां के लोक जनमानस की गाथा को कहता है तथा गढ़वाली एवं कुमाऊँनी क्षेत्र की लोक विविधता को स्वयं में समाहित किए हुए हैं। उत्तराखंड राज्य की गढ़वाल एवं कुमाऊँ क्षेत्र का लोक संगीत मुख्यतः जागर बाढ़ी तथा मांगल गीतों का सामूहिक रूप है। जागर मूलतः यहाँ की लोक गाथाओं व लोक गीतों का मिश्रण है। जागर के अंतर्गत उत्तराखंड के लोक देवताओं भूत-प्रेतों का दृष्टांत होता है।

जागर एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से मनुष्य के शरीर में गीतों के माध्यम से देवताओं, भूत-प्रेतों को जागृत किया जाता है। जागर गीत लोक संगीत के अन्य गीतों से अभिन्न होते हैं। जागर गीतों को गाने की संपूर्ण प्रक्रिया विशिष्ट होती है तथा इन्हें गाने वाले व्यक्ति को विशेष नाम से उल्लेखित किया जाता है। उत्तराखंड राज्य के रवाई क्षेत्र में जागृत गीतों को गाने वाले व्यक्ति को जगरिया (गुरु) कहा जाता है।

जागर का अर्थ- जागर संस्कृत मूलक शुद्ध वैदिक शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है जगाना या जागृत करना उजागर करना जो व्यक्ति या वस्तु (भौतिक तथा अभौतिक ऊर्जा) सुषुप्त अवस्था में हो उन्हें जगाने के लिए गाए जाने वाले विशिष्ट लोक गीत जागर कहलाते हैं। रवाई घाटी में जिन गीतों के माध्यम से सुषुप्त अवस्था में पड़ी देव एवं प्रेत आत्माओं को जागृत किया जाता है, उन गीतों को हारुल या जागर गीत कहा जाता है। जागर को स्पष्ट करते हुए स्थानीय जागरी (औजी) बरदास का कथन है-

“किसी भी धार्मिक आयोजन के अवसर पर रात्रि में जाकर नृत्यात्मक गायन अथवा सामूहिक गायन के द्वारा देव विशेष से संबंधित जो गाथाएँ गाई जाती हैं, उन्हें जागर कहते हैं।”<sup>4</sup>

“जागर शब्द की व्युत्पत्ति जागरण से हुई है। वास्तव में ये गीत रात में जागरण करते हुए देवताओं के नृत्य के व थाली डमरू या ढोल-दमोऊ जैसे वाद्य के साथ गाए जाते हैं। भारतीय नाट्यशास्त्र में यह विश्वास प्रकट किया गया है कि नृत्यों से देवता रिझते हैं। इसी भावना से उत्तरखंड राज्य के गढ़वाल कुमाऊँ में देवताओं को रिझाने के लिए उन्हें जागर गाकर नचाया जाता है।”<sup>5</sup>

जनमानस की जनसाधारण भाषा में विशिष्ट प्रयोजन की पूर्ति हेतु जागरण करते हुए देवी-देवताओं का लोक भाषा में लोक वाद्य यंत्र के साथ नृत्य सहित किया जाने वाला आवाहन ही जागरण कहलाता है।

“जागर गीतों में देवताओं का जीवन और कृतित्व व्यक्त होता है। प्रत्येक देवता का जीवन घटनामय होता है इसलिए जागर कथात्मक होने को बाध्य हैं। जागर में देवता नाचता है और पुरोहित या औजी उसकी लीला को गाता है।”<sup>6</sup>

#### साहित्य समीक्षा :

##### लोक साहित्य की अवधारणा :

लोक साहित्य मानव सभ्यता की उस परंपरा का हिस्सा है, जो लिखित शब्दों से पूर्व मौखिक परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित होती रही है। यह साहित्य जनजीवन, आस्थाएँ, संघर्ष, रीति-रिवाज एवं सामूहिक स्मृति का सजीव रूप है। हजारीप्रसाद द्विवेदी (1952) ने लोक साहित्य को “जनजीवन की चेतना और अनुभव की अभिव्यक्ति कहा है, ”<sup>7</sup> जो लिखित साहित्य से कहीं अधिक जीवंत और प्रभावकारी होती है। “रामविलास शर्मा (1980) के अनुसार, लोक साहित्य किसान, मजदूर, स्त्रियों और वंचित समुदायों की रचनात्मकता है जिसमें शोषण और मुक्ति की चेतना भी समाहित होती है।”<sup>8</sup>

गणेश देवी (1992) लोक साहित्य को “एक वैकल्पिक ज्ञान प्रणाली के रूप में देखते हैं, जो औपनिवेशिक आधुनिकता के समांतर जनसमाज की समझ और सृजन की क्षमता को उद्घाटित करती है।”<sup>9</sup>

उत्तर भारत के संदर्भ में नागेन्द्र, नामवर सिंह और भारतभूषण अग्रवाल जैसे विद्वानों ने भी यह स्पष्ट किया है

कि लोक साहित्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक प्रतिरोध और सामाजिक संवाद का माध्यम है।

#### जागर पर अध्ययन :

उत्तराखण्ड की विशिष्ट लोक विधा 'जागर' पर केंद्रित अध्ययनों में इतिहास, धर्म, लोकनाट्य और सांस्कृतिक विमर्श को केंद्र में रखा गया है। डॉ. शिवप्रसाद डबराल 'शिवा' (1992) ने अपनी पुस्तक उत्तराखण्ड का लोक साहित्य में जागर को देवसंवाद की परंपरा बताते हुए इसकी आध्यात्मिक, ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को उजागर किया है। वे इसे "देव संस्कृति का प्रतिनिधि मानते हैं।"<sup>10</sup>

"डॉ. शेखर पाठक ने अपनी पुस्तक 'उत्तराखण्ड का सामाजिक इतिहास' में जागर को सामाजिक न्याय और स्मृति का प्रतीक बताया।"<sup>11</sup>

"डॉ. मेहता के अनुसार जागर सिर्फ धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सांस्कृतिक कूट वाक्य है, जिसमें मिथकों, प्रतीकों और पारंपरिक ज्ञान का संग्रह है।"<sup>12</sup>

"वहीं भट्ट (2018) इसे लोक न्यायशास्त्र के रूप में देखते हैं।"<sup>13</sup> जिसमें देवताओं के न्याय के माध्यम से सामाजिक असंतुलन को संतुलित करने की परंपरा रही है।

#### रवाई क्षेत्रीय अध्ययन :

रवाई घाटी पर केंद्रित अध्ययनों में इस क्षेत्र की भौगोलिक एकाकीपन, सामाजिक संरचना और धार्मिक परंपराओं को केंद्र में रखा गया है। डॉ. मीनाक्षी पंवार (2014) ने रवाई की सांस्कृतिक विविधता को उजागर करते हुए लिखा है कि इस घाटी में लोक देवताओं की पूजा, देवी-यात्राएँ और जागर जैसी परंपराएँ संस्कृति और राजनीति के अंतर्संबंधों को दर्शाती हैं। वे जागर को "सांस्कृतिक संकल्पना का जीवंत रूप मानती हैं।"<sup>14</sup>

मथुरा प्रसाद नौटियाल (2014) ने Cultural Ecology of Rawain Valley में स्थानीय लोक विश्वासों, पर्यावरणीय परंपराओं और उत्सवों का विश्लेषण करते हुए रवाई को "पवित्र भू-दृश्य (Sacred Landscape) कहा है।"<sup>15</sup>

मीना जोशी (2018) ने अपने शोध में रवाई क्षेत्र

के जागरों को एक "संवेदनशील अभिलेखीय परंपरा के रूप में देखा है, जो न केवल स्मृति संरक्षित करती है बल्कि सामाजिक संरचना का भी रेखांकन करती है।"<sup>16</sup>

हालाँकि, इन अध्ययनों में जागर की सामाजिक व साहित्यिक व्याख्या बहुत सीमित है। अधिकतर शोध लोकपरंपरा या धार्मिक दृष्टिकोण तक ही सीमित हैं। साहित्यिक दृष्टिकोण से जागर के प्रतीकात्मक, शैलीगत और संरचनात्मक पहलुओं पर गहराई से कार्य नहीं हुआ है, जो इस शोध की विशिष्टता को रेखांकित करता है।

#### अनुसंधान की प्रकृति :

यह अध्ययन गुणात्मक प्रकृति का है, जो साहित्यिक, नृविज्ञानात्मक और वर्णनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। इसमें पाठ विश्लेषण और मौखिक परंपरा दोनों का समावेश किया गया है ताकि जागर लोक गीत विधा की सांस्कृतिक-साहित्यिक संरचना को समग्रता में समझा जा सके। यह अध्ययन बहु-विषयी दृष्टिकोण को अपनाता है, जिसमें लोक साहित्य, सांस्कृतिक नृविज्ञान, परंपरागत प्रदर्शन कला और धार्मिक समाजशास्त्र के तत्वों को समाहित किया गया है।

#### अध्ययन क्षेत्र :

यह अनुसंधान उत्तराखण्ड राज्य के उत्तरकाशी जनपद स्थित रवाई घाटी पर केंद्रित है, जिसमें मोरी, पुरोला नौगाँव का क्षेत्र शामिल है। इन क्षेत्रों में जागर परंपरा आज भी जीवंत रूप में विद्यमान है।

#### शोध अभाव :

उत्तराखण्ड की लोक परंपराओं, विशेषतः जागरविधा, पर यद्यपि अनेक विद्वानों ने ऐतिहासिक, धार्मिक, और नृविज्ञानात्मक दृष्टिकोण से कार्य किया है, परंतु रवाई क्षेत्र के जागर लोकगीतों पर एक विशुद्ध साहित्यिक विश्लेषण की दृष्टि से अब तक गंभीर और समग्र अध्ययन का अभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

निम्नलिखित बिंदु इस शोध-अभाव को रेखांकित करते हैं :-

#### साहित्यिक संरचना पर सीमित कार्य :

डॉ. शिवप्रसाद डबराल 'शिवा', डॉ. शेखर पाठक

एवं अन्य शोधकर्ताओं ने जागर को सांस्कृतिक दस्तावेज और धार्मिक परंपरा के रूप में देखा है, लेकिन जागर की कथा संरचना, प्रतीकों, अलंकारों, छंदों और शैलीगत विशिष्टताओं का विश्लेषण दुर्लभ है।

विशेषतः रवाई क्षेत्र के जागर गीतों की शिल्पगत विश्लेषणात्मक पद्धति अब तक अनुपस्थित रही है। उत्तराखंड का लोक साहित्य (शिव प्रसाद डबराल) में विषयवस्तु और धार्मिक भूमिका पर चर्चा तो है, पर कविता की भाषा, प्रतीकात्मकता या संवादात्मकता की आलोचना नहीं की गई है।

#### जागर के प्रकार :

उत्तराखंड राज्य में जागरण का प्रारूप पुरानी लोक कथाओं एवं लोक गाथाओं से लिया गया है, जिसमें श्री कृष्ण लीला भागवत पुराण तथा पांडवों की गाथा प्रमुख है। लोक गाथाओं को जागृत गीतों का उद्गम माना जाता है। जागरिया गायकों, पुस्तकीय स्रोतों एवं रवाई गढ़वाल के जनमानसों से प्राप्त जानकारी के आधार पर जागर का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इन्हें मुख्यतः निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :-

1. देवी-देवताओं के जागर
2. भूत-प्रेत संबंधी जागर
3. स्थानीय वीर गाथाओं से संबंधित जागर
4. प्रणय मूल व ऋतु संबंधी गाथाएँ

1. देवी- देवताओं के जागर : ये जागर विशेषतः देव भावनाओं से संबंधित होते हैं, जिनसे अलौकिक आध्यात्मिक शांति का सृजन होता है। ये जागर सृष्टि की रचना आकाश, वायु, पृथ्वी इत्यादि के अस्तित्व की व्याख्या करते हैं। इन जागरण में पंच नाम देवताओं का स्मरण करके उनसे सुख शांति की कामना की जाती है। धार्मिक जागरों में स्थानीय देवी-देवताओं, प्रकृति पूजा, नाग यक्ष संध्या प्रभात संत-मुनियों के जागर इत्यादि भी शामिल होते हैं।

#### नागराजा का जागर

“सभा लैगे द्वारिका, सभा लैगे गोविंद,  
सोवन द्वारिका होली,सभा लैगे गोविंद।

सभा बैठी गैन, तेतीस करोड़ देवता,  
सभा बेठी गैन,सोल सोऊ रागी।”<sup>17</sup>

#### गंगू रामोला का जागर

“तिन मथुरा मा जन्म लिने विष्णु मेरा कर्तार  
तिन देबकी का गर्भ लिने विष्णु मेरा  
तुम द्वारिका का धनी होला, मथुरा का ग्वेर,  
गायों का गोपाल होला, गोपियों का मोहन।”<sup>18</sup>  
“सिदुवा लिजांद दौरु थाली कृष्णा लिजांद शंख  
चलदूँ, सिदुवा, जौला पाण्डऊ की जैनती।”<sup>19</sup>

#### सृष्टि की उत्पत्ति से संबंधित

“ऊपर न अगास; घोर अंधकार सब समुंदर उँकार।  
प्रथमे ओंकारें, ओंकार से फोंकार, फोंकार से वायु,  
वायु से विषंधरी।  
विषंधरी से पाणी, पाणी से कमल। कमल से  
ब्रह्मा पैदा होइगे।

ब्रह्मा से चार वेद, चौदह शास्त्र, अठार पुराण,  
चौबीस गायत्री पैदा होइए।

जल का आकार से ऊँ शब्द होए; तब ब्रह्मान सृष्टि  
रंचाले!

तब ब्रह्माजी कमल में बैठिगे।”<sup>20</sup>

“प्रभात को पर्व जाग, गौ सरुपी पृथ्वी जाग।  
धर्म सरुपी अगास जाग, उदकारी कथा जाग।  
भानु पंछी गरुड़ जाग, मातलोकजाग सूर्यलोक जाग  
खोळी का गणेश जाग, ब्रह्मा का वेद जाग  
काशी विश्वनाथ जाग, हरि हरिद्वार जाग, मेघ लोक,  
जाग, पौन लोक जाग।

राधाकुंड, बैजनाथ, बागेश्वर जाग, चोपड़ा चौथान  
जाग, फटिंगू का लिंग जाग।

भूमि का भूम्याल जाग, बद्रीकेदार जाग।  
खतरी को खैडो जाग, कुंती का पंडों जाग।  
हैरी-भैरी वसुंधरा जाग, पवन पाणी जाग, जाग-  
जाग परमेसुर, पंचनाम देव जाग !

तुमारी भूमि मा कारज वीर्यो,  
यो कारज हमारो सुफल फल्यान।”<sup>21</sup>

यह जागर सुप्त देव शक्ति को जगाने और मंगल

कार्य में सहयोग देने के लिए उद्बोधन किया जाता है।

## 2. भूत प्रेत संबंधी जागर :

रवाई क्षेत्र में देवताओं की तरह भूत-प्रेतों को भी नचाया जाता है। लोक में यह विश्वास है कि जब कोई व्यक्ति अल्प मृत्यु से असमय जीवन की अतृप्ति लिए मर जाता है तो उसकी जीने की लिप्सा उसे भूत बनाकर संसार में भटकती है तथा जिस व्यक्ति के शरीर में ये प्रविष्ट करती है वह रुग्ण हो जाता है। उसकी संतुष्टि के लिए उसे जागर के माध्यम से नचाया जाता है।

भूत प्रेतों से बचाव तथा रखवाली हेतु भी देव जागर गाए जाते हैं :-

“ओं नमो बभूत, माता बभूत, पिता बभूत;  
बभूत तीन लोक तारिणी।

ओं नमो बभूत, माता बभूत, पिता बभूत; सब दोष  
निवारिणी।”<sup>22</sup>

## 3. स्थानीय वीरगाथाओं से संबंधित जागर:

इसके अंतर्गत लोक वीरों की गाथाएँ आती हैं, जिन्होंने अपनी वीरता का प्रदर्शन करते हुए लोक कल्याण के लिए अपने प्राण त्याग दिए थे। “इन वीरों को गढ़वाल में ‘भइ’ और ‘माल’ कहा गया है। माल शब्द मल्ल व्युत्पन्न है। मल्ल जात्यर्थक शब्द है और गढ़वाल में वीरता का पर्याय है। “पहाड़ों में इन वीरों में श्री माधो सिंह भंडारी, कफू चौहान, रीखोला लोदी, रणु रौत, हरि हिंदवान, सुपया रौत, तीलू रौतेली, कालू भंडारी के जागर प्रसिद्ध हैं। माधो सिंह, रिखोला लोदी, महिपती राजा के समकालीन थे।”<sup>23</sup>

गढ़ सुमरियाल

खिमासारी हाट रन्दो गढ़ स्यो सुमर्याल

मालू मा को माल होलो वो तरवा माल होलू गढ़ त  
सुमर्याल!

जैका वाब दादान तरवार मारे, वेको बेटा भी तरवार  
मारी लालो !

खिमासारी हाट मा पड़े धुरमी अकाल,

तड़फी मरीन लोक उखड़-सा माछा, जागू जागू  
पड़ीन डाला का-सा गेंडा!

स्वागीण रांड हन, कोली का मरीन बाला, ज्वानी नी

भुची कैन, जिन्दगी नी भोगी !

तड़ी तपड़ी करों कमाई सब खाई याले, भूख मरण  
लँगे गढ़ सुमर्याल -चल मेरी जिया लीला देई।”<sup>24</sup>

## रण रौत का जागर :

“सिरीनगर रन्द छ्यो राजा प्रीतमशाई, कुलावाली कोट  
मा रन्दी रौतू औलाद!

हिंवा रौत को छ्यो भिवाँ रौत, भिवा रौत को छ्यो रण  
रौत!

रण रौत होलो मालू मा को माल, जैको डबराल्या माथो  
छ,

खंखराल्या जोखा, घुण्डों पौँछदी भुजा छन जोधा की,  
मुङ्गर्याली फीली छन मेरा मरदो!

माल की दूण रांजड़ा ऐन, तौन कागली सिरीनगर भेज्याले!  
रूखा रूखा बोल लेख्या तीखा लेख्या स्वाल! बोला  
बोला मेरा कछड़ी का ज्व

मेरा राज पर कैन त यो धावा बोले?

मेरा गढ़वाल मा कु इनु माल होलू जु भैर का मालू तें  
जीतीक लालू !

तबरेक उठीक बोलदू छीलू भिमल्या, ई तरई को माल  
होलो कुलवाली कोट, हिंवा रौतन तरवार मारे।”<sup>25</sup>

## 4. प्रणय मूल व ऋतु संबंधी गाथाएँ :

इन लोक जागरों के अंतर्गत वे जागर आते हैं, जो प्रेम-प्रणय व ऋतुओं से संबंधित होते हैं, जिनमें जीतू बगड़वाल, मालू राजुला, कृष्ण गोपी रास जैसी गाथाएँ तथा बसंत ऋतुओं के पर्वों की गाथाएँ शामिल होती हैं।

जीतू बगड़वाल -

जीतू द शोभनू होला गरीबा का बेटा,

माता त सुमेरा छई, दादी फ्लू 'ली जौसू!

दादा जी कुंजर छ्या, भुली शोभनी छई'

जाति को पंवार छयो जीतू अकलि गंवार,

बगूड़ी जैक भौजी होई गैन बगड़वाल!

राज मान शाइन दिने गौ मुड़े को सेरो दिने,

कमीरण को जामो, गौ मथे को घेरो!

जीतू रये दादू मादू उदभातू।”<sup>26</sup>

## रवाई क्षेत्र में जागर की प्रक्रिया :

जागर प्रक्रिया का प्रारंभ जागरिए द्वारा ईश वंदना से

होता है। जगरिया वह व्यक्ति होता है, जिसके द्वारा जागर गाया जाता है। जगरिया डमरू, कांसे की थाली या ढोल की थाप को बजाकर जागर गाथा को सुनाता है।

इस क्षेत्र में जागरण पूजा- “मनुष्य के अनिष्ट के निवारण के लिए की जाने वाली पूजा के रूप में लोक प्रचलित है। इस विधा के अंतर्गत देवी-देवताओं का पूजन किया जाता है, जिनका आयोजन इनको प्रसन्न करने तथा इनकी रुष्टता दूर करने, दोनों ही परिस्थितियों में किया जाता है। देवी-देवताओं का धन्यवाद करने एवं उनके द्वारा लगे किसी दोष-निवारण हेतु भी जागर आयोजित किए जाते हैं। इन दोनों ही परिस्थितियों में देवी-देवताओं द्वारा अपने लिए पूजा माँगी जाती है। देव-दोष का अभिप्राय होता है किसी व्यक्ति विशेष द्वारा देवी-देवता को प्रसन्न कर किसी व्यक्ति विशेष का अहित करवाना अथवा अहित की कामना करना, ऐसी परिस्थिति में देवी-देवता अधीन होकर इच्छित (पूजा करने वाले) व्यक्ति की बात मानते हैं। जागर द्वारा देवी-देवताओं के प्रसन्न होने पर कामना पूर्ति का वरदान मिलता है तथा सुख-समृद्धि का आशीर्वाद प्राप्त होता है वहीं अप्रसन्न होने पर ‘घात’ भी हो सकता है। घात का अर्थ होता है जब कोई व्यक्ति अनायास ही किसी अन्य व्यक्ति को सताता है तो पीड़ित व्यक्ति के हृदय से निकली हुई वेदना जब न्याय की माँग के लिए अपने ईष्ट देवता को याद करती है तो वह देवी-देवता पीड़ित की सहायता करते हैं तथा उसके हित की रक्षा करते हैं, जिससे सताने वाले को कष्ट मिलता है और यही घात कहलाता है। इसी घात का उल्लेख जागर के अंतर्गत किया जाता है। जिस व्यक्ति के घर में या जिस व्यक्ति पर ये घात लगा होता है उसके घर में देवता अनिष्ट करना शुरू कर देते हैं, जैसे घर के प्रभावित व्यक्ति का अनायास रोना शुरू कर देना, घर में किसी की अचानक मृत्यु हो जाना, घर के दरवाजे खिड़की खुद खुल जाना, स्वास्थ्य का शारीरिक अथवा मानसिक रूप से अचानक ही खराब हो जाना इत्यादि विविध अप्रत्याशित घटनाएँ घटनी शुरू होने लगती हैं। इसको दोष लगना कहते हैं, ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति ‘उच्याणा’ (मन्त्र का ही एक रूप) रखता है, जिसमें वह सवा सेर चावल तथा सवा रुपया अलग निकाल के रखता है और

संबंधित देवी-देवता को संतुष्ट अथवा प्रसन्न करने के उद्देश्य से सब कुछ सही कर देने पर पूजा देने का संकल्प करता है। इससे पीड़ित को थोड़ा आराम मिलता है, इसके पश्चात पीड़ित बक्या के पास जाकर अपनी व्यथा बताता है (बक्या वह व्यक्ति होता है, जो पीड़ित के चावल देखकर यह बताता है कि उसके ऊपर किस देवता का दोष है तथा उस पर किसका घात लगा है) फिर वह बताता है कि अमुक देवता पूजा माँग रहा है और उसी अनुसार पीड़ित का परिवार अच्छा दिन देखकर पूजा देने का निर्णय करता है। इसके लिए वह अपने घर को मिट्टी-गोबर से लिपवा कर पूजा-स्थल को गौमूत्र-गंगाजल से स्वच्छ कर आसन बिछा के (जागरी-हुड़क्या) को बुलाकर आसन ग्रहण करवाता है। इसके बाद नर्तक, पशवा तथा पीड़ित परिवार के सदस्य तथा दर्शक श्रोतागण अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लेते हैं। इसके बाद जागरी जागर गीतों का गायन प्रारंभ करता है, जिसके साथ स्वर मिलाने वाले डोलेर भी होते हैं। जागरी के गायन प्रारंभ करने के बाद नर्तक गायन के प्रभाव में आकर नृत्य करना शुरू कर देता है। इस प्रक्रिया में जब किसी व्यक्ति पर देवता का अवतरण होना प्रारंभ होता है तो वह हिलने (कंपन करने) लगता है। इस दौरान एक बर्तन में जलते अंगारों में घी डाल कर धुआँ किया जाता है तथा नर्तक को उस व्यक्ति की ओर किया जाता है, जिस पर देवता का अवतरण हो रहा होता है। इसके पश्चात नर्तक खुल कर पूरी दैवीय ऊर्जा के साथ नृत्य करने लगता है। नृत्य करते हुए वह अपने प्रसन्न व अप्रसन्न होने का कारण बताता है तथा पीड़ित के दोष को दूर करने का वचन देते हुए उपाय बताता है, जिससे पीड़ित को शांति मिलती है। जागर की यह प्रक्रिया गढ़वाल कुमाऊँ के साथ साथ रवाई क्षेत्र में प्रचलन में है तथा विविध समस्याओं के समाधान के लिए आज भी उपयोग में लाई जाती है। जिस प्रकार मनुष्य संगीत की प्रकृति के अनुरूप ही भावाकुल हो नृत्य में मग्न हो जाता है।”<sup>27</sup>

#### निष्कर्ष :

उत्तराखंड की रवाई घाटी में प्रचलित जागर लोक गीत विधा केवल एक धार्मिक अनुष्ठान नहीं है, बल्कि यह सामूहिक स्मृति, लोक न्याय, जातीय इतिहास और

सांस्कृतिक अस्मिता का एक समृद्ध साहित्यिक स्रोत है। इस शोध में यह स्पष्ट हुआ कि जागर गीतों की कथात्मकता, प्रतीकात्मकता, सामाजिक चेतना और भाषिक सौंदर्य न केवल उत्तराखंडी लोक परंपरा को गहराई देते हैं, बल्कि वे आधुनिक साहित्यिक विमर्श के लिए भी महत्वपूर्ण हैं।

मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैं :-

1. जागर लोक गीतों में ऐतिहासिकता और समसामयिकता का समावेश है। ये गीत पौराणिक आख्यानों को वर्तमान समाज की समस्याओं और संघर्षों से जोड़ते हैं।

2. रवाई क्षेत्र के जागर गीतों की भाषिक और सांस्कृतिक विशिष्टता, उन्हें गढ़वाल की अन्य जागर परंपराओं से अलग पहचान देती है।

3. इन गीतों में न्याय की लोक-व्यवस्था, देवता को न्यायाधीश और ढोली को मध्यस्थ के रूप में प्रस्तुत कर एक वैकल्पिक सामाजिक संरचना की झलक मिलती है।

4. स्त्री पात्रों की उपस्थिति, न केवल पौराणिक है, बल्कि वे जागर के माध्यम से न्याय, प्रतिरोध और ऊर्जा का स्वर बनती हैं।

5. आधुनिक समय में जागर का मंचीयकरण और पर्यटन-उन्मुख प्रस्तुति इसके मूल सामाजिक सरोकारों को चुनौती दे रही है, जिससे इसकी प्रामाणिकता और गहराई पर प्रभाव पड़ रहा है।

इस अध्ययन ने न केवल जागर को एक लोक साहित्यिक विधा के रूप में पुनर्भाषित किया है, बल्कि इसे उत्तराखंड के लोक चेतना के वैचारिक दस्तावेज के रूप में भी स्थापित किया है।

जागरण परंपरा के संदर्भ में दिए गए प्रसंगों का उल्लेख स्पष्ट करता है कि जागरण में गाए जाने वाली लोक गाथाएँ केवल दुख निवारण करने की प्रक्रिया तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु स्पष्ट होता है कि जागरण में जिन लोक गाथाओं को गाया जाता है वे गाथाएँ एक दिन में नहीं बनी हैं। इन गाथाओं का प्राचीन महत्व रहा है तथा इन्हे बनने में बहुत समय लगा है और इन्हें गेय रूप में परिणित करके जागर की उपमा प्रदान करके इन गाथाओं

का उपयोग जनमानस के द्वारा अपनी लौकिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए धीरे-धीरे विकसित हुआ, जो सतत और निरंतर चली आ रही है।

रवाई क्षेत्र में जागर ईश्वरीय आस्था के प्रति अटूट विश्वास का नाम है, जो वहाँ का जनमानस अपने देवी-देवताओं, लोक प्रथाओं, संस्कृति, लोक संस्कारों, परंपराओं के प्रति दिखाता है और वहाँ के जनमानस का यही अटूट विश्वास साकार रूप लेकर उनकी समस्याओं का निराकरण करता है। वहीं जागर ऐसी लोक गाथाओं का संरक्षक भी है, जो पूर्व में घटित हो चुकी हो तथा ऊन घटनाओं को वर्तमान में भी जीवित रखे हुए हैं।

डॉ. नंदकिशोर डौंडियाल के अनुसार, “जागर परंपरा बहुत प्राचीन है। इनकी निर्मिती उस समय की मानी जाती है, जब भक्ति का युग था, क्योंकि जहाँ समस्त चराचर प्राणियों का समदृष्ट जागर गीतों के संदेशों से प्रभावित है, वहीं विश्व इतिहास की लोक गाथाएँ, धार्मिक क्रांतियाँ भी जागर गीतों में ही समाहित हैं, क्योंकि एक और जहाँ जागर नाथ पंत का खुला पता है, वहीं वैष्णव तथा शाक्य मत का संरक्षक भी।”<sup>28</sup>

संगीत के अध्ययन से प्रतीत होता है कि जागर लोक संगीत का एक रूप है, जो विशेष प्रकार की सकारात्मक ऊर्जा युक्त ध्वनि संयोजन का सृजन करता है, जिसके पश्चात ऊर्जा का एक ऐसा प्रवाह संचरित होता है कि शारीरिक मानसिक विकारों से रुग्ण व्यक्ति की समस्या का निर्मूलन हो जाता है।

यह जागरण प्रक्रिया मात्र लोक संस्कृति का ही द्योतक नहीं है, अपितु पूर्णतः वैज्ञानिक प्रक्रिया भी है। उत्तराखंड राज्य के गढ़वाल तथा कुमाऊँ क्षेत्र के अनेकों गाँव में इस परंपरा का अवलोकन किया जा सकता है।

इस प्रक्रिया की वैज्ञानिकता के संदर्भ में हरिश्चंद्र श्रीवास्तव ने लिखा है कि-“अकबर के नवरत्नों में से एक महान संगीतज्ञ तानसेन द्वारा अकबर के अनुग्रह पर दीपक राग गाने की प्रक्रिया का उल्लेख है, जिसके परिणामस्वरूप गायन स्थल पर स्वयं तानसेन का शरीर प्रचंड गर्मी से तपने लगा था। प्रचंड गर्मी के प्रभाव से दर्शक एवं श्रोतागण गायन स्थल से भागने लग गए थे।

स्वयं तानसेन भी गर्मी के प्रभाव से तड़पने लग गए थे। ऐसी परिस्थिति में उनकी पुत्री सरस्वती के द्वारा मेघ राग गाने से वर्षा हुई तथा तानसेन के जीवन की रक्षा हो पाई। दीपक व मेघ राग के गायन से जो सकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न हुई।”<sup>29</sup> उसके परिणाम इतिहास में उल्लेखित है। यह प्रक्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक है तथा ध्वनि के सिद्धांतों पर कार्य करती है तथा यही सिद्धांत जागर गायन के लिए भी कार्य करता है। अतः यह एक सांस्कृतिक प्रक्रिया ही

नहीं, अपितु एक सैद्धांतिक प्रक्रिया भी है, जिससे इस परंपरा का महत्व और भी बढ़ जाता है तथा इसे रूढ़िवादी परंपरा की संज्ञा देना न्यायोचित नहीं है। परंतु वर्तमान पलायन की समस्या के कारण जागर परंपरा संकट में है। आज का युवा अपने पारंपरिक ज्ञान परंपरा के मूल स्रोतों से दूर होता जा रहा है। वर्तमान समय में लोक संस्कृति का संकट में होना चिंता का विषय है। लोक संस्कृति की इन परंपराओं को बचाना हमारा मुख्य दायित्व होना चाहिए। □

#### संदर्भ ग्रंथ :

1. गढ़वाल हिमालय में लोक अनुष्ठानों का सांस्कृतिक मैट्रिक्स हिमालयी लोकगीत अध्ययन (2011), पी. डी. दुबे, 5 2 67-8
2. देव संस्कृति गढ़वाल हिमालय, इनका प्रकाशन (2017), डीपीएस नेगी
3. रिचुअल परफॉर्मिंग एंड ओरल एपिक्स इन उत्तराखंड (2010) ध्यानी जी, नई दिल्ली, रावत पब्लिकेशंस
4. साक्षात्कार, श्री बरदास, जागरी ग्राम कोट गाँव उम्र 63, वर्ष दिनांक 17/03/2025
5. गढ़वाली लोक गाथाएँ, गोविंद चातक, पृ. सं 05
6. गढ़वाली लोक गाथाएँ, डॉ गोविंद चातक, पृ. सं. 13
7. हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी (1952), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
8. लोक साहित्य और संस्कृति, रामविलास शर्मा (1980), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
9. आफ्टर एग्नेसिया ट्रेडिशन एंड चेंज इन इंडियन लिटरेरी क्रिटिक्स ओरिएंटल लॉन्गमैन(1992), गणेश जोशी
10. उत्तराखंड का लोक साहित्य (1992), शिवप्रसाद डबराल, अल्मोड़ा बुक डिपार्टमेंट
11. 'उत्तराखंड का सामाजिक इतिहास', डॉ. शेखर पाठक
12. Performing Gods: Ritual Songs of the Central Himalayas. Asian Folklore Studies, Mehta, R. (2016). 75(2), 223-245.
13. द जस्टिस ऑफ गॉड्स जागर एंड ट्रेडिशनल कंफ्लिक्ट रेजोल्यूशन इन गढ़वाल हिमालय इंडियन जर्नल ऑफ कल्चरल स्टडीज, भट्ट डी 2018/ 7/ 1 88-103
14. रवाई की सांस्कृतिक निरंतरता और जागर परंपरा हिमालयन स्टडीज जर्नल, पँवार एम 2014 पृ.सं. 31-42
15. Cultural Ecology of Rawain Valley. Himalayan Heritage2014, मथुरा प्रसाद नौटियाल
16. Ritual and Performance : The Transformation of Jagars in the 21st Century. Indian Anthropologist, (2020) meena joshi 50(2), 145-162.
17. गढ़वाली लोक गाथाएँ : गोविंद चातक, पृ.सं. 26
18. गोविंद चातक, पूर्वोक्त, पृ.सं. 64
19. गोविंद चातक, सिदुवा जागर, पृ.सं. 68
20. गढ़वाली लोक गीत विविधा : गोविंद चातक, पृ.सं. 38
21. गोविंद चातक, पूर्वोक्त, पृ.सं. 39
22. गढ़वाली लोक गाथाएँ : गोविंद चातक, पृ.सं. 14
23. राहुल सांकृत्यायन : हिमालयन परिचय, गढ़वाल, पृ.सं. 135,138
24. गढ़वाली लोक गाथाएँ, गोविंद चातक, पूर्वोक्त, पृ.सं. 12
25. गोविंद चातक, पूर्वोक्त, पृ.सं. 209
26. गोविंद चातक, पूर्वोक्त, पृ.सं. 111
27. साक्षात्कार, श्री देवीप्रसाद उनीयाल, ग्राम कोटगाँव उम्र.73, वर्ष दिनांक. 01/07/2025
28. नंद किशोर डौंडियाल, गढ़वाली जागर लोकगीत तथा प्रक्रिया, विन्सर प्रकाशन
29. हरिश्चंद्र श्रीवास्तव, राग परिचय, भाग 01, पृ.सं. 103,104

## नवजागरण की अधूरी तस्वीर : भारतेंदु युगीन स्त्री-शिक्षा बनाम वीर भारत तलवार की 'रस्साकशी'

शोध-सार :



सुप्रभा महतो

भारतेंदु हरिश्चंद्र को आधुनिक हिंदी साहित्य का जनक माना जाता है। उन्होंने हिंदी भाषा को नई पहचान देने के साथ-साथ समाज में व्याप्त अनेक रूढ़ियों और कुरीतियों पर भी प्रहार किया। विशेष रूप से उन्होंने स्त्री-शिक्षा जैसे संवेदनशील विषय को अपने लेखन के केंद्र में रखा और उसके सामाजिक महत्व को रेखांकित किया। भारतेंदु युग (1850-1885) को हिंदी नवजागरण का प्रारंभिक चरण माना जाता है, जिसमें सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक सुधारों की शुरुआत हुई। यह वह समय था, जब भारतीय समाज परतंत्रता, बाल विवाह, सती प्रथा और पर्दा प्रथा जैसी जटिल समस्याओं से जूझ रहा था और स्त्रियों की स्थिति अत्यंत शोषित और उपेक्षित थी। स्त्री-शिक्षा को लेकर समाज में गहरा विरोध था, फिर भी भारतेंदु जैसे साहित्यकारों ने उसके समर्थन में स्वर उठाया। दूसरी ओर, वीर भारत तलवार (आलोचक और साहित्यकार) भारतेंदु की स्त्री-शिक्षा के समर्थन का समर्थन तो करते हैं, लेकिन उनके सीमित विचारधारा की बेजोड़ आलोचना करते हैं। वे मानते हैं कि भारतेंदु का स्त्री-शिक्षा पर दृष्टिकोण आंशिक रूप से सुधारवादी, किंतु पुरुषवादी और पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रस्त था। स्त्री-शिक्षा की जो धारा नवजागरण काल में भारत में मौजूद है और विशेषकर हिंदी में उसकी अपनी सीमाएँ हैं, किंतु फिर भी उसके महत्व को नाकारा नहीं जा सकता। भारतेंदु काल में स्त्रियों की स्थिति कैसी थी, इसे 'सीमंतनी उपदेश' में देख सकते हैं। भारतेंदु ने अपने लेखन के माध्यम से स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया, लेकिन कुछ सीमाओं के तहत जिसकी आलोचना करते हुए वीर भारत तलवार अपनी पुस्तक 'रस्साकशी' में नजर आते हैं। इस संदर्भ में डॉ. वीर भारत तलवार; जो हिंदी के महत्वपूर्ण आलोचक और चिंतक हैं, भारतेंदु की स्त्री-शिक्षा संबंधी अवधारणाओं का आलोचनात्मक पुनर्पाठ करते हैं। वे मानते हैं कि भारतेंदु युगीन स्त्री विमर्श सुधारवादी तो है, परंतु वह एक सीमित दायरे में बँधा हुआ था और उसमें पितृसत्तात्मक मानसिकता की स्पष्ट झलक मिलती है। तलवार की पुस्तक 'रस्साकशी' में भारतेंदु की विचारधारा का गहन मूल्यांकन किया गया है, जहाँ वे नवजागरण की स्त्री-दृष्टि को अधूरा और एकांगी मानते हैं।

इस शोध आलेख में भारतेंदु युगीन स्त्री-शिक्षा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, उसमें निहित अंतर्विरोध, और वीर भारत तलवार द्वारा प्रस्तुत आलोचनात्मक दृष्टिकोण का सम्यक विश्लेषण किया गया है, ताकि हिंदी नवजागरण की अधूरी

शोधार्थी, हिंदी विभाग  
हैदराबाद विश्वविद्यालय  
हैदराबाद 500046, तेलंगाना  
9304620295  
bitoozmahato@gmail.com

तस्वीर को स्त्री-चेतना के आलोक में समझा जा सके।

### बीज-शब्द :

स्त्री-शिक्षा, भारतेंदु, वीर भारत तलवार, हंटर आयोग, पितृसत्तात्मक मानसिकता, नवजागरण, औपनिवेशिक, पश्चिमोत्तर प्रांत, रस्साकशी।

### मूल आलेख :

हिंदी साहित्य में नवजागरण एक ऐसा युग माना जाता है, जो भारतीय समाज के सामंती अंधकार से आधुनिक चेतना की ओर संक्रमण का प्रतीक रहा है। इस कालखंड में शिक्षा, समाज-सुधार, भाषा और राष्ट्रवाद जैसे विविध विषयों पर गंभीर विमर्श हुआ। परंतु इस सामाजिक-सांस्कृतिक पुनर्रचना में स्त्री की स्थिति एक द्वैतात्मक भूमिका में दिखाई देती है - एक ओर उसे 'माँ', 'भारती', 'देवी' और 'गृहलक्ष्मी' के रूप में आदर्श बनाया गया, वहीं दूसरी ओर उसकी स्वतंत्र चेतना, शिक्षा और सामाजिक भागीदारी को नियंत्रित किया गया। भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे युगप्रवर्तक साहित्यकारों ने जहाँ एक ओर हिंदी भाषा को प्रतिष्ठा दिलाने में महती भूमिका निभाई, वहीं उन्होंने स्त्री विषयक विमर्श को भी अपने लेखन में स्थान दिया। परंतु वह विमर्श भी प्रायः पारंपरिक नैतिकता और पितृसत्तात्मक मूल्यों से संचालित था। स्त्री शिक्षा को स्वीकार किया गया, लेकिन उस शिक्षा का लक्ष्य स्त्री को 'सभ्य', 'सुनियंत्रित' और 'गृहस्थ जीवन के योग्य' बनाना था, न कि उसे आत्मनिर्णायक और राजनीतिक-सांस्कृतिक भागीदारी में सक्षम बनाना।

इस परिप्रेक्ष्य में डॉ. वीर भारत तलवार की आलोचना दृष्टि एक अत्यंत प्रखर हस्तक्षेप के रूप में उभरती है। उनकी पुस्तक 'रस्साकशी' नवजागरण की उस छवि को तोड़ती है, जो अब तक सामाजिक उन्नति और प्रगतिशीलता का पर्याय मानी जाती रही है। तलवार के अनुसार, नवजागरण की यह तस्वीर अधूरी है, क्योंकि इसमें स्त्री के प्रश्न को उसकी सामाजिक-राजनीतिक चेतना के साथ नहीं जोड़ा गया, बल्कि पुरुषवादी सुधार की सीमाओं में समेट दिया गया। यह आलेख इसी वैचारिक तनाव भारतेंदु युगीन स्त्री शिक्षा और वीर भारत तलवार की आलोचना

दृष्टि के बीच एक संवाद स्थापित करने का प्रयास है। उद्देश्य यह है कि नवजागरण को स्त्री विमर्श की कसौटी पर परखा जाए और यह जाना जाए कि क्या वास्तव में यह युग स्त्री की मुक्ति और स्वतंत्रता का पथ प्रशस्त करता है, या फिर वह मात्र नियंत्रण और अनुशासन का नया औजार बनकर रह जाता है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध को भारत में सामाजिक और बौद्धिक उथल-पुथल का समय माना जाता है। अंग्रेजी शासन के प्रभाव, ईसाई मिशनों के प्रसार, मुद्रण-प्रकाशन की शुरुआत और आधुनिक शिक्षण संस्थानों के गठन ने एक नई वैचारिक चेतना को जन्म दिया। इस चेतना को ही हिंदी साहित्य में 'नवजागरण' के नाम से जाना गया। भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) इस नवजागरण के प्रतिनिधि लेखक माने जाते हैं। उन्होंने न केवल हिंदी भाषा और साहित्य को आधुनिक रूप दिया, बल्कि सामाजिक विषयों - जैसे नारी शिक्षा, विधवा विवाह, देशप्रेम और धर्म पर भी गंभीर लेखन किया। यद्यपि यह युग 'आधुनिकता' का वाहक कहलाया।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय समाज में फैली सामाजिक और सांस्कृतिक कुरीतियों को दूर करने के लिए साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही। भारतेंदु ने स्त्रियों की शिक्षा को समाज की प्रगति का अनिवार्य अंग मानते हुए साहित्य का सहारा लिया। उन्होंने अपने निबंधों, नाटकों और कविताओं में स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया। निबंध 'बाल विधवा उद्धार' और 'नारी शिक्षा' में उन्होंने बाल विधवाओं और स्त्रियों के लिए शिक्षा की जरूरत पर बल दिया। वहीं नाटक 'भारत दुर्दशा' में उन्होंने दिखाया कि समाज की दुर्दशा का एक कारण स्त्रियों की अशिक्षा भी है, 'वैदकी हिंसा हिंसा न भवति' में भी स्त्रियों की स्थिति पर चर्चा की गई है। उसी तरह उनकी कविताओं की ओर रुख करें तो पाते हैं कि वहाँ भी स्त्रियों की शिक्षा और नैतिक मूल्यों पर बल दिया गया है। उन्होंने स्त्रियों को पुरुष के समकक्ष रखा और कहा, "नारी नर अरधंग की साँचेहिं स्वामिनी होय।"<sup>1</sup>

इस प्रकार की कथन को कहना उस समय में भारतेंदु के निर्भीकता का परिचायक है। हिंदी साहित्य में नवजागरण

में चूँकि राजा राममोहन राय ने भारतीय नवजागरण संबंधी जिन विचारों को अभिव्यक्ति दी थी, हिंदी में उन विचारों को लाने का काम भारतेंदु ने किया, ऐसा माना जाता है। इसलिए हिंदी साहित्य में नवजागरण का आरंभ भी भारतेंदु हरिश्चंद्र से माना जाता है। वास्तव में जिस प्रकार विश्व के तमाम स्त्री आंदोलनों की शुरुआत पुरुषों ने की, उसी प्रकार हिंदी में भी स्त्री चिंतन का आरंभ पुरुषों से हुआ। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 1874 में स्त्रियों की शिक्षा के लिए 'बालाबोधिनी' नाम की पत्रिका निकाली, जो संभवतः स्त्रियों को समर्पित हिंदी की पहली पत्रिका है। इस पत्रिका का उद्देश्य स्त्रियों को शिक्षित करना था। भारतेंदु की यह पत्रिका हिंदी में स्त्री चिंतन का आरंभ होता है। स्त्री चेतना के विकास में इस पत्रिका का अविस्मरणीय योगदान है। इस पत्रिका में केवल स्त्री संबंधी लेख, विचार आदि छापते थे। भारतेंदु स्त्री शिक्षा के पक्षधर थे। 1873 में 'कविवचन सुधा' में प्रकाशित 'स्त्री शिक्षा' नामक लेख में भारतेंदु कहते हैं कि पश्चिमोत्तर देश में कभी उन्नति नहीं होगी, यदि वहाँ की स्त्री शिक्षित नहीं होगी। वस्तुतः भारतेंदु ने स्त्री शिक्षा की दृष्टि से ही 'बालाबोधिनी' का संपादन भी किया, किंतु वास्तव में वह शिक्षा पुरुष वर्चस्ववादी शिक्षा थी। भारतेंदु युग का स्त्री-स्वातंत्र्य वास्तव में पुरुष-वर्चस्व के घेरे में ही था। भारतेंदु की शिक्षा नीति थी कि स्त्री अपना 'देश और कुल-धर्म सीखें' वास्तव में बालाबोधिनी के प्रथम पृष्ठ में एक निवेदन छपता है कि, "मैं जो कुछ कहूँगी तुम्हारे हित की कहूँगी।"<sup>2</sup> और अंत में यह आशा भी प्रकट की जाती है कि "सभी स्त्रियाँ पढ़ लिखकर पुरुषों की सहभागिनी हो जाएँ।"<sup>3</sup> वास्तव में भारतेंदु स्त्री चिंतन एक अलग ही धारा का स्त्री चिंतन था। वे स्त्रियों को परंपरागत रूढ़ियों से मुक्त तो करना चाहते हैं, किंतु पुरुष वर्चस्व के दायरे से बहार नहीं रखना चाहते हैं। स्त्री को शिक्षित तो करना चाहते हैं, किंतु केवल इतना कि वह अपने पति का सहयोग कर सके और उनकी सहभागिनी बन सके। वस्तुतः भारतेंदु की स्त्री-दृष्टि स्त्रियों को दायम दर्जे की नागरिकता की

वकालत करता है। वीरभारत तलवार ने भारतेंदु की इसी दृष्टिकोण के प्रति कड़ी आलोचना करते हुए कहते हैं कि, भारतेंदु ने स्त्री-शिक्षा की वकालत सही ढंग से नहीं की; नहीं तो स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था में सुधार के काम बहुत पहले से ही शुरू हो गए होते। फलतः आज राष्ट्र की स्थिति कुछ और ही होती। भारतेंदु का यह दृष्टिकोण ही बाद के साहित्यकारों ने अपनाया। मसलन- बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने भी अपने निबंधों में स्त्री-मुक्ति की यह सीमा निर्धारण करते दिखाई देंगे। 19वीं सदी में चूँकि पूरे विश्व में स्त्री आंदोलन बहुत सक्रियता से चल रहा था, अतः हिंदी साहित्य में भी उसका प्रभाव पड़ा। हिंदी साहित्यकारों ने भी स्त्री-जागरण में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, किंतु अपनी पुरुषवादी मानसिकता से बहार नहीं निकल पाए। "स्त्रियाँ किसलिये हैं- हमारे शास्त्रों के अनुसार मर्द को सुख पहुँचना इनका मुख्य काम है"<sup>4</sup> बालकृष्ण भट्ट 'स्त्रियाँ' शीर्षक निबंध का ये पहला ही वाक्य है। प्रतापनारायण मिश्र के यहाँ देखने को मिलता है - "अरबी में नार कहते हैं अग्नि को, विशेषतः नरक की अग्नि को और तत्संबंधी शब्द है नारी। जैसे हिंदुस्तान से हिंदुस्तानी बनता है, वैसे ही नार से नारी होता है, जिसका भावार्थ यह है कि महादुख रूपी नर्क का रूप गृहस्थी की सारी चिंता, सारे जहान का पचड़ा केवल स्त्री ही के कारण ढोना पड़ता है। फारसी में जन (स्त्री) कहते हैं- मारने वाले को - राहजन, नक्रबजन इत्यादि। भला अष्ट मारने वाले का संसर्ग रख के कौन सुखी रहा है। एक फारस के कवि फर्माते हैं, 'अगर नेक बूदे सरजामे जन, मजन नाम न जन नामें जन', अर्थात् स्त्रियों (स्त्री संबंध) का फल अच्छा होता तो इनका नाम मजन होता (मा मारय)। अंग्रेजी में वीम्येन (स्त्री) Woman शब्द में यदि एक ई (श्व अक्षर) और बढ़ा दें तो Woe (वो) शब्द का अर्थ है शोक और म्येन (Man) कहते हैं मनुष्य को। जिसका भावार्थ हुआ कि मनुष्य के में शोक का रूप। धन्य! दुष्टा कटुभाषिणी कुरूपा स्त्रियों की कथा जाने दीजिए।"<sup>5</sup>

इन उदाहरणों से हम भारतेंदु युगीन साहित्यकारों

की स्त्री-चिंतन दृष्टि का अंदाजा लगा सकते हैं। वास्तव में मैनेजर पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है- “स्त्री की स्वाधीनता का सवाल हिंदी नवजागरण का मुख्य सवाल कभी नहीं बन पाया। वह हमेशा हाशिए पर ही रहा। आरंभ में स्त्रियों की पराधीनता और उनकी दारुण स्थितियों के बारे में जो चिंता थी, वह भी बाद में कम हो गई।”<sup>6</sup>

19वीं सदी के नवजागरण में शिक्षा से संबंधित सवाल भी एक अंश था। सन 1882 में भारत की औपनिवेशिक सरकार ने शिक्षा संबंधी समस्याओं को जानने के उद्देश्य से डब्ल्यू.डब्ल्यू.हंटर की अध्यक्षता में एक शिक्षा आयोग बनाया, जिसे हंटर आयोग के नाम से जाना गया। इस आयोग में शिक्षा संबंधी योजना, बदलाव आदि पर बातचीत करने के लिए, नियंत्रण करने के लिए कदम उठाया जाकर विद्वानों का चयन किया गया, जिसमें ‘सर सैयद अहमद’, ‘राजा शिवप्रसाद’, ‘पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र’, ‘बाबू दुर्गाप्रसाद’ वगैरह के साथ भारतेंदु हरिश्चंद्र भी थे। इस प्रकार आयोग के सवालों का जवाब देते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जो विचार व्यक्त किए खासकर स्त्री-शिक्षा संबंधी योजना, संचालन एवं उसके नियंत्रण के प्रश्न पर- उन सब पर हिंदी के आलोचकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया है। लेकिन वीर भारत तलवार ऐसे सशक्त आलोचक हैं, जिन्होंने निर्भीकतापूर्वक बिना पूर्वाग्रह से लिप्त, तथ्यों एवं तर्कों के आधार का एक ऐसा दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं, जहाँ से हिंदी नवजागरण और भारतेंदु के साथ-साथ भारतेंदुयुगीन विचारधारा का स्त्री-शिक्षा पर प्रभाव को नई दिशा मिलती है। हंटर आयोग ने स्त्री-शिक्षा के संबंध में भारतेंदु हरिश्चंद्र से उनके विचार जानने चाहे थे, उसी क्रम में कई सवाल पूछे गए। अतः आयोग को उम्मीद जगी कि भारतेंदु से पूछे गए सवाल-जवाब के उपरांत पश्चिमोत्तर प्रांत की शिक्षा संबंधी विशेषकर स्त्री-शिक्षा समस्याओं से अवगत हुआ जा सकता है। हंटर आयोग ने भारतेंदु से पूछा कि सरकार के शिक्षा विभाग ने लड़कियों के लिए स्कूल खोलने में कितनी प्रगति की है? उसमें कोई सुधार की गुंजाइश हो सकती

है? इस पर अपनी राय बतावें। इस पर भारतेंदु ने कहा, “इस देश में लोगों में अपनी लड़कियों को पब्लिक स्कूल में भेजने की इच्छा नहीं है...इसलिए हमारी सरकार का यह कर्तव्य है कि वह स्त्रीशिक्षा के प्रति लोगों के इस मानसिक अज्ञान को दूर करें। *It is the duty of our Government to remove this ignorance from their minds.*”<sup>7</sup> जब ब्रिटिश सरकार ने कई सरकारी स्कूलों को बंद कर उसे भारतीयों के सहारे निजी स्कूलों में परिवर्तित करना चाहा, तब भारतेंदु ने प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि “मैंने पहले भी कहा कि सरकार ने एक बार में लड़कियों के 200 स्कूल बंद कर दिए, स्कूल इंस्पेक्टरों का ओहदा खत्म कर दिया और बाकी बचे स्कूलों का प्रबंध जिला कमेटियों को सौंप दिया। मुझे अफसोस है कि ये कमेटियाँ इतना भी नहीं जानतीं कि ये स्कूल जिले की किन हिस्सों में हैं; उनमें कैसी शिक्षा दी जाती है। उनकी निगरानी डिप्टी इंस्पेक्टरों के हवाले कर दी जाती है, जो इस काम को शायद ही संतोषप्रद ढंग से कर सकते हैं। उनके दौरों से शायद ही कोई फायदा होता है। उनकी जगह यूरोपीय इंस्पेक्टरों को बहाल करने की सख्त जरूरत है, बशर्ते वह मिशनरी न हों।”<sup>8</sup>

<sup>8</sup> वीर भारत तलवार भारतेंदु के इस तरह की टिप्पणी पर कहते हैं कि उनका ऐसा कहना उचित नहीं था, केवल सरकारी रहम-ओ-करम पर निर्भर रहा नहीं जा सकता खासकर स्त्री-शिक्षा के संबंध में यह नवजागरण काल के विपरीत जा रहा था। वहीं दूसरी ओर भारतेंदु ने यह भी कहा है कि, “सरकार स्त्री शिक्षा के लिए मिशनरियों को काफी धन देती है, लेकिन वे उसका बड़ा हिस्सा ईसाई लड़कियों की शिक्षा पर खर्च करते हैं और उनका मुख्य उद्देश्य धार्मिक शिक्षा देना है।”<sup>9</sup> यहाँ एक ही जगह विरोधाभास की स्थिति नजर आती है, जहाँ एक ओर भारतेंदु सरकार पर पूरी तरह निर्भर रहते हैं, वहीं दूसरी ओर सरकार द्वारा विशेष ध्यान दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा के निष्पक्ष रहते हैं।

पाठ्यक्रम से संबंधित जब हंटर आयोग ने भारतेंदु से सवाल पूछा तो उन्होंने पाठ्यक्रम की आलोचना की

थी और कहा था कि “ये पाठ्य-पुस्तकें कई कारणों से आपत्तिजनक हैं। मैं मिस रोज ग्रीनफील्ड से पूरी तरह सहमत हूँ कि बड़ी लड़कियों को ‘प्रेमसागर’ ग्रंथ पढ़ने के लिए नहीं देना चाहिए। ‘विद्यांकुर’ और ‘इतिहासतिमिरनाशक’ उनके नैतिक चरित्र का विकास नहीं कर सकते। चरित्र निर्माण और घरेलू प्रबंध वगैरह के बारे में बताने वाली अच्छी पाठ्य-पुस्तकें उनके पाठ्यक्रम में लगानी चाहिए।”<sup>10</sup> वीर भारत तलवार भारतेंदु के इसी अनैतिक दृष्टिकोण पर कटाक्ष करते हैं। उनका मानना है कि उस समय जहाँ ये पुस्तकें लड़कों को पढ़ाई जा रही थीं, वहीं इन पुस्तकों को लड़कियों को पढ़ाने का विरोध करना कहाँ तक उचित ठहरता है? वास्तव में इन पुस्तकों का संबंध ज्ञान के विकास से था। “‘इतिहासतिमिरनाशक’ इतिहास पर आधुनिक ढंग से लिखी गई किताब थी तो ‘विद्यांकुर’ आधुनिक पदार्थ विज्ञान और समाजशास्त्र की। भारतेंदु एक ओर आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा को हिंदुस्तानियों के लिए बिल्कुल जरूरी ठहराते थे, दूसरी ओर लड़कियों को इसी ज्ञान-विज्ञान से दूर रखना चाहते थे।”<sup>11</sup> देखा जाए तो जिस हिंदी नवजागरण के अग्रदूत भारतेंदु माने जाते हैं और जिस हिंदी नवजागरण में ‘हिंदी’ से अर्थ हिंदी जाति न रह राष्ट्रीय (हिंदुस्तान) जागरण से लिया जाता है, वहाँ राष्ट्र की समझ में भिन्नता नजर आने लगती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जहाँ राष्ट्र के एक नागरिक का दूसरे नागरिक से परिचय ही न हो; पुरुषों को जो शिक्षा दी जाने की व्यवस्था थी उस समय और स्त्रियों को दी जाने वाली शिक्षा प्रणाली में भी विभिन्नता होगी, तो ऐसे में स्त्री की राष्ट्र की समझ और पुरुष की राष्ट्र की समझ में भी भिन्नता पाई जाएगी। वस्तुतः ‘राष्ट्रीयता’ पदबंध की सार्थकता कैसे पूर्ण हो पाएगी? अतः भारतेंदु का स्त्री-शिक्षा पर इस प्रकार का दृष्टिकोण ‘हिंदी नवजागरण’ पर भी विवादित प्रश्न प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने स्त्री-शिक्षा को सामाजिक उन्नति का एक आवश्यक माध्यम माना, किंतु उनकी शिक्षा संबंधी अवधारणा मुख्यतः परिवार और समाज के भीतर स्त्री की भूमिका

को ‘संशोधित’ करने तक सीमित रही। उनका मानना था कि शिक्षित स्त्री परिवार का संचालन अधिक सुचारु ढंग से कर सकती है और समाज में नैतिक दिशा प्रदान कर सकती है। उन्होंने स्त्रियों को धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने पर विशेष बल दिया ताकि वे पतिव्रता, आज्ञाकारी और परिवार-संस्कारों की वाहक बन सकें। डॉ. वीर भारत तलवार भारतेंदु की इस सीमित और पारंपरिक दृष्टिकोण पर तीव्र असहमति जताते हैं। वे मानते हैं कि स्त्री-शिक्षा का यह स्वरूप वस्तुतः पितृसत्तात्मक व्यवस्था को बनाए रखने का एक आधुनिक औजार बन गया था। तलवार की पुस्तक ‘रस्साकशी’ इसी व्यवस्था की गहराई से आलोचना करती है, जिसमें वे साहित्य, विचारधारा और समाज के अंतर्संबंधों की पड़ताल करते हैं। तलवार के अनुसार, स्त्री-शिक्षा को केवल औपचारिक विद्यालयीन ज्ञान तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसे विचारशीलता, आत्मनिर्णय और सामाजिक मुक्ति की प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए। उनका तर्क है कि हिंदी नवजागरण में स्त्री-शिक्षा पर चर्चाएँ पुरुषवादी मानसिकता से संचालित थीं, जहाँ स्त्रियों को पढ़ाने का उद्देश्य उन्हें एक ‘आदर्श गृहिणी’ बनाना था, न कि स्वतंत्र नागरिक। भारतेंदु के बलिया भाषण ‘भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?’ में यह दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से झलकता है, जहाँ वे कहते हैं- “लड़कियों को भी पढ़ाइए, किंतु उस चाल से नहीं जैसे आजकल पढ़ाई जाती है... ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह आपका कुलधर्म सीखें, पति की भक्ति करें और लड़कों को सहज में शिक्षा दें।”<sup>12</sup>

यह कथन स्पष्ट करता है कि उस समय स्त्री-शिक्षा का लक्ष्य स्वतंत्रता नहीं, बल्कि परंपराओं का सशक्तिकरण था। वीर भारत तलवार का आलोचनात्मक हस्तक्षेप इस प्रवृत्ति को चुनौती देता है और ‘रस्साकशी’ के माध्यम से हिंदी नवजागरण की स्त्री-दृष्टि का गहरा पुनर्पाठ प्रस्तुत करता है। यह कृति साहित्यिक आलोचना को सामाजिक विमर्श की जमीन से जोड़ती है और स्त्री-शिक्षा के प्रश्न को केवल शैक्षणिक नहीं, बल्कि वैचारिक और राजनैतिक रूप से भी उठाती है। □

---

**संदर्भ सूची :**

1. डालमिया, वसुधा, बालबोधनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं.-32
  2. डालमिया, वसुधा, बालबोधनी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं.-31
  3. वही, पृ.सं.-32
  4. <http://www.hindisamay.com/content/27301/1/बालकृष्ण-भट्ट-निबंध-स्त्रियों.csp>
  5. <http://www.hindisamay.com/content/4093/1/प्रतापनारायण-मिश्र-निबंध-स्त्री.csp>
  6. पाण्डेय, डॉ. मैनेजर, अनभै साँचा, पूर्वोदय, दिल्ली, 2002, पृ.सं. 80-181
  7. तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं.-33
  8. तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं.-33
  9. तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं.-34
  10. तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं.-34
  11. तलवार, वीरभारत, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं.-38
  12. हरिश्चंद्र, भारतेंदु, भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है ?, आलोचना (पत्रिका) अंक- जनवरी-मार्च 2001, पृ.सं.-15
-

## राभा समाज में विवाह पद्धति : एक अवलोकन

### शोध-सार :



वर्षा राभा

शोधार्थी, हिंदी विभाग  
नगालैंड विश्वविद्यालय  
कोहिमा परिसर, मेरीएमा - 797004  
☎ 6000156574  
✉ barasha2018@gmail.com

विवाह पुरुष और महिला का सामाजिक रूप से स्वीकृत मिलन है, जिसे पारिवारिक जीवन चक्र का आरंभ माना जाता है। यह यौन व्यवहार के नियंत्रण और प्रजनन एवं संतान के पालन-पोषण से जुड़ा है। विवाह गार्हस्थ्य जीवन का मूल है। पुरुष और स्त्री के व्यक्तित्व का विकास, वंश का उत्थान तथा कुटुंब का संयोजन विवाह से ही संभव है। विवाह मानव समाज संयमित और नैतिक बनाए रखने की एक अत्यंत महत्वपूर्ण तरीका है। स्वतः समाज के निर्माण की भूमिका में इस संस्था का महत्वपूर्ण योगदान है। विवाह प्रत्येक समाज के लिए एक अत्यंत प्रयोजनीय अनुष्ठान है। विवाह ही एक ऐसा बंधन है, जो सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक वैधता प्रदान करता है। थोड़ा और आगे बढ़ कर कहें तो विवाह को कानूनी रूप से भी वैधता प्रदान की जाती है। एक हद तक यह भी कहा जा सकता है कि विवाह नामक संस्था एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक परंपरा एवं संस्कृति की संवाहिका के रूप में कार्य करती है।

भारत का एक राज्य है, असम। विभिन्न जातीय समूहों के साथ-साथ इस राज्य में अनेक जाति-जनजातियाँ भी निवास करती हैं। उनमें से एक प्रधान जनजाति का नाम है राभा। राभा जनजाति का विस्तार असम की सीमा से परे भी है। मेघालय, पश्चिम बंगाल, बांग्लादेश एवं भूटान तक में भी राभा जनजाति की शिनाख्त की जा सकती है।



अनुज कुमार

सहायक अध्यापक, हिंदी विभाग  
नगालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा  
परिसर, मेरीएमा - 797004  
☎ 9402993007  
✉ anuj@nagalanduniversity.ac.in

विवाह की कई पद्धतियाँ हमें राभा जनजाति में देखने को मिलती हैं। इससे पहले कि हम इन पद्धतियों को जानें, इनकी समीक्षा करें यह लाजिमी जान पड़ता है कि हम राभा जनजाति के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी हासिल कर लें। जनजातियों से संबंधित शोध एवं अध्ययन का आकलन करें तो पाएँगे कि अन्य जनजातियों की तरह ही राभा जनजाति पर भी बहुत अधिक पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं, बावजूद इसके जो उपलब्ध हैं, उनके आधार पर हम यहाँ कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं को आकलन करना चाहेंगे, जिनसे राभा जनजाति में होने वाली विवाह-पद्धति से हम परिचित हो सकेंगे। राभा जनजाति की विवाह-पद्धति दूसरों से भिन्न रही है। इसलिए उनकी पद्धति का अपना एक विशिष्ट सौंदर्य है। राभा जनजाति की कुल 10 शाखाएँ हैं- रंदानी, मायतुरी, दाहरि या दाहुरी, पाति, कोच, बितलिया, तोतला, हाना, चंगा और मदाहि। इन शाखाओं में से रंदानी और मायतुरी ही वह दो उप-राभा जनजातियाँ हैं, जिसमें भाषा और संस्कृति अब तक किसी तरह बची हुई हैं। अन्य समाजों की तरह ही राभा समाज में भी विवाह को पवित्र माना जाता है और विवाह की अनेक पद्धतियों से विवाह संपन्न किया जाता है। प्रस्तुत शोधा-

लेख में व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धतियों के माध्यम से विषय पर समुचित अध्ययन किया गया है।

### बीज शब्द :

राभा जनजाति, विवाह-पद्धति, पारिवारिक, सामाजिक, संस्था।

### प्रस्तावना :

जन्म के बाद व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है विवाह। मानव निर्मित समाज को ठीक से चलाने और परिवार को सुचारू रूप से आगे बढ़ाने के लिए विवाह आवश्यक है। मानव समाज ने खुद को पशु वर्ग से इतर रखने के लिए विवाह की व्यवस्था की। विवाह एक मांगलिक कार्य के रूप में समाज में प्रचलित होता आ रहा है। विवाह एक सामाजिक संस्कार है। इसका मुख्य उद्देश्य संभवतः एक जोड़े को वैधता प्रदान करना होगा, तदोपरांत वंश वृद्धि का उद्देश्य सामने आया होगा। पुरुषों और स्त्रियों के बीच संबंधों का यह रूप समाज द्वारा बनाया गया है तथा इसे वैधता प्रदान की गई है। यहाँ तक कि स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक (सहजात) मिलन से पैदा हुए बच्चे को भी समाज स्वीकार करता है। इन्हीं स्पष्ट कारणों से विवाह को एक सामाजिक संस्कार कहा जाता है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, "Marriage is the formal union of a man and a woman by which they become husband and wife." अर्थात् विवाह एक पुरुष और एक स्त्री के बीच होने वाले औपचारिक संबंध, जिसके द्वारा वे पति-पत्नी कहलाते हैं।

प्रत्येक जातीय समूह में विवाह समारोह अथवा पद्धति अपने आप में एक दिलचस्प सामाजिक व्यवहार है। सबके अपने रीति-रिवाज होते हैं, प्रथाएँ होती हैं, जो अपने आप में अनूठे और आकर्षक होते हैं।

असम विभिन्न जाति-जनजाति से भरा एक समृद्ध राज्य है। आहोम, बोडो, नेपाली, गारो, कार्बि, देउरी, ठेंगाल कछारी, सोनोवाल कछारी, सरणीया कछारी, तिवा, मिरि, कोच-राजवंशी, मोरान, खासी आदि की तरह ही राभा जनजाति के भी अपने रीति-रिवाज हैं। हर जातीय समूह के यहाँ विवाह की पद्धति पारंपरिक रूप से भिन्न

होती है। हर समाज अपने ढंग से काम करता है। वह अपनी सुविधा के अनुसार अपने कामों को पूरा करता है। उसके पूरा करने के तौर-तरीके दूसरे समाज के तौर-तरीकों से अलग होते हैं। बातर्ज राभा समाज का भी अपना एक तौर-तरीका है। विवाह भी एक ऐसा कार्य अथवा अनुष्ठान है, जो राभा समाज अपने तरीके से पूर्ण करता है। इस आलेख में हम उनकी विवाह-पद्धति पर एक सरसरी निगाह डालने का प्रयास कर रहे हैं।

राभा समाज समय, सुविधा और समार्थ्य अनुसार विवाह कार्य संपन्न करने में विश्वास रखता है। राभा जनजाति के विवाह विभिन्न पद्धतियों द्वारा किया जाता है; विभिन्न विद्वानों का मानना है कि राभा समाज की विवाह-पद्धतियों में मतभेद हैं; बानगी के तौर पर विशिष्ट लेखक मणि राभा के अनुसार राभा विवाह-पद्धति के 6 प्रकार हैं, इसी प्रकार विशिष्ट साहित्यिक डॉ. उपेन राभा हाकाचाम के अनुसार 5 प्रकार की विवाह-पद्धतियाँ पाई जाती हैं। वहीं लेखक राजेन राभा के अनुसार 5 प्रकार हैं और 'राभा समाजर आइन आरू दण्डविधि' (CUSTOMARY LAW AND PENAL CODE OF THE RABHA SOCIETY) में 8 प्रकार की विवाह-पद्धतियों का वर्णन हमें मिलता है।

सो, 'राभा समाजर आइन आरू दण्डविधि' के अनुसार यहाँ हम विवाह-पद्धति के आठ (8) भागों पर चर्चा करेंगे, जो कि इस प्रकार हैं- 1. काम्बुं जोरछिनि., 2. बरिछिकाय या बरिछिंकाय जोरछिनि., 3. नोक धांकाय जोरछिनि., 4. कायविकाय जोरछिनि., 5. जाडय धांकाय जोरछिनि., 6. क्रांचि जोरछिनि., 7. मेखोकाय जोरछिनि., और 8. बितल जोरछिनि।<sup>1</sup>

1. काम्बुं जोरछिनि ( प्राचीन राजसिक विवाह )-

इस प्रकार की पद्धति में विवाह के चार चरण होते हैं, जो कि निम्नलिखित हैं-

### (क) लड़की देखने की व्यवस्था/प्रथा :

इस पद्धति के अनुसार लड़की को देखने से पहले लड़के के परिवार के साथ गाँव का एक सम्मानित परिवार भी उनके साथ लड़की देखने जाता है और उन्हें जोरकाय\* (समाज में सम्मानित पति-पत्नी) के रूप में संबोधित

किया जाता है। ऐसे जोरकाय\* परिवार को साथ लेने से पहले एक जोड़ा ताम्बुल-पान देकर उनका स्वागत किया जाता है। लड़का-लड़की/दूल्हा-दुल्हन दोनों की तरफ से जोरकाय\*(सम्मानित पति-पत्नी) होना एक अनिवार्य नीति के रूप में इस पद्धति में शामिल है।<sup>2</sup>

#### (ख) जोरकाय निर्वाचन :

हर कोई भी जोरकाय\*(सम्मानित पति-पत्नी) नहीं हो सकते। किसी भी समाज में सम्मानित जोरकाय\* वही हो सकते हैं, जिनका विवाह भी काम्बुं जोरछिनि\* (प्राचीन राजसिक विवाह) पद्धति से हुआ हो। ऐसे ही दंपति को उपयुक्त माना जाता है और उन्हें ही इस शुभ अवसर पर आमंत्रित किया जाता है। संतानहीन पति-पत्नी भी जोरकाय\* नहीं हो सकते हैं। लड़का-लड़की देखने से लेकर विवाह से आठ मंगला\*( शादी के ठीक सात दिनों बाद दंपति को लड़की के घर जाने की परंपरा) तक हर एक मांगलिक कार्य का दायित्व जोरकाय\* द्वारा ही किया जाता है।<sup>3</sup>

#### (ग) चार कोणवाला थैला लेने का दायित्व :

यह थैला लड़के की बहन को दिया जाता है। यदि सगी बहन न होने की स्थिति हो तो उसकी चचेरी या ममेरी बहन को यह थैला प्रदान किया जाता है। यदि वहाँ भी बहन न हो तो सबसे करीबी रिश्तेदार में लगने वाली बहन, जो उससे उम्र में छोटी हो उसे दिया जाता है। यह निश्चित किया जाता है कि थैला एक दिन में ही बुने हुए कपड़े से बना होना चाहिए।<sup>4</sup>

(घ) चार कोणवाले थैलों में ले जानेवाली सामग्री:

- i) कांच या पीतल के एक टीमी (ढक्कन वाले)
- ii) हिरन के सींगों से बनाया गया एक चाकू
- iii) कुछ पैसे (आवश्यकतानुसार)
- iv) ताम्बुल-पान, जोंगा मद\* (एक प्रकार की मदिरा), दियासलाई<sup>5</sup>

इस पद्धति में राभा भाषा में मंत्र उच्चारण करके राभा चादर (काम्बुंग) से पूरे शरीर को ढँक कर विवाह मनाया जाता है, इसलिए इस विवाह को 'काम्बुंग' नाम दिया गया है। लड़का-लड़की देख कर शादी तय करते हैं।

लड़के की तरफ से लड़की को पानचिनी\* (लड़कों वालों के तरफ से लड़की के लिए दिए गए वस्त्र और गहना) प्रदान की जाती है। अलग-अलग अंचल विशेष में पानचिनी\* में दुल्हन के लिए अलग-अलग सामग्री दी जाती है। बावजूद इसके एक साम्यता भी देखने को मिलती है। मसलन-पोशाकों में भिन्नता हो सकती है, किंतु कुछ वस्तुओं की एकरूपता बनी रहती है। तेल-सिंदूर, कंधी-आइना, अलंकार और रिफान\*(मेखला)-काम्बुंग(चादर) ऐसी ही कुछ वस्तुएँ हैं। एक कुँवारी लड़की और महिलाओं द्वारा दुल्हन को आँगन के बीच में एक पीढ़ा पर पूर्व दिशा की ओर मुँह कर के बिठाया जाता है और दुल्हन को यह आजादी होती है कि वह अपना जुड़ा खोल सके। जुड़ा खोलने के बाद दूल्हे के घर से कुछ औरतें दुल्हन के माथे पर तेल लगाकर कंधी कर देती हैं और उनमें से ही एक औरत, माँग में सिंदूर लगा देती है। रिछि बाबा\*( राभा जनजाति में पूजे गए देवता) के नाम पर दीया जलाते हैं और केले के पत्ते पर केले और चावल से बने प्रसाद को बाँटते हैं और वहाँ मौजूद सभी देवता का आशीर्वाद लेते हैं।

इस प्राचीन विवाह-पद्धति में तो-थाता (एक जोड़ा मुर्गा/मुर्गी बलि देने की प्रथा) की परंपरागत प्रथा रही है। किंतु आजकल यह देखने में आया है कि बलि देने और न देने का विकल्प भी रखा जाने लगा है। इस दिन दुल्हन के घर में रोजमर्रा के सामान्य भोजन की व्यवस्था सभी लोगों के लिए की जाती है। शादी के दो-तीन दिन पहले दूल्हा वालों के घर की ओर से कोई भी दो पुरुष दुल्हन के घर दाखर रिनची\* ( गोत्र के लिए पान-ताम्बुल का एक भेंट) लेकर आते हैं। शादी के दिन पुनः दूल्हे के घर की ओर से दाखर रिनची\* दिया जाता है। शादी के दिन दुल्हन सुबह शुद्धिकरण करके नहाती है। नहाने के बाद दूल्हे की ओर से दिए गए कपड़े, अलंकार पहनकर वह तैयार होती है और शुभ समय आने पर जीजा जी या भैया की गोदी में आँगन में लोगों के सामने उसे खड़ा किया जाता है। विवाह संपन्न होने के बाद गाँव वाले और माता-पिता का आशीर्वाद लेकर दुल्हन दूल्हे के घर रवाना होती है। दुल्हन के साथ उसकी कुछ सहेलियाँ या आत्मीय भी साथ हो लेते हैं। दुल्हन के दूल्हा के घर पहुँचते ही

दुल्हन के पैर धोए जाते हैं। उसके बाद दूल्हा, दुल्हन दोनों पक्ष ही दो चलनी (इसमें एक मांगलिक दीया रखा जाता है) की अदला-बदली करते हैं। सर पर और आस पास के लोगों पर चावल फेंक कर दुल्हन का स्वागत किया जाता है। तत्पश्चात दुल्हन को दूल्हे के घर में प्रवेश करने दिया जाता है और आँगन में दुल्हन को दूल्हे की दाईं तरफ बिठाया जाता है। इसी समय कुछ जगहों पर मुर्गी की बलि-प्रथा को देखा जा सकता है। आजकल यह देखने को मिलता है कि दूल्हा-दुल्हन को लगुण\*(जनेऊ) बाँधा जाता है और गाँव के खामाल\*(पुरोहित) मंत्र गाकर आशीर्वाद देते हैं। पुरोहित के साथ पूरे गाँववाले हरि ध्वनि देकर दूल्हा-दुल्हन को आशीर्वाद देते हैं। दूल्हा-दुल्हन गाँववालों से आशीर्वाद लेते हैं और दोनों के लगुण\* के बंधन को खोल दिया जाता है। दुल्हन के घर आगमन की सारी प्रक्रिया हो लेने के बाद दुल्हन घर आए सभी मेहमानों को खाना परोसने का काम करती है। आजकल यह भी देखा गया है कि मात्र नियम की खानापूर्ति हेतु एक केले के पत्ते पर गाँववालों के नाम पर खाना परोस दिया जाता है अथवा दूल्हा-दुल्हन द्वारा खाने के बर्तन छू देने भर से भी यह रिवाज पूरा मान लिया जाता है। उसके बाद नोकछामी (लड़कीवाले) को बड़े आदर और सत्कार के साथ विदा किया जाता है।

इस विवाह-पद्धति में दूल्हा-दुल्हन द्वारा पहने गए कपड़े परंपरागत जातीय पोशाक होते हैं। नीचे इस विवाह-पद्धति में प्रयोग होने वाले कपड़ों और अलंकारों के बारे में लिखा गया है।

### ( 1 ) दुल्हन के कपड़े :

- (i) खदबां छकबा (लाल रंग)- सिर बांधनेवाला कपड़ा-1
- (ii) काम्बुं छकबा- छाती बांधनेवाला कपड़ा-1
- (iii) पतुलेख धुतुरी- काम्बुं के अंदर बांधनेवाला-1
- (iv) रौफान छकबा (लाल पातानि)- मेखला
- (v) जूता या चप्पल (सफेद)-1
- (vi) बुछिल (लाल रंग )- ब्लाउज- 1
- (vii) दोतारि-(एक प्रकार की ब्लाउज)- 1<sup>6</sup>

### ( 2 ) दुल्हन के अलंकार :

- (i) रौबाक माला- पातानि के ऊपर कमड़ में पहननेवाली माला।
  - (ii) चन्द्रहार या चन्द्रमुखी हार- गले में पहननेवाली चाँदी का हार।
  - (iii) बोला या बगला या बोदुकुम- सोना या चाँदी की कानों के ऊपर अंश में पहननेवाला अलंकार।
  - (iv) नामब्रि या मुदकर- सोना या चाँदी की कानों के नीचे अंश में पहननेवाला अलंकार।
  - (v) डाला या ढाला- कान के अलिंद में पहननेवाला अलंकार।
  - (vi) नाकापति या नूकुम पार- नाक में पहननेवाला अलंकार।
  - (vii) खुछुमाक्रां- बालों के जुड़ा में पहननेवाला अलंकार।
  - (viii) छन तोक्का-ताम से निर्मित कंगन।
  - (ix) छन गाग्रां- शंख से निर्मित कंगन।
  - (x) छन गोटा- चाँदी से निर्मित कंगन।
  - (xi) हांचा या हाता- गले में पहननेवाला अलंकार।
  - (xii) हाथ बाजु- कंगन के साथ पहननेवाला अलंकार।
  - (xiii) काटा बाजु- बाहों में पहननेवाला अलंकार।
  - (xiv) जिंझिरि- सोना की हार।
  - (xv) बाउति- कंगन।
  - (xvi) भरि खारू-चाँदी से निर्मित पैरों में पहननेवाला अलंकार।
  - (xvii) चाचाकम् - अँगुठी।
  - (xviii) मल खारू- कंगन।
  - (xix) मायार चिंचाप- कंगन।
  - (xx) अस्त्र के रूप में दुल्हन के हाथों में मृग के सींग द्वारा निर्मित एक चाकू।<sup>7</sup>
- ### ( 3 ) दूल्हा के कपड़े और अलंकार :
- (i) जामा बका (सफेद रंग )- निचले अंश में पहननेवाला कपड़ा -1
  - (ii) खपं या खप्रं (सफेद)- सिर बांधनेवाला कपड़ा-1

- (iii) पाजार या फाकचेक ( भूरा रंग)- गले में लिया जाता है -1
- (iv) पाजार या फाकचेक (हरा रंग) डू गले से कमड़ तक एक तरफ पहननेवाला कपड़ा-1
- (v) पार आंछ (भूरा रंग)- कमड़ बाँधने वाला एक कपड़ा-1
- (vi) गैंडा के चर्म से निर्मित ढाल-1
- (vii) तरवाल-1
- (viii) बुकछिल (जैकट) (भूरा, हरा, सफेद)-1
- (ix) कमीज- कपाह, मुगा अथवा पाट से निर्मित -1
- (x) जूता या चप्पल (सफेद)-1
- (xi) छिरि चाचाकम (चाँदी की अंगूठी)-1
- (xii) जिंझिरि- सोना या चाँदी की हार।<sup>8</sup>

समय के साथ इस विवाह-पद्धति के परिवर्तित रूप हमें देखने को मिलते हैं।

### 2. बरिछिकाय या बरिछिकाय जोरछिनि ( परिवर्तित राजसिक विवाह ) :

इस विवाह-पद्धति के अंतर्गत भी कुछ चरण शामिल हैं, जो निम्नवत हैं -

(क) इस विधि के अनुसार लड़की अथवा लड़के के घर, दोनों तरफ के माँ-बाप के साथ सभी आत्मीय-स्वजन लड़की अथवा लड़के को देखने जाते हैं। यदि लड़का अथवा लड़की पसंद आ जाए तो ऐसी स्थिति में लड़की के माथे पर तेल लगाकर सिंदूर दिया जाता है और लड़के के माथे पर तेल लगाया जाता है। इसके बाद एक तय किए हुए दिन में विवाह संपन्न किया जाता है।

(ख) पोशाक और अलंकार - दुल्हन की पोशाक, आ-अलंकार काम्बुं जोरछिनि\* (प्राचीन राजसिक विवाह) पद्धति जैसा ही होता है, लेकिन कपड़ों को पहनने का तरीका और साज-सज्जा में कुछ परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यह जरूर है कि माता-पिता राभा जातीय पोशाक परिधान ही पहनते हैं।<sup>9</sup>

### 3. नोक धांकाय जोरछिनि ( स्वनिर्णय के आधार पर किया जाने वाला विवाह ) :

विवाह की तीसरी पद्धति में प्रेम को प्रधानता प्रदान दी जाती है। अन्य पूर्वोक्त की जनजातियों की तरह ही

प्रेम उपरांत विवाह को राभा जनजाति में भी बहुत ही सहज रूप से स्वीकार किया जाता है, मान्यता दी जाती है। लड़का, लड़की एक-दूसरे के घर खुद अपनी मर्जी से चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में गाँव वाले बायंका\*(पुजारी) द्वारा मुर्गा-मुर्गी बलि दी जाती है और रिछि बाबा\* को बलि उचर्गा\*(अर्पण) करके अर्थात् तो-थाता\* (एक जोड़ा मुर्गा बलि देना कार्य) करके लड़के-लड़की को पति-पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। विवाह में जो अन्य कार्य अथवा नियम होते हैं, उसके लिए कुछ अवधि भी दी जाती है। दम्पति, एक साल अथवा दो साल के भीतर काचारस\*(छोटा खाना) अथवा पाकारस\*(बड़ा खाना) देकर समाप्त कर सकते हैं।<sup>10</sup>

### 4. कायविकाय जोरछिनि ( जबरदस्ती कराया जाने वाला विवाह ) :

इस विवाह-पद्धति को राभा समाज में परंपरागत वैधता प्रदान की गई है। हालाँकि, समकालीन समाज में अब ऐसी विवाह-पद्धति के लिए कोई जगह नहीं रह गई है। इस विवाह-पद्धति को आप जबरिया विवाह की भी संज्ञा दे सकते हैं। अंतर सिर्फ इतना है कि उत्तर भारत में जहाँ केवल लड़का ऐसे विवाह का शिकार होता था, वहीं राभा समाज में लड़का अथवा लड़की कोई भी पसंद आने पर जबरिया उठाया लिया जाता था, किंतु विवाह से पहले दोनों की सहमति अवश्य ली जाती थी, जोकि उत्तर भारत के इलाकों में देखने को नहीं मिलता। राभा जनजाति में परिवारों को विश्वास में लिया जाता था। यह सद्कार्य समाज के बड़ों द्वारा किया जाता था। ऐसे में राभा समाज ऐसे विवाह को गलत नहीं मानता था। लकड़ी काटने या जमा करने, मछली पकड़ने, खेत में काम करने, पानी भरने के दौरान या किसी भी समय जब लड़का अथवा लड़की घर से बाहर हुआ करते थे उन्हें उठा लिया जाता था और उसी दिन तो-थाता\* करके विवाह कार्य संपन्न कर दिया जाता था। इस विवाह-पद्धति में भी समय दिया जाता था कि नवदंपति सभी औपचारिक रीति-रिवाजों पाकारच\* को पूरा कर सकें। ऐसी विवाह-पद्धति में पोशाक अथवा अलंकार को बहुत महत्व नहीं दिया जाता था। जैसे कपड़े वे पहने होते थे, उसी में तो-थाता करके विवाह संपन्न करा दिया जाता था। यह विवाह-पद्धति अब मृतप्राय ही है।<sup>11</sup>

## 5. जाड्य धांकाय जोरछिनि ( जमाई वाला विवाह ):

कुछ मामलों में लड़के घर-जमाई बनने की इच्छा जताते हैं। ऐसी स्थिति में यदि लड़के को लड़की वाले पसंद कर लेते हैं और लड़के वालों को भी कोई आपत्ति नहीं होती तो लड़के को बड़े आदर-सम्मान के साथ लड़की के घर लाया जाता है। इसी विवाह-पद्धति को जाड्य धांकाय जोरछिनि\* कहा जाता है। दूल्हा-दुल्हन को काम्बुं जोरछिनि\* की तरह पोशाक, अलंकार पहनाकर विवाह संपन्न किया जाता है।

भविष्य में यदि लड़की अपने पिता के घर किसी कारणवश नहीं रहना चाहती है तो दोनों के घरवालों से परामर्श लेकर लड़की, लड़के के घर जाकर रह सकती है।<sup>12</sup>

## 6. क्रांछि जोरछिनि ( विधवा-विवाह ) :

इस विवाह पद्धति के भी अंतर्गत कुछ चरण शामिल हैं, वे हैं :-

(क) कोई विधवा स्त्री के साथ अगर अविवाहित पुरुष विवाह करना चाहता है तो उसे तो-थाता कर के विवाह करा दिया जाता है। वहीं, अगर कोई लड़का या अविवाहित पुरुष किसी विधवा के घर में जमाई बनकर रहने की इच्छा रखता है तो ऐसी स्थिति में अगर विधवा महिला सहमति प्रदान करती है तो गुप्त विवाह-पद्धति से विवाह करा दिया जाता है। इस तरह के विवाह में ढोल अथवा अन्य वाद्ययंत्र नहीं बजाए जाते। विवाह में परिवारवाले, राजसिक-पद्धति अथवा काचारच\* देकर भी विवाह सम्पन्न कर सकते हैं। पोशाक एवं अलंकार की अनिवार्यता इस विवाह-पद्धति में नहीं होती है। अपनी मर्जी के कपड़े पहनने की स्वतंत्रता होती है।

(ख) एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यदि कोई बहू बच्चे के पैदा होने से पहले ही विधवा हो जाती है और माँ-बाप के घर नहीं जाना चाहती तो उसकी शादी सास-ससुर अपनी बेटी की तरह ही कर सकते हैं। किसी और समाज में इस प्रकार की व्यवस्था दुर्लभ है।<sup>13</sup>

## 7. मेखोकाय जोरछिनि ( भगा के करने वाले गुप्त विवाह ) :

राभा समाज में भागकर भी शादियाँ की जाती हैं।

ऐसे विवाह दो प्रकार से संपन्न किए जाते हैं। जैसे- (क) गुप्त विवाह और (ख) सार्वजनिक विवाह।

(क) गुप्त विवाह- प्रेम और अभाव की स्थिति में इस प्रकार के विवाह कार्य संपन्न किए जाते हैं। हर परिवार की तरह राभा जनजाति में भी विवाह की उम्र होने पर माँ-बाप को अपने बच्चों के सुखद भविष्य की चिंता सताने लगती है। अच्छे परिवार में अपने बेटी अथवा बेटे का विवाह वे भी कराने की ख्वाहिश रखते हैं। किंतु अभावग्रस्त होने के कारण वे ऐसा कर पाने में असमर्थ होते हैं। ऐसे में मेखोकाय जोरछिनि\* की स्थिति उत्पन्न होती है। दूसरी स्थिति प्रेम की होती है। अपने प्रेम को एक निर्णायक मंजिल पर पहुँचाने के लिए लड़का लड़की भागकर विवाह कर लेते हैं। लड़के वाले उसी रात, आत्मीय लोगों को बुलाकर तो-थाता\* करके गुप्त विवाह संपन्न कर देते हैं।

संभ्रात या अमीर परिवार के बच्चों जब प्रेम करते हैं तो उन्हें विवाह करने में कई प्रकार की अड़चनें आती हैं। प्रतिष्ठा और सम्मान का हवाला देकर दबंग परिवारजन ऐसे संबंधों को स्वीकार्यता प्रदान नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों को परिणय-सूत्र में बँधने का भी अवसर नहीं प्राप्त होता। बच्चे चोरी-छिपे भागकर किसी मंदिर या कोर्ट में शादी कर लेते हैं और कई दिनों तक घर नहीं लौटते। अक्सर ऐसा देखा गया है कि लड़के-लड़की के परिवार-जनों का मन बदल जाता है और किसी दोस्त के माध्यम से दंपति को घर बुला लिया जाता है। उनकी वापसी की सूचना समाज भर को दे दी जाती है। इस मामले में, भले ही लड़की किसी अन्य समुदाय या जाति या अन्य धर्म से हो, राभा समुदाय उसे अपना लेता है और बाद में लड़की के परिवार के माता-पिता को सामाजिक रूप से सूचित किया जाता है।

(1) अ-गुप्त विवाह (सार्वजनिक विवाह)- ऐसी स्थिति में जहाँ प्रेमी-प्रेमिका को भगाकर ले जाते हैं, वहाँ लड़के के घर वाले गाँव वालों के साथ मिलकर विवाह का एक तारीख तय कर उनका विवाह करवा देते हैं। अगर घर वाले उनके रिश्ते को स्वीकृति नहीं देते हैं तो वे मंदिर या कोर्ट में अपना विवाह कर सकते हैं ताकि वे अपने प्रेम-

संबंध को बचाए रख सकें। अक्सर देखा गया है कि विवाह के बाद घर वाले भी उनके रिश्ते को अपना लेते हैं।<sup>14</sup>

#### 8. बितल विवाह (अस्वीकृत विवाह) :

यह देखने में आता है कि राभा जनजाति में एक ही गोत्र वाले के बीच विवाह निषेध रहा है। समान गोत्र वाले के बीच यदि प्रेम हो जाए और लड़की गर्भवती हो जाए तब उसका प्रायश्चित्त करा कर पुनर्विवाह करा दिया जाता है।<sup>15</sup>

इस तरह के विवाह भी राभा समाज में नियमानुसार विवाह प्रचलित होते आ रहे हैं। संभवतः आगे भी चलते रहेंगे।

#### निष्कर्ष :

विवाह एक सामाजिक अनुष्ठान है। राभा समाज में

विवाह-पद्धति एक समृद्ध और जीवंत परंपरा है, जो इस समुदाय की सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान को दर्शाती है। यह न केवल दो व्यक्तियों का मिलन है, बल्कि दो परिवारों और दो समुदायों को जोड़ने का जरिया भी है। बदलते समय के साथ विवाह-पद्धति में कई परिवर्तन देखे जा रहे हैं, फिर भी राभा समाज अपनी परम्पराओं को संरक्षित करने और उन्हें आधुनिकता के साथ संतुलित करने का प्रयास कर रहा है। विवाह के रीति-रिवाज और अनुष्ठान न केवल सामुदायिक एकता को बढ़ावा देते हैं, बल्कि अगली पीढ़ी को सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं से जोड़े रखते हैं। ये विवाह-प्रथाएँ राभा जनजाति की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक हैं और उनकी सामाजिक संरचना को मजबूती प्रदान करती हैं। □

#### संदर्भ सूची :

1. RHAC. CUSTOMARY LAW AND PENAL CODE OF THE RABHA SOCIETY, RHAC दुधनै, प्रथम प्रकाशन, 2020. पृ. सं.110
2. वही, पृ. सं.117
3. वही, पृ. सं.117
4. वही, पृ. सं.117
5. वही, पृ. सं.117
6. वही, पृ. सं.110
7. वही, पृ. सं.111
8. वही, पृ. सं.111
9. वही, पृ. सं.112
10. संपा.दिहिंगीया,बिपुल कुमार, दास, प्रशांत.उत्तर पूर्वांचलर विवाह पद्धति.प्रथम प्रकाशन, रेखा प्रकाशन. गुवाहाटी, 2019. पृ. सं. 91
11. RHAC. CUSTOMARY LAW AND PENAL CODE OF THE RABHA SOCIETY, RHAC दुधनै, प्रथम प्रकाशन, 2020. पृ. सं.113
12. वही, पृ. सं.114
13. वही, पृ. सं.114
14. वही, पृ. सं. 115
15. वही, पृ. सं.116

## ‘देखा है उन्हें’ : रवींद्र उपाध्याय की कविताओं से गुजरते हुए



रजनीश कुमार

### शोध-सार :

रवींद्र उपाध्याय के लिए कविता करना एक ठहराव लाने जैसा है, कोई भागमभाग नहीं। कवि को सर्जक माना गया है और सृजन का संतोष तभी प्राप्त किया जा सकता है, जब सर्जक की कला प्रभावित कर सके। एक विशिष्ट कला-मर्मज्ञ के रूप में शब्दकर्मी रवींद्र उपाध्याय की कविताओं से गुजरना बिना ठहराव के संभव नहीं। उनकी कविताओं में सूक्ष्म से सूक्ष्मतर दृष्टि का विन्यास दिखाई देता है। ‘देखा है उन्हें’ शीर्षक इस तथ्य को संपुष्ट करता है कि कवि ने मनुष्य के संघर्षशील जीवन से साक्षात्कार किया है। ‘देखा है उन्हें’ में अड़तीस कविताएँ संकलित हैं। प्रत्येक कवि की प्रत्येक कविता पाठक को पसंद हो यह जरूरी तो नहीं और यह भी जरूरी नहीं कि किसी एक कवि की सभी कविताएँ अच्छी ही हों। लेकिन यह बताते हुए बड़ी खुशी हो रही है कि ‘देखा है उन्हें’ संग्रह की लगभग सभी कविताएँ जीवन के कठिन दौर का वृत्तांत हैं। इस संग्रह में प्रेम है, सजगता है, भूख है, सपने आदि जिंदगी के विभिन्न पड़ाव हैं। रवींद्र उपाध्याय के लिए कविता कोई जादुई कलात्मकता नहीं और केवल शब्द-विधान का परिप्रेक्ष्य मात्र नहीं, अपितु जीवन के साथ गहरा तालमेल है। इनकी कविताओं में संवेदना मनुष्य मात्र तक सीमित नहीं, अपितु कटे हुए पेड़, चिड़िया और पेड़ों के गंजापन होने तक के प्रति उभरती है। प्रस्तुत शोधालेख कवि के सुंदर सपने और समकालीन यथार्थ का मूल्यांकन करने की यथासंभव कोशिश है।

### बीज शब्द :

मूल्य, जीवन-मूल्य, संवेदना, स्वाभिमान, प्रश्नाकुलता, समकालीनता, प्रकृति, यथार्थ।

### मूल आलेख :

भाषा की सर्जना में प्रतिभा का नायक कवि रवींद्र उपाध्याय की अधुनातन काव्य-कृति ‘देखा है उन्हें’ का प्रथम संस्करण 2019 में प्रकाशित है। वे कविता के साथ-साथ गीत और ग़ज़ल भी लिखते हैं। उनकी पहली कृति 1990 ईस्वी में ‘बीज हूँ मैं’ मुक्तच छंद की कविता का संग्रह प्रकाशित है। इसके दस वर्ष उपरांत 2000 ईस्वी में ‘धूप लिखेंगे-छाँह लिखेंगे’ गीत-ग़ज़ल का संयुक्त संग्रह प्रकाशित हुआ। रवींद्र उपाध्याय कविता में प्रीति का पाथेय निर्दिष्ट करने वाले कवि हैं। इनकी कृतियों के प्रकाशन वर्ष का इतना दीर्घ अंतराल कवि के काव्य चिंतन पर सोचने-विचारने का अनायास ध्यान आकृष्ट करता है। 1990 ईस्वी में

शोधार्थी, हिंदी विभाग  
त्रिपुरा विश्वविद्यालय  
त्रिपुरा - 799022  
☎ 7856888633  
✉ hirkjha@gmail.com

प्रथम काव्य संग्रह प्रकाशित होने के बाद कवि के दूसरे संग्रह छपने में आखिर दस वर्ष क्यों लगे? दूसरा तथ्य यह कि तीसरे संग्रह के प्रकाशन में उन्नीस वर्षों का वृहद अवकाश! जीवन का मार्मिक साक्षात्कार करने के लिए जीवन को गहरे अंतरतम में महसूस करना होता है। एक संग्रह के प्रकाशन में जीवन के सैकड़ों अनुभवों को संचित करना होता है। एक नई सुबह की सोहबत में कवि के संभाव्य सपने कविताओं का प्राण बनकर प्रकट होता है। 'देखा है उन्हें' की पहली कविता 'हर बार' स्पष्ट संदेश देती है कि जीवन-मूल्य के बिना जीवन कैसा? जीवन के कठिन दौड़ से गुजरते हुए मनुष्य को मनुष्य बने रहने की संकल्पना कविता का ठोस आधार है। कितनी उपेक्षाओं और निंदाओं के बावजूद धीरज के उपहार से निखरना कविता की ताकत है। स्वाभिमान व्यक्तित्व को कितना संबलित कर सकता है—इसके प्रतिमान स्वरूप यह कविता व्यक्तित्व को सँवारने का पुरजोर समर्थन करती है। दरअसल, इस कविता को पढ़ते हुए कवि का आदर्श रूपायित होता दिखाई देता है। कवि का कहना है :-

“हर बार ठोकरों ने  
है सिखलाया संभलना  
मिली जूझने की ताकत  
हर बार उपेक्षाओं से  
जब-तब निंदाओं ने  
अधिक निखारा हमको  
धीरज का उपहार मिला है  
दुख के हाथों!”<sup>1</sup>

इस संग्रह की पहली कविता ही पाठक को आकृष्ट करने, कविता और कवि की पहचान करने और मनुष्य को और अधिक मनुष्य बनाने के लिए पर्याप्त अवकाश देती है। गहरे अंधेरे में और घोर उदासी में आशा की किरणें उसी प्रकार देखी जा सकती हैं, जैसे कीचड़ में कमल खिलता है अथवा चिलचिलाती धूप में तपिश से जूझते हुए भी चाँदनी का स्वप्न देखना। इसी कविता का एक अंश द्रष्टव्य है :-

“जब भी हुआ अकेला  
अकुलाया, मुरझाया  
साथ कारवाँ के

उल्लसित, निहाल हुआ मन  
स्वाभिमान को गिरवी रखकर  
हमने कब सुविधाएँ चाहीं?  
सँवरे जीवन-मूल्य  
भले हम जितना बिखरें!”<sup>2</sup>

स्वाभिमान व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रकट करता है। इसे अभिमान अथवा अहं से इतर समझने की आवश्यकता है। जीवन के कई ऐसे पड़ाव आते हैं, जहाँ व्यक्ति अपने अवसर को तलाशने में जीवन-मूल्य की प्रतिष्ठा खो देता है। अब मूल्य, खासकर जीवन-मूल्य क्या है? स्वाभिमान क्या है? इनसे व्यक्तित्व को निखारा और सँवारा कैसे जाए? इस कविता के संदर्भ में यही तीन महत्वपूर्ण बातें सामने आती हैं, जिसकी चर्चा किए बगैर इस कविता के मर्म को समझ पाना कठिन लगता है।

जीवन-मूल्य किसी विशेष जीवन पद्धति से संपृक्त होता है। मानव जीवन के लिए जो कुछ भी इष्ट, कल्याणकारी, शुभ, आदर्श हो उसे जीवन-मूल्य माना गया है। व्यक्ति की प्रतिष्ठा का आकलन उसके जीवन-मूल्यों से किया जाता है। जीवन-मूल्यों का मूल उद्देश्य मानव जीवन को संयमित तथा व्यवस्थित कर सुखद परिणति करना है। जीवन-मूल्य का तात्पर्य भी उसी मानवीय गुणों से है, जो अन्य लोगों के साथ संप्रेषण और व्यवहार का प्रतिदर्श स्थापित करे। जीवन के इसी मूल्यों के पालन के लिए जो सिद्धांत गढ़े जाते हैं, उनका पालन किसी व्यक्ति का स्वाभिमान होता है। स्वाभिमान से जीवन श्रेष्ठ होता है। जीवन-मूल्य व्यक्ति की निष्ठा का द्योतक भी है, व्यक्ति के भरोसे का प्रतीक भी। इसके बिना भला जीवन कैसा? इस स्वाभिमान को गढ़ने में कवि का अनुभव इतना तिवक्त है कि मीठे बोल की भी पहचान संभव है। इसी संग्रह में एक कविता है 'जब कभी', जिसमें कवि ने लिखा है :-

“अकस्मात्, अयाचित  
कोई चिकना विशेषण  
कानों से टकराता है जब भी  
'-बाबू, हुजूर-'  
पसलियाँ तक सिहर जाती हैं  
अज्ञात भय से

-क्योंकि चाकू हर बार भोंका गया है  
पुचकार या प्यार की आड़ में  
विशेषणों के दाने के पीछे  
जाल भी जरूर रहा है!<sup>3</sup>

जीवन-मूल्यों का ह्रास इतना नीचे पायदान पर है कि अपने भी छल करते हैं। कवि के पास अनुभव की सीढ़ी है, जिसका प्रत्येक कदम जोखिम भरा रहा है। किसी अज्ञात भय से पसलियों का सिहरन कोई अनायास घटना नहीं, अपितु अनुभवों का दस्तावेज है। वस्तुतः मूल्य के विघटन के पीछे कुछ वजहें हैं, जिसकी ओर लोग अवसर की तलाश में मूल्य और चरित्र चमकाने का झूठा प्रयास भी करते हैं। डॉ नगेंद्र ने मूल्य की परिभाषा देते हुए लिखा है - “मनुष्य के कर्म अथवा भोग के फलितार्थ रूप में जिसका महत्व या मान होता है, सामान्यतः उसे ही मूल्य कहते हैं।”<sup>4</sup> जीवन में महत्व या मान की चीजें कैसे किनारे की जा सकती हैं। कवि स्वभावतः कविता में मूल्य की प्रतिष्ठा करते हैं और इस वजह से कवि की कविता की भी मूल्यात्मक प्रतिष्ठा होती है।

‘देखा है उन्हें’ कवि के विविध मनोवेगों का उदात्त उल्लेख है। इसमें अपने की तलाश है, सपने हैं, नए सपने भी तो चिड़िया और पिंजरे का सुगना भी है। प्रश्न है तो डर भी है। बाँध पर बैठा ठेकेदार भी है, जिंदगी है तो खैरियत भी, माँ की स्मृतियाँ हैं तो “माँ जैसी हर औरत को माँ”<sup>5</sup> पुकारती बिटिया भी है। बीरन बाबा की पराती और किशुन काका की हँसी-दिल्लगी का मौन भी है। रवींद्र उपाध्याय एक शब्दपुरुष कवि हैं। और, कवि के लिए अगर कठिन है तो “सिसकियों के पक्ष में / उगाना भावपूर्ण / संवेदना-सिंचित / झलमल कविता!”<sup>6</sup> यहाँ जिंदगी के खेत में स्वाभिमान के लहलहाते फसल हैं। भारतीय मानस की ऊँचाई और उसकी एक सूक्ष्म परंपरा सामाजिक प्रतिष्ठा में निहित है। इस प्रतिष्ठा की प्राप्ति मूल्यों के संरक्षण और नैतिकता के सादर आग्रह से होती है। इस काव्य-संग्रह का कवि इस बात से कहीं सहमत नहीं है कि जीवन के भागदौड़ के बीच समझौतों का बिस्तर नसीब हो सकता है। कवि ने समझौतों के खिलाफ अपनी स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है। इस संग्रह की

पहली कविता अन्य कविताओं के ताले खोलने की बड़ी कुँजी है। जीवन-मूल्य सँवारने की बड़ी कवायद है, जिसे कवि ने खास शैली में अभिव्यक्ति दी है। इसी संग्रह की एक महत्वपूर्ण कविता, जिसमें स्वाभिमान की रक्षा हेतु कवि ने सतर्क करते हुए लिखा है:-

“बिक गये जो वस्तुओं की भाँति  
होकर चरण चाकर रह गए  
जन के मन में, यश-गगन में  
आज हैं, कल भी रहेंगे  
आँधियों का वेग  
अपने वक्ष पर जो सह गए।”<sup>7</sup>

साहित्य में व्यक्त ‘यथार्थ’ और ‘आदर्श’ का विवाद साहित्यिक जालोचना का मुख्य विषय रहा है। एक पक्ष रचनाओं में ‘यथार्थ’ के चित्रण को विशेष महत्व देता है; तो दूसरा ‘आदर्श’ के अंकन को महत्वपूर्ण मानता है। वस्तुतः ‘यथार्थ’ और ‘आदर्श’ दोनों जीवन के दो पक्ष हैं। जीवन में एक पक्ष ‘सतत् वर्तमान’ है। इस ‘वर्तमान’ का एक निश्चित रूप-रंग-आकार है। यह ‘जो’ ‘जिस रूप-रंग आकार में भी है’- ‘सतत् वर्तमान’ है। यह ‘वर्तमान’ ‘दृश्य’ भी है, अनुभूतिगत भी। जीवन का यही ‘वर्तमान’ दूसरे शब्द में ‘यथार्थ’ है। ‘यथार्थ’ का तात्पर्य है- कोई वस्तु ‘जैसी’ ‘जिस रूप में है’, ‘ठीक-ठीक वही’। किसी व्यतीत, घटित या भूत-काल, अवस्था अथवा देश-समाज का चित्रण भी तात्कालिक संदर्भ में ‘यथार्थ’ या ‘वर्तमान’ का हो होता है। अस्तु, साहित्य में ‘यथार्थ’ के चित्रण का अर्थ है-वर्तमान का चित्रण। साहित्य में ‘यथार्थ’ के चित्रण के साथ लेखक या कवि रचनाकार बहुधा विषय निष्ठ (Objective) दृष्टिकोण अपनाता है। वह यह कोशिश करता है कि ‘विषय’ को भाषा (शब्द) की शक्तियों द्वारा ठीक-ठीक उसी रूप में प्रस्तुत करे, जिस रूप में वह उसे दिखाई दे रहा है। उसके इस प्रयत्न से जो रचना प्रस्तुत होती है, उसको पढ़कर पाठक भी वही अर्थ ग्रहण करता है, जो किसी विषय को देखकर ज्ञात होता है। इस प्रकार साहित्य की वे सभी रचनाएँ, जो विभिन्न विषयों को इस रूप में चित्रित करती हैं, जिनसे ‘विषय’ का सीधा परिचयमात्र प्राप्त होता है यथार्थ या यथार्थवादी कही जाती हैं। अतएव, साहित्यिक कृतियों

में, 'यथार्थ' की अभिव्यक्ति का अध्ययन करने के लिए यह देखना आवश्यक है कि लेखक किस हद तक विषयनिष्ठ (Objective) रह पाया है, उसने स्वयं को वर्तमान में किस हद तक आबद्ध रखा है, उसकी रचना में 'विषय' (वर्तमान) का चिह्न कितना सफल हुआ है। 'यथार्थ' से ही जुड़ा हुआ 'यथार्थवाद' भी है। जीवन में 'वर्तमान' काल से संबंधित विषय-समस्याओं के चित्रण के लिये ही इसका जन्म हुआ है। पारिभाषिक अर्थ में 'यथार्थवाद' जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्रति ईमानदारी का दावा करते हुए भी, प्रायः सदैव मनुष्य की हीनताओं तथा कुरुपताओं का चित्रण करता है। यथार्थवादी कलाकार जीवन के सुंदर अंश को छोड़कर, असुंदर अंश का अंकन करना चाहता है-यह एक प्रकार से उसका पूर्वाग्रह है। वस्तुतः यथार्थवाद सुधारक साहित्य का प्रथम अस्त्र है। इस दृष्टि से कवि रवींद्र उपाध्याय की कविताओं में यथार्थ के चित्र तो हैं, किंतु उस तरह जैसे धूप की तपिश से बेचैन व्यक्ति चाँदनी का स्वप्न देखता है। किसी भी समाज की स्थिति के प्रति विद्रोह करते समय साहित्यकार उसका यथार्थवादी चित्र उपस्थित करता है। इस प्रकार, वह अपने पाठक के मन में उस आक्रोश को जन्म देना चाहता है, जिसके बिना किसी भी सुधार परिवर्तन अथवा क्रान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। रवींद्र उपाध्याय की कविताएँ क्रांति नहीं चेतना को जागृत करने का सफल कार्य करती हैं। कविता उम्मीद का रूपक है। वस्तुतः कवि ने हासोन्मुख समाज, चरित्र और जीवन की विसंगतियों पर ही बल नहीं दिया है, अपितु कविता में सपनों की नई सुबह का उजास भी दिखाया है। कवि को यह विश्वास है कि तम का पहरा कितना भी रहे, प्रकाशदात्री पुस्तकों को नहीं रोक पाएगा। इसी संग्रह की एक कविता 'साँसों की आग' पृथुल उर सहित लंबी बाँहें फैलाए अंधेरे को मिटाने को आतुर है। सर्द हो चुकी माचिस की तीलियाँ साँसों से खिल उठता है प्रकाश। हमारी साँसों की गर्माहट ही हमें जीवंत बनाये रखती है। नए उत्साह और नई ऊर्जा से ओतप्रोत, साथ ही जीवन रेखा का परिमाण भी साँसों की आग है। कवि ने कहा भी है:-

“ठंडी पड़ जाती है आग  
जब माचिस की

उसे साँसों की आग  
सुलगाती है  
सच, कितनी आग है  
हमारी साँसों में!<sup>8</sup>

इसी संग्रह में एक कविता है 'देखा है उन्हें', जिसमें बाढ़ आती-जाती है और सूखा भी आता-जाता है। फसल के नष्ट होने से खेत-खलिहान में चार-छह दिन उदासी भले रहती है, लेकिन अगली बुआई की प्रसन्नता में सब भूल जाते हैं पिछले फसल की खीझ। बीरन बाबा की पराती फिर से गूँजने लगती है भिनसार में। उन्हें देखना कितना संतोष और अस्वस्ति की संवेदना का प्रसार है। यह कविता अन्नदाताओं की संबलित थाती की अदम्य साहस और जिजीविषा का मार्मिक आख्यान है। कवि ने यथार्थ-प्रतीति मौन बिंब का सुंदर चित्र गढ़ा है :-

“रहता है चार - छह दिन  
चुप - चुप चौपाल  
हुलस कर नहीं पूछा जाता  
परस्पर हाल - चाल  
चार - छह दिन  
नहीं गूँजती भिनसार में  
बीरन बाबा की पराती  
किशुन काका नहीं करते  
किसी से हँसी - दिल्लीगी”<sup>9</sup>

किसान आशावादी होता है। किसानों के हक में मेहनत और उम्मीद के अलावा कोई साथी नहीं। बाढ़ की विभीषिका हो या सूखी जमीन, किसानों की उम्मीद को नहीं तोड़ पाती। इस संग्रह का आवरण - चित्र में भी सूखा - बाढ़ सहित खेत, बैल और किसान को दिखाया गया है। किसान एक आदमी ही तो है। आदमी भला अपनी आदमीयत क्यों खो दे? एक किसान फसल उगाने की होड़ में नहीं जीता, वह अपनी किसानी आराम से अच्छी फसल की उम्मीद में करता है। “आदमी, आदमी है आखिर / कोई रेस का घोड़ा है ?”<sup>10</sup> रवींद्र उपाध्याय के लिए कविता करना समाज सापेक्ष प्रश्न उगाना है। ये प्रश्न समाज को दिशा देने वाले हैं। वंचितों और शोषितों के प्रति केवल संवेदना भर बात नहीं की जाती, अपितु उनकी आँखें खोलनी वाली वैचिरिकी का प्राकट्य भी

है। समय अपना दस्तावेज देकर जाता है। ये कविताएँ मनुष्य के जीवन में बड़ा सहयोगी प्रतीत होती हैं।

समकालीन कविता की बुनावट कितनी ऊँचाई छूती है यह रवींद्र उपाध्याय की कविताओं को पढ़ते हुए अनुमान लगाया जा सकता है। रवींद्र उपाध्याय की कविताओं में संवेदना के विभिन्न स्तर परिलक्षित होते हैं। इनकी कविताएँ हवा-हवाई बातें नहीं करतीं। मानव जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर पहलुओं से लेकर गहनतम पीड़ा की अनुभूतियों

को दर्ज करने में एक सफल कवि के रूप में, पाठकों को वेदना से आलोड़ित करते हैं। कवि का अक्खड़ स्वभाव और स्वाभिमानी होना नितांत आवश्यक होता है। एक सच्चा कवि सृजन करता है तो उसका यशोफल उसे प्राप्त होना ही है। रवींद्र उपाध्याय सृजन के उसी सहयात्री का नाम है। उनकी कविताओं में कविता के कलावादी उपकरणों का पर्याप्त निषेध मिलता है। यह सातत्य उनकी गीत-गज़लों में भी द्रष्टव्य है। □

**संदर्भ सूची:**

1. उपाध्याय, रवीन्द्र, देखा है उन्हें, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2019 प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं.-9
2. वही, पृष्ठ सं.-9
3. वही, पृष्ठ सं.-14
4. डॉ. नगेंद्र, भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1988, पृष्ठ सं.-158
5. उपाध्याय, रवीन्द्र, देखा है उन्हें, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2019 प्रथम संस्करण, पृष्ठ सं.-60
6. वही, पृष्ठ सं.-55
7. वही, पृष्ठ सं.-77
8. वही, पृष्ठ सं.-49
9. वही, पृष्ठ सं.-12
10. वही, पृष्ठ सं.-16

## श्रीमंत शंकरदेव और दादू दयाल के काव्य में समन्वय की भावना



सोनी रुमछु

### शोध सार :

श्रीमंत शंकरदेव और दादू दयाल मध्यकालीन संत कवि हैं। इनका समय हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के अंतर्गत आता है। विवेच्य दोनों संत विशाल भारतवर्ष के दो विपरीत छोरों से आते हैं। शंकरदेव का कार्यक्षेत्र भारत के सुदूर पूर्व में स्थित असम क्षेत्र रहा है, वहीं दादू दयाल का कार्यक्षेत्र भारत के पश्चिमी क्षेत्र में स्थित राजस्थान तथा गुजरात माना जाता है। क्षेत्रीय स्तर पर अंतर होने के बावजूद इनके काव्यों में अनेक समानताएँ देखने को मिलती हैं। इन्हीं समानताओं में एक समानता है—दोनों संतों के काव्य में समन्वय की भावना का विद्यमान होना। समन्वय की भावना संतों की एक विशेषता है, जो परस्पर संप्रदाय, समाज आदि को जोड़े रखने में एक अहम भूमिका निभाती आई है। अतः विवेच्य दोनों संतों के काव्यों में व्याप्त समन्वय भावना की तुलना करना; उनके इन प्रयासों के प्रभाव की पड़ताल करना; उनमें व्याप्त समानताएँ खोजना; उन समानताओं में भिन्नता को लक्षित करना इत्यादि इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य है।

**बीज शब्द :** समन्वय, समरसता, साम्यवाद, शंकरदेव और दादू दयाल।

### शोध आलेख :

श्रीमंत शंकरदेव और दादू दयाल दोनों संत भारत के दो भिन्न क्षेत्र से आते हैं, परंतु दोनों का समय भक्तिकाल का ही रहा है। शंकरदेव का क्षेत्र सुदूर पूर्व में असम रहा है तथा दादू दयाल का कार्य क्षेत्र पश्चिम में मुख्यतः राजस्थान रहा है। अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन में दोनों संतों का अवदान अद्वितीय है। शंकरदेव ने असम क्षेत्र में नव वैष्णव धर्म की स्थापना से समाज में फैले धार्मिक कुरीतियों को समाप्त करने का प्रयास किया; संस्कृत, ब्रजावली और असमिया भाषा में रचनाएँ रचकर साहित्य को समृद्ध किया; नाट्य रचना और उसके प्रदर्शन से लोगों को आकर्षित किया तथा उपदेश दिया; सत्र और नामघर का गठन कर लोगों को व्यावहारिक ज्ञान प्रदान किया एवं समाज को एकजुट रखने का प्रयास किया इत्यादि। दूसरी ओर दादू दयाल ने अपनी वाणियों से लोगों को उपदेश दिया; शिष्य आदि के माध्यम से अपने विचारों का विस्तार किया; 'परब्रह्म' संप्रदाय से लोगों को आकर्षित किया तथा उन्हें व्यावहारिक ज्ञान का अनुभव कराया; सांप्रदायिक भेद को मिटाकर समाज में शांति स्थापित करने का प्रयास किया

पीएच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग,  
राजीव गांधी विश्वविद्यालय  
रोनो हिल्स, दोईमुख,  
अरुणाचल प्रदेश-791112  
☎ 8729941573  
✉ sonyrumchu0872@gmail.com

इत्यादि। दोनों संतों ने काव्य रचना के साथ-साथ समाज सुधारक की भूमिका भी बखूबी निभाई है। यह निर्विवाद है कि तत्कालीन समाज विकृत तथा अशांत था। ऐसे समाज में निवास कर रहे जो एक बौद्धिक व्यक्ति का कर्तव्य होता है, उसी का निर्वहन विवेच्य दोनों संतों ने किया है। विकृत समाज का समन्वय कर परस्पर सामंजस्य का प्रयास इस बात का द्योतक है कि विवेच्य दोनों संत अपने समाज के प्रति कितने उत्तरदायी रहे हैं।

समन्वय एक प्रवृत्ति की तरह है, जो संतों की वाणियों में विद्यमान है। किसी भी दो या अधिक पक्षों के समानता को सामने रखने से उनका समन्वय होता है। *धार्मिक एकता के संबंध में बादशाह अकबर ने 'दीन इलाही' नामक धार्मिक समन्वय का मत दिया था।<sup>1</sup>* इस तरह का प्रयास अनेक संतों ने समय-समय पर किया है तथा इसी कारण यह एक प्रवृत्ति के रूप में उल्लेखित हुआ। जब समन्वय पर चर्चा होती है, तब एक सवाल अक्सर मन में उठता है कि साम्यवाद, समरसता तथा समन्वय में क्या अंतर है? 'साम्यवाद' को अंग्रेजी में 'कम्युनिज्म' कहते हैं। इस शब्द की चर्चा प्लेटो की रचना 'रिपब्लिक' में हुई है। यह एक सिद्धांत है, जिसमें सामाजिक समता की बात कही गई है। परंतु आधुनिक काल में कार्ल मार्क्स और फ़ैडरिक एंजिल्स ने 'साम्यवाद' को एक आंदोलन का रूप दिया। *"मार्क्स ने अपने साम्यवादी घोषणा पत्र में पूँजीवाद को समाजवाद में बदलने के लिए दो सिद्धांतों को आवश्यक बताया है—वर्ग संघर्ष तथा क्रांति के हिंसात्मक ढंग से सर्वहारा द्वारा सत्ता की प्राप्ति।"*<sup>2</sup> मार्क्स के इस सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य ही सर्वहारा या मजदूर वर्ग का उत्थान करना तथा शोषक वर्ग पूँजीपतियों को खत्म करना था। इस उद्देश्य पूर्ति के लिए उन्होंने साम्यवाद के सिद्धांत को केवल सिद्धांत के रूप में नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूप में आत्मसात किया। इसी कारण डॉ. अमरनाथ कहते हैं, *"कार्ल मार्क्स वस्तुतः पहले दार्शनिक हुए, जिन्होंने समाजवाद तथा साम्यवाद को केवल कल्पना की उड़ान मात्र के रूप में न देखकर उसे वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।"*<sup>3</sup> अतः साम्यवाद एक क्रांति व आंदोलन है, जिसके केंद्र में

सर्वहारा या मजदूर वर्ग है। परंतु समरसता का अर्थ 'एक होने का भाव' है। इसे मुख्यतः संतों द्वारा प्रयोग किया जाता रहा है। संतों ने ब्रह्म और जीव के विशेष संदर्भ में इसका प्रयोग किया है। जिस प्रकार नदी समुद्र में मिलकर एक हो जाती है, उसी प्रकार जीव ब्रह्म में मिलकर एक हो जाता है। यहाँ ध्यातव्य है कि नदी समुद्र में मिलकर एक हो जाती है अर्थात् नदी का अस्तित्व समाप्त होकर वह समुद्र ही हो जाता है, वैसे ही जीव ब्रह्म में मिलकर ब्रह्म हो जाता है। इस तरह के एक हो जाने के भाव को समरसता कहा गया है। वही समन्वय में दो या अधिक पक्षों में समानता को सामने रखकर एकता की भावना को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। वर्तमान में 'सामाजिक समरसता' जैसे वाक्यांश का प्रयोग करके समरसता का अर्थ 'समाज में फैले भेदभाव को दूर कर एकता की भावना को पैदा करना' कर दिया है। अतः साम्यवाद, समरसता और समन्वय-तीनों शब्दों का अर्थ भिन्न है, परंतु समरसता को 'सामाजिक समरसता' जैसे वाक्यांश में प्रयुक्त करने के कारण इसका अर्थ समन्वय के सामान ही प्रतीत होने लगता है।

**विवेच्य दोनों संतों के काव्य में समन्वय तत्व :**

**1) जाति का समन्वय :**

जातिगत आधार पर लोगों को बाँटना एक समस्या है। यह समस्या शंकरदेव और दादू दयाल के समय में भी विद्यमान रही थी। जातिगत विभाजन के कारण तत्कालीन समाज विकृत था। ऐसे में संतों ने इस पाट को भरने और जातियों के समन्वय का विलक्षण प्रयास किया। जद्दोजहद और प्रयास के इसी शृंखला में शंकरदेव और दादू दयाल के नाम सम्मिलित हैं।

*"शंकरदेव कालीन असम का समाज विभिन्न जातियों में बाँटा हुआ था। उन्हें एक करना आवश्यक था। साथ ही समाज विभिन्न वर्गों में भी बाँटा हुआ था। सामंत तथा पुरोहित, साधारण वर्ग का शोषण करते थे।"*<sup>4</sup> इन्हीं जातियों और वर्गों के समन्वय का प्रयास शंकरदेव ने अपने काव्य के माध्यम से किया है। उनके अनुसार ईश्वर या ब्रह्म के समक्ष सभी समान हैं अर्थात् उनमें कोई भेद

नहीं है। उन्होंने ब्राह्मण, चांडाल आदि वर्णों में भिन्नता के विचारों को त्याग करने पर विशेष बल दिया है-

“ब्राह्मणर चाण्डालर निविचारि कुल।”<sup>5</sup>

शंकरदेव ने जीवित प्राणियों तथा अन्य सभी में ईश्वर या ब्रह्म का वास बताया है। उन्होंने ऐसे मत व उपदेश से सबके बीच एकता का भाव उत्पन्न करने तथा उनमें परस्पर समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। यथा-

“कुकुर चंडाल गर्दभरो आत्मा राम।

जानिया सबको परि करिबा प्रणाम।।”<sup>6</sup>

दूसरी ओर दादू दयाल समाज में व्याप्त जाति भेद का विरोध करते थे। उन्होंने वर्ण-व्यवस्था का खंडन कर एकता को मानवता का मूल बताया है। “रवींद्र कुमार सिंह ने दादू की वाणियों का अध्ययन कर निष्कर्षतः दादू के अनुसार जाति भेद को सामाजिक भ्रांति बताया है।”<sup>7</sup> दादू ने जातिगत भेदभाव को दूर कर एकता को स्थापित करने का प्रयास किया है। उन्होंने एक साखी में कहा है-

“आए एकंकार सब, साईं दीए पठाइ।

आदि अंति सब एक हैं, दादू सहजि समाइ।।”<sup>8</sup>

अर्थात् ब्रह्म ने ही सबको भेजा है, सबकी उत्पत्ति और अंत एक है और सभी में ब्रह्म का निवास है। ब्रह्म ने जब सबको एक बनाया है, ऐसे में कह सकते हैं कि जाति मानव मस्तिष्क की उपज है। उन्होंने प्रभु को ही जाति कहा और परमेश्वर को परिवार। यथा-

“दादू कुल हमारे केसवा, सगातौं सिरजनहार।

जाति हमारी जगतगुरु, परमेशुर परिवार।।”<sup>9</sup>

इस प्रकार उन्होंने जातिगत भेद को मिटाकर उनमें परस्पर समन्वय का प्रयास किया है।

## 2 ) सांप्रदायिक या धार्मिक समन्वय :

शंकरदेव कालीन असम के समाज में लोग विभिन्न धार्मिक मतों में बँटे हुए थे जैसे- शैव, शाक्त, वैष्णव आदि। “शंकरदेव ने सभी को भक्ति का समान अधिकारी माना और अन्य धार्मिक मतों के शास्त्र आदि की निंदा न करने का भी उपदेश दिया।”<sup>10</sup> उन्होंने अपने समय में

धार्मिक मतों में जो भेदभाव देखा था, उनमें एकता लाने का प्रयास अपने काव्य के माध्यम से किया है। कीर्तन के एक पद में वैष्णव और शैव का समन्वय देख सकते हैं-

“गुण नाम जत विष्णु शिवर।

ताक भिन्न बुद्धि करै जितो नर।।

नामर सियो महा अपराधी।

नरकत परै दैव नवाधि।।”<sup>11</sup>

अर्थात् जो विष्णु और शिव के गुण और नाम में भिन्नता देखता है, वह सबसे बड़ा नाम अपराधी है और उसे नरक की प्राप्ति होती है। शंकरदेव के कीर्तन में विष्णु और शिव का एक संवाद है, जिसमें विष्णु कहते हैं कि शिव में और उनमें कोई भेद नहीं है तथा दोनों एक ही काया हैं। यथा-

“आत नकरिबा खेद किंचितको नाहि भेद,

तोम्हारे आमारे एके काया।।”<sup>12</sup>

दूसरी ओर दादू दयाल का समाज हिंदू और मुसलमान के संघर्ष को लम्बे समय से देख रहा था। उनके समक्ष शांति और एकता का प्रयास भी कई संतों ने किया और तत्कालीन संत भी कर रहे थे। दादू दयाल जैसा बौद्धिक व्यक्ति इससे अछूता नहीं रह सकता था। यदि ऐसा होता तो एक तरह से समस्या से भागना और समाज से मुँह फेरना होता। इसी कारण दादू दयाल ने भी समाज में धार्मिक समन्वय का प्रयास किया ताकि मनुष्य शांति से रह सके। उस समय समाज में दो प्रमुख धर्म हिंदू और मुसलमान विद्यमान थे, जिनकी एकता का प्रयास दादू के इस पद में देखा जा सकता है-

“अलह राम छूटा भ्रम मोरा।

हिंदू तुरक भेद कछु नाहि, देशों दरसन तोरा।।

सोई प्राण प्यंड पुनि सोई, सोई लोही मासा।

सोई नैन नासिका सोई, सहजै कीन्ह तमासा।।”<sup>13</sup>

अर्थात् वे कहते हैं, जब से उन्हें ब्रह्म के दर्शन हुए हैं, अल्लाह और राम का जो भ्रम था वह टूट गया है। इस भ्रम से मुक्त होकर पता चला कि हिंदू और मुसलमान में कोई अंतर नहीं है। दोनों धर्मों के लोगों में एक ही प्राण है; लहू और मांस भी एक है; एक ही तरह के नयन और

नाक है। ऐसे में यह अलग-अलग होने का तमाशा क्यों खेल रहे हो।

शंकरदेव और दादू दयाल ने केवल अपनी वाणी में ही नहीं, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी धार्मिक आदि भेद को मिटाने का प्रयास किया है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण उनकी शिष्य परंपरा में देखा जा सकता है, जहाँ लगभग सभी जाति और धर्म के लोग विद्यमान हैं। “शंकरदेव के अनुयायियों में माधवदेव कायस्थ थे; श्री दामोदर देव ब्राह्मण थे; रमाई बोड़ो थे; श्री जयराम भूटिया थे; श्री चांद खान मुसलमान थे आदि।”<sup>14</sup> देखा जा सकता है कि उनके अनुयायियों में लगभग सभी जाति और धर्म के लोग विद्यमान थे। “वहीं दादू दयाल की शिष्य परंपरा में कई छोटी जाति थे। साथ ही रज्जब, बखना, नागर निजाम आदि मुसलमान शिष्य भी थे। इनका उल्लेख नाभादास के ‘भक्तमाल’ में किया गया है।”<sup>15</sup>

### 3 ) ईश्वर का समन्वय :

ईश्वर एक ऐसी संकल्पना है, जिन्हें सबका निर्माता माना गया है। निर्माण करने वाले को सबसे शक्तिशाली कहना या समझना गलत नहीं होगा। ऐसे में अनेक ईश्वर की कल्पना से लोग आपस में बँटे हुए हैं। इसी प्रकार की परिस्थिति शंकरदेव और दादू दयाल के समय भी रही थी। उनका उद्देश्य समाज में एकता लाना व शांति स्थापित करना रहा है। इस उद्देश्य के प्रयासरत दोनों संतों ने एकेश्वर के सिद्धांत से लोगों को जोड़ने का प्रयास किया। इसका सीधा-सा हिसाब था कि ईश्वर की एकता निर्धारित होने पर लोग भी एक हो जाएँगे। इस संदर्भ में शंकरदेव ने अपने धर्म ‘एक शरण नाम धर्म’ का मूलमंत्र बताया ‘एक देउ एक सेउ ऐके बिना नाहि केउ।’<sup>16</sup> अर्थात् एक ही ईश्वर की सेवा करो, क्योंकि उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। शंकरदेव ने विष्णु को एकेश्वर देव के रूप में स्वीकारा है। वे कहते हैं, ‘विष्णुत परे आन नहिं केव’।<sup>17</sup> दूसरी ओर दादू के काव्य में भी एक ईश्वर या ब्रह्म की चर्चा हुई है, यथा-

“बाबा नाहीं दूजा कोई।

एक अनेक नांव तुम्हारे, मोपै और न होई।।

अलख इलाही एक तूं तूं ही राम रहीम।

तूं ही मालिक मोहना, केसौ नांव करीम।।”<sup>18</sup>

अर्थात् ब्रह्म के अनेक नाम हैं, परंतु वास्तव में वह एक है। राम भी वही और रहीम भी वही है। अतः इन पंक्तियों से ईश्वर की एकता के साथ-साथ धर्म की एकता का प्रयास भी लक्षित किया जा सकता है।

### 4 ) साहित्यिक भाषा और जनभाषा का समन्वय :

भक्ति आंदोलन में जिन कवियों ने भाग लिया, जनभाषा में अभिव्यक्ति देना उनकी प्रमुख प्रवृत्ति रही है। इससे उनके स्वर को अधिकतम लोगों तक पहुँचने में सहायता मिली। तत्कालीन साहित्यिक भाषा मुख्यतः संस्कृत हुआ करती थी, परंतु भक्त कवियों ने संस्कृत में लिखे ज्ञान को सरल व जन प्रचलित भाषा में कहा। इसके फलस्वरूप लोगों में अधिक जागरूकता बढ़ी। एक तरह से यह साहित्यिक भाषा और जनभाषा का समन्वय है। विवेच्य दोनों संतों में भी यह प्रयास लक्षित किया जा सकता है।

“दादू दयाल ने कबीर की भाँति अनेक भाषाओं के शब्दों के समिश्रण से अपनी बात कही है। उनके काव्य में महाराष्ट्री, शौरसेनी, प्राचीन राजस्थानी, गुजराती, सिंधी, पंजाबी, ब्रज आदि भाषाओं के साथ अरबी, फारसी और तुर्की भाषा के शब्द भी विद्यमान हैं।”<sup>19</sup> उदाहरणस्वरूप ‘परचा कौ अंग’ से एक साखी देखा जा सकता है, जहाँ उन्होंने फारसी भाषा के शब्दों का उपयोग किया है-

“दादू माबूद मुकामे हसि।

इके नूर खूब खूबां, दीदनी हैरान।

अजब चीज खुरदनीं, प्याले मस्तान।।”<sup>20</sup>

अतः दादू ने इससे साहित्यिक भाषा और जनभाषा में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। दूसरी ओर शंकरदेव ने भी इस तरह का प्रयास किया है। वे संस्कृत, असमिया आदि भाषाओं के ज्ञाता थे। उन्होंने साहित्यिक भाषा संस्कृत तथा जनभाषा असमिया में रचनाएँ की हैं। शंकरदेव ने जनभाषा के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त किया ताकि साधारण जनता उनके काव्य के मर्म को समझ सके। इस क्रम में उन्होंने कई संस्कृत के ग्रंथों

का असमिया में अनुवाद किया। अनुवादित रचनाओं में उत्तरकांड, महाभागवत, कीर्तन घोषा, गुणमाला इत्यादि उल्लेखनीय हैं। साथ ही उन्होंने ब्रजावली नामक कृत्रिम भाषा का आविष्कार किया तथा रचनाएँ की हैं। इसमें उनके द्वारा रचे बरगीत, नाट्य आदि उल्लेखनीय हैं। ब्रजावली भाषा मैथिली, असमिया आदि भाषाओं से मिलकर बनी है। शंकरदेव ने इससे केवल भाषाओं का नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता का भी प्रयास किया है, क्योंकि इसे असम क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र में भी समझा जाता है। असम के आंदोलन का अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन के साथ समन्वय में कृत्रिम भाषा ब्रजावली की अहम भूमिका रही है, ऐसा कहना गलत नहीं होगा। उदाहरणस्वरूप ब्रजावली में रचित कुछ पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं-

“गोविन्द गुण मनलागि।  
सुमरित तनु ज्वले आगि।  
मधुपुरी माधव पिउ।  
कोचे धरव अब जीउ।।  
निशि सब बंछुह जागि।  
भेलि माधव बध भागी।।”<sup>21</sup>

#### निष्कर्ष :

शंकरदेव और दादू दयाल केवल कवि ही नहीं थे, अपितु वे समाज सुधारक भी थे। उन्होंने आजीवन सामाजिक विकृतियों को दूर करने का प्रयास किया तथा जाति, धर्म आदि में परस्पर समन्वय करने में प्रयासरत रहे। ऐसे प्रयासों से अनेकता का भाव मिटता है और एकता का भाव पैदा होता है। इससे समाज में शांति बनी रहती है। व्यापक परिप्रेक्ष्य से देखने पर संतों के ऐसे प्रयास से मानवता को बढ़ावा मिलता है। अतः कह सकते हैं कि इससे पूरे विश्व में संतों की वाणी प्रासंगिक हो जाती है। केवल उदाहरण भारतीय परिप्रेक्ष्य में दिए गए हैं, परंतु भावनात्मक स्तर पर पूरा विश्व इसके दायरे में आता है। भारतवर्ष का प्राचीन नारा है ‘वासुधैव कुटुम्बकम्’ अर्थात् सारा विश्व एक परिवार है। इससे विश्व बंधुत्व की भावना उत्पन्न होती है।

जाति की अवधारणा कदाचित्त बाँटने के लिए ही की गई होगी। कुछ विशिष्ट मानव मस्तिष्क की उपज ने इसको जन्म दिया और अपने लाभ के लिए समय-समय पर इसका प्रयोग किया। कालांतर में यह एक बड़ी समस्या के रूप में उभरा, जिसके निवारण के लिए अनेक प्रयासों में विवेच्य दोनों संतों के प्रयास भी सम्मिलित हैं। शंकरदेव कालीन समाज में विभिन्न जाति तथा जनजातियाँ निवास करती थीं, जिनमें परस्पर संघर्ष देखने को मिलता था। ऐसे में उन्होंने इनमें एकता लाने के लिए उपदेश दिया तथा नामधर और सत्र जैसे संस्थानों के माध्यम से एक छत के नीचे लाकर समानता की भावना का व्यावहारिक उदाहरण भी दिया। वहीं दादू दयाल के समाज में जातिगत विभाजन के कारण भेदभाव बढ़ गया था। यह उस समय की एक बड़ी समस्या थी, जिसे दादू आदि संतों ने लक्षित किया। समाज के इसी खाई को भरने में दादू की अद्वितीय भूमिका रही है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से जातियों के समन्वय का प्रयास किया है।

विवेच्य दोनों संतों ने धर्म व संप्रदाय के समन्वय का भी प्रयास किया। शंकरदेव के समक्ष शैव, वैष्णव आदि धार्मिक मतों में भेद-भाव था और दादू दयाल के समक्ष हिंदू और मुस्लिम धर्मों में तनाव था। ऐसे में अपने-अपने समाज अनुसार दोनों ही संतों ने समाज में परस्पर एकता की भावना से समन्वय की स्थापना का प्रयास किया।

इसी प्रकार दोनों संतों ने ईश्वर का समन्वय भी किया तथा यह घोषित किया कि ईश्वर एक ही है। दोनों संतों की ईश्वर संकल्पना में भिन्नता है। शंकरदेव की ईश्वर संकल्पना में विष्णु केंद्र में हैं और दादू की ईश्वर संकल्पना के केंद्र में निर्गुण ब्रह्म हैं। साथ ही साहित्यिक भाषा और जनभाषा का समन्वय किया। तत्कालीन समाज जातिगत उच्च-नीच का शिकार था। ऐसे में साहित्यिक भाषा को एक विशिष्ट जाति ही पढ़-समझ सकता था। अन्य जातियों के लिए उसे पढ़ना वर्जित था। ऐसे में अपनी अभिव्यक्ति जनभाषा में देखर विवेच्य दोनों संतों ने भाषाओं में भी एकता स्थापित की है। जनभाषा में

अक्सर वे साहित्यिक भाषा के ज्ञान को या साहित्यिक भाषा से मिश्रित शब्दों का प्रयोग करते थे, जिससे तत्कालीन समाज लाभान्वित हुआ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि विवेच्य दोनों संतों में समन्वय भावना विद्यमान है। उन्होंने जाति, धर्म, भाषा

और ईश्वर का समन्वय करके समाज में शांति लाने का प्रयास किया और उन्हें कुछ हद तक सफलता भी मिली। वर्तमान में भी समाज विकृत है, इसलिए शंकरदेव और दादू दयाल की वाणियाँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक हैं, जितनी भक्तिकाल में रहीं। □

#### संदर्भ :

1. उत्तरी भारत की संत परंपरा : परशुराम चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण 2020, पृ.सं. 366
2. समाज दर्शन का परिचय : शिवभानु सिंह, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, संस्करण 1996, पृ.सं. 138
3. हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली : डॉ. अमरनाथ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ.सं. 374
4. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव : कृति और कृतित्व : श्री चित्र महंत, असम हिंदी प्रकाशन, गुवाहाटी (असम) प्रथम संस्करण 2008, पृ.सं. 75
5. महाकवि शंकरदेव : विचारक एवं समाज सुधारक : डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ.सं. 263
6. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव : कृति और कृतित्व : श्री चित्र महंत, असम हिंदी प्रकाशन, गुवाहाटी (असम) प्रथम संस्करण 2008, पृ.सं. 77
7. दादू काव्य की सामाजिक प्रासंगिकता : रवींद्र कुमार सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2005, पृ.सं. 55
8. वही, पृ.सं. 55
9. दादू समग्र (भाग 2) : गोविंद रजनीश, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2018, पृ.सं. 220
10. श्रीमंत शंकरदेव : व्यक्तित्व और कृतित्व : डॉ. भूपेंद्र रायचौधरी, श्रीमंत शंकरदेव संघ, गुवाहाटी, प्रथम संस्करण 2002, पृ.सं. 88
11. वही, पृ.सं. 88
12. वही, पृ.सं. 88
13. दादू समग्र (भाग 1) : गोविंद रजनीश, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. सं. 122
14. श्रीमंत शंकरदेव जीवन और दर्शन : प्रो. चंदन कुमार (संपादक), प्रभाकर प्रकाशन, ईस्ट दिल्ली, प्रथम संस्करण 2022, पृ.सं. 20
15. दादूपंथ के शिखर संत : नंद किशोर पाण्डेय, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2021, पृ.सं. 18,19
16. महाकवि शंकरदेव : विचारक एवं समाज सुधारक : डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2015, पृ.सं. 133
17. वही, पृ.सं. 133
18. दादू समग्र (भाग 1) : गोविंद रजनीश, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2018, पृ.सं. 209
19. संत दादू दयाल का काव्य-संपादन (शोध प्रबंध) : श्रीमती गुलनाज उस्मान, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, 1996, पृ.सं. 15
20. दादू समग्र (भाग 2) : गोविंद रजनीश, अमरसत्य प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. सं. 142
21. महापुरुष श्री श्रीमंत शंकरदेव और महापुरुष श्री श्री माधवदेव द्वारा रचित बरगीत : शांतनु कौशिक बरुवा (संकलन और संपादन), ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, बरगीत, पृ.सं. 5

## অসমৰ চাহ-বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকসকলে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানসমূহৰ সম্পৰ্কে এটি অধ্যয়ন

সংক্ষিপ্তসূচী :



ড° মৃদুস্মিতা দুৱাৰা

সহকাৰী অধ্যাপক, সমাজকৰ্ম বিভাগ  
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়  
খানাপাৰা, গুৱাহাটী- ৭৮১০২২  
☎ ৮০১১২২৩৩৬৯  
✉ mridusmita123@gmail.com

চাহ উদ্যোগ অসমৰ এটা প্ৰধান অৰ্থনৈতিক খণ্ড যিয়ে ভাৰতবৰ্ষৰ মুঠ চাহ উৎপাদনৰ ৫০% তকৈ অধিক অৰিহণা যোগায়। এই উদ্যোগত মহিলা শ্ৰমিকৰ সংখ্যা মুঠ শ্ৰমশক্তিৰ অৰ্ধেকতকৈয়ো অধিক, যিসকলে শ্ৰমনিৰ্ভৰ কামত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। তথাপিও, এই মহিলাসকল প্ৰণালীগতভাৱে পুৰুষতান্ত্ৰিক ব্যৱস্থাটোৰ দ্বাৰা প্ৰান্তীয়কৰণৰ সন্মুখীন হৈ আহিছে, যাৰ ভিতৰত আছে লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজন, বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানসমূহ, আৰু স্বাস্থ্যসেৱা তথা সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সীমিত সুবিধা। এই গৱেষণা পত্ৰত অসমৰ ডিব্ৰুগড় আৰু গোলাঘাট জিলাৰ চাহ-বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকৰ নিযুক্তিৰ ধৰণ, তেওঁলোকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানসমূহ আৰু স্বাস্থ্যসেৱা আৰু সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধাৰ উপলব্ধতা বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। সাক্ষাৎকাৰ, লক্ষ্যভিত্তিক গোটৰ আলোচনা, পৰ্যবেক্ষণ, আৰু বিষয়বস্তু বিশ্লেষণৰ মিশ্ৰিত পদ্ধতিৰ জৰিয়তে এই অধ্যয়নত মহিলা শ্ৰমিকে সন্মুখীন হোৱা শাৰীৰিক, ৰাসায়নিক, এৰ্গ'নমিক, জৈৱিক, আৰু মানসিক-সামাজিক প্ৰত্যাহ্বানসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হৈছে, যিবোৰ পুৰুষতান্ত্ৰিক কাঠামো আৰু শ্ৰম আইনৰ অপৰ্যাপ্ত বাস্তৱায়নৰ ফলত অধিক তীব্ৰ হৈ পৰিছে। ফলাফলত উন্নত সুৰক্ষা ব্যৱস্থা, স্বাস্থ্য-সুবিধা, আৰু লিংগ-সংবেদনশীল নীতিৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰা হৈছে যাতে অসমৰ চাহ বাগিচাসমূহত মহিলা শ্ৰমিকৰ কৰ্মৰ পৰিৱেশ উন্নত কৰাৰ লগতে তেওঁলোকৰ অধিকাৰ সুনিশ্চিত কৰা হয়।

বীজ শব্দ :

মহিলা শ্ৰমিক, বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বান, চাহ-বাগিচা, লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজন, স্বাস্থ্যসেৱাৰ সুবিধা।

১.০ পাতনি :

অসমৰ চাহ উদ্যোগ ৰাজ্যৰ অৰ্থনীতিৰ এক মূল স্তম্ভ, যিয়ে ভাৰতবৰ্ষৰ মুঠ চাহ উৎপাদনত প্ৰায় ৫০% অৰিহণা যোগায় আৰু জনসংখ্যাৰ এক উল্লেখযোগ্য অংশৰ বাবে জীৱিকা প্ৰদান কৰে (অসম চৰকাৰ, ২০১১)। চাহ ব'ৰ্ডৰ তথ্যভাণ্ডাৰ অনুসৰি, ৰাজ্যৰ চাহ উদ্যোগত থকা প্ৰায় ৭৬২ খন চাহ বাগিচাই দৈনিক প্ৰায় সাত লাখ কৰ্মসংস্থাপন প্ৰদান কৰে, যিটো দেশৰ এই খণ্ডত উৎপন্ন মুঠ দৈনিক কৰ্মসংস্থানৰ ৬০ শতাংশতকৈ অধিক (অসম চৰকাৰ, ২০২৩-২৪)। এই শ্ৰমনিৰ্ভৰ উদ্যোগত মহিলাসকলৰ ভূমিকা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ, যিহেতু তেওঁলোকৰ সংখ্যা শ্ৰমশক্তিৰ ৫০% তকৈ অধিক। তেওঁলোক মূলতঃ চাহপাত তোলা আৰু চাহগছৰ কলম দিয়া দৰে কামত নিয়োজিত, যিবোৰ কাম 'নিপুণ আঙুলি'ৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ



ড° উৎপল ডেকা

সহকাৰী অধ্যাপক, অৰ্থনীতি বিভাগ  
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়  
খানাপাৰা, গুৱাহাটী- ৭৮১০২২  
☎ ৯৮৬৪৮৫২২৮২  
✉ utpaldeka007@gmail.com

বাবে পৰস্পৰাগতভাৱে নিখুঁত স্ত্ৰীলিঙ্গীয় কাম হিচাপে গণ্য কৰা হয় (Scott & Marshall, ২০০৯)। কিন্তু, এই মহিলাসকলে ব্যৱস্থাগত প্ৰাস্তীয়কৰণৰ সন্মুখীন হয়, য'ত আছে নিম্নমানৰ কৰ্ম পৰিৱেশ, বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বান আৰু স্বাস্থ্যসেৱাৰ সীমিত সুবিধা, যিবোৰ পুৰুষতাত্ত্বিক কাঠামো যেনে- লিংগভিত্তিক বৈষম্য আৰু শোষণৰ দ্বাৰা অধিক তীব্ৰ হৈ পৰে (Chatterjee, ২০০১)। এই অধ্যয়নত ডিব্ৰুগড় আৰু গোলাঘাট জিলাৰ চাহ বাগিচাসমূহৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হৈছে, য'ত মহিলা শ্ৰমিকৰ নিযুক্তিৰ ধৰণ, তেওঁলোকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানসমূহ আৰু স্বাস্থ্যসেৱা তথা সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধাৰ বিষয়ে বিশ্লেষণ কৰা হৈছে।

## ২.০ সমস্যাৰ বিৱৰ্তি :

অসমৰ চাহ-বাগিচা উদ্যোগত কঠোৰ লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজন পৰিলক্ষিত হয়, যিয়ে মহিলাসকলক চাহপাত তোলা আৰু চাহগছত কলম দিয়াৰ দৰে শ্ৰমনিৰ্ভৰ আৰু নিম্নমৰ্যাদাৰ কামৰ মাজতে সীমাবদ্ধ কৰি ৰাখে (Sarkar & Bhowmik, ১৯৯৮)। এই ভূমিকাসমূহে তেওঁলোকক উল্লেখযোগ্য বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বান যেনে- শাৰীৰিক চাপ, ৰাসায়নিক পদাৰ্থৰ সংস্পৰ্শ, আৰু মানসিক-সামাজিক চাপ যেনে- হাৰাশাস্তি আৰু চাকৰিৰ অনিশ্চয়তা আদিৰ সন্মুখীন কৰে। অপৰ্যাপ্ত স্বাস্থ্যসেৱা সুবিধা, ১৯৫১ চনৰ বাগিচা শ্ৰম আইন আৰু ১৯৬১ চনৰ মাতৃত্বকালীন সুবিধা আইনৰ দৰে শ্ৰম আইনৰ অমান্যতা, আৰু বাণিজ্য সংস্থাত সীমিত প্ৰতিনিধিত্বই তেওঁলোকৰ দুৰ্বলতা অধিক বৃদ্ধি কৰে। এই অধ্যয়নত মহিলা শ্ৰমিকৰ কামৰ ধৰণ, বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বান, আৰু স্বাস্থ্যসেৱা তথা সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধাৰ বিষয়ে বিশ্লেষণ কৰি এই সমস্যাসমূহ সমাধানৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

## ৩.০ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

এই অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল—

১. চাহ-বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকৰ নিযুক্তিৰ ধৰণ বিশ্লেষণ কৰা।

২. চাহ-বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানৰ ধৰণ অন্বেষণ কৰা।

৩. চাহ-বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকৰ বাবে স্বাস্থ্যসেৱা আৰু সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধাৰ উপলব্ধতা সম্পৰ্কে মূল্যায়ন কৰা।

## ৪.০ অধ্যয়নৰ তাৎপৰ্য :

চাহ উদ্যোগে লাখ লাখ শ্ৰমিক নিয়োগ কৰে, য'ত মহিলাসকলে চাহপাত তোলা, চাহগছৰ কলম দিয়া আৰু গধুৰ বোজা কঢ়িয়াই নিয়াৰ দৰে শ্ৰমনিৰ্ভৰ কামত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে (Chatterjee, ২০০১)। লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজন, বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বান আৰু অপৰ্যাপ্ত কল্যাণমূলক সুবিধাৰ অপৰ্যাপ্ততাৰ ফলত সৃষ্ট মহিলা শ্ৰমিকৰ নিৰ্দিষ্ট সমস্যাসমূহৰ তদন্তৰ প্ৰয়োজনীয়তা উদ্ভৱ হৈছে। এই অধ্যয়নে শ্ৰম অধিকাৰ আৰু লিংগ সমতা বিষয়ৰ আলোচনাত অৰিহণা যোগোৱাৰ উপৰিও, অসমৰ চাহ বাগিচাত মহিলাসকলে সন্মুখীন হোৱা বিভিন্ন সমস্যা সম্পৰ্কে অৱগত কৰোৱাৰ লগতে চাহ-বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকৰ কৰ্ম পৰিৱেশ উন্নত কৰিবলৈ লক্ষ্যভিত্তিক হস্তক্ষেপৰ পোষকতা কৰিব।

## ৫.০ অধ্যয়নৰ সীমাবদ্ধতা :

এই অধ্যয়নৰ সীমাবদ্ধতাসমূহ হ'ল—

১. এই অধ্যয়ন ডিব্ৰুগড় আৰু গোলাঘাট জিলাৰ চাহ-বাগিচাসমূহতে সীমাবদ্ধ, আৰু কেৱল মহিলা শ্ৰমিকৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিয়া হৈছে।

২. এই অধ্যয়ন বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বান আৰু স্বাস্থ্যসেৱা তথা সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধাৰ ওপৰত কেন্দ্ৰিত, মজুৰি গাঁথনি বা বহল শ্ৰম নীতিৰ দৰে অন্যান্য দিশ আলোচনাৰ পৰা বাদ দিয়া হৈছে।

## ৬.০ অধ্যয়নৰ যুক্তি :

ডি. ডি. গিৰি ৰাষ্ট্ৰীয় শ্ৰম সংস্থা আৰু আন্তৰ্জাতিক শ্ৰম সংস্থাৰ প্ৰতিবেদনত চাহ-বাগিচাত উচ্চ বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানৰ কথা উল্লেখ কৰা হৈছে, বিশেষকৈ মহিলাসকলৰ বাবে, যিসকলে কীটনাশকৰ সংস্পৰ্শ, শাৰীৰিক চাপ, আৰু লিংগভিত্তিক হাৰাশাস্তিৰ দৰে প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হয়। শ্ৰম আইনৰ কঠোৰ প্ৰয়োগৰ অভাৱ আৰু স্বাস্থ্যসেৱাৰ সীমিত সুবিধাই এই সমস্যাসমূহক অধিক জটিল কৰি তুলিছে, যাৰ ফলত অসমৰ চাহ বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকৰ দুৰ্দৰ্শা সমাধানৰ বাবে এক কেন্দ্ৰীভূত অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজন হৈছে।

## ৭.০ সম্পৰ্কিত সাহিত্যৰ পৰ্যালোচনা :

অসমৰ চাহ উদ্যোগ, যি ভাৰতৰ চাহ উৎপাদনৰ ক্ষেত্ৰখনত এক উল্লেখযোগ্য অৰিহণা যোগায়, তাত লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজন অতি স্পষ্ট। মহিলাসকলে

চাহ উদ্যোগৰ মুঠ শ্ৰমশক্তিৰ ৫০% তকৈ অধিক (Sarkar & Bhowmik, ১৯৯৮)। এই পৰ্যালোচনাত মহিলা শ্ৰমিকৰ নিযুক্তিৰ ধৰণ, তেওঁলোকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহান আৰু স্বাস্থ্যসেৱা তথা সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধাৰ বিষয়ে সম্পৰ্কিত মূল সাহিত্য সংশ্লেষণ কৰা হৈছে।

Scott আৰু Marshall (২০০৯) এ লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজনক বিশেষ লিংগ ভূমিকাৰ বন্টন হিচাপে সংজ্ঞায়িত কৰিছে, য'ত চাহ বাগিচাত মহিলাসকল মূলতঃ চাহপাত তোলাৰ কামত নিয়োজিত, যিটো নিপুণতা আৰু 'নিপুণ আঙুলি'ৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ বাবে নিখুঁত স্ত্ৰীলিঙ্গীয় কাম হিচাপে গণ্য কৰা হয়। এই বিভাজনে মহিলাসকলক শ্ৰমনিৰ্ভৰ, নিম্নমৰ্যাদাৰ কাম যেনে পাত তোলা আৰু গছ কলম দিয়া কামৰ মাজত সীমাবদ্ধ কৰি ৰাখে, আনহাতে পুৰুষসকলে তত্ত্বাৱধায়ক আৰু যান্ত্ৰিক ভূমিকাত আধিপত্য বিস্তাৰ কৰে (Moore, ১৯৯৫)। Moore ৰ অধ্যয়নে বৃত্তিগত লিংগ বিভাজনৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিছে, যিয়ে মহিলাসকলক উচ্চ বেতনৰ ভূমিকাৰ পৰা বঞ্চিত কৰে আৰু তেওঁলোকৰ কামক অস্বীকৃত আৰু কম মজুৰিৰ কৰি তোলে। মাৰ্ক্সীয় নাৰীবাদে ঘৰুৱা আৰু বাগিচাৰ শ্ৰমক 'পুনৰুৎপাদন শ্ৰম' হিচাপে চিহ্নিত কৰে, যিয়ে কৰ্মক্ষেত্ৰ আৰু ঘৰ দুয়োটাতে শোষণৰ ওপৰত

গুৰুত্ব আৰোপ কৰে (Smith, ১৯৭৭)। Chatterjee (২০০১) এ অসমৰ চাহ বাগিচাত পুৰুষতান্ত্ৰিক 'প্লাণ্টাৰ-মেনেজাৰ-চাহাব' ব্যৱস্থাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে, য'ত মহিলাসকল অধীনস্থ, আৰু তেওঁলোকৰ শোষণক পৃষ্ঠপোষকতাৰ জৰিয়তে বৈধতা প্ৰদান কৰা হয়, যিয়ে তেওঁলোকৰ উৰ্ধ্বমুখী গতিশীলতা সীমিত কৰে আৰু লিংগ শ্ৰেণীবিন্যাস শক্তিশালী কৰে।

বৃত্তিগত প্ৰত্যাহানৰ ক্ষেত্ৰত, Chaudhuri (২০১৪) এ মহিলা শ্ৰমিকে সন্মুখীন হোৱা একাধিক প্ৰত্যাহান চিহ্নিত কৰিছে, য'ত আছে পুনৰাবৃত্তিমূলক চাহপাত তোলাৰ গতি আৰু গধুৰ বোজা কঢ়িয়াই নিয়াৰ ফলত হোৱা দীৰ্ঘম্যাদী পিঠিৰ বিষ উল্লেখযোগ্য। ৰাসায়নিক প্ৰত্যাহানৰ ক্ষেত্ৰত, পৰ্যাপ্ত ব্যক্তিগত সুৰক্ষা সঁজুলি (PPE) অবিহনে কীটনাশক আৰু সাৰৰ সংস্পৰ্শৰ ফলত ছালৰ জ্বলাপোৰা, শ্বাস-প্ৰশ্বাসজনিত সমস্যা, আৰু দীৰ্ঘম্যাদী প্ৰজনন স্বাস্থ্যৰ সমস্যাৰ সৃষ্টি হয়। জৈৱিক প্ৰত্যাহানৰ ভিতৰত পোক-পৰুৱাৰ কামোৰ আৰু বন্যপ্ৰাণীৰ সংস্পৰ্শৰ ফলত মেলেৰিয়াৰ দৰে ভেকুঁৰ-জনিত ৰোগৰ সম্ভাৱনা বৃদ্ধি পায়। মানসিক-সামাজিক প্ৰত্যাহানৰ ভিতৰত লিংগভিত্তিক হাৰাশাস্তি আৰু চাকৰিৰ অনিশ্চয়তাৰ ফলত মহিলাসকলৰ দুৰ্বলতা বৃদ্ধি পায়, য'ত শ্ৰম অধিকাৰৰ দুৰ্বল প্ৰয়োগৰ বাবে সীমিত



প্রতিকাৰৰ সুযোগ থাকে (Chatterjee, ২০০১)। Samarasinghe (১৯৯৩) এ শ্ৰীলংকাৰ সৈতে তুলনা কৰি উল্লেখ কৰিছে যে মহিলা চাহ শ্ৰমিকে নিম্ন মজুৰি, গধুৰ কৰ্মভাৰ, আৰু পুৰুষৰ দ্বাৰা উপাৰ্জনৰ নিয়ন্ত্ৰণৰ সন্মুখীন হয়, যিয়ে তেওঁলোকৰ মাজত সামাজিক-অৰ্থনৈতিক আৰু মানসিক চাপৰ বৃদ্ধি কৰে।

স্বাস্থ্যসেৱা আৰু সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধাৰ অপৰ্যাপ্ততা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰি Sarkar আৰু Bhowmik (১৯৯৮) এ উল্লেখ কৰিছে যে মহিলা সকলৰ ট্ৰেড ইউনিয়নত ভূমিকা কেৱল সদস্যতা বা স্পৰ্শকাতৰ সমাবেশত অংশগ্ৰহণৰ মাজতেই সীমাবদ্ধ। যাৰ ফলত তেওঁলোকৰ মূল সমস্যা, যেনে অপৰ্যাপ্ত স্বাস্থ্য সুবিধা আৰু হাৰাশাস্তিৰ বিষয়ে খুব কমেইহে আলোচনা হয়। ১৯৫১ চনৰ বাগিচা শ্ৰম আইনত কল্যাণমূলক সুবিধাৰ বাধ্যতামূলক বিধানৰ কথা উল্লেখ কৰা হৈছে যদিও ইয়াৰ ফলপ্ৰসু প্ৰয়োগৰ ব্যাপক অভাৱ বা অমান্যতাৰ ফলত মহিলাসকলে পৰ্যাপ্ত চিকিৎসা সেৱা বা সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ পৰা বঞ্চিত হয় (Chaudhuri, ২০১৪)। Choudhury (২০১০) এ ঐতিহাসিক শোষণৰ কথা উল্লেখ কৰিছে, বিশেষকৈ আদিবাসী মহিলাসকলৰ, যিসকলে যৌন শোষণ আৰু মাতৃত্বকালীন সুবিধাৰ অভাৱৰ দৰে অতিৰিক্ত প্ৰত্যাহানৰ সন্মুখীন হয়, যিয়ে তেওঁলোকৰ স্বাস্থ্যসেৱাৰ সুবিধাৰ সীমাবদ্ধতাক অধিক তীব্ৰতৰ কৰে।

#### ৮.০ গৱেষণাৰ ব্যৱধান :

যদিও বিদ্যমান অধ্যয়নসমূহে চাহ বাগিচাত লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজন আৰু সাধাৰণ কৰ্ম পৰিবেশৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে, অসমৰ চাহ বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহান আৰু স্বাস্থ্যসেৱা তথা সুৰক্ষাৰ লগত জড়িত প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধাৰ ওপৰত নিৰ্দিষ্টভাৱে কেন্দ্ৰিত গৱেষণা সীমিত। বেছিভাগ অধ্যয়নে শ্ৰমৰ বিষয়সমূহ বহলভাৱে বা অন্য অঞ্চলৰ ওপৰত কেন্দ্ৰিত কৰিছে যদিও ডিব্ৰুগড় আৰু গোলাঘাট জিলাত বৃত্তিগত প্ৰত্যাহান আৰু স্বাস্থ্যসেৱা সম্পৰ্কে স্থানীয় আৰু লিংগ-নিৰ্দিষ্ট বিশ্লেষণৰ এক ব্যৱধান বৈ গৈছে। এই অধ্যয়নত প্ৰাথমিক তথ্য সংগ্ৰহৰ জৰিয়তে এই

ব্যৱধান পূৰণৰ লক্ষ্য বখা হৈছে।

#### ৯.০ গৱেষণাৰ পদ্ধতি :

##### ৯.১ গৱেষণাৰ প্ৰশ্ন :

এই গৱেষণা কৰ্মৰ লগত জড়িত প্ৰশ্নসমূহ হ'ল—

১. চাহ-বাগিচাৰ মহিলা শ্ৰমিকসকলক কেনেকুৱা ধৰণৰ কামত নিযুক্তি দিয়া হয়?

২. মহিলা শ্ৰমিকসকলে কেনেকুৱা ধৰণৰ বৃত্তিগত প্ৰত্যাহানৰ সন্মুখীন হয়, আৰু স্বাস্থ্যসেৱাৰ সুবিধা কিমান উপলব্ধ?

##### ৯.২ গৱেষণাৰ ৰূপৰেখা :

এই অধ্যয়নে গুণগত আৰু পৰিমাণগত তথ্য সংগ্ৰহৰ মিশ্ৰিত পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰিছে। এই অধ্যয়নত ডিব্ৰুগড় জিলাৰ দুখন (হেজেল বেংক চাহ বাগিচা আৰু বৰবৰুৱা চাহ-বাগিচা) আৰু গোলাঘাট জিলাৰ দুখন (হালমিৰা চাহ বাগিচা আৰু দলৌজান চাহ বাগিচা) সৰ্বমুঠ চাৰিখন চাহ-বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহানৰ বিষয়ে বিশ্লেষণ কৰা হৈছে। এই বাগিচাসমূহ মূলত উচ্চ চাহ উৎপাদন আৰু মহিলা শ্ৰমিকৰ উপস্থিতিৰ বাবে নিৰ্বাচন কৰা হৈছিল। এই অধ্যয়নত তথ্য সংগ্ৰহৰ বাবে সৰ্বমুঠ ৩৮ টা নমুনা সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল। ইয়াৰ ভিতৰত ২৩ গৰাকী মহিলা শ্ৰমিক, ৫ গৰাকী পুৰুষ শ্ৰমিক, ৫ গৰাকী বাগিচা সংস্থাৰ সদস্য, আৰু ৫ গৰাকী বাগিচা পৰিচালনাৰ লগত জড়িত ব্যক্তি।

##### ৯.৩ তথ্য সংগ্ৰহৰ আহিলা :

তলত দিয়া ধৰণে মুখামুখি সাক্ষাৎকাৰ, লক্ষ্যভিত্তিক গোটৰ আলোচনা, পৰ্যবেক্ষণ, আৰু বাগিচা তথা বাগিচাৰ হাস্পাতালৰ অভিলেখ তথা গৌণ উৎসৰ পৰ্যালোচনাৰ জৰিয়তে আমাৰ এই অধ্যয়নৰ বাবে তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল।

১. সাক্ষাৎকাৰ : মহিলা শ্ৰমিক, ট্ৰেড ইউনিয়নৰ সদস্য, আৰু বাগিচা পৰিচালনাৰ লগত জড়িত ব্যক্তিৰ সৈতে গঠনমূলক সাক্ষাৎকাৰৰ জৰিয়তে কৰ্ম পৰিবেশ আৰু বৃত্তিগত প্ৰত্যাহানৰ বিষয়ে বিশদ তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল।

২. লক্ষ্যভিত্তিক গোটৰ আলোচনা : মহিলা শ্ৰমিকৰ সৈতে তেওঁলোকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত

প্ৰত্যাহান আৰু স্বাস্থ্যসেৱা তথা সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধা সম্পৰ্কে তেওঁলোকৰ সমষ্টিগত অভিজ্ঞতা আৰু প্ৰত্যাহান অন্বেষণৰ বাবে লক্ষ্যভিত্তিক গোটৰ আলোচনা কৰা হৈছিল।

৩. পৰ্যবেক্ষণ : কৰ্মক্ষেত্ৰৰ পৰিৱেশ আৰু সুৰক্ষা পদ্ধতিৰ মূল্যায়নৰ বাবে ক্ষেত্ৰ পৰ্যবেক্ষণ কৰা হৈছিল।

৪. দলিলভিত্তিক প্ৰমাণ : বাগিচা তথা বাগিচাৰ হাৰ্পতালৰ তথ্য আৰু গৱেষণা পত্ৰিক, তথা প্ৰতিবেদন আৰু লিখনিৰ দৰে বিভিন্ন গৌণ উৎসৰ পৰা চাহ বাগিচাৰ মহিলা শ্ৰমিকসকলে সন্মুখীন হোৱা কৰ্মক্ষেত্ৰৰ পৰিৱেশ, বৃত্তিগত প্ৰত্যাহান, স্বাস্থ্যসেৱা তথা সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধা সম্পৰ্কে দলিলভিত্তিক তথ্য আৰু প্ৰমাণ সংগ্ৰহ কৰা হৈছিল।

#### ৯.৪ তথ্য বিশ্লেষণ :

সাক্ষাৎকাৰ আৰু লক্ষ্যভিত্তিক গোটৰ গুণগত তথ্য বিশ্লেষণৰ বাবে Berelson (১৯৫২) ৰ সংজ্ঞা অনুসৰি বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল, যাতে পুনৰাবৃত্তিমূলক বিষয়বস্তু আৰু ধৰণ চিনাক্ত কৰা হয়। তাৰোপৰি, প্ৰতিবেদন আৰু সাহিত্যৰ পৰা পোৱা গৌণ তথ্য ফলাফলৰ প্ৰসংগ স্থাপনৰ বাবে সংশ্লেষণ কৰা হৈছিল।

#### ১০.০ বিশ্লেষণ আৰু আলোচনা :

##### ১০.১ মহিলা শ্ৰমিকৰ নিযুক্তিৰ ধৰণ :

অসমৰ চাহ বাগিচাত কঠোৰ লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজন পৰিলক্ষিত হয়, য'ত মহিলাসকল মূলতঃ নিম্নলিখিত কামত নিয়োজিত—

১. চাহ পাত তোলা : শ্ৰমনিৰ্ভৰ চাহ পাত তোলাৰ কাম, য'ত 'নিপুণ আঙুলি'ৰ প্ৰয়োজন, মূলতঃ মহিলাসকলে, স্থায়ী আৰু অস্থায়ী উভয় শ্ৰমিকে, সম্পাদন কৰে (Sarkar & Bhowmik, ১৯৯৮)। শ্ৰমিকসকলে প্ৰতিদিন ন্যূনতম ২২ কেজি পাত তুলি মৌলিক মজুৰি ৮০ টকা উপাৰ্জন কৰে, অতিৰিক্ত কেজিৰ বাবে সামান্য মাননিৰ সৈতে (Chatterjee, ২০০১)।

২. কলম দিয়া : চাহ গছৰ কলম দিয়া কাম, যিটো নিখুঁততাৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ বাবে নিখুঁত স্ত্ৰীলিঙ্গীয় কাম হিচাপে গণ্য কৰা হয় আৰু মহিলাসকলৰ দ্বাৰা সম্পাদিত হয়।

৩. গধুৰ বোজা কঢ়িয়াই নিয়া : মহিলাসকলে ২২

কেজিৰো অধিক ওজনৰ চাহ পাতৰ গধুৰ টুকুৰী মূৰে ফিতাৰ সহায়ত কঢ়িয়াই নিয়ে, যিয়ে শাৰীৰিক চাপৰ সৃষ্টি কৰে।

৪. ঘৰুৱা কাম : বাগিচাৰ কামৰ বাহিৰেও, মহিলাসকলে পুৰুষৰ সহায় অবিহনে বন্ধন আৰু সন্তান প্ৰতিপালনৰ দৰে সকলো ঘৰুৱা কাম পৰিচালনা কৰে, যিয়ে তেওঁলোকৰ ওপৰত দৈৱত ভাৰ সৃষ্টি কৰে আৰু ট্ৰেড ইউনিয়নৰ দৰে অন্যান্য কাৰ্যকলাপত অংশগ্ৰহণ সীমিত কৰে (Munro, ১৯৯৯)।

৫. সীমিত তত্ত্বাৱধায়ক ভূমিকা : মহিলাসকলে তত্ত্বাৱধায়ক বা পৰিচালনাৰ ভূমিকাত খুব কমেই অংশগ্ৰহণ কৰে, যিবোৰ মূলত পুৰুষৰ দ্বাৰা আধিপত্য বিস্তাৰিত আৰু ইয়াৰ ফলস্বৰূপে বাগিচাৰ কৰ্ম পৰিচালনা বা আন আন ক্ষেত্ৰত মহিলাসকল সদায় পুৰুষসকলৰ অধীনস্থ শক্তি হিচাপে কাম কৰে।

৬. বাগিচা সংস্থাত প্ৰান্তীয় অংশগ্ৰহণ : বাগিচাৰ শ্ৰমশক্তিৰ প্ৰায় অৰ্ধেক গঠন কৰা সত্ত্বেও, মহিলাৰ ট্ৰেড ইউনিয়নত অংশগ্ৰহণ নগণ্য। কেৱল সদস্যতা বা স্পৰ্শকাতৰ সমাবেশত অংশগ্ৰহণৰ মাজতে সীমাবদ্ধ হৈ থাকে তেওঁলোকৰ ট্ৰেড ইউনিয়নত অংশগ্ৰহণ। পুৰুষৰ আধিপত্যৰ বাবে সিদ্ধান্ত গ্ৰহণত মহিলাসকলৰ নগণ্য প্ৰভাৱ থাকে।

#### ১০.২ মহিলা শ্ৰমিকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহান :

ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন আৰু সাহিত্যৰ পৰ্যালোচনাৰ জৰিয়তে পোৱা তথ্যৰ ভিত্তিত মহিলা শ্ৰমিকসকলে সন্মুখীন হোৱা একাধিক বৃত্তিগত প্ৰত্যাহান তলত দিয়া ধৰণে চিনাক্ত কৰা হৈছে—

##### ১. শাৰীৰিক প্ৰত্যাহান :

পুনৰাবৃত্তিমূলক গতি : দীৰ্ঘকালীন চাহগছৰ কেচাপাত তোলা আৰু গধুৰ বোজা কঢ়িয়াই নিয়াৰ ফলত মহিলা শ্ৰমিকসকলে পেশী-অস্থিৰ বিকাৰ, যেনে দীৰ্ঘম্যাদী পিঠিৰ বিষ আৰু সন্ধিৰ সমস্যাত ভোগে। এগৰাকী মহিলা শ্ৰমিকে আমাৰ আগত উল্লেখ কৰিছিল যে, “আমি প্ৰতিদিন ন্যূনতম ২২ কেজি পাত কঢ়িয়াই নিওঁ,” যিয়ে আমাৰ শাৰীৰিক ক্ষতিৰ কথা স্পষ্ট কৰে (ক্ষেত্ৰ সাক্ষাৎকাৰ, ২০২৫)।

প্ৰতিকূল জলবায়ুৰ সংস্পৰ্শ : দীৰ্ঘ সময়ৰ বাবে অত্যধিক গৰম বা বৰষুণত কাম কৰাৰ ফলত মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ মাজত তাপজনিত ক্লান্তি, পানীৰ অভাৱ, আৰু হাইপ'থায়মিয়াৰ প্ৰত্যাহান বৃদ্ধি পায়।

## ২. ৰাসায়নিক প্ৰত্যাহ্বান :

কীটনাশকৰ সংস্পৰ্শ : পৰ্যাপ্ত PPE অবিহনে কীটনাশক আৰু সাৰৰ সংস্পৰ্শ অহাৰ ফলত মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ মাজত ছালৰ জ্বলা-পোৰা, শ্বাস-প্ৰশ্বাসজনিত সমস্যা, আৰু হৰম'নৰ ভাৰসাম্যহীনতাৰ দৰে দীৰ্ঘম্যাদী স্বাস্থ্যজনিত সমস্যাৰ সৃষ্টি হয় (Chaudhuri, ২০১৪)।

প্ৰশিক্ষণৰ অভাৱ : মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ মাজত চাহ বাগানত ব্যৱহৃত বিভিন্ন ৰাসায়নিক পদাৰ্থৰ নিৰাপদ ব্যৱহাৰৰ ওপৰত সীমিত প্ৰশিক্ষণেও বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বান বৃদ্ধি কৰে।

## ৩. এৰ্গ'নমিক প্ৰত্যাহ্বান :

অপৰ্যাপ্ত সঁজুলি : চাহগছৰ পাত তুলা আৰু ছাঁটনিৰ বাবে ব্যৱহৃত অ-এৰ্গ'নমিক সঁজুলিয়ে চাহ শ্ৰমিকসকলৰ বিশেষকৈ মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ হাত আৰু পিঠিৰ ক্ষতিৰ প্ৰত্যাহ্বান বৃদ্ধি কৰে।

দুৰ্বল কৰ্মক্ষেত্ৰ : মহিলা শ্ৰমিকসকলে কাৰখানাত বাছনি আৰু পেকেজিংৰ কাম সীমিত সুবিধাৰ পৰিৱেশত সম্পাদিত কৰিবলগীয়া হয়, যিয়ে তেওঁলোক মাজত স্বাস্থ্যজনিত ক্ষতিৰ সৃষ্টি কৰে।

## ৪. জৈৱিক প্ৰত্যাহ্বান :

পোক-পৰুৱা আৰু বন্যপ্ৰাণীৰ সংস্পৰ্শ : চাহ বাগানত কৰ্মৰত মহিলাসকলে ম'হৰ কামোৰ, সাপৰ সন্মুখীন, আৰু অন্যান্য বন্যপ্ৰাণীৰ দ্বাৰা সৃষ্ট বিভিন্ন বেমাৰ যেনে মেলেৰিয়াৰ আদিৰ দৰে ৰোগৰ প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হয়।

## ৫. মানসিক-সামাজিক প্ৰত্যাহ্বান :

হাৰাশাস্তি আৰু শোষণ : চাহ বাগানত কৰ্মৰত মহিলাসকলে বহুসময়ত তত্ত্বাবধায়ক বা পুৰুষ শ্ৰমিকৰ দ্বাৰা লিংগভিত্তিক হাৰাশাস্তি আৰু যৌন শোষণৰ বলি হয় কিন্তু শ্ৰম অধিকাৰৰ দুৰ্বল প্ৰয়োগৰ বাবে এনে হাৰাশাস্তি আৰু শোষণৰ প্ৰতিকাৰৰ সীমিত সুযোগ থাকে (Chatterjee, ২০০১)।

চাপ আৰু চাকৰিৰ অনিশ্চয়তা : নিম্ন মজুৰি (২২ কেজিৰ বাবে প্ৰতিদিন ৮০ টকা) আৰু অনিশ্চিত নিয়োগে মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ মাজত আৰ্থিক চাপ আৰু উদ্বেগৰ সৃষ্টি কৰে, বিশেষকৈ অস্থায়ী মহিলা শ্ৰমিকসকলে চাকৰিৰ অনিশ্চয়তাৰ বাবে এনে উদ্ভিগ্নতাত বেছিকৈ ভোগে।

## ৬. প্ৰজনন স্বাস্থ্যৰ প্ৰত্যাহ্বান :

ৰাসায়নিক সংস্পৰ্শ : চাহ বাগানত ব্যৱহৃত বিভিন্ন কীটনাশকে মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ স্নাতুস্ৰাৱৰ অনিয়ম, গৰ্ভপাত, আৰু জন্মগত আদি সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰে।

গধুৰ উত্তোলন : গৰ্ভৱতী মহিলাসকলে গধুৰ বোজা কঢ়িয়াই নিয়াৰ ফলত আৰু অকাল প্ৰসৱৰ সন্মুখীন হয়। আমাৰ ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ণত এনেকৈ গৰ্ভপাত হোৱা আদিবাসী শ্ৰমিকৰ সৈতে আমি মতবিনিময় কৰাৰ সুবিধা পাইছিলো।

## ৭. সামাজিক-অৰ্থনৈতিক প্ৰত্যাহ্বান :

লিংগ বৈষম্য : চাহ উদ্যোগত মহিলাসকলে পুৰুষ শ্ৰমিকসকলৰ তুলনাত অসমান মজুৰি লাভ কৰাৰ উপৰিও উচ্চ ভূমিকাৰ পৰা বঞ্চিত হয়। পুৰুষৰ দ্বাৰা তেওঁলোকৰ মজুৰিৰ নিয়ন্ত্ৰণে মহিলাসকলৰ মাজত আৰ্থিক স্বতন্ত্ৰতা সীমিত কৰে (Samarasinghe, ১৯৯৩)।

দ্বৈত ভাৰ : চাহ বাগানৰ উপৰিও ঘৰুৱা দায়িত্বই চাহ উদ্যোগত কৰ্মৰত মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ মাজত শাৰীৰিক আৰু মানসিক ক্লান্তি বৃদ্ধি কৰে।

## ১০.৩ স্বাস্থ্যসেৱা আৰু সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ সুবিধা :

অধ্যয়নত চাহ উদ্যোগত কৰ্মৰত মহিলা শ্ৰমিকৰ মাজত স্বাস্থ্যসেৱা আৰু সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণৰ ক্ষেত্ৰত উল্লেখযোগ্য ব্যৱধান প্ৰকাশ পাইছে—

## ১. স্বাস্থ্যসেৱাৰ সুবিধা :

অপৰ্যাপ্ত সুবিধা : বেছিভাগ বাগিচাত পৰ্যাপ্ত চিকিৎসা সুবিধাৰ অভাৱ, জৰুৰী অৱস্থাত যেনে প্ৰসৱৰ সময়ত কোনো ডাক্তৰ উপলব্ধ নাথাকে। শ্ৰমিকসকলে দুৰৱতী চিভিল হাস্পাতাললৈ যাত্ৰা কৰিবলগীয়া হয়, যিটো ব্যয়বহুল আৰু অব্যৱহাৰিক (ক্ষেত্ৰ সাক্ষাৎকাৰ, ২০২৫)।

আইনৰ অমান্যতা : ১৯৬১ চনৰ মাতৃত্বকালীন সুবিধা আইন, যিয়ে তিনিমাহৰ মাতৃত্বকালীন ছুটীৰ বাধ্যতামূলক বিধানৰ কথা উল্লেখ কৰে, খুব কমেই বাস্তৱায়িত হয়, আৰু শ্ৰমিকসকল বিশেষকৈ চাহ উদ্যোগত কৰ্মৰত মহিলা শ্ৰমিকসকল প্ৰায়ে তেওঁলোকৰ অধিকাৰৰ বিষয়ে অজ্ঞাত।

অপুষ্টি আৰু এনিমিয়া : চাহ উদ্যোগত কৰ্মৰত মহিলা শ্ৰমিকৰ মাজত এনিমিয়া আৰু অপুষ্টিৰ হাৰ অতি উচ্চ যদিও আইৰণৰ টেবলেট বা অন্য স্বাস্থ্য সম্পূৰকৰ নিয়মীয়া ব্যৱস্থা বাগিচাত পৰ্যাপ্ত নাথাকে।

**অস্থায়ী শ্ৰমিক :** বাগিচাৰ অস্থায়ী শ্ৰমিকসকল মৌলিক চিকিৎসাৰ প্ৰয়োজনীয়তা, আৱাস, আৰু অন্যান্য সুবিধাৰ পৰা বঞ্চিত, যিয়ে তেওঁলোকৰ দুৰ্বলতা অধিক বৃদ্ধি কৰে।

## ২. সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণ :

**প্ৰশিক্ষণৰ অভাৱ :** চাহ উদ্যোগত কৰ্মৰত মহিলা শ্ৰমিকসকলে চাহ-বাগিচাত ব্যৱহৃত বিভিন্ন কীটনাশক বা আন ৰাসায়নিক দ্ৰব্য আৰু এৰ্গ'নমিক সঁজুলিৰ ব্যৱহাৰৰ ওপৰত অতি নুনতম প্ৰশিক্ষণ লাভ কৰে, যিয়ে ভৱিষ্যত বিপদৰ আকাংক্ষা বৃদ্ধি কৰে।

**পৰিচ্ছন্নতাৰ সমস্যা :** চাহ বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ বাবে পৃথক শৌচাগাৰ আৰু পানীৰ সু-ব্যৱস্থাৰ অভাৱে পৰিচ্ছন্নতাৰ ওপৰত প্ৰভাৱ পেলায়, বিশেষকৈ ঋতুস্ৰাৱ আৰু গৰ্ভৱতী মহিলা শ্ৰমিকৰ বাবে।

**পৰিচালনাৰ অৱহেলা :** বাগিচাৰ পৰিচালনাই শ্ৰমিকৰ কল্যাণৰ ওপৰত খৰচ কমোৱাক অগ্ৰাধিকাৰ দিয়ে, এই বিশ্বাসৰ সৈতে যে অসুস্থ শ্ৰমিকক সহজে প্ৰতিস্থাপন কৰিব পাৰি (Chaudhuri, ২০১৪)।

## ১০.৪ বাগিচা সংস্থাৰ ভূমিকা :

চাহ উদ্যোগৰ মুঠ শ্ৰমশক্তিৰ ৫০% তকৈ অধিক অৰিহণা যোগাৰা সত্ত্বেও, মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ ট্ৰেড ইউনিয়নত অংশগ্ৰহণ সীমিত। আমাৰ ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নে সামৰি লোৱা মুঠ ৩৭ জন মহিলা প্ৰতিস্থানকাৰীৰ মাজত মাত্ৰ ৯জনে ট্ৰেড ইউনিয়নত সদস্যতা গ্ৰহণ কৰিছিল। চাহ উদ্যোগত পুৰুষৰ আধিপত্যৰ বাবে আৰু ৰাজনৈতিক প্ৰভাৱৰ ফলত মহিলা শ্ৰমিকসকলে ভূগি অহা বিভিন্ন হাৰাশাস্তি, অপৰ্যাপ্ত স্বাস্থ্য সুবিধা, আৰু মাতৃত্বকালীন সুবিধাৰ দৰে সমস্যা খুব কমেই আলোচিত হয় (Sarkar & Bhowmik, ১৯৯৮)। এগৰাকী মহিলা শ্ৰমিকে উল্লেখ কৰিছিল, “বাগিচা আৰু ঘৰৰ কামে আমাৰ সকলো সময় আৰু শক্তি কাঢ়ি লৈ যায়, যিয়ে আমাৰ ইউনিয়নৰ অংশগ্ৰহণত বাধা হিচাপে কাম কৰে” (ক্ষেত্ৰ সাক্ষাৎকাৰ, ২০২৫)।

## ১০.৫ পুৰুষতান্ত্ৰিক কাঠামো :

চাহ বাগিচাত প্ৰতীকী ৰূপত ব্যৱহৃত “প্লাণ্টাৰ-মেনেজাৰ-চাহাব” বাক্যটোৱে এটা পুৰুষতান্ত্ৰিক ব্যৱস্থাৰ প্ৰতিফলন ঘটায়, য'ত মহিলাসকল কৰ্মক্ষেত্ৰ আৰু ঘৰ দুয়োটাতে পুৰুষৰ অধীনস্থ। প্লাণ্টাৰৰ দ্বাৰা যৌন শোষণ আৰু পুৰুষৰ দ্বাৰা মজুৰিৰ নিয়ন্ত্ৰণৰ ঐতিহাসিক পদ্ধতি

চাহ-বাগিচাবিলাকত এতিয়াও অব্যাহত আছে যাৰ ফলস্বৰূপে মহিলাৰ শ্ৰমক কম মূল্যায়ন কৰা হয় আৰু তেওঁলোকৰ মাত্ৰ প্ৰান্তীয়কৰণ কৰা হয় (Chatterjee, ২০০১)। চাহ-বাগিচাৰ তত্ত্বাৱধায়ক বা পৰিচালনাৰ ভূমিকাত মহিলাৰ প্ৰতিনিধিত্বৰ অভাৱে এই পুৰুষতান্ত্ৰিক শ্ৰেণীবিভাগ আৰু অধিক শক্তিশালী কৰি লিংগ-বৈষম্য অব্যাহত ৰাখে।

## ১১. উপসংহাৰ আৰু পৰামৰ্শ :

### ১১.১ উপসংহাৰ

অসমৰ চাহ উদ্যোগ মহিলা শ্ৰমিকৰ ওপৰত ব্যাপকভাৱে নিৰ্ভৰশীল, যদিও কঠোৰ লিংগভিত্তিক শ্ৰম বিভাজনৰ ফলত মহিলা শ্ৰমিকসকল চাহপাত তোলা, কলম দিয়া, আৰু গধুৰ বোজা কঢ়িয়াই নিয়াৰ দৰে শ্ৰমনিৰ্ভৰ কামতে অকল সীমাবদ্ধ। এই ভূমিকাসমূহে তেওঁলোকক উল্লেখযোগ্য বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন কৰে, য'ত আছে পেশী-অস্থিৰ বিকাৰ, কীটনাশকৰ সংস্পৰ্শ, হাৰাশাস্তি, আৰু প্ৰজনন স্বাস্থ্যৰ সমস্যা। অপৰ্যাপ্ত স্বাস্থ্যসেৱা সুবিধা, শ্ৰম আইনৰ অমান্যতা, আৰু সীমিত সুৰক্ষা প্ৰশিক্ষণে এই সমস্যাসমূহক অধিক তীব্ৰ কৰি তুলিছে। পুৰুষতান্ত্ৰিক কাঠামোয়ে কৰ্মক্ষেত্ৰ আৰু ঘৰ দুয়োটাতে মহিলাসকলক প্ৰান্তীয়কৰণ কৰি, তেওঁলোকৰ আৰ্থিক স্বাধীনতা আৰু ট্ৰেড ইউনিয়নত অংশগ্ৰহণ সীমিত কৰে। ১৯৫১ চনৰ বাগিচা শ্ৰম আইনৰ দৰে বিধান থকা সত্ত্বেও, বাস্তৱায়ন দুৰ্বল হোৱাৰ বাবে অসমৰ চাহ উদ্যোগসমূহত মহিলাসকলৰ ওপৰত হোৱা শোষণ আৰু লিংগভিত্তিক অবিচাৰ অব্যাহত আছে। এই প্ৰত্যাহ্বানসমূহ সমাধানৰ বাবে জৰুৰী পদক্ষেপৰ প্ৰয়োজন আছে যাতে অসমৰ চাহ বাগিচাসমূহত মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ বাবে অনুকূল কৰ্ম পৰিবেশৰ সূচনা হোৱাৰ লগতে মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ অধিকাৰো সুনিশ্চিত হয়।

### ১১.২ পৰামৰ্শ :

অসমৰ চাহ বাগিচাত মহিলা শ্ৰমিকে সন্মুখীন হোৱা বৃত্তিগত প্ৰত্যাহ্বানসমূহ পৰীক্ষা কৰাৰ পিছত, নীতি-নিৰ্ধাৰকৰ বাবে নিম্নলিখিত পৰামৰ্শসমূহ প্ৰস্তাৱ কৰা হৈছে :

১. PPEৰ বিধান : চাহ বাগিচাসমূহত মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ মাজত ৰাসায়নিক আৰু শাৰীৰিক প্ৰত্যাহ্বান হ্ৰাস কৰিবলৈ গ্ল'ভছ, মাৰ্ক, আৰু সুৰক্ষামূলক সাজ-পোছাকৰ ব্যৱস্থা কৰা।

২. লিংগ-সংবেদনশীল এৰ্গ'নমিক ডিজাইন :

মহিলাসকলৰ বাবে শাৰীৰিক চাপ হ্রাস কৰিবলৈ সঁজুলি আৰু কৰ্মক্ষেত্ৰৰ পৰিৱেশ উন্নত কৰা।

৩. স্বাস্থ্য আৰু মাতৃত্বকালীন সুবিধা : চাহ বাগিচাসমূহত মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ প্ৰজনন স্বাস্থ্যসেৱা, মাতৃত্বকালীন ছুটি, আৰু স্বাস্থ্য বীমাৰ সুবিধা নিশ্চিত কৰি, মাতৃত্বকালীন সুবিধা আইনৰ কঠোৰভাৱে প্ৰয়োগ কৰা।

৪. পৰিচ্ছন্নতাৰ সুবিধা : মহিলা শ্ৰমিকৰ বাবে পৰিষ্কাৰ, ব্যক্তিগত আৰু পানীৰ সুবিধা থকা শৌচাগাৰৰ ব্যৱস্থা কৰা।

৫. প্ৰশিক্ষণ আৰু সজাগতা কাৰ্যসূচী : চাহ বাগিচাত ব্যৱহৃত বিভিন্ন কীটনাশক বা আন ৰাসায়নিক দ্ৰব্যৰ ব্যৱহাৰ,

এৰ্গ'নমিক পদ্ধতি, আৰু শ্ৰমিকৰ অধিকাৰৰ ওপৰত নিয়মীয়া প্ৰশিক্ষণৰ আয়োজন কৰা যাতে মহিলা শ্ৰমিকসকলৰ মাজত সুৰক্ষা আৰু ক্ষমতায়ন বৃদ্ধি পায়।

৬. হাৰাশান্তিৰ সমাধান : চাহ-বাগিচাত লিংগভিত্তিক সহিংসতা আৰু হাৰাশান্তিৰ বিৰুদ্ধে শক্তিশালী নীতি প্ৰণয়ন কৰি সুবিধাজনক অভিযোগৰ ব্যৱস্থা কৰা।

৭. ট্ৰেড ইউনিয়নৰ শক্তিশালীকৰণ : চাহ-বাগিচাত মহিলাৰ সমস্যাৰ অগ্ৰাধিকাৰ নিশ্চিত কৰিবলৈ ট্ৰেড ইউনিয়নত মহিলাৰ প্ৰতিনিধিত্ব বৃদ্ধি কৰা আৰু সমতাভিত্তিক পোষকতাৰ প্ৰসাৰ কৰা। □

তথ্যসূত্ৰ :

- Abercrombie, N., Hill, S., & Turner, B. S. (২০০৬). *The Penguin Dictionary of Sociology* (৫ম সংস্কৰণ). Penguin Group.
- Chatterjee, P. (২০০১). *A Time for Tea : Women, Labour, and Post-Colonial Politics on an Indian Plantation*. Duke University Press.
- Chaudhuri, S.(২০১৪). *Witches, Tea Plantations, and Lives of Migrant Labourers in India*. Foundation Books.
- চৌধুৰী, ৰীতা। (২০১০)। *মাকাম*। জ্যোতি প্ৰকাশন
- Government of Assam. (২০১১). *Assam Economic Survey*. Government of Assam.
- Government of Assam.(২০২৩-২৪). *Assam Economic Survey*. Government of Assam.
- Gruning, J. F. (২০০৯). *Recruitment of Labour for Tea Gardens in Assam*. Bibliolife.
- Guha, A. (১৯৭৭). *Planter Raj to Swaraj: Freedom Struggle and Electoral Politics in Assam, 1826-1947*. People's Publishing House.
- Moore, D. (১৯৯৫). *Occupational Sex Segregation: A Study on Gender Disparities in the Workplace*. Journal of Labor Studies, ১২ (৩), ৪৫-৬০.
- Munro, A. (১৯৯৯). *Women, Work and Trade Unions*. Mansell Publishing.
- Sarkar, K., & Bhowmik, S. K. (১৯৯৮). *Trade Unions and Women Workers in Tea Plantations*. Economic and Political Weekly, ৩৩ (৫২), ৫০-৫৬.
- Samarasinghe, V. (১৯৯৩). *Puppets on a String: Women's Wage Work and Empowerment among Female Tea Plantation Workers of Sri Lanka*. The Journal of Developing Areas, ২৭ (৩), ৩২৯-৩৪০.
- Scott, J., & Marshall, G. (২০০৯). *Oxford Dictionary of Sociology* (৪র্থ সংস্কৰণ). Oxford University Press.
- Smith, D. (১৯৭৭). *Feminism and Marxism*. Pluto Press.

## পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্বৰ আধাৰত ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ অধ্যয়ন



এঞ্জেলিকা শইকীয়া

গৱেষিকা, অসমীয়া বিভাগ  
শ্ৰীমন্ত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱ বিশ্ববিদ্যালয়  
নগাওঁ, অসম-৭৮২৪৮৫  
☎ ৭৬৩৬৮১৭৭৪৯  
✉ anjelika20161013@gmail.com



ড° বনশ্ৰী দাস

সহকাৰী অধ্যাপিকা,  
নগাওঁ বিশ্ববিদ্যালয়  
নগাওঁ, অসম-৭৮২০০১  
☎ ৯৮৫৯২৩০৩৪০  
✉ mailingtojani@gmail.com

### প্ৰস্তাৱনা :

সাহিত্য আৰু প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশৰ মাজৰ সম্পৰ্কৰ বিষয়ে চিন্তা-চৰ্চা কৰিবলৈ লোৱাৰ পৰা এটা নতুন তত্ত্ব 'ইক'লজিকেল লিটাৰেৰী ক্ৰিটিকিজিম' বা 'ইক'ক্ৰিটিকিজিম' অৰ্থাৎ পৰিস্থিতিতাত্ত্বিক সমালোচনাৰ সূচনা হয়। মানুহ প্ৰকৃতিৰ এক বিশেষ অংশ মাথো। সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাৰ (কবিতা, নাটক, উপন্যাস, গল্প আদি) মাধ্যমেৰে প্ৰাকৃতিক সত্তাসমূহ কিদৰে সংযোজিত হৈছে, প্ৰকৃতি আৰু মানুহৰ সংঘাত, মানুহে কিদৰে প্ৰকৃতিৰ এফালে জয়গান গাইছে অন্যহাতে অত্যাচাৰীৰূপে ত্ৰাসৰ সৃষ্টি কৰিছে- এই আটাইবোৰ দৃষ্টিকোণৰ পৰাই চালি জাৰি চোৱা পৰিলক্ষিত হয়। বিংশ শতিকাৰ যাঠি আৰু সত্তৰ দশকত পশ্চিমৰ উন্নত দেশসমূহত প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশ বিনষ্ট হোৱা কাৰ্যৰ বিৰুদ্ধে সচেতনতামূলক পদক্ষেপ হাতত লৈছিল। বিংশ শতিকাৰ শেষ দশকৰ ফালেহে পাশ্চাত্য সাহিত্যত বিশেষভাৱে আমেৰিকাত পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্বই প্ৰসাৰ লাভ কৰে। পাশ্চাত্যৰ বিভিন্ন সাহিত্য তত্ত্বৰ দ্বাৰা অসমীয়া সাহিত্য আলোচনা কৰাৰ দৰে পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্বৰ আধাৰতো অসমীয়া সাহিত্যক আলোচনা কৰিব পাৰি। অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰথম নিদৰ্শন চৰ্যাপদকে ধৰি মধ্যযুগৰ সাহিত্যত প্ৰকৃতিৰ উপাসনা তথা সংৰক্ষণৰ বহু দিশ উপস্থাপন কৰা হৈছে। ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্ৰকৃতিৰ নানান দিশ-প্ৰকৃতিক প্ৰশংসা, প্ৰকৃতিক উপাসনা, প্ৰকৃতি সংকট আৰু সংৰক্ষণ আদি সোমাই পৰিছে। পৰিৱেশৰ প্ৰতি সচেতন হৈ প্ৰকৃতিক সংৰক্ষণ কৰাটো অতি প্ৰয়োজন। বিষয়ৰ প্ৰাসংগিকতালৈ লক্ষ্য কৰি নিৰ্বাচিত বিষয়ত পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্বৰ আধাৰত ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতৰ বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা হৈছে।

### বীজ শব্দ :

পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্ব, প্ৰকৃতি, গীত, পৰিৱেশ।

### ০.০ অৱতৰণিকা :

### ০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

১৯৭৮ চনত ৱিলিয়াম ৰিউকাৰ্টে (William Rueckert) পোনপ্ৰথমবাৰৰ বাবে সাহিত্য অধ্যয়নত পৰিৱেশ-পৰিস্থিতিতত্ত্বৰ সৈতে জড়িত ধাৰণাসমূহক বুজাবলৈ 'ইক'ক্ৰিটিকিজিম' অভিধাটোৰ প্ৰয়োগ কৰে তেওঁৰ *Literature and Ecology: An Experiment in Ecocriticism* শীৰ্ষক ৰচনাত<sup>১</sup>। Ecocriticism পদটোৰ মূল গ্ৰীক ভাষাৰ শব্দ 'Oikio' আৰু 'Kritis', যাৰ অৰ্থ হ'ল- 'House Judge'। 'Oikos' মানে প্ৰকৃতি (Nature), আমাৰ ব্যাপক বাসস্থান (Our Widest Home) আৰু 'Kritis' মানে, যিজন প্ৰকৃতিক এক বিশেষ শৃঙ্খলাৰ মাজেৰে পৰিচালনা কৰিব বিচাৰে আৰু প্ৰকৃতিৰ প্ৰকৃত সৌন্দৰ্য্যৰ তাৰতম্য ঘটোৱা নিবিচাৰে।<sup>২</sup> উৎপত্তিগত অৰ্থ অনুসৰি পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য সমালোচনা তত্ত্বৰ বিষয়ে এইদৰে ক'ব পাৰি- ই এনে এক

সাহিত্যিক তত্ত্ব যাৰ জৰিয়তে পৃথিৱীত কিদৰে প্ৰকৃতি আৰু মানুহৰ পাৰস্পৰিক ভাৰসাম্য বন্ধাৰ সমান্তৰালভাৱে উভয়ৰে কোনো অনিশ্চয় সাধন নোহোৱাকৈ বক্ষণা-বেক্ষণ কৰিব পাৰি সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য সমালোচনা সম্পৰ্কে বিভিন্নজন সমালোচকে বিভিন্ন ধৰণে সংজ্ঞা আগবঢ়াইছে। ইয়াৰ ভিতৰত পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য সমালোচক ছেৰিল গ্লটফেল্টিয়ে কৈছে-

“সাধাৰণ অৰ্থত ক’বলৈ গ’লে, পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য সমালোচনা সাহিত্য আৰু জৈৱিক পৰিৱেশৰ মাজৰ সম্বন্ধ সম্পৰ্কে কৰা এক অধ্যয়ন। যিদৰে নাৰীবাদী সমালোচকসকলে ভাষা-সাহিত্যক লিংগগত সচেতনতাৰ দৃষ্টিভঙ্গীৰে বিশ্লেষণ কৰে আৰু মাৰ্ক্সবাদী সমালোচকসকলে উৎপাদন আৰু শ্ৰেণীগত বৈষম্যৰ প্ৰতি পাঠৰ অধ্যয়ন কৰোঁতে এক সজাগতা সৃষ্টি কৰিবলৈ চেষ্টা কৰে, সেইদৰেই পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য সমালোচনায়ো এক পৃথিৱীকেন্দ্ৰিক দৃষ্টিকোণেৰে সাহিত্যৰ অধ্যয়ন কৰে।”

বিভিন্ন ধৰণৰ সংজ্ঞাৰ বিশ্লেষণৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য সমালোচনাৰ সংজ্ঞা এনেদৰে আগবঢ়াব পাৰি- মানুহ আৰু প্ৰকৃতি সম্পৰ্কীয় এক অধ্যয়ন, যি বিজ্ঞান, কলা, সাহিত্যৰ সমাহাৰেৰে সৃষ্টি হয় আৰু ইয়াৰ উপাদানসমূহৰ মাজেৰে মানুহৰ দ্বাৰা প্ৰাকৃতিক অৱস্থানৰ উন্নয়নৰ বাবে সাম্ভাৱ্য পথৰ সন্ধান কৰা হয়।

প্ৰকৃতি আৰু মানুহ পৰস্পৰে পৰস্পৰৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল। আমাৰ চাৰিওফালৰ পৰিৱেশত আপোনা-আপুনি সৃজনশীল সকলো বস্তুকেই উমৈহতীয়াভাৱে প্ৰকৃতি বুলি কোৱা হয়। মানুহৰ প্ৰজাতিটো সদায় পৰিৱেশৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল। প্ৰকৃতিৰ নানান সম্পদ মানুহে নিজৰ ব্যৱহাৰোপযোগী কৰি লয়। মানুহৰ প্ৰয়োজন পূৰ্ণ কৰাৰ লগতে মানুহে প্ৰকৃতিৰ ওপৰত ৰাজত্ব কৰিবলৈ ধৰিছে। মানুহে বিলাসবহুলভাৱে কৰা ভোগ আৰু অভাৱ পূৰণৰ ফলশ্ৰুতিত পৃথিৱীৰ প্ৰদূষণ, গোলকীয় উষ্ণতা বৃদ্ধি, বনাঞ্চল ধ্বংস, জলসম্পদৰ অভাৱ, বিভিন্ন প্ৰজাতিৰ বিলুপ্তি আদি সমস্যাই দেখা দিছে। মানুহে প্ৰকৃতিক অবাধে প্ৰয়োগ কৰাৰ ফলত এক ভয়াৱহ সংকট প্ৰকৃতি জগতলৈ নামি আহিছে। ইয়াৰ সমাধান বিচাৰি বা সেয়া যাতে অতি সোনকালে মানৱ জাতিটোৱে বুজি উঠে, মানুহ সচেতন হয়; সেয়ে বিষয়টো সাধাৰণ মানুহৰ দৃষ্টিগোচৰ কৰিবলৈয়ে

সাহিত্যৰ বিধা সমূহৰ মাজলৈ পৰিৱেশৰ বিষয়টো অনা হৈছে।

মানুহৰ সৈতে প্ৰকৃতিৰ যি সম্পৰ্ক সেয়া তিনিধৰণৰ দৃষ্টিকোণৰ পৰা সমালোচকসকলে চোৱা দেখা যায়-

- ◆ প্ৰশংসাসূচক বা উদ্‌যাপনমূলক ৰূপত প্ৰকৃতি
- ◆ জীৱনদায়িনী শক্তি ৰূপে প্ৰকৃতি
- ◆ ভোগৰ সামগ্ৰী ৰূপত প্ৰকৃতি

পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্বত প্ৰকৃতিৰ সৌন্দৰ্যত মানুহ কিদৰে মুগ্ধ হয়, কিদৰে মানুহে প্ৰকৃতিক বিচাৰ কৰে, প্ৰকৃতিৰ সৈতে মানুহৰ নৈতিক অৱস্থান ইত্যাদিৰ আলোচনা মূলতঃ কৰা হয়।

**অসমীয়া সাহিত্যৰ পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য অধ্যয়ন :**

প্ৰকৃতিৰ ৰূপ বৰ্ণনা, সচেতনভাৱে প্ৰকৃতিক আলোচনা কৰা ইত্যাদি প্ৰকৃতি সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন বিষয়ৰ উপস্থাপন অসমীয়া সাহিত্যত অতি প্ৰাচীন কালৰ পৰাই দেখা যায়। লোকসাহিত্যকে ধৰি মধ্যযুগৰ বিভিন্ন সাহিত্যত প্ৰকৃতিৰ উপাসনা, ৰূপ বৰ্ণনা দেখা যায়। অসমৰ নদ-নদী, পাহাৰ-পৰ্বত, পশু-পক্ষী, ফল-মূল, গছ-লতাৰ বৰ্ণনাৰে অসমীয়া আদিম আৰু মধ্যযুগৰ সাহিত্যত সহজলভ্য। শংকৰদেৱৰ কীৰ্তনৰ অন্তৰ্গত হৰমোহন, বাসক্ৰীয়া; দশমৰ বৰ্ষা বৰ্ণন, শৰৎ বৰ্ণনাত প্ৰকৃতিৰ সুন্দৰ ৰূপত বৰ্ণিত হৈছে। আধুনিক অসমীয়া ভাষা-সাহিত্যৰ বাৰ্তাবাহক অৰুণোদই কাকতত পৰিৱেশ সম্পৰ্কীয় প্ৰবন্ধ ‘জন্তুবোৰক আমি জি ৰূপ বেবহাৰ কৰিব লাগে তাৰ কথা( অৰুণোদই, ১২৫), মলুআ ৰজাৰ এখন চিঠি(মে’, পঞ্চম সংখ্যা, নৱম বৰ্ষ) ইত্যাদি প্ৰকাশিত হয়। পৰৱৰ্তী সময়ত অসমীয়া সাহিত্যৰ বিভিন্ন উপাদান কবিতা, গল্প, উপন্যাস, নাটক আৰু চলচ্চিত্ৰৰ মাজত অধিক স্পষ্টৰূপত পাৰিপাৰ্শ্বিক সচেতনতাৰ প্ৰকাশ ঘটা দেখা যায়। অসমীয়া গীতি সাহিত্যৰ ভিতৰত জ্যোতি প্ৰসাদ আগৰৱালাৰ *সেউজী সেউজী সেউজী অ’*; পাৰ্বতী প্ৰসাদৰ *আজি ফাগুনৰ পুৱা বেলাতেই*; জয়ন্ত হাজৰিকাৰ *কাৰ বাতিৰ পৃথিৱী* ইত্যাদিত প্ৰকৃতি নানান দিশৰ লগতে সচেতনতাৰ কথাসমূহ সুন্দৰৰূপত বৰ্ণনা কৰিছে।

পৰিৱেশ সচেতনতাৰ লগতে প্ৰকৃতি চৰ্চাৰ পৰস্পৰা অসমীয়া গীতি সাহিত্যত দেখা যায়। ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত-মাত, চিন্তনত পৰিৱেশ সচেতনতা আৰু পৰিৱেশ চিন্তন মনকৰিবলগীয়া। হাজৰিকাৰ বিশেষকৈ ‘অৰুণ কিৰণ শীষ

ভূষণ’, ‘এটি কুঁহি দুটি পাত’, ‘বং কিনিবা কোনে’, ‘বং বং নানা বং’, ‘কুঁৱলী কুঁৱলী কি ৰগৰ কৰিলি’, ‘কাজিৰঙা’, ‘শুনা শুনা হে’, জংলী জংলী কয়’, সেউজী বননিৰ বনে বনে’, ‘পাহাৰৰ সিপাৰে ঐ নিলাজী পাহাৰ’, ‘হে হে ঢোলে ডগৰে’ ইত্যাদি গীতত প্ৰকৃতিৰ নানান স্বৰূপৰ লগতে প্ৰকৃতি সম্পৰ্কীয় নানান বিষয়ক সাঙুৰি লোৱা দেখা যায়।

### ০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

প্ৰস্তাৱিত গৱেষণাপত্ৰখনৰ উদ্দেশ্য হ’ল-

ক) পাৰিপাৰ্শ্বিক সাহিত্য সমালোচনা তত্ত্বৰ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

গ) নিৰ্বাচিত গীতকেইটাত অসমৰ পৰিৱেশক কিদৰে তুলি ধৰিছে, তাৰ বিচাৰ কৰা।

ঘ) পাৰিপাৰ্শ্বিকতত্ত্বৰ আধাৰত নিৰ্বাচিত গীতকেইটাক বিশ্লেষণ কৰা।

ঙ) নিৰ্বাচিত গীতৰ আধাৰত সমাজ পৰিপ্ৰেক্ষাত অসমৰ পৰিৱেশৰ সমস্যা আৰু সমাধানৰ উপায় আলোচনা কৰা।

### ০.৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব :

প্ৰস্তাৱিত গৱেষণাপত্ৰখনৰ বিষয়টোৰ গুৰুত্ব হ’ল-

ক) নিৰ্বাচিত গীতকেইটাৰ বিশ্লেষণৰ যোগেদি প্ৰকৃতি আৰু মানুহৰ সম্পৰ্ক ইত্যাদি দিশসমূহ অধ্যয়ন কৰাটো গুৰুত্বপূৰ্ণ বুলি ক’ব পাৰি।

খ) পৰিৱেশকেন্দ্ৰিক অসমীয়া গীত তেনেই কম আৰু বিভিন্ন উপস্থাপন শৈলীৰে নিৰ্মাণ কৰাৰ প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

গ) নিৰ্বাচিত গৱেষণাপত্ৰই নবীন গীতিকাৰ সকলৰ মাজতো অসমৰ পৰিৱেশক লৈ গীত ৰচনা কৰাৰ এক সচেতনতাৰ সৃষ্টি কৰিব বুলি আশা কৰিব পাৰি। এনে দিশৰ পৰাও বিষয়টো অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

### ০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টো অধ্যয়ন কৰাৰ বাবে ভূপেন হাজৰিকাৰ কেইটামান নিৰ্দিষ্ট গীত নিৰ্বাচন কৰা হৈছে। গীতকেইটা হ’ল-

অধ্যয়নৰ সীমাৰুদ্ধতাৰ বাবে এই ভূপেন হাজৰিকাৰ ‘অৰুণ কিৰণ শীঘ্ৰ ভূষণ’, ‘এটি কুঁহি দুটি পাত’, ‘বং কিনিবা কোনে’, ‘বং বং নানা বং’, ‘কুঁৱলী কুঁৱলী কি ৰগৰ কৰিলি’,

‘কাজিৰঙা’, ‘শুনা শুনা হে’, জংলী জংলী কয়’, সেউজী বননিৰ বনে বনে’, ‘পাহাৰৰ সিপাৰে ঐ নিলাজী পাহাৰ’, ‘হে হে ঢোলে ডগৰে’ - এই গীতকেইটা বিশ্লেষণৰ ভিতৰলৈ অনা হৈছে।

### ০.৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে দুটা পদ্ধতিৰ প্ৰয়োগ কৰা হৈছে-

অ. তথ্য আহৰণৰ পদ্ধতি

আ. তথ্য বিশ্লেষণৰ পদ্ধতি

### অ. তথ্য আহৰণৰ পদ্ধতি :

ক) মুখ্য উৎস :

নিৰ্বাচিত গীতকেইটাৰ মূল পাঠকেই গৱেষণা পত্ৰখনৰ মুখ্য উৎস।

খ) গৌণ উৎস :

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্ব সম্পৰ্কীয় গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ, প্ৰকাশিত-অপ্ৰকাশিত গৱেষণা পত্ৰ, গ্ৰন্থ, ক্ষুদ্ৰ গৱেষণা কণিকা আদি গৱেষণা পত্ৰখনৰ গৌণ উৎস হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

আ. তথ্য বিশ্লেষণৰ পদ্ধতি :

ক) বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতি : বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতি সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ অন্তৰ্গত। এই পদ্ধতিৰ সহায়ত সাহিত্য-পাঠ এটাত লুকাই থকা বিভিন্ন দিশ প্ৰকাশ কৰিব পৰা যায়। বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰে নিৰ্বাচিত বিষয়টো বিশ্লেষণ কৰা হৈছে।

খ) সমীক্ষাত্মক পদ্ধতি : ভূপেন হাজৰিকাৰ পাৰিপাৰ্শ্বিক গীতৰ সমীক্ষাৰ বাবে এই পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

### ১.০ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্ব :

ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্ৰকৃতি চিত্ৰণ, প্ৰকৃতিপ্ৰীতি, প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি সজাগতা সৃষ্টি ইত্যাদি আটাইবোৰ দিশ সামৰি লোৱা দেখা যায়। জনসচেতনতা সৃষ্টি কৰি প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি সচেতন আৰু প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি সজাগতা সৃষ্টি কৰাত তেওঁৰ গীতে যথেষ্ট অৱদান আগবঢ়াইছে। বহনক্ষম পাৰিপাৰ্শ্বিক বাস্তৱ জীৱন শৈলীক মানুহ আৰু প্ৰকৃতিৰ মাজত থকা সম্পৰ্কৰ বোধে স্পষ্ট কৰি তুলিছে। হাজৰিকাৰ গীতত প্ৰকৃতিৰ উপাদানৰ বৰ্ণনাৰ লগে লগে, সেই উপাদানসমূহৰ

সংৰক্ষণৰ চেতনাৰ বৰ্হিপ্রকাশ ঘটিছে।

পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্বৰ আধাৰত পৰিৱেশ অধ্যয়নৰ নানান দিশ সামৰি লোৱা দেখা যায়। প্ৰকৃতিৰ স্বৰূপৰ উপাসনা, প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি থকা প্ৰেম, প্ৰকৃতি সংৰক্ষণ তথা প্ৰকৃতিৰ সচেতনতা সৃষ্টি কৰা ইত্যাদি বিভিন্ন দিশক পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্বই সামৰি লয়। হাজৰিকাৰ গীতত পাৰিপাৰ্শ্বিক তত্ত্ব প্ৰতিফলন ঘটাই দিশ সমূহৰ সম্পৰ্কে তলত আলোচনা আগবঢ়োৱা হৈছে।

### ১.০১ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্ৰশংসাসূচক বা উদ্‌যাপনমূলক ৰূপত প্ৰকৃতি :

য'ত প্ৰকৃতি আৰু বন্য অৱস্থাক বিশ্বয় আৰু আশ্চৰ্য উদ্ৰেককাৰী বুলি সমালোচকসকলে ধৰে। প্ৰকৃতি আৰু প্ৰাকৃতিক সত্তাসমূহৰ মাজত ঈশ্বৰৰ বাসস্থান বুলি ধৰা যায়। নদ-নদী প্ৰকৃতিৰ অন্যতম প্ৰধান অংশ। ভূপেন হাজৰিকাই ব্ৰহ্মপুত্ৰ, বৰাক তথা অসমৰ বিভিন্ন নদ-নদীৰ বৰ্ণনাৰ লগতে অৰুণাচল নদীৰ প্ৰতি থকা প্ৰেমৰ কথা গীতত দেখা যায়। কামেং, চিয়া, লোহিত, টিৰাপ, সোৱণশিৰী নদীৰ সৌন্দৰ্য্যৰ প্ৰেমত পৰি তেখেতে লিখিছিল 'অৰুণ কিৰণ শীষ ভূষণ'। তেখেতৰ অৰুণাচলৰ জাতীয় সংগীতটি (ৰচনাৰ সময় : ১৯৭২ চনৰ ২০ জানুৱাৰী, অৰ্থাৎ নেফাৰ পৰা অৰুণাচল নামেৰে পৰিচিত হোৱাৰ দিনা) প্ৰকৃতিৰ প্ৰেম দেখা যায় -

অৰুণ কিৰণ শীষ ভূষণ,  
অৰুণ কিৰণ শীষ ভূষণ,  
কণ্ঠ হিম কী ধাৰা,  
প্ৰভাত সুৰজ চুম্বিত দেশ,  
অৰুণাচল হামাৰা,  
অৰুণাচল হামাৰা,  
ভাৰত মা কা ৰাজদুলাৰা  
ভাৰত মা কা ৰাজদুলাৰা  
অৰুণাচল হামাৰা।  
অসমীয়া ভাষাত তেখেতে গালে-  
অৰুণ কিৰণ শিৰৰ ভূষণ  
গলে হিমৰ ঢল,  
পুৱাৰ সুৰুয়ে চুমা খোৱা দেশ  
আমাৰ অৰুণাচল।  
কামেং চিয়াং লোহিত আৰু  
টিৰাপ সোৱণশিৰী

চিৰ জ্যোতিৰ কুসুম ৰূপে

শোভে হিমগিৰি।

কাজিৰঙাত থকা নানান ধৰণৰ জীৱ-জন্তুৰ লগতে একমাত্ৰ অসমত পোৱা এশিঙীয়া গড়ৰ কথা গীতত উপস্থাপন কৰি অসমৰ প্ৰকৃতিক প্ৰশংসামূলকভাৱে উপস্থাপন কৰা দেখা গৈছে এইদৰে-

কাজিৰঙাৰ চিৰসেউজী পৰিৱেশ

শক্তি ব্যাহ্ন যে তাত

এক খৰ্গৰ গড় পৃথিৱীয়ে চায়

পক্ষীৰ সুৱদি প্ৰকাশ।

চাহবাগিছাৰ পৰিৱেশ, প্ৰকৃতি স্বৰূপ সম্পৰ্কে প্ৰত্যক্ষভাৱে হাজৰিকাই অধ্যয়ন কৰি এটি কুঁহি দুটি পাত (১৯৫৫) গীতত বৰ্ণনা কৰিছে-

এটি কুঁহি দুটি পাত

বতনপুৰ বাগিচাত

লহপহীয়া হাতেৰে কোনেনো ছিঙিলে

অ' কোনেনো ছিঙিলে ?

এন্ধাৰ কলা চুলিৰে

জবা ফুলৰ পাহিৰে

পাপৰিবোৰ উৰুৱাই কোনেনো হাঁহিলে

অ' কোনেনো হাঁহিলে ?

উদ্ভিদকুলৰ সৌন্দৰ্য্য, নৈসৰ্গিকতা, অৰুণ্যৰ সুন্দৰ ৰূপ, বোৱতী নদীৰ কল্লোলিত ধ্বনি, চৰাই-চিৰিকতিৰ কাকলি, ফুলসমূহৰ সৌন্দৰ্য্যক গীতত হাজৰিকাই উপস্থাপন কৰিছে। 'ৰং কিনিবা কোনে' গীতত পথাৰৰ সেউজীয়া ধাননিৰ মাজত হেৰাই যোৱা বগলীটোক বিচাৰা কথা কৈছে এনেদৰে-

“সেউজীয়া থোৰ মেলা সীমাখিনিতে

বৰ আকাশৰ নীলা নীলা সীমাখিনিতে

উৰি ফুৰা বগটি হেৰালে,

বগ পাখিৰ বগা বিচাৰি খালোঁ মই হাবাথুৰি

বগটি কেনিবা লুকালে ?

ডাঠ- পাতল সেউজ বোলাত

লুকাই থকা বগটিয়ে হাঁহি মাৰি ক'লে,

মোৰ পাখিৰ বগা কিনা, নাপাবা সঘনে।

পাহাৰ-পৰ্বতৰ সেউজীয়া আৱৰণ, প্ৰকৃতিৰ সুন্দৰ ৰূপক বৰ্ণনা কৰিছে 'ৰং ৰং নানা ৰং' গীতটোত এনেদৰে-  
শাৰী শাৰী পাহাৰৰে সেউজীয়া ৰং চোৱা

গঙা চিলনীৰ পাখি- কেনে মোহনীয়া  
 সবীয়হ ফুলনি চোৱাঁ- নানা বহণীয়া  
 (আমি) বঙৰ পৃথিৱীখনি হাততে যে পাওঁ  
 সেই বং পৃথিৱীলৈ পুনু ছটিয়াওঁ।  
 সজাৰ চৰাইজাক চোৱাঁ- মুকলি যে হ'ল  
 বিশাল আকাশলৈ চোৱাঁ- পাখি মেলি মেলি গ'ল।  
 জীৱনৰ মায়াত আবদ্ধ হোৱাৰ দৰে যেন পক্ষীৰ  
 কাকলিৰ মোহত সময় বন্দী। হেঁপাহ অথবা অপেক্ষা কৰি  
 ৰৈ থকা হৈছে -

বিগিকি বিগিকি  
 শুনিলোঁ দূৰণিত  
 প্ৰভাতী পখীয়ে গীত গায়,  
 প্ৰভাতী পখীয়ে কিয় গায়?

'কুঁৱলী'ক মানুহৰ স্বৰূপৰ লগত হাজৰিকাই তুলনা  
 কৰিছে। কুঁৱলী প্ৰকৃতিৰ সুন্দৰ সৃষ্টি। মানুহক পাহৰণিৰ  
 আৱৰণে আৱৰাৰ দৰে কুঁৱলীও বগা কপাহী কাপোৰৰ দৰে  
 ঢাকি ৰাখে প্ৰকৃতিক। প্ৰকৃতিৰ সৌন্দৰ্য্যৰ বৰ্ণনা এইদৰে  
 কৰিছে 'কুঁৱলী কুঁৱলী কি বগৰ কৰিলি' গীতত-

কুঁৱলী কুঁৱলী কি বগৰ কৰিলি ?  
 অতীতৰ কাৰোবাৰ নূপুৰ শুনিলি।

১৯৬৯ চনত তেখেতে কাজিৰঙাৰ বাগৰিৰ ওচৰৰ  
 কুঠৰীত নিগাজিকৈ থাকিবলৈ লৈছিল। সেই কাজিৰঙাৰ  
 সান্নিধ্যক হাজৰিকাই এইদৰে উপস্থাপন কৰিছে-

কাজিৰঙা মোৰ সেউজ সপোন  
 আপোন কঁহৰা বাগৰী  
 সীমাৰ লুইত আৰু ডিফলু আপোন  
 আপোন মৰমী কুঠৰী।  
 মোৰ কাজিৰঙাখনি অনন্য।

**১.০২ হাজৰিকাৰ গীতত জীৱনদায়িনী শক্তি ৰূপে প্ৰকৃতি :**

প্ৰকৃতি হ'ল মানুহৰ জীৱন বৰ্তাই ৰখা শক্তি। মানুহ  
 প্ৰকৃতিৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল। ভূপেন হাজৰিকাই 'মোক এনে  
 এখন সৰগ দিয়া' গীতত তাৰেই প্ৰকাশ কৰিছে এনেদৰে -

মোক এনে এখন সৰগ দিয়া  
 যি ধৰাত জিলিকি পৰে,  
 এনে এটি পৰিৱেশ দিয়াঁ  
 হিয়া য'ত শাঁত পৰে।।  
 প্ৰচণ্ড বেলিৰ তাপ থকা  
 সন্মুখত অনন্ত পথ

এজুপি আশাৰ বৃক্ষৰ ছাঁত  
 ক্ষণিক ৰখাওঁ মোৰ ৰথ  
 যাতে জীৱন ভৰে বসেৰে।  
 প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি থকা দায়বদ্ধতাৰ কথা মনত অনুধাৱন  
 কৰি তেওঁ গাইছে 'কাজিৰঙা' শীৰ্ষক গীতটি-

কাজিৰঙা, কাজিৰঙা  
 কাজিৰঙা ভয়াবহ নহয়  
 নহয় অভয়াৰণ্য  
 ইয়াতকৈ ভয়াবহ জানা  
 পৃথিৱীৰ জনঅৰণ্য।  
 প্ৰকৃতিয়ে জীৱনৰ শিক্ষাৰ লগতে জীয়াই থাকিবলৈও  
 শিকায়। যাক হাজৰিকাই গীতত উপস্থাপন কৰিছে এইদৰে-  
 অৰণ্যই যুগে যুগে জন্ম দিলে  
 সাধনাৱতী ঋষি-মুনি  
 কত শত জ্ঞানৰ আদৰ্শ দিলে  
 দিলে কত মনিষী গুণী।  
 সেয়ে ভাৰত আজি হ'ল ধন্য।

কাজিৰঙাত বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ উদ্ভিদ আৰু প্ৰাণী  
 প্ৰজাতিৰ পোৱা যায়-  
 কাজিৰঙাৰ চিৰসেউজ পৰিবেশ  
 হস্তী-ব্যাত্ৰৰে বাস  
 এক খড়গৰ গঁড় পৃথিৱীয়ে চায়  
 পখীৰ সুৰদীয়া প্ৰকাশ।  
 মোৰ কাজিৰঙা নহয় যে বন্য।

কাজিৰঙা অভয়াৰণ্যত প্ৰতিটো জীৱ-জন্তুৰ  
 জীৱনশৈলী অতি মনকৰিবলগীয়া। প্ৰত্যেকৰে মাজত  
 আত্মপ্ৰেম আৰু নিজতেই মগ্ন হৈ থকা পৰিৱেশটো বৰ  
 সুন্দৰ। বিভিন্ন প্ৰাণীয়ে পৰস্পৰে পৰস্পৰৰ ওপৰত  
 নিৰ্ভৰশীল। জৈৱ- বৈচিত্ৰ্যৰ সুন্দৰ স্বৰূপ দেখা যায়।  
 প্ৰকৃতিয়ে মানুহক জীৱনৰ শিক্ষা দিছে কেনেকৈ অহংকাৰ  
 পৰিহাৰ কৰি পৰিৱেশ কেন্দ্ৰিক জীৱন শৈলীৰ অতি  
 প্ৰয়োজন। কিন্তু মানুহে নিজৰ ভুল বুজা নাই তথা পৰিৱেশৰ  
 লগত মিলি থাকিব জনা নাই, সেই কথাত মানুহৰ কৰ্মক  
 লৈ হাজৰিকাই গাইছে-

কাজিৰঙাত মিলিজুলি খেলে  
 গড় আৰু হৰিণীৰ জাক  
 (পিচে) জনৰ অৰণ্যত হিংস্ৰজনে  
 কাহানি শিকিবনো তাক।

সভ্য মানুহ হেনো মান্য !!

ঔদ্যোগিকৰণে পৰিবেশলৈ শংকা নমাই আনিছে। ব্যাপক বনাঞ্চল ধ্বংস, বনভূমিৰ প্ৰতি গুৰুত্বহীনতা, সংৰক্ষণকাৰী চিন্তাৰ অভাৱে কেৱল মানৱ জাতিৰ অস্তিত্ব বিপন্ন কৰাই নহয়, বিশ্বৰ উদ্ভিদ আৰু প্ৰাণীৰ অস্তিত্বকো বিৰাট প্ৰত্যাহ্বান জনাইছে। এই কথা হাজৰিকাই অনুভৱ কৰিছিল। মানুহৰ মাজত পৰিবেশ সচেতনতা সৃষ্টি কৰি হাতে-কামে লাগি পৰিবেশ সংৰক্ষণৰ কামত আগবাঢ়ি যাব লাগিব। নতুন প্ৰজন্মক পৰিবেশৰ প্ৰতি সচেতন কৰাৰ লগতে মানৱ জাতিক বনাঞ্চল সংৰক্ষণৰ প্ৰতি অৱগত কৰাৰ উদ্দেশ্যে 'শুনা শুনা হে' শীৰ্ষক গীতটিত গাইছে-

শুনা শুনা হে' শুনা পাতি কাণ,  
বিজ্ঞান সম্মত বনভূমিৰ অৱদান।  
দুৰৈৰ বনভূমিত সৌ, সুৰ্য্য ভৈলা দৃষ্ট  
সুৰ্য্যৰ জ্যোতিৰে বন ভৈলা পৰিপুষ্ট।।

তেওঁ গীতত বিজ্ঞানসম্মত চিন্তা ধাৰা দেখা যায়। বিজ্ঞান মনঃস্তম্ভৰ অধিকাৰী হাজৰিকাই বৃক্ষ যে ছাঁ দিয়াৰ উপৰিও যে কাৰ্বন- ডাই-অক্সাইড শোষণ কৰি অক্সিজেন জীৱজগতক প্ৰাণবায়ু দিয়াৰ কথা গীতত উপস্থাপন কৰিছে এনেদৰে-

বন এক কাৰখানা জ্যোতি প্ৰপাতৰ  
অল্লজন বাষ্প সৃষ্টি কৰে নিৰন্তৰ।  
প্ৰকৃতিৰ পৰা বনে অ' কৰে আহৰণ  
বৈজ্ঞানিক উপাদান কৰি মষ্টন।  
তেনে ভাৱে তৰু তৃণে স্বেতসাব  
সেহি খাদ্যত পায় জীৱে জীৱনৰ আহাৰ।।

গীতটিত বনাঞ্চল সংৰক্ষণ কৰাৰ যি প্ৰয়োজনতাৰ তাৰ লগে লগে পৰিবেশ সংৰক্ষণৰ চেতনা গঢ়ি তুলাৰ উদ্দেশ্যক শ্ৰোতাৰ আগত প্ৰকাশ কৰিছে এনেদৰে -

বনভূমি সেৱাৰ থলী হে মানৱ কল্যাণৰ  
বন সংৰক্ষণ হওক চিন্তা সমাজৰ।।  
বা  
তৰু-তৃণে হাঁহি নাচিছিলে কত  
সেউজ সাজেৰে সাজি  
তৰু-তৃণে জানো সলাব বাগৰ  
নঙঠা ডালেৰে আজি  
শুকান নদীৰ শুনি হাহাকাৰ  
ডাৱৰে উঠিব গাজি  
সেমেকা চকুত অশ্ৰু নমাব

অতীতৰ সুৰ বাজি।

প্ৰকৃতি আছে বাবেহে মানুহ আছে। প্ৰকৃতি-মানুহ পৰস্পৰে পৰস্পৰৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল। নিৰ্বনানীকৰণৰ ভয়াৱহতাই মানৱ জাতি তথা জৈৱ-বৈচিত্ৰতালৈ সংকট মাতি আনিছে। কৃষক-মানুহৰ সম্পৰ্কৰ কথা গীতত উপস্থাপন কৰিছে এইদৰে-

অ' মোৰ ধৰিত্ৰী আই  
চৰণতে দিবা ঠাই  
খেতিয়কৰ নিস্তাৰ নাই  
মাটি বিনে অসহায়  
দয়া কৰা দয়াশীলা আই।

প্ৰকৃতি বিভিন্ন জীৱ-জন্তু, বৃক্ষ, অণুজীৱ, পৰজীৱ ইত্যাদি সকলোৰে বাসস্থান। হাজৰিকাৰ 'জংলী জংলী দুখীয়াই কয়' শীৰ্ষক গীতত প্ৰকৃতিৰ বিভিন্ন উপাদান সৰু-বৰ সকলোৰ বাবেই যেন প্ৰকৃতি সেই কথা উপস্থাপন কৰি গাইছে-

খোলা আকাশ, খোলা প্ৰকাশ  
খোলা খোলা মোৰ প্ৰাণ  
জংঘলতেই শ্ৰম কৰি যাওঁ  
গাই নিতে মুকুতিৰ গান।  
মোৰ জংঘল পৱিত্ৰ বৰ।  
জংঘলেই মোৰ ঘৰ।।

প্ৰকৃতি এতিয়া আঘাতপ্ৰাপ্ত। প্ৰকৃতিৰ সকলো উপাদানৰ মাজলৈ নামি আহিছে শংকা। জীয়াই থকাৰ শংকা নামি আহিছে। অক্সিজেনৰ অভাৱে দেখা দিছে বিশ্বত। পশু-পক্ষীয়েও বাসস্থান হেৰুৱাইছে, খাদ্যৰ শংকাত পৰিছে। তাকেই 'সেউজীয়া বননিৰ বনে বনে' গীতটোত উপস্থাপন কৰি কৈছে -

আজি মুকলি বতাহৰ  
আহ যাহ নাই  
বননিত বন নাই  
নাই চৰাই।  
সাঁচি পতীয়া বন বিনন্দীয়া  
পঁজাৰ কাষতে আজি  
দিবানে সজাই  
আকৌ ফুৰিম মই  
বনঘোষা গাই।।

**১.০৩ ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত ভোগৰ সামগ্ৰী ৰূপত প্ৰকৃতি :**

প্ৰকৃতিৰ অৱস্থিতি মানুহৰ ভোগৰ বাবেহে। প্ৰকৃতি

মানুহৰ দ্বাৰা পৰিচালিত, মানুহৰ দ্বাৰা নিয়ন্ত্ৰণ কৰিবৰ বাবেহে বুলি এক শ্ৰেণীৰ সমালোচকে আলোচনা কৰে। হাজৰিকাই গীতত পৰিৱেশৰ অৱক্ষয়, প্ৰকৃতিক কৰা শোষণ-লুণ্ঠনৰ লগতে প্ৰকৃতিয়ে কৰা নানান প্ৰতিক্ৰিয়াৰ কথা উপস্থাপন কৰিবলৈ গৈ কৈছে এনেদৰে-

পাহাৰ ভাঙি ভাঙি আগনি উৰিছে  
 বহুদৈ লৰৰি পলায়  
 একোকে নিবিচাৰে আমাৰে চেনায়ে  
 জুইকে সাবটি লয়  
 বুকুহে হমে হমায়।।

প্ৰকৃতিৰ মাজতো বাধাৰ প্ৰাচীৰ হৈ থিয় দিছে মানুহে। পাহাৰৰ মাজত প্ৰকৃতিক মানুহে নিজৰ মতে চলাবলৈ ধৰি প্ৰকৃতিৰ কৰ্মত বাধা দিছে। যাৰ বিষয়ে গীতিকাৰে লিখিছে গীতত এইদৰে-

চাকৈয়ে নেপায় চকোৱাৰ লগ  
 মাজত চেঙেলীয়া নৈ  
 বহুদৈ চেনাইৰ মাজতে বাধা ঐ  
 সমাজৰ পাহাৰখন বয়।  
 বুকুহে হমে হমায়।  
 এন্ধাৰৰ চোতালত সমাজ বহি আছে  
 বিচাৰৰ শৰাইখন লৈ  
 বিচাৰৰ শৰাইতে বিচাৰ নাইকিয়া  
 এলাঞ্চু কলীয়া ছাই,  
 বুকুহে হমে হমায়।

প্ৰকৃতিয়ে মানুহৰ অত্যাচাৰত হেৰুৱাই পেলাইছে নিজস্বতা। তথাপিও বাৰে বাৰে নিজকে মানুহৰ ব্যৱহাৰৰ বাবে উপযোগী কৰি তুলিছে। কিন্তু প্ৰকৃতি থাকিলেহে মানুহ জী থাকিব পাৰিব, সেই কথা নুবুজে মানুহে। মানুহে বুজি নাপায়, সেয়ে হাজৰিকাই ‘ঐ নিলাজ পাহাৰত’ গীতত কৈছে এনেদৰে-

তোৰ বুকুত আছিল হেনো ৰূপ ৰূপালী  
 হেনো, কলিজা খান্দিলে পায় সোণ সোণালী  
 সোণ খান্দি নিব তই ৰূপো হেৰুৱালি  
 বালিচন্দা মাথো তই বুটলিলি  
 কি পালি হে!  
 ভাঙিলনে তোৰ কামীহাড়?  
 ঐ শুকান পাহাৰ ঐ নিলাজ পাহাৰ  
 তাকে লৈ চিঞৰি মৰ মৰ মৰ!

‘হে হে হে ঢোলে ডগৰে’ গীতত খেতিয়কে কিদৰে মাটিক ভোগ কৰি জীয়াই তাৰে কথা প্ৰকাশ কৰিছে এইদৰে-  
 খাচী কৃষকে খাটে দিনে ৰাতি

ভৈয়ামৰো খেতিৰ  
 হেজাৰ ৰংমনে  
 ভৈয়ামৰো খেতিৰ  
 হেজাৰ ৰংমনে  
 আঁকোৱালি ধৰিছে (এ) সেই কৃষকক !  
 হে হে ঢোলে ডগৰে।।

## ২.০ উপসংহাৰ :

গছ-গছনি হৈছে অতিকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ জীৱন্ত পদাৰ্থ। ইয়েই আমাৰ পৃথিৱীত প্ৰাণীসমূহক জীয়াই ৰখাত সহায় কৰে। প্ৰকৃতিৰ উপাদানসমূহৰ ওপৰত জীৱজগত নিৰ্ভৰশীল। প্ৰকৃতিৰ প্ৰতিটো উপাদানেই আমাৰ বাবে প্ৰয়োজনীয়। বনাঞ্চল,পাহাৰ-পৰ্বত, নদ-নদী প্ৰকৃতিৰ সৌন্দৰ্য্যবহণ কৰা উপাদানৰ লগতে মানুহক জীৱন দান দিয়া উপাদানো। ইয়াৰ এটা উপাদানৰ অভাৱে মানৱ জাতিটোৰ জীৱনলৈ শংকা নমাই আনিব। দুৰ্নীতিপৰায়ণ, সুবিধাবাদী ব্যক্তিয়ে নিজৰ বিলাসিতা, ভোগবাদী জীৱনৰ স্বার্থত গছ-গছনি কটাই তহিলং কৰাত ব্যস্ত। তাত সাৰ-পানী দিছে নেতৃস্থানীয় ৰাইজৰ প্ৰতিনিধিসকলে।

ভূপেন হাজৰিকাৰ পাৰিপাৰ্শ্বিক গীতসমূহৰ মাজত তৰুই সামৰি লোৱা পৰিৱেশৰ প্ৰশংসা সূচক, প্ৰকৃতিৰ প্ৰেম আৰু প্ৰকৃতিৰ সংৰক্ষণৰ প্ৰতি সজাগতা সৃষ্টি কৰাৰ কথা সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ পাইছে। হাজৰিকাৰ নিৰ্বাচিত গীতকেইটাই কিছু পৰিমাণে হ’লেও সমাজত প্ৰকৃতি ৰক্ষাৰ উদ্দীপনা সৃষ্টি কৰাত সহায়ক হ’ব। বৰ্তমান সময়ত পৰিৱেশৰ ৰক্ষণাবেক্ষণত দিয়াটো অতি প্ৰাসংগিক, সেয়ে উত্তৰসূৰীসকলে মনত প্ৰকৃতিৰ প্ৰতি সজাগতা সৃষ্টি কৰি পৰিৱেশ ধ্বংসৰ ৰোধ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা উচিত।

## সিদ্ধান্ত :

ক) প্ৰকৃতি আৰু মানুহ পৰস্পৰে পৰস্পৰৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল।

খ) ভূপেন হাজৰিকাৰ গীতত প্ৰকৃতি প্ৰেমৰ লগতে, প্ৰকৃতিক সংৰক্ষণ কৰাৰ মনোভাব দেখা যায়।

গ) মানৱ জাতিৰ লগতে নৱপ্ৰজন্মৰ হাতত প্ৰকৃতিয়ে পুনৰ বিকাশ পোৱাৰ, খীণ আঁশা পুহি ৰাখিছে। □

---

**প্ৰসংগ সূত্ৰ :**

- ১। Glotfelty, Cheryl and Harold Fromm(Eds.) The Ecocriticism Reader: Landmarks in literary Ecology,1996,University of Georgia Press, Athens, Georgia,P.XX
- ২। Howarth, William, Some Principles of Ecocriticism,The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology, Cheryl, Glotfelty and Harold Fromm(Eds.)1996,University of Georgia Press, Athens, Georgia,P-69
- ৩। Glotfelty, Cheryl and Harold Fromm(Eds.) The Ecocriticism Reader: Landmarks in literary Ecology, 1996, University of Georgia Press, Athens, Georgia,P.XVIII

**সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :**

**তাত্ত্বিক গ্ৰন্থ :**

Garrard,Greg.Ecocritism.London: Routledge,২০০৪.Print.

Iovino,Serenella and Serpil Oppermann,eds.Material Ecocriticism.Bloomington:Indiana UP,2014.Print

বৰা,প্ৰাণজিৎ, কোঁৱৰ,দৰ্পণজিৎ(সম্পা), সাহিত্যঃ দৃষ্টিকোণ আৰু বিচাৰ, বামধেনু প্ৰিণ্টিং, দুৰবাচুক,ডিব্ৰুগৰ প্ৰথম,২০২০

**প্ৰায়োগিক গ্ৰন্থ :**

দত্ত, দিলীপ কুমাৰ, ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু জীৱন বথ,শৰাইয়াত অফ্ৰেট প্ৰেছ,গুৱাহাটী, ষষ্ঠ প্ৰকাশ,২০১৪

পাঠক,তৰণী, ডাকুৰা, মনোমতী পাঠক, ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত-সমগ্ৰ,পাঠক প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ,২০১০

হাজৰিকা, সূৰ্য্য(সম্পা.), ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত সমগ্ৰ, বাণী মন্দিৰ, তৃতীয় প্ৰকাশ,২০১০

কুমাৰ, থানেশ্বৰ, ড° ভূপেন হাজৰিকাৰ গীত আৰু কিছু প্ৰাসঙ্গিক কথা, অশোক বুক ষ্টল, দ্বিতীয় প্ৰকাশ,২০১১

- ২। Glotfelty, Cheryl and Harold Fromm(Eds.) The Ecocriticism Reader: Landmarks in literary Ecology,1996,University of Georgia Press, Athens, Georgia,P.XX
- ৩। Howarth, William, Some Principles of Ecocriticism, The Ecocriticism Reader: Landmarks in Literary Ecology, Cheryl, Glotfelty and Harold Fromm(Eds.)1996,University of Georgia Press, Athens, Georgia,P69
- ৪। Glotfelty, Cheryl and Harold Fromm(Eds.) The Ecocriticism Reader: Landmarks in literary Ecology, 1996, University of Georgia Press, Athens, Georgia,P.XVIII
- ৭। Dean, Thomas k., What is ecocriticism?, Web.18th March,2019, [http://www.umn.edu/conf/otherconf\\_wla/1994/dean.html](http://www.umn.edu/conf/otherconf_wla/1994/dean.html)

৮। হাজৰিকা, পৰীক্ষিত,চৰ্যাপদ,ডালিমী প্ৰকাশন,২০১২,পৃ-১৩৩

**সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :**

**তাত্ত্বিক বিষয়ক গ্ৰন্থ :**

**ইংৰাজী :**

Carmichael,Deborah A.(ed.), The Landscape of Hollywood Westerns:Ecocriticism in an American Film Genre,The University of Utah Press,Salt lake city,২০০৬

Chu,Kiu Wai,Ecocinema, Journal of Chinese Cinemas ,২০১৬

Garrard,Greg.Ecocritism.London: Routledge,২০০৪.Print.

Iovino,Serenella and Serpil Oppermann,eds.Material Ecocriticism.Bloomington:Indiana UP,২০১৪.Print

Maricondi,Paula Willoquet,ed.,Framing the World: Exploration in Ecocriticism and Film,University of Virginia Press,Charlottesville and London,1st Published,২০১০

Mohamed, Sufi,Ecocinema and the Evolution of the Documentary Genre: From the 11th Hour (2007) to the Age of Stupid(2009)and Finally the Cove (2009) ,২০১৪

Rangarajan,Swarnalatha, Literary/Cultural theory: Ecocriticism,Orient BlackSwan Private Limited,3-6-753,Himayatnagar, Hyderabad,India, ২০২২

Rust,Stephen, Monani, Salma and cubit,Seam(ed.),Ecocinema theory and practice (1-13), Routledge,711 Third Avenue, New York. 1st ed. ২০১৩

**অসমীয়া :**

**গ্ৰন্থ :**

বৰপূজাৰী,মনোজ,চলচ্চিত্ৰ তত্ত্ব আৰু ধাৰা,বান্ধৱ,গুৱাহাটী,প্ৰথম প্ৰকাশ,২০২৫

বৰা,প্ৰাণজিৎ, কোঁৱৰ,দৰ্পণজিৎ(সম্পা), সাহিত্যঃ দৃষ্টিকোণ আৰু বিচাৰ, বামধেনু প্ৰিণ্টিং, দুৰবাচুক,ডিব্ৰুগৰ, প্ৰথম প্ৰকাশ-চেপ্তেম্বৰ,২০২০

**চলচ্চিত্ৰ সম্পৰ্কীয় গ্ৰন্থ :**

**অসমীয়া :**

গোহাঁই, হীৰেন। চলচ্চিত্ৰ আৰু বাস্তৱতা। পদাতিক প্ৰকাশনঃ গুৱাহাটী। ২০১৬

চৌধুৰী, নিৰোদ। অসমীয়া বোলছবিৰ ইতিহাস (প্ৰথম খণ্ড)। বাণীমন্দিৰঃ গুৱাহাটী। ১৯৮৫

দত্ত,উৎপল। চলচ্চিত্ৰ। লয়াৰ্ছ বুক ষ্টলঃ গুৱাহাটী। ১৯৯৬

দাস,অৰুণলোচন। অসমীয়া চিনেমাৰ কথা। শিশু-শশী প্ৰকাশনঃ গুৱাহাটী। ২০১৩

দাস,অৰুণজ্যোতি। অসমীয়া ছবিৰ হাজাৰটা সমস্যাৰ এটা। ব্লু-স্পেটছ বুকছঃ গুৱাহাটী। ২০১৬

নেওগ, সুরতজ্যোতি। চলচ্চিত্ৰ সাহিত্য। আঁক-বাকঃ গুৱাহাটী। ২০১৪  
নাথ, মনোহৰকুমাৰ। চিনেমাৰ কথা। আলিবাটঃ গুৱাহাটী। ২০১৫  
ডেকা, পবিত্ৰ কুমাৰ। বিশ্ব চলচ্চিত্ৰ। অসম প্ৰকাশন পৰিষদঃ গুৱাহাটী। ২০১২  
বৰপূজাৰী, মনোজ। জ্যোতিপ্ৰসাদৰপৰা জাহ্নু-জাংদাও আৰু অন্যান্য। অসম প্ৰকাশন পৰিষদঃ গুৱাহাটী। ২০১৬  
বৰা, জীৱন। চলচ্চিত্ৰ এটি চমু ইতিহাস আৰু ওপজা সোণৰ মাটি। শ্ৰীদীপ্তি বৰাঃ লক্ষীমপুৰ। ২০০৩  
বৰুৱা, পদুম। চলচ্চিত্ৰ প্ৰসংগ। অসম প্ৰকাশন পৰিষদঃ গুৱাহাটী। ২০১৬  
বৰা, প্ৰাঞ্জল। সুখী মানুহৰ চলচ্চিত্ৰ আৰু অন্যান্য। শব্দঃ যোৰহাট। ২০১৬  
বৰুৱা, পাৰ্থজিৎ। চলচ্চিত্ৰৰ তৰংগ। জাগৰণ সাহিত্য প্ৰকাশনঃ গুৱাহাটী। ২০১০  
বৰা, মৃগাল কুমাৰ। অসমীয়া চিনেমাৰ স্নেপশ্বট। সমলয়ঃ গুৱাহাটী। ২০১৬  
শৰ্মা, অপূৰ্ব। অসমীয়া চলচ্চিত্ৰৰ ছাঁ-পোহৰ। আঁক-বাকঃ গুৱাহাটী। ২০১৪  
বাংলা :  
আইনজেনষ্টাইন, চাৰ্গেই। ফিল্ম চেঞ্চ। বাণীমন্দিৰঃ কলকাতা। ২০১৬  
বন্দ্যোপাধ্যায়, সুমন্ত। ফিল্ম ষ্টাডিজ পৰিচয় (প্ৰথম খণ্ড)। কুণ্ডু পাবলিচাৰ্ছ এণ্ড বুক চেলাৰ্ছঃ কলকাতা। ২০১৬।  
ইংৰাজী :  
Andrew, Dudley. Film in the Auro of Art. Princeton. Princeton University press. 1984.  
Andrew, Dudley. Concepts in Film Theory. Oxford University press. 1984  
Balazs, Bela. Theory of the Film. Dennis Dobson Ltd. 2013.

---

## অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষা আৰু ভাষা-পৰিকল্পনা

সাৰাংশ :



ড° পাপুমণি হাজৰিকা

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ  
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়  
যোৰহাট, অসম - ৭৮৫০০১  
☎ ৯৪৩৫৫৭৪০০৯ / ৯৮৫৪০৪০২১২  
✉ papumonijb@gmail.com

কোনো এক ভাষিক পৰিমণ্ডলত যদি একাধিক ভাষাৰ প্ৰচলন হৈ থাকে; তেনে ভাষিক পৰিমণ্ডলত ভাষাগত বিবিধ সমস্যাৰ সমাধানৰ বাবে নাইবা ভাষাসমূহৰ স্থিতি নিৰ্ণয়ৰ বাবে আৰু ভাষিক উপাদানলৈ অহা পৰিৱৰ্তনৰ কাৰণে যেতিয়া ক্ষমতাসম্পন্ন কোনো ব্যক্তি বা প্ৰতিষ্ঠানিক কৰ্তৃপক্ষই সচেতন ব্যৱস্থা গ্ৰহণেৰে যি পৰিকল্পনা প্ৰণয়ন কৰে আৰু সেই পৰিকল্পনা ৰূপায়ণৰ বাবে সুসংগঠিতভাৱে পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰে তেতিয়া তাকে ভাষা-পৰিকল্পনা বুলি কোৱা হয়।

অসম এখন বহুভাষিক, বহুসাংস্কৃতিক ৰাজ্য। এনে প্ৰেক্ষাপটত অসমৰ ৰাজ্যভাষা হিচাপে অসমীয়া ভাষাই স্বীকৃতি লাভ কৰাৰ মূলতে আছিল ৰাজ্যখনত প্ৰচলিত সকলো ভাষাৰ তুলনাত অসমীয়া ভাষাটো সৰ্বতোপ্ৰকাৰে চহকী ভাষা। ই অসমৰ সৰ্বজনবোধগম্য ভাষা; কিন্তু সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষাৰ স্বকীয় ৰূপটোলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায়, বিভিন্ন কাৰণবশতঃ সম্প্ৰতি অসমীয়া ভাষাই বহু সমস্যাৰ সন্মুখীন হ'বলগীয়া হৈছে। ইয়াৰ কাৰণ বিচাৰ কৰিলে মুক্ত অৰ্থনীতি, বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱ আৰু সামাজিক-ভাষিক-সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰলৈ আহি পৰা পৰিৱৰ্তন আৰু আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় প্ৰেক্ষাপটত হোৱা ভাষিক আগ্ৰাসনৰ কথাই ঘাইকৈ উল্লেখ কৰিব পাৰি। আলোচনা-প্ৰাৰ্থনাত অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষিক ৰূপ আৰু ভাষা-পৰিকল্পনাৰ প্ৰয়োজনীয়তা— এই দুয়োটা দিশ সামৰি আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ :

অতি সাম্প্ৰতিক কাল, অসমীয়া ভাষা আৰু ভাষা-পৰিকল্পনা।

০.০ অৱতৰণিকা :

বিংশ শতিকাৰ শেষ দশকত ভাৰতীয় অৰ্থনীতিলৈ এক আমূল পৰিৱৰ্তন অহা দেখিবলৈ পোৱা যায়। দশক দশক ধৰি ভাৰতীয় অৰ্থনীতিত মছৰ গতিৰে বিকাশ আৰু দুৰ্নীতিৰ উৎস হিচাপে পৰিগণিত ব্যৱসায়ৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় 'চৰকাৰী অনুজ্ঞা-পত্ৰ নীতি'ৰ বিলুপ্ত সাধনেৰে ১৯৯১ চনত ভাৰতবৰ্ষৰ তদানীন্তন বিত্তমন্ত্ৰীয়ে ভাৰতীয় অৰ্থনীতিক উদাৰীকৰণ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। ইয়াৰ ফলস্বৰূপে ভাৰতীয় অৰ্থনীতিৰ উন্নয়ন ত্বৰান্বিত হোৱাৰ এটা নতুন বাট মুকলি হয়। ভাৰতবৰ্ষত অৰ্থনৈতিক মুক্ততা কেৱল অৰ্থনীতিৰ বিকাশৰ ক্ষেত্ৰতে যুক্ত হৈ নাথাকি ৰাজনীতি, সাহিত্য-ভাষা-সংস্কৃতি আদি সমাজৰ সকলো ক্ষেত্ৰলৈকে বিয়পি পৰে। এফালে মুক্ত অৰ্থনীতি আৰু বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱে মানুহৰ জীৱন-যাত্ৰাৰ পদ্ধতিলৈও পৰিৱৰ্তন নমাই আনে আৰু আনফালে আধুনিকীকৰণ আৰু নগৰীকৰণৰ লগে লগে জনসাধাৰণ এক



ড° বৰ্ণালী গগৈ

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ  
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়  
যোৰহাট, অসম - ৭৮৫০০১  
☎ ৯৪৩৫৫৭৪০০৯ / ৯৮৫৪০৪০২১২  
✉ bornalegogoi85@gmail.com

অৰ্থনৈতিক জীৱন-চৰ্যাৰ মেৰঘৰত থাকিবলৈ বাধ্য হয়। অসমৰ প্ৰেক্ষাপটতো উল্লিখিত সময়ছোৱাৰপৰাই অসমৰ আৰ্থ-সামাজিক ক্ষেত্ৰখনলৈ পৰিৱৰ্তনৰ নতুন ঢল বয় আৰু অসমীয়া ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিত সুদূৰপ্ৰসাৰী প্ৰভাৱ পৰে। ইয়াৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়েই আলোচনাৰ বিষয় সন্দৰ্ভত অতি সাম্প্ৰতিক কাল বুলি ক'বলৈ যাওঁতে বিংশ শতিকাৰ শেহ দশকৰপৰা বৰ্তমান সময়লৈকে ধৰি অসমীয়া ভাষাৰ চলতি ৰূপৰ বিশ্লেষণ আৰু ভাষা-পৰিকল্পনা সম্পৰ্কীয় দিশত আলোকপাত কৰাৰ যত্ন কৰা হৈছে।

### ০.১ উদ্দেশ্য :

বিশ্বায়নৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত অতি সাম্প্ৰতিক কালত অসমীয়া ভাষালৈ আহি পৰা পৰিৱৰ্তন আৰু ভাষাটোত প্ৰয়োজনীয় পৰিকল্পনা সম্পৰ্কে বিচাৰ বিশ্লেষণ কৰাই আলোচনাৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে।

### ০.২ পদ্ধতি :

অধ্যয়নীয় বিষয় বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায়ত কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

### ০.৩ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰ :

অসমীয়া ভাষাৰ চলতি ৰূপত পৰিলক্ষিত হোৱা উচ্চাৰণগত, ৰূপগত আৰু বাক্যগত কিছু দিশক অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰ হিচাপে নিৰ্ধাৰণ কৰি লোৱা হৈছে।

### ১.০ মূল আলোচনা :

ভাৰতবৰ্ষৰ উত্তৰ-পূৱ অঞ্চলত অৱস্থিত অসম এখন বহুভাষিক, বহুসাংস্কৃতিক ৰাজ্য। ইয়াত ঘাইকৈ ইণ্ডো-ইউৰোপীয়, চীন-তিব্বতীয় আৰু অষ্ট্ৰিক— এই তিনিটা ভাষাগোষ্ঠীৰ লোকে বসবাস কৰি আহিছে। ইয়াৰ উপৰি বিভিন্ন সংক্ৰান্তত আহি স্থায়ী আৰু অস্থায়ীভাৱে বসবাস কৰিবলৈ লোৱা কিছুসংখ্যক দ্ৰাবিড়মূলীয় লোকৰো বসতি দেখিবলৈ পোৱা যায়। এনে বহুভাষিক, বহুসাংস্কৃতিক প্ৰেক্ষাপটত অসমৰ ৰাজ্যভাষা হিচাপে অসমীয়া ভাষাই স্বীকৃতি লাভ কৰাৰ মূলতে আছিল অসমীয়া ভাষা সংখ্যাগৰিষ্ঠৰ ভাষা, ই অসমৰ অন্যতম প্ৰাচীন ভাষা আৰু ৰাজ্যখনত প্ৰচলিত অন্য ভাষাৰ তুলনাত অসমীয়া ভাষাটো সৰ্বতোপ্ৰকাৰে চহকী ভাষা। পৰৱৰ্তী সময়ত বৰো ভাষায়ো সহযোগী ৰাজ্যিক ভাষাৰ মৰ্যাদা পোৱাৰ ইয়েই মূল কাৰণ। অৱশ্যে অসমৰ বৰাক উপত্যকাত বাংলা ভাষায়ো কাৰ্যালয়ৰ সহযোগী ভাষাৰূপে কাম চলাই আহিছে। অসমত অসমীয়া

ভাষাৰ ভূমিকা বহুমাত্ৰিক। অসমীয়া ভাষা আৰ্যমূলীয় ভাষাৰপৰা উৎপত্তি হ'লেও অসমীয়া ভাষাৰ বিকাশ সাধনত চীন-তিব্বতীয়, অষ্ট্ৰিক আদি আৰ্যভিন্ন ভাষাৰ উপাদান সংমিশ্ৰিত হৈ অসমীয়া ভাষাক সমৃদ্ধ কৰি তুলিছে। তদুপৰি অসমত বসবাস কৰা বিভিন্ন ভাষিক জনগোষ্ঠীৰ লোকে যোগাযোগৰ মাধ্যম হিচাপে অসমীয়া ভাষা ব্যৱহাৰ কৰে। অসমীয়া ভাষা অসমৰ সৰ্বজনবোধগম্য ভাষা। সেয়ে ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া ব্যতিৰেকে অসমৰ ভিন্ন ভাষিক জনগোষ্ঠীসকলে মূলতঃ অসমীয়া ভাষাক তেওঁলোকৰ সংযোগী ভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে। কেৱল অসমতে নহয়, উত্তৰ-পূৱ অঞ্চলৰ ৰাজ্যসমূহৰ মাজতো যোগাযোগৰ মাধ্যম হিচাপে অসমীয়া ভাষাই প্ৰধান সংযোগী ভাষা হিচাপে কাম কৰি আহিছিল; অসমৰ বিভিন্ন ভাষিক জনগোষ্ঠীৰ লোকে যোগাযোগৰ মাধ্যম হিচাপে অসমীয়া ভাষা ব্যৱহাৰ কৰে। অসমীয়া ভাষা অসমৰ সৰ্বজনবোধগম্য ভাষা। সেয়ে ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া ব্যতিৰেকে অসমৰ ভিন্ন ভাষিক জনগোষ্ঠীসকলে মূলতঃ অসমীয়া ভাষাক তেওঁলোকৰ সংযোগী ভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰি আহিছে। কেৱল অসমৰে নহয়, উত্তৰ-পূৱ অঞ্চলৰ বিভিন্ন ৰাজ্যৰ লোকসকলেও এটা সময়ত মূলতঃ অসমীয়া ভাষাক তেওঁলোকৰ সংযোগী ভাষা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰিছিল; কিন্তু সম্প্ৰতি ইংৰাজী আৰু হিন্দী ভাষাৰ আধাসনে সংযোগী ভাষাৰূপে অসমীয়া ভাষাৰ স্থিতি সলনি কৰিছে। বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱ সৰ্বব্যাপী হোৱাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত ভাষা-সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰখনলৈও অৱধাৰিতৰূপত আহি পৰিছে। ফলস্বৰূপে ভাষাৰ স্বকীয় ৰূপলৈও পৰিৱৰ্তন আহি পৰা পৰিলক্ষিত হয়। অসমীয়া ভাষায়ো এনে সমস্যাৰ সন্মুখীন হৈছে। গতিকে অসমীয়া ভাষাৰ লগতে অসমৰ বিভিন্ন ভাষাসমূহৰ বাবে ভাষা-পৰিকল্পনাৰ প্ৰয়োজনীয়তা পুনৰ আহি পৰিছে।

ভাষা-পৰিকল্পনা (language-planning)-নো কি অথবা ইয়াত আলোচনা কৰিবলগীয়া বিষয়সমূহনো কেনেধৰণৰ সেই কথা ইয়াৰ সংজ্ঞাৰপৰাই সাধাৰণ ধাৰণা এটা কৰি ল'ব পৰা যায়। সামাজিক বা ৰাজনৈতিক প্ৰয়োজনত অথবা কোনো ভাষা বা উপভাষাৰ উন্নতি সাধনত, ভাষিক স্থিতি নিৰ্ধাৰণত, সংস্কাৰ বা মান্যতা প্ৰদানৰ ক্ষেত্ৰত অথবা কোনো ভাষাগত সমস্যাৰ সমাধানৰ বাবে যেতিয়া পৰিকল্পনা প্ৰণয়ন কৰে আৰু সেই পৰিকল্পনা

ৰূপায়ণৰ বাবে সুসংগঠিতভাৱে পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰে তেতিয়া তাকে ভাষা-পৰিকল্পনা বুলি কোৱা হয়। ইয়াক ভাষাবিজ্ঞানৰ ব্যৱহাৰিক ক্ষেত্ৰত প্ৰয়োগ কৰা হয়। সেইবাবে ভাষা-পৰিকল্পনা একেধাৰে নৃতাত্ত্বিক ভাষাবিজ্ঞান, সমাজভাষাবিজ্ঞান আৰু ব্যৱহাৰিক তথা প্ৰায়োগিক ভাষাবিজ্ঞানৰ অন্তৰ্গত বিষয়। উল্লেখযোগ্য যে, ভাষা-পৰিকল্পনা ব্যক্তিগত প্ৰচেষ্টাত, কোনো প্ৰতিষ্ঠানৰ উদ্যোগত অথবা আৰু চৰকাৰীভাৱেও কৰিবপৰা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে— ভাৰতবৰ্ষত ‘ৰাষ্ট্ৰভাষা’ৰ পৰিকল্পনাৰ বিষয়টো কেন্দ্ৰীয় চৰকাৰৰ প্ৰচেষ্টাত চলি থকা এটা প্ৰক্ৰিয়া। আনহাতে বিভিন্ন ব্যক্তিয়ে অসমৰে বিপদাপন্ন ভাষাকপে স্বীকৃত ভাষা এটা সংৰক্ষণৰ বাবে ব্যক্তিগত পৰ্যায়ত কৰি থকা প্ৰচেষ্টা ব্যক্তিগত পৰ্যায়ৰ পৰিকল্পনা।

ভাষা-পৰিকল্পনা কাৰ্যটো সম্পন্ন কৰিবলৈ কিছুমান পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হয় ১। সেয়া হৈছে—

- (ক) সমস্যা নিৰূপণ (Identification of the problem)
- (খ) সমস্যাৰ কাৰণ নিৰ্ধাৰণ (Detection of the causes)
- (গ) কাৰণ নিবাৰণ (Elimination of the causes), আৰু
- (ঘ) গঠনমুখী কৰ্মসূচী ৰূপায়ণ (Constructive solution)।

উল্লিখিত চাৰিটা পদ্ধতিৰ জৰিয়তে অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষাৰ বিশ্লেষণ কৰিলেই অসমীয়া ভাষালৈ আহি পৰা সমস্যাসমূহনো কেনেধৰণৰ, এই সমস্যাসমূহ উদ্ভৱ হোৱাৰ কাৰণ নিৰ্ধাৰণ, সমস্যাসমূহ নিবাৰণৰ উপায় আৰু সেইসমূহ গঠনমুখী কৰ্মসূচীৰে ৰূপায়ণ কৰাৰ পৰিকল্পনা কৰিব পৰা যাব।

(ক) সমস্যা নিৰূপণ : অসমীয়া ভাষাৰ মান্যৰূপৰ যি ভাষিক বিশেষত্ব সেইসমূহৰ লগত তুলনা কৰিলে অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষাৰ ঘাইকৈ উচ্চাৰণগত দিশত, বাকভংগী প্ৰয়োগত, ভুল ব্যাকৰণৰ ৰীতিৰে ভাষাৰ ভিন্ন ক্ষেত্ৰত ব্যৱহৃত ভাষিক দিশত হোৱা পৰিৱৰ্তন লক্ষ্য কৰা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে— অসমীয়া ভাষাত উচ্চাৰিত আঠটা বিশিষ্ট স্বৰধ্বনি আৰু দুটা অৰ্দ্ধস্বৰকে ধৰি মুঠ তেইশটা বিশিষ্ট ব্যঞ্জন থাকিলেও অন্য ভাষাত ব্যৱহৃত শব্দ কিছুমান প্ৰয়োগৰ ক্ষেত্ৰত অন্যৱশ্যকভাৱে জোৰ কৰি বহুতে কিছুমান ধ্বনি উচ্চাৰণ কৰি ভাষাটো শুনিবলৈ কৰ্কশ কৰি তোলা যেন অনুভৱ হয়; উদাহৰণস্বৰূপে— অসমৰ খাদ্য তালিকাত Chow mein আহি সোমাই পৰাৰ লগে

লগে আজিৰ যুৱ প্ৰজন্ময়ো জোৰ কৰি ‘চ’ৰ উচ্চাৰণ ‘চ’-ৰ দৰে কৰা শুনা যায়। কেৱল এইটোৱেই নহয়, আজিৰ অসমীয়াই খুব বেছি পৰিমাণে ‘বাল’ খায়, ‘পিঞ্জা’ খায় বাবে ‘ব’ আৰু ‘জ’-ৰ উচ্চাৰণো সুকীয়া হৈ পৰিছে। আকৌ অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত তৎসম আৰু কিছুমান থলুৱা শব্দ উচ্চাৰণতো ইংৰাজী, হিন্দী আদি ভাষাৰ প্ৰভাৱেৰে প্ৰভাৱাধিত হোৱাত উচ্চাৰণৰ স্বকীয়তা নাইকীয়া হৈ উচ্চাৰণ বিকৃত হৈ পৰিছে; উদাহৰণস্বৰূপে— অশ্লেষা (অজলেছা), লক্ষ্মী (লক্চমী), শুচিত্ৰতা (চুচিত্ৰতা), বিদিশা (বিদিচা), পৰী (পাৰী), সপোন (চপোন), সীমান্ত (চিমান্ত), সীমা (চীমা), শইকীয়া (চাইকীয়া), শিৱ (চিৱা), শিৱানী (চিৱানী) আৰু বহুতো।

অসমীয়া ভাষাৰ কিছুমান শব্দৰ সঠিক উচ্চাৰণ ব্যৱহাৰকাৰীয়ে নজনাৰ ফলতো ভুলকৈ উচ্চাৰণ কৰি ভাষাটোত সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে— কথমপি (কথমপি), মৃতদেহ (মৃতদেহ), মৃৎশিল্প (মৃতশিল্প), যিটো (জুনটো), যিবোৰ (জুনবোৰ), ৰৈ থকা (ৰখি থকা), ইয়াৰ উপৰি (ইয়াৰোপৰি বা ইয়াৰ উপৰিও) আদি।

ৰূপগত দিশত কৰা কিছুমান ভুলেও ভাষাটোলৈ সমস্যা আনিছে; উদাহৰণস্বৰূপে— আমি (আমিবোৰ), মই (মইজনী), ৰাইজ (ৰাইজসকল) আদি। যদিওবা জন্মদিন উপলক্ষে কেৰু কাটি উদ্‌যাপন কৰা ৰীতিটোও অসমীয়া সমাজলৈ আমদানিকৃত তথাপি সেয়া ইতিমধ্যেই অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিয়ে আদৰি লোৱা দেখা গৈছে; কিন্তু আজিৰ নৱপ্ৰজন্মই ওপজা দিনৰ শুভেচ্ছা-বাৰ্তা প্ৰেৰণ কৰোঁতে যেতিয়া ‘জগা দিন’ৰ ওলগ জনোৱা দেখিবলৈ পোৱা যায় সেয়া নিঃসন্দেহে ভাষালৈ অহা সমস্যা। কাৰণ অসমীয়া ভাষাত ইতৰ প্ৰাণীহে ‘জগা’ বুলি কয়, কেঁচুৱা ওপজে বা জন্মে।

অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ ঘাইকৈ নতুন প্ৰজন্মৰ কথা-বাৰ্তাত সঘনাই ব্যৱহৃত ‘চ’, ‘ত’, বাট, বে, আবে, চাল্লা, হাৰা নিদিয়া (গুৰুত্ৰ নিদিয়া অৰ্থত), বিন্দাচ (একেবাৰে মুক্ত অৱস্থা), টেমা গৰম হোৱা (খং উঠা বা অস্বস্তিত থাকিবলগীয়া হোৱা অৰ্থত), মিটাৰ উঠা (খং উঠা অৰ্থত) আদিৰ প্ৰয়োগে মূল ভাষাটোৰ কালিকা শক্তি নোহোৱা কৰি পেলাইছে।

ভাষাই ভাষাৰপৰা ঋণ কৰা শব্দৰ ব্যৱহাৰ সকলো ভাষাৰে উমৈহতীয়া বিশেষত্ব। সেয়া হ’লেও লক্ষ্য কৰা

উচিত যাতে ঋণকৃত শব্দই মূল ভাষাটোৰ শব্দসমূহক হেঁচা মাৰি নধৰে। অন্যথা সিয়ে ভাষাটোৰ শব্দভাণ্ডাৰক চহকী কৰাতকৈ নিঃকিনহে কৰি তুলিব। অসমীয়া ভাষাত অৰুনোদই যুগত, জোনাকী যুগত অথবা তাৰ পৰৱৰ্তী সময়তো ঋণকৃত শব্দৰ প্ৰয়োগ যথেষ্ট পৰিমাণে দেখিবলৈ পোৱা যায়। সাধাৰণতে নিজ ভাষাত নথকা কিবা শব্দৰ ক্ষেত্ৰত অথবা অন্য ঠাইত সৃষ্ট বা ব্যৱহৃত কোনো বস্তুৰ বাবে প্ৰয়োগ কৰা শব্দৰ ক্ষেত্ৰত যদি উপযুক্ত পৰিভাষাৰ অভাৱ হয় তেনে পৰিপ্ৰেক্ষিতত সাধাৰণতে শব্দ ঋণ কৰা হয়; কিন্তু অতি সাম্প্ৰতিক কালত ইয়াৰ স্বৰূপ সলনি হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে— অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ দুখন জনপ্ৰিয় উপন্যাসৰ নামৰ প্ৰসঙ্গলৈ যদি চোৱা হয় দেখা যায় উপন্যাসৰ শিৰোনামৰ বাবে ইংৰাজী ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিলেও দৰাচলতে সেয়া অসমীয়া গ্ৰন্থহে। *লাইফ অৱ এ ড্ৰাইভাৰ Life of a Driver* কেবিনৰ *ইপাৰে*, *জাৰ্নি অৱ এ মিউজিচিয়ান Journey of a Musician* তেনে দুখন উপন্যাসৰ শিৰোনাম। হয়তো প্ৰকাশিকা শক্তিৰ বৃদ্ধিৰ বাবেই লেখকে তেনেদৰে ইংৰাজী ভাষাত শিৰোনাম ব্যৱহাৰ কৰিছে।

সাম্প্ৰতিক সময়ত সমাজত ব্যাপকৰূপত ব্যৱহৃত এবিধ সুলভ পণ্য হৈছে ভ্ৰাম্যভাষ অথবা ম'বাইল। ইয়াৰ জৰিয়তে বাৰ্তা প্ৰেৰণ কৰিবলৈ যাওঁতেও প্ৰেৰকে অসমীয়া ভাষা লিখোঁতেও অসমীয়া ভাষাৰ সমান্তৰালভাৱে ৰোমান লিপি ব্যৱহাৰ কৰে। অতি সংক্ষিপ্ত ৰূপত ৰোমান লিপিৰে লিখা ৰূপসমূহেও অসমীয়া ভাষাটোত সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—পাৰিলে (prle), এবাৰ (abr), আহিবা (ahba) তোমাৰ (tmr), খবৰ (khbr), কেনে (kne), মোৰ (mr) ভাল (bhl), যদি তুমি ভালদৰে পঢ়া, তেন্তে ভাল ফল লাভ কৰিবা (jdi tmi bhldre prha, tnte bhl fal lbh krba) আদি। এনেদৰে লিখা ৰূপসমূহ নতুন প্ৰজন্মৰ বাবে অতি চিনাকি হ'লেও অসমীয়া ভাষাৰ বাবে সি নিশ্চয় গ্ৰহণযোগ্য হ'ব নোৱাৰে।

অতি সাম্প্ৰতিক সময়ত ঘাইকৈ দূৰদৰ্শন যোগে সম্প্ৰচাৰিত অসমীয়া বাতৰি পৰিৱেশকসকললৈ লক্ষ্য কৰিলেও দেখা যায় তেওঁলোকে নিজৰ অজ্ঞতাৰ বাবেই হওক অথবা সচেতনহীনতাৰ বাবেই হওক বহুলভাৱে প্ৰয়োগ কৰা কেইটামান শাব্দিক ৰূপ এনেধৰণৰ— ব্ৰেকিং

নিউজ, অৱশেষত নিজেই আত্মসমৰ্পণ, নিজেই আত্মহত্যা, বজ্ৰপাত পৰি, পানীত পৰি সলীল সমাধি, পুনৰ দোহাৰিছোঁ আদি।

ছপা মাধ্যমলৈ লক্ষ্য কৰিলে সাম্প্ৰতিক সময়ত সততে প্ৰয়োগ কৰা এটা সৰু উদাহৰণ কিন্তু অসমীয়া ভাষাত হোৱা এটা ডাঙৰ ভুল এনেধৰণৰ— যোৱা ২০২১ বৰ্ষৰ ১১ ডিচেম্বৰ তাৰিখৰ অসমত বহুল প্ৰচাৰিত আৰু সমাদৃত এখন বাতৰি কাকত 'আমাৰ অসম'ৰ প্ৰথম পৃষ্ঠাত লিখিত এটা বাতৰি হৈছে, "মাতৃভাষাটো নেৰিবা! শিক্ষামন্ত্ৰীক কাতৰ আৱেদন জ্ঞানপীঠজয়ী নীলমনিৰ"। বাক্যটোত নীলমনি কোন? ভাৰতবৰ্ষৰ এজন স্নানামধ্য জ্যেষ্ঠ কবিৰ মন্তব্য লিখিবলৈ যাওঁতে এনেদৰে লিখাটো অনুচিত। সাধাৰণতে অসমীয়া ভাষাত কোনো ব্যক্তিৰ পৰিচয় দিবলৈ হ'লে ব্যক্তিগৰাকীৰ নাম উপাধিসহ লিখাটো নিয়ম। উপাধিবিহীন ৰূপত কোনো ব্যক্তিৰ পৰিচয় অথবা তেওঁৰ সম্পৰ্কে মতামত দিয়াটো অসমীয়া সংস্কৃতি বিৰোধী। তদুপৰি বাতৰিৰ শিৰোনামটোত কবিগৰাকীৰ নামটো ছপা হওঁতেও মূৰ্খণ্য ৭-ৰ ঠাইত লিখা হৈছে দন্ত্য ন। গতিকে ইও ভুলতেই কৰা অন্য এক ভুল। একেখন বাতৰি কাকততেই ২০২২ বৰ্ষৰ ২২ ফেব্ৰুৱাৰী তাৰিখৰ এটা বাতৰিৰ শিৰোনাম আছিল এনেধৰণৰ— "এছবিআইত আন্তঃজাতিক মাতৃভাষা দিৱস উদ্‌যাপন"। এয়া ছপাৰ ভুলৰ দোহাই দি মূৰ পোলোকা মৰা বিষয় নহয়। গতিকে ছপা মাধ্যমতেই হওক বা বৈদ্যুতিন মাধ্যমতেই হওক ভাষালৈ অহা এইধৰণৰ সমস্যা একধৰণৰ ডাঙৰ সমস্যা।

(খ) সমস্যাৰ কাৰণ নিৰ্ধাৰণঃ অতি সাম্প্ৰতিক কালত অসমীয়া ভাষালৈ আহি পৰা সমস্যাৰ কাৰক বিচাৰিলে আধুনিক সমাজ-ব্যৱস্থা, যুৱ সমাজৰ ভাষিক নিষ্ক্ষেপণ, ছপা, বৈদ্যুতিন আৰু নৱ্য মাধ্যমত ব্যৱহৃত অসমীয়া ভাষা আৰু খিচিৰি ভাষাৰ প্ৰয়োগ, ত্ৰুটীপূৰ্ণ পঠন, উপযুক্ত পৰিভাষাৰ অভাৱ, অতি সংক্ষিপ্ত ৰূপৰ প্ৰয়োগ, সজাগতাৰ অভাৱ, ভাষা-জ্ঞানৰ অভাৱৰ বাবে ভুল প্ৰয়োগ আদি বিভিন্ন দিশলৈ আঙুলিয়াব পাৰি।

সাম্প্ৰতিক কালত যিটো পৰিঘটনাই বিশ্বৰ প্ৰায় সকলো সকলো দেশ, সকলো প্ৰান্ত আৰু সকলো জাতিগোষ্ঠীক স্পৰ্শ কৰি গৈছে তাৰ নাম দিয়া হৈছে *globalization* যাক আমি বিশ্বায়ন বা গোলকায়ন বুলি ক'ব

পাৰোঁ। আধুনিক প্ৰযুক্তি আৰু বজাৰ অৰ্থনীতিৰ ক্ষেত্ৰসমূহত হোৱা অভূতপূৰ্ব অগ্ৰগতিয়ে বিশ্বৰ বিভিন্ন ৰাষ্ট্ৰ আৰু অঞ্চলৰ মাজৰ দূৰত্ব এনেদৰে সংকুচিত কৰি আনিছে যে সমগ্ৰ পৃথিৱীখনেই এক global village বা বিশ্ব গ্ৰামত পৰিণত হোৱাৰ উপক্ৰম হৈছে। বিশ্বায়ন বা গোলকায়ন বা গোলকীকৰণ পৰিভাষা যিয়েই নহওক, ইয়াৰ প্ৰভাৱত এটা অঞ্চল বা গোষ্ঠীৰ ভাষিক-সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহে নিজ অঞ্চল বা গোষ্ঠীৰ সীমা অতিক্ৰম কৰি ভিন্ন ভৌগোলিক অঞ্চল বা গোষ্ঠীৰ মাজত সোমাই পৰি তাতেই খোপনি পুতি লৈছে। ফলস্বৰূপে অন্যান্য দিশৰ লগতে ভৌগোলিক, সাংস্কৃতিক, ভাষিক অৱস্থানৰ স্বকীয় ৰূপলৈও অবাঞ্ছিতভাৱেই পৰিৱৰ্তন আহি পৰিছে।

(গ) কাৰণ নিবাৰণ : ভাষা-সমস্যা সমাধানৰ বাবে ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক দুটা দিশ লক্ষ্য কৰা যায়। যেতিয়া ভাষা সংগ্ৰহস্বীৰ কোনো সমস্যাৰ সৃষ্টি হয় আৰু তেনেক্ষেত্ৰত যিসমূহ গঠনমূলক পদক্ষেপ গ্ৰহণ কৰিলে সমস্যা সমাধানৰ ক্ষেত্ৰত সহায়ক হয় সেইসমূহ হ'ল ইতিবাচক দিশ। আনহাতে সমস্যাসমূহ নিৰ্মূল বা দূৰীকৰণ হ'ল নেতিবাচক দিশ। অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষাত দেখিবলৈ পোৱা আসোঁৱাহসমূহ নাইকীয়া কৰিবলৈ গৈ বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱক অস্বীকাৰ কৰাটো ভিত্তিহীন। যুগৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে প্ৰচলিত সমাজ-ব্যৱস্থাৰ সৈতে আধুনিক সমাজ-ব্যৱস্থাক মানি চলিবলৈ যাওঁতে মিশ্ৰ সংস্কৃতিৰ সৃষ্টি হয়। ফলস্বৰূপে অৱধাৰিতভাৱে ভাষাৰ ক্ষেত্ৰখনতো নতুন উপাদানৰ সংমিশ্ৰিত ঘটে; কিন্তু সেয়া হ'লেও যিবোৰ উপাদানেৰে অসমীয়া ভাষা-সাংস্কৃতিক সমৃদ্ধ কৰি অসমীয়া জাতিক অসমীয়া পৰিচয়েৰে পৰিচিত কৰোৱাইছে সেইসমূহ বিকৃত নকৰাকৈ ভাষিক নিষ্ক্ষেপণ কৰা বাঞ্ছনীয়। ঠিক একেদৰে ছপা, বৈদ্যুতিন আৰু নৱ্য মাধ্যমত ব্যৱহৃত অসমীয়া ভাষাত খিচিৰি ৰূপৰ প্ৰয়োগ নকৰি ভাষাটোৰ স্বকীয় ৰূপটোক তুলি ধৰা উচিত। অন্যথা সেই ৰূপসমূহেই এটা সময়ত গৈ মূল ৰূপত পৰিণত হ'বগৈ, যিটো অসমীয়া ভাষাটোৰ বাবে অত্যন্ত হানিকাৰক দিশ। ত্ৰুটীপূৰ্ণ পঠন পৰিত্যাগ কৰি ভাষাটোৰ শুদ্ধ ৰূপৰ উচ্চাৰণত ভাষা ব্যৱহাৰকাৰীয়ে মনোযোগ দিব লাগে আৰু ভাষা-জ্ঞান আহৰণত মনোনিৱেশ কৰিব লাগে। অতি সংক্ষিপ্ত ৰূপৰ প্ৰয়োগ নকৰাই মংগল। ই ঘাইকৈ ভাষাৰ

মূল ৰূপক ধ্বংস কৰাৰ ক্ষেত্ৰত অবিহণা যোগোৱাত সহায়ক হয়। উপযুক্ত পৰিভাষাৰ অভাৱ অসমীয়া ভাষাৰ ক্ষেত্ৰতে নহয়, ভাৰতবৰ্ষৰ প্ৰায়বোৰ ভাষাতে এই সমস্যাটো প্ৰযোজ্য। বিজ্ঞানৰ ন ন আৱিষ্কাৰ আৰু গোলকীকৰণৰ প্ৰভাৱত সমাজ-সাংস্কৃতিলৈ নিতৌ নতুন নতুন উপাদানৰ আমদানি ঘটিছে আৰু ভাষাৰ ক্ষেত্ৰখনতো এক বহল ঠাই সেইসমূহে অধিকাৰ কৰি লৈছে। সেয়ে যথাসম্ভৱ নিজ ভাষাত উপযুক্ত পৰিভাষাৰ সৃষ্টিয়ে এনে সমস্যা সামান্য হ'লেও কমাৰ পৰা যাব বুলি অনুমান কৰিব পাৰি।

(ঘ) গঠনমুখী কৰ্মসূচী ৰূপায়ণ : ভাষা-পৰিকল্পনাৰ ক্ষেত্ৰত গঠনমুখী কৰ্মসূচী ৰূপায়ণ কৰাটো অন্যতম প্ৰধান পদ্ধতি। ভাষালৈ আহি পৰা সমস্যা নিৰূপণ, সমস্যাসমূহৰ কাৰণ নিৰ্দ্ধাৰণ, সমস্যা নিবাৰণৰ বিভিন্ন দিশসমূহ নিৰ্ণীত কৰাৰ পাছত গঠনমূলক কাৰ্য-প্ৰণালী প্ৰস্তুত কৰি সেইসমূহ ৰূপায়ণ কৰিব পাৰিলেহে ভাষা-পৰিকল্পনা প্ৰক্ৰিয়াটো কাৰ্যক্ষেত্ৰত ফলপ্ৰসূ হোৱাটো সম্ভৱ। অসমীয়া ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত সম্প্ৰতি প্ৰয়োজন হোৱা গঠনমুখী কৰ্মসূচী হিচাপে কেইটামান দিশৰ কথা খোৰতে উল্লেখ কৰিব পাৰি—

(ক) দোষযুক্ত উচ্চাৰণ আৰু ত্ৰুটীপূৰ্ণ পঠন নিবাৰণৰ বাবে অসমীয়া ভাষাটোৰ সঠিক উচ্চাৰণ সম্পৰ্কীয় পূৰ্ণাংগ উচ্চাৰণায়ক অভিধান প্ৰণয়নৰ বাবে ভাষা-পৰিকল্পনা।

(খ) বাতৰি কাকত, আলোচনী, পাঠ্যপুথিত হোৱা ছপা ভুল নোহোৱা কৰিবৰ বাবে এইসমূহৰ লগত জড়িত সকলো লোককে বিশেষজ্ঞৰ জৰিয়তে উপযুক্ত ভাষাজ্ঞান প্ৰদান কৰাৰ ব্যৱস্থা কৰিব লাগে। তদুপৰি বাক্যৰ গাঁথনি, শব্দৰ প্ৰয়োগ আৰু বানান সম্পৰ্কে ভাষাবিদসকল এটা সিদ্ধান্তলৈ আহিব লাগে আৰু সেইসমূহ সমানে প্ৰযোজ্য হোৱাৰ পৰিকল্পনা কৰিব লাগে।

(গ) যুক্তাক্ষৰৰ বেমেজালি নাইকীয়া কৰিবৰ বাবে সৰ্বজন গ্ৰহণযোগ্য নীতি প্ৰস্তুতৰ বাবে ভাষা-পৰিকল্পনা।

(ঘ) শিক্ষাৰ প্ৰাথমিক স্তৰৰপৰাই যথার্থৰূপত অসমীয়া ভাষাৰ ব্যাকৰণৰ নিয়ম শিক্ষণ আৰু অভিধান চোৱাৰ অভ্যাস গঢ় দিয়াৰ বাবে সেইধৰণৰ পাঠ্যক্ৰমৰ পৰিকল্পনা।

উল্লিখিত দিশকেইটাৰ সঠিক ভাষা-পৰিকল্পনাৰে অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষালৈ আহি পৰা বহুতো

সমস্যা নিবারণ কৰিব পৰা হ'ব বুলি ধাৰণা কৰিব পাৰি।

অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষালৈ আহি পৰা সমস্যাসমূহ দূৰীকৰণৰ বাবে যি ভাষা-পৰিকল্পনাৰ প্ৰয়োজনীয়তা আহি পৰিছে সেই ক্ষেত্ৰত চৰকাৰীভাৱে পৰিকল্পনা কৰাৰ উপৰি প্ৰধানতঃ অসমৰ বিশ্ববিদ্যালয়কেইখন আৰু অসমৰ জাতীয় অনুষ্ঠান অসম-সাহিত্য সভাৰ ভূমিকা বিশেষভাৱে গুৰুত্বপূৰ্ণ। উদাহৰণস্বৰূপে— শিক্ষাৰ প্ৰতিটো স্তৰতে সকলো বিষয়ৰ জ্ঞান উপলব্ধি হোৱাকৈ পাঠ্যক্ৰম প্ৰস্তুত আৰু সেইসমূহ কাৰ্যকৰী কৰিবলৈ যথার্থ ৰূপত পৰ্যাপ্ত পাঠ্যপুথি প্ৰণয়ন কৰিবলৈ চৰকাৰীভাৱে ভাষা-পৰিকল্পনা কৰি তাক ৰূপায়ণৰ প্ৰচেষ্টা গ্ৰহণ আৰু অসমীয়া ভাষাত বিবিধ বিষয়ক পাৰিভাষিক শব্দকোষৰ প্ৰণয়ন আৰু প্ৰয়োগৰ বাবে প্ৰয়োজনীয় পৰিকল্পনাৰ কথাই উনুকিয়াব পাৰি। সৰ্বশেষত ক'ব পাৰি, অসমীয়া ভাষা কওঁতে যদি ইংৰাজী, হিন্দী, বাংলা আদি ভাষাৰ শব্দ আৰু বাক্যৰ প্ৰকাশভংগীৰ সলনি থলুৱা শব্দ আৰু অসমীয়া ভাষাৰ প্ৰকাশভংগীৰে নিজৰ ভাৱ প্ৰকাশ কৰিম বুলি মন বান্ধি লোৱা হয়, সিয়ো ব্যক্তিগত পৰ্যায়ত কৰা একপ্ৰকাৰৰ ভাষা-পৰিকল্পনায়ৈ।

## ২.০ উপসংহাৰ আৰু প্ৰাপ্ত সিদ্ধান্ত :

পৰিৱৰ্তনশীলতা ভাষাৰ স্বাভাৱিক ধৰ্ম; কিন্তু পৰিৱৰ্তন এনেদৰে হ'ব নালাগে যাতে ভাষাটোৱেই অস্তিত্বহীন হৈ পৰে। মানুহে ভাষা সদায় প্ৰয়োজনৰ তাগিদাতহে শিকে। সেয়েহে ভাষা শিকনৰ ক্ষেত্ৰত মাতৃভাষা, প্ৰথম ভাষা, দ্বিতীয় ভাষা, বিদেশী ভাষা শিকন অথবা একভাষী, দ্বিভাষী, বহুভাষী আদি ধাৰণাৰ সৃষ্টি। বৰ্তমানৰ বিশ্বায়নৰ যুগত ইংৰাজী ভাষাৰ ভয়াবহ আগ্ৰাসন আৰু ইংৰাজী ভাষা-প্ৰীতিয়ে বিশ্বৰ সৰু-বৰ প্ৰান্তীয় ভাষাবোৰলৈ অশনি সংকেত কঢ়িয়াই আনিছে। সূক্ষ্মভাৱে পৰ্যবেক্ষণ কৰিলে দেখা যায়, বিগত দুটা দশকৰ পূৰ্বেপৰা কেৱল অসমৰ প্ৰেক্ষাপটতে নহয়, ভাৰতবৰ্ষতে ছাত্ৰ-ছাত্ৰী আৰু অভিভাৱকসকলেও প্ৰান্তীয় ভাষাৰ সলনি ইংৰাজী ভাষাটোক প্ৰাধান্য দিবলৈ ধৰিছে। মাতৃভাষাৰ পৰিৱৰ্তে ইংৰাজী ভাষাৰ মাধ্যমেৰে শিক্ষা গ্ৰহণৰ প্ৰতি সাধাৰণ লোকৰো আসক্তি বৃদ্ধি পোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। আজিৰ প্ৰজনাই ইংৰাজী ভাষাত শিক্ষা গ্ৰহণ কৰাটো এক নিচাত পৰিণত হৈছে। ইয়াৰ কাৰণ বিচাৰি চালে

আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় প্ৰেক্ষাপটত ইংৰাজী ভাষা ব্যৱহাৰৰ সুচল দিশটোকে আঙুলিয়াব পাৰি; কিন্তু কেৱল সেই দৃষ্টিৰেই যদি মাতৃভাষা অথবা প্ৰান্তীয় ভাষাক আওকাণ কৰে, তেন্তে মানুহে সময়ত গৈ নিজৰ জাতীয় পৰিচয়েই হেৰুৱাই পেলাব। তৎসত্ত্বেও মাতৃভাষা অথবা প্ৰান্তীয় নাইবা স্থানীয় ভাষাৰ প্ৰতি এনে অৱহেলিত মনোভাৱে ইংৰাজী ভাষাৰ বাহিৰে অন্য ভাষাবোৰলৈ গভীৰ সংকট নমাই আহিছে। ইয়াৰ জ্বলন্ত উদাহৰণ হিচাপে আয়াৰলেণ্ডৰ ৰাষ্ট্ৰীয় ভাষাৰ কথাই উল্লেখ কৰিব পাৰি। আয়াৰলেণ্ডত ১৮০০ শতিকালৈকে ৰাষ্ট্ৰীয় ভাষা হিচাপে 'আইৰিছ ভাষা'ৰ প্ৰচলন আছিল; কিন্তু আইৰিছসকলৰ ইংৰাজী ভাষা-প্ৰীতি আৰু ইংৰাজী ভাষাৰ আগ্ৰাসনে আইৰিছ ভাষাৰ স্ব-স্থানৰ পতন ঘটাই ১৯০০ শতিকাত সেই স্থান দখল কৰে ইংৰাজী ভাষাই। এই তথ্যই বিশ্বভাষাৰূপে গতি কৰা ইংৰাজী ভাষাৰ ব্যাপকতা আৰু প্ৰান্তীয় ভাষাসমূহৰ সংকটময়তাৰ বাস্তৱ চিত্ৰকে সূচায়।

অসমৰ প্ৰেক্ষাপটত দৃষ্টিগোচৰ হোৱা অতি সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া ভাষিক ৰূপৰ পৰিৱৰ্তনত, ভাষাটো সংৰক্ষণ আৰু ব্যাপক প্ৰসাৰত ভাষা-পৰিকল্পনাৰ প্ৰয়োজনীয়তা পুনৰবাৰ আহি পৰিছে। সেয়ে প্ৰসঙ্গাৰ্থত আলোচনাৰপৰা প্ৰাপ্ত সিদ্ধান্তসমূহ এনেধৰণেৰে দেখুৱাব পৰা যায়—

(ক) অতি সাম্প্ৰতিক প্ৰেক্ষাপটত অসমীয়া ভাষালৈ অহা পৰিৱৰ্তনে ভাষাটোৰ স্বকীয় ৰূপক বিপ্লিত কৰিছে। পৰিৱৰ্তনশীলতাৰ নীতি মানি লৈও ভাষাটোক বিকৃত কৰা কাৰ্য আৰু তেনে মানসিকতাৰপৰা আঁতৰ কৰাৰ বাবে ভাষা-পৰিকল্পনাৰ প্ৰয়োজন।

(খ) ইতিবাচক দৃষ্টিভংগীৰে ক'বলৈ গ'লে, বিজ্ঞানৰ নিত্য নতুন আৱিষ্কাৰ আৰু বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱত অসমতে সহজলভ্য সেইসমূহ দ্ৰব্যৰ বাবে ব্যৱহৃত ঋণকৃত শব্দসমূহৰ বাবে উপযুক্ত পৰিভাষা সৃষ্টিৰ প্ৰয়োজনীয়তা আহি পৰিছে। সেয়ে অসমীয়া ভাষাত বিবিধ বিষয়কপাৰিভাষিক শব্দকোষৰ প্ৰণয়নৰ বাবেও ভাষা-পৰিকল্পনাৰ প্ৰয়োজন আছে।

(গ) শিক্ষাৰ প্ৰতিটো স্তৰতে সকলো বিষয়ৰ জ্ঞান উপলব্ধি হোৱাকৈ পাঠ্যক্ৰম প্ৰস্তুত আৰু সেইসমূহ কাৰ্যকৰী কৰিবলৈ যথার্থ ৰূপত পৰ্যাপ্ত পাঠ্যপুথি প্ৰণয়ন কৰিবলৈ চৰকাৰীভাৱে ভাষা-পৰিকল্পনা কৰি তাক ৰূপায়ণৰ প্ৰচেষ্টা গ্ৰহণ কৰা বাঞ্ছনীয়। □

---

**প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ :**

১। শ', ৰামেশ্বৰ; সাধাৰণ ভাষাবিজ্ঞান ও বাংলা ভাষা, পৃ. ৭১৯, ২০১৮

২। চৌধুৰী, সতীশ চন্দ্ৰ আৰু প্ৰদীপ ভূঞা (সম্পা.); (২০০৮); *অসম সাহিত্য সভাৰ ভাষণাৱলী*, পঞ্চম খণ্ড, পৃ. ৫৫৮, মাৰ্চ।

**সহায়ক গ্ৰন্থ :**

কাকতি বাণীকান্ত, অসমীয়া ভাষাৰ গঠন আৰু বিকাশ, (হাজৰিকা, বিশ্বেশ্বৰ অনু.); গুৱাহাটীঃ বীণা লাইব্ৰেৰী (মূল লেখকৰ প্ৰথম প্ৰকাশ-১৯৪১), ২০০২

গোস্বামী উপেন্দ্ৰনাথ, অসমীয়া ভাষাৰ উদ্ভৱ, সমৃদ্ধি আৰু বিকাশ; গুৱাহাটীঃ বৰুৱা এজেণ্টি, ২০০০

গোস্বামী গোলোকচন্দ্ৰ, অসমীয়া ব্যাকৰণৰ মৌলিক বিচাৰ; গুৱাহাটীঃ বীণা লাইব্ৰেৰী, ১৯৯৯

গোস্বামী গোলোকচন্দ্ৰ, অসমীয়া আখৰ জেঁটনি সমীক্ষা; গুৱাহাটীঃ বীণা লাইব্ৰেৰী, ২০১০

শ' ৰামেশ্বৰ; সাধাৰণ ভাষাবিজ্ঞান ও বাংলা ভাষা, পুস্তক বিপণী, ২০১৮

শইকীয়া নগেন, অধ্যয়ন বৈচিত্ৰ, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০১০

Chomsky Noam, *The Architecture of Language*; OUP India, 2006

Crystal David, *How Language Works*; Penguin Books Ltd., 2007

---

# সাহিত্যত নাৰীৰ স্বাস্থ্য আৰু নাৰীৰ স্বাস্থ্য সজাগতাৰ প্ৰতিফলন (য়েছে দৰজে ঠংচিৰ বিষকন্যাৰ দেশত উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লেখৰে)



ড° পুষ্পাঞ্জলি হাজৰিকা

## সংক্ষিপ্তসূচী :

নাৰী আৰু পুৰুষক লৈ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ সমাজ-জীৱনত ভিন্ন বিশ্বাস, পৰম্পৰা আৰু ৰীতি নীতি প্ৰচলন হৈ থকা দেখিবলৈ পোৱা যায়। নাৰীসকলৰ স্বাস্থ্যৰ লগত জড়িত বহুতো লোক বিশ্বাস আৰু অন্ধবিশ্বাসো সমাজত লক্ষ্য কৰা যায়। সাহিত্য সৃষ্টি হয় সমাজৰ আধাৰত আৰু অন্য বিভিন্ন প্ৰসংগৰ লগতে লোকবিশ্বাস বা ৰীতি নীতিৰ প্ৰতিফলন সাহিত্যত হোৱা দেখা যায়। য়েছে দৰজে ঠংচিৰ বিষকন্যাৰ দেশত উপন্যাসত নাৰীৰ স্বাস্থ্যৰ লগত জড়িত বহুতো প্ৰসংগ প্ৰতিফলিত হৈছে। উপন্যাসখনত অবিভক্ত কামেং জিলাৰ জিমিথাং আৰু ব্ৰকেনথাং অঞ্চলত পাংচেনপা আৰু মনুপা জনজাতিৰ মহিলাসকলৰ স্বাস্থ্য আৰু মহিলাসকলৰ স্বাস্থ্যৰ লগত জড়িত অন্ধবিশ্বাস আৰু ৰীতি-নীতিৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে। নাৰীৰ স্বাস্থ্যৰ লগত জড়িত বিভিন্ন অন্ধবিশ্বাসৰ বৰ্ণনা কৰাৰ লগতে ইয়াৰ ফলত নাৰীসকলে সন্মুখীন হোৱা বিভিন্ন সমস্যাৰ বিষয়ে উপন্যাসখনত বৰ্ণনা কৰা হৈছে। “সাহিত্যত নাৰীৰ স্বাস্থ্য আৰু নাৰীৰ স্বাস্থ্য সজাগতাৰ প্ৰতিফলন (য়েছে দৰজে ঠংচিৰ বিষকন্যাৰ দেশত উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লেখৰে)” শীৰ্ষক গৱেষণাপত্ৰত পাংচেনপা মহিলাৰ স্বাস্থ্যক লৈ তেওঁলোকৰ সমাজত প্ৰচলিত অন্ধবিশ্বাস, ৰীতি-নীতি আৰু তেওঁলোকৰ স্বাস্থ্য সজাগতা এই দিশকেইটাৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হৈছে। গৱেষণাপত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবলৈ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

## বীজ শব্দ :

স্বাস্থ্য, মহিলা, অন্ধবিশ্বাস, ৰীতি-নীতি, স্বাস্থ্য সজাগতা।

## ০.০১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

বিষকন্যাৰ দেশত উপন্যাসখন অবিভক্ত কামেং জিলাৰ জিমিথাং আৰু ব্ৰকেনথাং অঞ্চলৰ সমাজ জীৱনৰ আধাৰত ৰচনা কৰা হৈছে। উপন্যাসখনত পাংচেনপা আৰু মনুপা জনজাতিৰ সমাজত প্ৰচলিত মহিলাৰ লগত জড়িত কিছু অন্ধবিশ্বাসৰ আধাৰত কাহিনী আগবঢ়োৱা হৈছে। উপন্যাসখনত পাংচেনপা মহিলাৰ লগত জড়িত স্বাস্থ্যৰ কিছুমান গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ উল্লেখ কৰিছে। লগতে তেওঁলোকৰ সমাজ জীৱনত মহিলাসকলক লৈ প্ৰচলিত কিছুমান মহিলাকেন্দ্ৰিক লোক বিশ্বাস আৰু সেই লোকবিশ্বাসৰ লগত জড়িত স্বাস্থ্যৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে। উপন্যাসখনত উল্লেখ কৰিছে যে পাংচেনপা আৰু মনুপা মহিলাসকল বিষকন্যা। তেওঁলোকৰ হাতৰ নখত বিষ থাকে বুলি তেওঁলোকৰ মাজত অন্ধবিশ্বাস প্ৰচলন আছে। সেয়েহে এই মহিলাসকলে তৈয়াৰ কৰা কোনো খাদ্য তেওঁলোকে নাখায় আৰু মহিলাসকলৰ সন্মুখতো কোনেও একো নাখায়। এওঁলোকৰ সমাজ-জীৱনত ধুনীয়া ছোৱালী বা

সহকাৰী অধ্যাপক  
জগন্নাথ বৰুৱা বিশ্ববিদ্যালয়  
যোৰহাট, অসম - ৭৮৫০০১  
৮৬৩৮৮৬৯২৪০  
puspanjali.hazarika30@gmail.com

বুদ্ধিমতী ছোৱালী দেখিলেই তাইৰ ওপৰত বিষকন্যা বুলি অপবাদ জাপি দিয়া হয়। সমাজৰ অন্যান্য লোকসকলে তেনে মহিলাক ঘৃণাৰ চকুৰে চাবলৈ আৰম্ভ কৰে। ভয় কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে। তেনে মহিলাৰ হাতৰ পৰা খোৱা বস্ত্ৰ ল'বলৈ বন্ধ কৰি দিয়ে। তেনে মহিলাসকলে আজীৱন সমাজৰ ঘৃণাৰ মাজত দুৰ্বিসহ জীৱন কটাবলৈ বাধ্য হৈ পৰে। প্রকৃত্যৰ্থত সেই মহিলাসকল যে বিষকন্যা নহয় সেই কথা বুজিবলৈ তেওঁলোকে চেষ্টা নকৰে। পৰিষ্কাৰ-পৰিচন্নতাৰ অভাৱত, অস্বাস্থ্যকৰ খাদ্য গ্ৰহণৰ ফলতহে যে তেওঁলোকৰ বিভিন্ন বেমাৰ-আজাৰ হয় আৰু মৃত্যু হয় সেই বিষয়ে তেওঁলোকৰ মাজত বৈজ্ঞানিক চিন্তা-চৰ্চা দেখা নাযায়। তেওঁলোকৰ মাজত বহুতো এনে কাহিনী প্ৰচলন আছে, য'ত বিষকন্যাৰ পৰা খাদ্য খোৱাৰ ফলতহে বিভিন্নজনৰ মৃত্যু হোৱা বুলি পোৱা যায়। “সাহিত্যত নাৰীৰ স্বাস্থ্য আৰু নাৰীৰ স্বাস্থ্য সজাগতাৰ প্ৰতিফলন (য়েছেদৰজে ঠংচিৰ বিষকন্যাৰ দেশত উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লেখৰে)” শীৰ্ষক গৱেষণাপত্ৰখন বিষকন্যাৰ দেশত উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মহিলা স্বাস্থ্যকেন্দ্ৰিক এই দিশসমূহৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হৈছে।

#### ০.০২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

গৱেষণাপত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে -

(১) নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনৰ আধাৰত পাংচেনপা আৰু মনুপা মহিলাৰ স্বাস্থ্যৰ লগত জড়িত অন্ধবিশ্বাস আৰু ৰীতি-নীতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

(২) নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনৰ আধাৰত পাংচেনমা আৰু মনুপাসকলৰ সমাজৰ লোকসকলৰ বেমাৰ-আজাৰৰ কাৰণ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

(৩) নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনৰ আধাৰত পাংচেনপা আৰু মনুপাসকলৰ মাজত মহিলাৰ স্বাস্থ্য সজাগতাৰ বিভিন্ন পদক্ষেপ সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা।

#### ০.০৩ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব :

সাহিত্যৰ সামাজিক ভূমিকা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। কোনো এছোৱা সময়ত সৃষ্টি হোৱা সাহিত্যত সেই সময়ৰ সমাজ জীৱনৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলিত হয়। গতিকে সাহিত্যৰ অধ্যয়নৰ দ্বাৰা সমাজ জীৱনৰো অধ্যয়ন হয়। সমাজত স্বাস্থ্য সম্পৰ্কীয় চিন্তা-চৰ্চা আৰু বিশ্বাস কেনেধৰণৰ সেই দিশসমূহৰ অধ্যয়ন কৰাতো এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়। সাহিত্যত প্ৰতিফলিত

স্বাস্থ্যৰ প্ৰসংগই এখন সমাজৰ মানুহৰ স্বাস্থ্য সজাগতা কেনেধৰণৰ আৰু স্বাস্থ্যৰ লগত জড়িত ৰীতি-নীতিসমূহক পোহৰলৈ অনাত সহায় কৰিব।

#### ০.০৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

এই অধ্যয়নত মনুপা আৰু পাংচেনপা মহিলাসকলৰ স্বাস্থ্য সম্পৰ্কে তেওঁলোকৰ সমাজ জীৱনত প্ৰচলিত অন্ধ বিশ্বাস, তেওঁলোকৰ অস্বাস্থ্যকৰ পৰিৱেশ, বেমাৰ-আজাৰ, আৰু স্বাস্থ্য সজাগতাৰ পদক্ষেপ এই দিশকেইটা অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

#### ০.০৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

গৱেষণাপত্ৰখন অধ্যয়নৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

#### ১.০০ মূল আলোচনা :

বিভিন্ন জনজাতীয় সমাজ-জীৱনত মহিলাসকলক কেন্দ্ৰ কৰি বিভিন্ন বিশ্বাস, লোককাহিনী প্ৰচলন হৈ থকা দেখা যায়। বিষকন্যাৰ দেশত উপন্যাসত অবিভক্ত কামেং জিলাৰ জিমিথাং আৰু ব্ৰকেনথাং অঞ্চলৰ মানুহৰ নাৰীৰ প্ৰতি থকা কিছুমান অন্ধবিশ্বাসৰ বাবে নাৰীৰ জীৱনত হোৱা বিভিন্ন দূৰৱস্থাৰ বৰ্ণনা কৰা হৈছে। জিমিথাং অঞ্চলত পাংচেনপা মহিলাসকলক বিষকন্যা বুলি বিশ্বাস কৰে। বিষকন্যাক তেওঁলোকৰ ভাষাত দৌমো বুলি কোৱা হয়। পাংচেনপা মহিলাই বন্ধা খাদ্য খালে বা তেওঁলোকে খোৱাৰ সময়ত চাই থাকিলেও খাদ্যত বিষ সৃষ্টি হয় বুলি তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰে আৰু এনে কাৰণত বহুলোকৰ মৃত্যু হোৱা বুলি তেওঁলোকৰ মাজত বিভিন্ন লোক কাহিনীৰ প্ৰচলন আছে। এই অন্ধবিশ্বাসৰ বাবে মহিলাসকলক বিভিন্ন সামাজিক কাম কাজৰ পৰাও আঁতৰাই ৰখা হয়।

প্ৰকৃত্যৰ্থত তেওঁলোকৰ সমাজত থকা অস্বাস্থ্যকৰ পৰিৱেশ আৰু কেতিয়াবা অস্বাস্থ্যকৰ খাদ্যভাসৰ বাবে হোৱা বিভিন্ন ৰোগৰ বাবে মহিলাসকলক দোষাৰোপ কৰিছিল। এওঁলোকৰ মাজত স্বাস্থ্য সজাগতাৰ অভাৱ আছিল। তেওঁলোকে অপৰিষ্কাৰভাৱে জীৱন নিৰ্বাহ কৰিছিল। দৈনিক গা ধোৱা, কাপোৰ ধোৱা, বাচন বৰ্তন ধোৱা আদি কামবোৰ কৰা নাছিল। যাৰ বাবে তেওঁলোক বিভিন্ন বেমাৰ আজাৰত ভুগিছিল। তেওঁলোকৰ মাজত পৰিষ্কাৰ শৌচাগাৰ নাছিল। এনে বিভিন্ন কাৰণত তেওঁলোকৰ বেমাৰ-আজাৰ হৈছিল, কিন্তু তেওঁলোকে মহিলাসকলে তৈয়াৰ কৰা খাদ্য খোৱাৰ

ফলত বেমাৰ হোৱা বুলি বিশ্বাস কৰিছিল। সেইবাবে মহিলাসকলক বিষকন্যা বুলি অপবাদ দিছিল। এই সমস্যাসমূহৰ বৈজ্ঞানিক ভিত্তিসমূহ জনাৰ বাবে তেওঁলোকে চেষ্টা কৰা নাছিল।

উপন্যাসখনৰ এটা প্ৰধান মহিলা চৰিত্ৰ টাচি য়োদন। টাচি য়োদন আছিল এগৰাকী পাংচেনপা মহিলা। টাচি য়োদন চৰিত্ৰটোৰ মাজেৰে পাংচেনপা মহিলাসকলৰ স্বস্থ্যৰ লগত জড়িত কেইবাটাও গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে। পাংচেনপা মহিলাৰ হাতৰ পৰা খাদ্য খালে খোৱাবস্ত্ৰ বিহ হৈ যায় বুলি বিশ্বাস কৰাৰ কথা উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে-

“পাংচেনপা তিৰোতাৰ আগত কোনেও মুখত একো নিদিয়ৈ। আমাৰ পাংচেনপা জীয়াৰীসকলৰ গাত জাপি দিয়া কলঙ্কহু অলপ উত্তেজিতভাৱে টাচি য়োদনে ক’লে। টাচি য়োদনে অফিচাৰজনক কৈছিল ‘এই যে আমাৰ হাতৰ পৰা কোনো পৰপুৰুষে একো খাব নাপায়, আনকি আমাৰ সন্মুখতো কোনো পৰপুৰুষে একো খাব নাপায়, খালে বোলে আমাৰ পাংচেনপা তিৰোতাৰ চকু লাগে আৰু খাওঁতাজনৰ খোৱা বস্ত্ৰ বিহ হৈ যায়। খাওঁতাজনৰ লাহে লাহে পেটৰ বেমাৰ হ’বলৈ আৰম্ভ কৰি অৱশেষত মৰি যায়।’” (পৃ. ১৬)

ওপৰৰ উদাহৰণৰ পৰা দেখা যায় যে, মহিলাসকলক কেনেদৰে বিষকন্যা বুলি অপবাদ দিয়া হয়। তেওঁলোকৰ মুখৰ আগত কোনো পুৰুষে খাদ্য নাখাইছিল আৰু খালে অমংগল হয় বুলি বিশ্বাস কৰিছিল।

উপন্যাসখনৰ অন্য এটা চৰিত্ৰ পেমা খুৰী। পেমা খুৰীৰ হাতৰ খাদ্য খাই তেওঁৰ স্বামীৰ মৃত্যু হোৱা বুলি সমাজত প্ৰচাৰ হৈ গৈছিল। সেয়েহে সমাজত কোনেও পেমা খুৰীৰ হাতৰ কোনো খাদ্য গ্ৰহণ নকৰিছিল। এদিন থুপটেন টাচি আৰু টাচি য়োদন এটা উৎসৱত তেওঁলোকৰ ঠাইলৈ যাওঁতে পেমা খুৰীৰ হাতৰ তেওঁলোকৰ জনজাতীয় পানীয় খাওঁতে পেমা খুৰীয়ে বাধা দিয়া দেখা যায়। কাৰণ পেমা খুৰীয়ে নিজকে বিষকন্যা বুলিয়ে ভাবিবলৈ লৈছিল। উপন্যাসখনত এই কথা প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে -

“আমি হঠাৎ মদৰ পাত্ৰ তুলি লোৱা দেখি পেমা খুৰীয়ে চিৎকাৰ কৰি উঠিল আৰু মোৰ হাতৰ পৰা মদৰ পাত্ৰ কাঢ়ি ল’লে। কিন্তু তাৰ আগতেই মই পাত্ৰটো খালী কৰি পেলালোঁ। ‘ইস ইস ইসহু আপুনি মোৰ হাতৰ বিষ

খাই দিলে। মোৰ হাতৰ বিষ। আপোনাক মই মদখিনি নাখাবলৈ কৈছিলোঁ, কিয় আপুনি খাই দিলে?’” (পৃ. ৭৭)

পাংচেনপা তিৰোতাসকলে খোৱাৰ সময়ত অন্য লোকসকললৈ মুকলিকৈ চাবও পৰা নাছিল। তেওঁলোকৰ মাজত অন্ধবিশ্বাস আছিল যে খোৱাৰ সময়ত তেওঁলোকৰ ওচৰত খাই থকা অন্যান্য লোকসকলৰ ওপৰত মহিলাসকলৰ চকুৰ দৃষ্টি পৰিলে সেই খাদ্যও বিহ হৈ পৰিব পাৰে। গতিকে খোৱাৰ সময়ত তলমূৰ কৰি সদায়ে খাব লগা হৈছিল। উপন্যাসখনত সেই বিষয়ে প্ৰতিফলিত হৈছে এনেদৰে -

“আমি পাংচেনপা তিৰোতাসকলে খাওঁতে সদায়ে তলমূৰ কৰি খাব লাগে। নহ’লে আমাৰ চকুৰ পৰা ওলোৱা লালসাই অন্য খাওঁতাজনৰ অন্যান্য কৰিব পাৰে। সেইকাৰণে তলমূৰ কৰি খোৱা মোৰ অভ্যাস হৈ গ’ল।” (পৃ. ১৭)

“পাৰ্টি ময়ো আগতেই দিব পাৰিলোঁহেঁতেনহু কিন্তু মোৰ দৰে পাংচেনপা তিৰোতাৰ ঘৰত আপোনালোকে পাংচেনপা তিৰোতাই বন্ধা ভাত-পানী খালেহেঁতেন জানোঁ? অলপ ধেমালিৰ সুৰেৰে টাচি য়োদনে ক’লে।” (পৃ. ৩১)

“তুমিতো থুপটেনৰ ঘৰলৈ যাব নোৱাৰিবা। কথাতো জানিবৰ বাবে মই কিবা বন্দৰস্ত কৰিব লাগিব।

কাৰণ তুমি এজনী দৌমো। তোমাৰ কাৰণে থুপটেন বোপাৰ কিবা অমংগল হোৱাটো মই নিবিচাৰোঁ।

(পৃ. ৪১০)

ওপৰৰ উদাহৰণসমূহত দেখা যায় যে পাংচেনপা মহিলাসকল কেনেদৰে তলমূৰ কৰি খাব লগা হৈছিল। ইয়াৰ লগতে টাচি য়োদনে তেওঁৰ ঘৰত পাৰ্টি এটাত সকলোকে নিমন্ত্ৰণ কৰিছিল। তেতিয়া তালৈ যোৱাৰ প্ৰসংগত কিছু লোকে আপত্তি কৰিছিল। কাৰণ তাচি য়োদন বিষকন্যা বুলি সমাজত প্ৰচলিত আছিল।

টাচি য়োদনে মহিলাসকলক এই দুৰৱস্থাৰ পৰা মুক্ত কৰিবলৈ স্বাস্থ্য সজাগতামূলক বহুতো কাৰ্য হাতত লৈছিল। বিভিন্ন ধৰণে তেওঁলোকক বুজাবলৈ চেষ্টা কৰিছিল যে মানুহবোৰৰ বেমাৰ আৰু মৃত্যু হৈছে অস্বাস্থ্যকৰ পৰিৱেশ, বেয়া খাদ্যৰ বাবেহে। পৰিষ্কাৰ পৰিচনতাৰ অভাৱতহে মনু পা মানুহবিলাকৰ বিভিন্ন পেটৰ বেমাৰ হৈছিল। সেই কথাকে বুজিব নোৱাৰি মহিলাসকলে খোৱা বস্ত্ৰৰ লগত বিষ দিয়ে বুলি অন্ধবিশ্বাস আছিল। সেয়েহে টাচি য়োদনে

পেমা খুবীক এই বিষয়ে কৈছিল এনেদৰে-

“খুবী ময়েই তেওঁক মদখিনি খাবলৈ কৈছোঁ। কাৰণ এই মদত তোমাৰ নখত উৎপন্ন হোৱা কোনো বিষ নাই। তুমি দেখোন নখবিলাক ধুনীয়াকৈ চাফ কৰি আহিছ। তুমি অনাহকতে ভয় খাইছ।” (পৃ. ৭৭)

এইদৰে টাচি য়োদনে মহিলাসকলক স্বাস্থ্যৰ বিষয়ে সজাগ কৰিবলৈ যত্নপৰ হৈছিল। টাচি য়োদনৰ কথা শুনি বহু লোকে নিজৰ নিজৰ ঘৰ-দুৱাৰ, বাচন-বৰ্তন চাফ চিকুন কৰি ৰাখিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। ঘৰৰ পৰা দূৰত পায়খানা ঘৰ সাজিবলৈ যত্ন কৰিছিল। ল'ৰা ছোৱালীবোৰে গা ধুই পৰিষ্কাৰ হ'বলৈ শিকিছিল।

টাচি য়োদনে গাঁওবোৰত সজাগতা সভা পাতিবলৈ যাওঁতে ঘূৰি অহাৰ পৰত লামচাং অৰ্থাৎ গীত গাই বাটত আগবঢ়াবলৈ অহাৰ পৰত তেওঁলোকে কেৱল নিয়ম মানি জনজাতীয় মদৰ পাত্ৰত তিনি চুমুক মাৰি এৰি আহিছিল। কিন্তু মহিলাসকলক তেওঁলোকৰ নখত যে বিষ নাই সেই কথা বুজাবলৈকে সেইবাৰ টাচি য়োদনে তিনিটা পাত্ৰত ভৰা তেওঁলোকৰ পানীয় খাই আহিছিল।

টাচি য়োদনে মনুপা জনজাতিৰ লোচাং বুঢ়ীক তেওঁ যে বিষকন্যা নহয় সেই বিষয়ে বুজাবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। মনুপাসকলে লাওপানী তৈয়াৰ কৰোঁতে তাৰ সোৱাদ ভাল হ'বলৈ অকণমান বিষ দিয়াৰ নিয়ম আছে। কেতিয়াবা এই বিষৰ পৰিমাণ বেছি হ'লে তেনে লাওপানী খাই বিভিন্নজনৰ মৃত্যু হৈছিল। এই কথা বুজিব নোৱাৰি মানুহে মহিলাসকলৰ নখত বিষ থকা বুলি অন্ধবিশ্বাস কৰিছিল। লোচাং বুঢ়ীৰ স্বামী আৰু সন্তানৰ মৃত্যুৰ বাবেও লোচাং বুঢ়ীকে সকলোৱে দোষ দিছিল।

উপন্যাসখনত উল্লেখ কৰিছে যে, মনুপা লোকসকলে পৰিষ্কাৰ পৰিচন্ন হৈ নথকাৰ বাবেই বিভিন্ন বেমাৰ আজাৰ হয়। মানুহবিলাকে গা নোধোৱে, কাপোৰ কানি ধুই নিপিন্ধে, বাচন-বৰ্তন ধুই চাফা কৰি ভাত-পানী নাৰান্ধে, পায়খানা ঘৰ নাসাজি য'তে ত'তে পায়খানা কৰে। গতিকে এনে লেতেৰা পৰিৱেশত থকাৰ বাবেই তেওঁলোকৰ বহুতো বেমাৰ আজাৰ হয়। কিন্তু তেওঁলোকে অন্ধবিশ্বাস কৰে যে-বিষকন্যাৰ বাবে, ভূত-প্ৰেতে ধৰাৰ বাবে তেওঁলোকৰ তেনে বেমাৰ আজাৰ হয়। গতিকে এই ধৰণৰ অন্ধবিশ্বাস আঁতৰাবলৈ বিভিন্ন স্বাস্থ্য সজাগতা

সভা গাঁওবোৰত পাতিব লগা হৈছিল। উপন্যাসখনত এই বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে এনেদৰে-

“লেতেৰা হৈ থকাৰ বাবে আমাৰ মানুহবিলাকৰ নানা ধৰণৰ অসুখ হয়। অসুখ হ'লে আমি ভূত-প্ৰেতে ধৰিছে বুলি নানা ধৰণৰ পূজা কৰোঁ। কিন্তু নানা ধৰণৰ পূজা-পাটল কৰিও অসুখ ভাল নহয়। গতিকে আমাৰ মানুহবিলাক মৰি থাকে। বুঢ়া বয়স পোৱাৰ আগতেই মৰি থাকে। আচলতে কোনো ভূত-প্ৰেতৰ দ্বাৰা অসুখ-বিসুখ নহয়। আমি যদি চাফ চিকুন হৈ থাকোঁ আমাৰ বহুত বেমাৰ ভাল হ'ব।” (পৃ. ৮১)

পেমা খুবীৰ স্বামীৰ মৃত্যু হৈছিল যক্ষ্মা ৰোগত। কিন্তু বিষকন্যাৰ বিষৰ বাবে বেমাৰ হোৱা বুলি ডাক্টৰৰ ওচৰলৈয়ো নিয়া হোৱা নাছিল। তেজ বমি কৰি মানুহজনৰ অৱশেষত মৃত্যু হৈছিল। সেয়েহে সকলোৱে পেমা খুবীক বিষকন্যা বুলি সকলোৰে পৰা আঁতৰাই ৰাখিছিল। টাচি য়োদনে এই অন্ধবিশ্বাস দূৰ কৰিবলৈ গাঁৱৰ মানুহবোৰক বুজাইছিল যে খাদ্য বস্তু পৰিষ্কাৰকৈ নৰখাৰ বাবে, জলকীয়া, চূৰপি আদি পেটৰ বাবে অপকাৰী বস্তু অধিক খোৱাৰ বাবেহে পেটৰ বেমাৰ হয়। ইয়াৰ বাবে নিৰপৰাধী মহিলাসকলক দোষ জাপি দিয়াটো অন্যায়া। ইয়াৰ লগতে সমাজে সজাই থোৱা এনে বিষকন্যাৰ ঘৰত বা তাইৰ আগত খাদ্য খালে মানসিকভাৱে ভিত্তিগ্ৰস্ত হৈয়ো কেতিয়াবা বেমাৰত পৰা যায়। গতিকে বিষকন্যাৰ ধাৰণা একেবাৰে অমূলক। উপন্যাসখনত টাচি য়োদনৰ যুক্তিৰ বৰ্ণনা কৰিছে এনেদৰে-

“আচলতে মানুহজন যক্ষ্মা বেমাৰত ভুগিছিল যেনহে লাগে। বেমাৰৰ আৰম্ভণিতে হস্পিতাললৈ লৈ যোৱাহেঁতেন সি নিশ্চয় ভাল হ'লহেঁতেন। তাৰ বাবে পেমা খুবী দোষী নহয়। আজি কিন্তু মই তেওঁৰ হাতৰ ভাত খাইহে এৰিম। চোৱা যাওক মোৰো বেমাৰ হয়নে নহয়।” (পৃ. ৭৩)

এনেদৰে জনজাতীয় মহিলাসকলৰ জীৱনৰ স্বাস্থ্যৰ লগত জড়িত দিশসমূহ উপন্যাসখনত বৰ্ণনা কৰা হৈছে। জনজাতীয় মহিলাসকলে খেতিৰ বন গোচাবলৈ হাতৰ নখ দীঘল কৰি ৰাখিব লগা হৈছিল। এই নখৰ গুৰিত ধূলি বালি জমা হৈছিল। ফলত বিজানুৱে বাহ লৈছিল। গতিকে নিজৰ হাত নখ প্ৰতিদিনে চাফ চিকুন কৰি নাৰাখিলে বেমাৰ আজাৰ হোৱাটো স্বাভাৱিক। উপন্যাসখনত মহিলাসকলৰ এই অৱস্থাৰ বৰ্ণনা কৰিছে। সেয়েহে কেনেদৰে তেওঁলোকে

স্বাস্থ্য সজাগ হ'ব, সচেতন হ'ব সেই বিষয়ে কাহিনীসমূহৰ মাজেৰে, বিভিন্ন চৰিত্ৰৰ মাজেৰে স্পষ্ট ৰূপত বৰ্ণনা কৰিছে।

#### উপসংহাৰ :

“সাহিত্যত নাৰীৰ স্বাস্থ্য আৰু নাৰীৰ স্বাস্থ্য সজাগতাৰ প্ৰতিফলন (য়েছে দৰজে ঠংচিৰ *বিষকন্যাৰ দেশত* উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লেখৰে)” শীৰ্ষক অধ্যয়নৰপৰা দেখা যায় যে জমিথাং আৰু ব্ৰকেনথাং অঞ্চলৰ সমাজত মহিলাসকলক বিষকন্যা বুলি অপবাদ দিয়াৰ প্ৰথা প্ৰচলিত আছিল। সেই অপবাদৰ বাবেই বহু মহিলাই আজীৱন অপবাদৰ যন্ত্ৰনা ভুগিব লগা হ'ল। কালক্ৰমত এই অন্ধবিশ্বাস লাহে লাহে কমি আহিলেও কিছু লোকৰ মাজত প্ৰচলিত হৈ থাকিল। গৱেষণাপত্ৰখনৰ অধ্যয়নৰ পৰা তলত দিয়া সিদ্ধান্তসমূহ পোৱা গ'ল-

#### গ্ৰন্থপঞ্জী :

##### মূল গ্ৰন্থ :

ঠংচি,য়েছে দৰজে. *বিষকন্যাৰ দেশত*, জ্যোতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০০৬

##### সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

কটকী, প্ৰফুল্ল. *স্বৰাজ্যেত্তৰ অসমীয়া উপন্যাসৰ সমীক্ষা*. বীণা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, ১৯৭৯

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ. *অসমীয়া উপন্যাসৰ ভূমিকা*, বুক ডিপো, কলিকতা, ১৯৬৫

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ. *অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা*, বাণী প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ১৯৭৬

#### সিদ্ধান্ত :

(ক) পাংচেনপা আৰু মনপা মহিলাসকলক বিষকন্যা বুলি অপবাদ জাপি দিয়া হৈছিল আৰু সেয়েহে মহিলাসকলৰপৰা কোনো খাদ্য গ্ৰহণ নকৰিছিল। মহিলাসকলৰ দৃষ্টি পৰিলেও খাদ্যবস্তু বিযাক্ত হয় বুলি অন্ধবিশ্বাস আছিল। এই অন্ধবিশ্বাসৰ বাবে মহিলাসকল সাধাৰণ জীৱনত ব্যাঘাত হৈছিল।

(খ) মহিলাসকলে হাতেৰে চুলে খাদ্যবস্তু বিযাক্ত হৈ যোৱা বুলি বিশ্বাস কৰিছিল আৰু সেই খাদ্য খালে পুৰুষৰ মৃত্যু হয় বুলি বিশ্বাস কৰিছিল।

(গ) পাংচেনপা আৰু মনপা লোকসকলৰ মাজত পৰিষ্কাৰ-পৰিচ্ছন্নতাৰ অভাৱ আছিল, যাৰ বাবে বিভিন্ন বেমাৰ আজৰ হৈছিল। পাংচেনপা মহিলাই স্বাস্থ্য সজাগতামূলক বিভিন্ন কাৰ্যৰ জৰিয়তে স্বাস্থ্যৰ প্ৰতি সচেতন কৰি তুলিছিল। □

## কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য

সাৰাংশ :



ড° মানস জ্যোতি নিৰ্মলীয়া

‘কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰ’ এই অঞ্চল এসময়ত প্ৰাচীন কামৰূপ ৰাজ্যৰ স্বৰ্ণপীঠৰ অন্তৰ্গত আছিল। বিভিন্ন বংশৰ ৰজাসকলে এই ভূখণ্ডত শাসন কৰিছিল। বৰ্মন বংশৰ দিনত কামৰূপৰ শাসন কেন্দ্ৰ আছিল- প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ, পৰৱৰ্তী সময়ত শালস্তম্ভ আৰু ভৌমপাল বংশৰ দিনত হটকেশ্বৰপুৰ বা হাৰুপেশ্বৰ, দুৰ্জয়া, ডবাক আদি অঞ্চলেও ৰাজধানী স্থানান্তৰিত হয়। এককথাত, প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ বা প্ৰাচীন কামৰূপেই আছিল- হিন্দু সংস্কৃতি ৰক্ষাৰ ভঁড়াল আৰু তাৰ পৰাই পিচলৈ এটা সঁতি কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰলৈও আহিছিল। তদুপৰি প্ৰাচীন কামৰূপৰ ৰজাসকলে বিহাৰ, নেপাল আৰু দক্ষিণ ভাৰতৰ লগত যুদ্ধ, মিত্ৰতা আৰু বৈবাহিক সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিছিল। এইদৰেই বিভিন্ন স্থাপত্য-ভাস্কৰ্যবোৰৰ আগমন কামৰূপলৈ হৈছিল। কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰত বৰ্মন বংশ, শালস্তম্ভ, ভৌমপাল, পাল বংশৰ ৰজাসকলে বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল। কিৰাত ৰজাসকলেও সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ বিকাশৰ ক্ষেত্ৰত ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। হিন্দুৰ দেৱ-দেৱীক তেওঁলোকে আদৰি লৈছিল আৰু স্থানীয় দেৱ-দেৱীক হিন্দুৰ দেৱ-দেৱীৰ সৈতে মিলাই লৈছিল। কিৰাতমূলীয় ৰজাসকলৰ উদাৰ মানসিকতাৰ বাবে সাংস্কৃতিক সংমিশ্ৰণ হয় আৰু অনাৰ্য সংস্কৃতিৰ ওপৰত আৰ্যীকৰণ প্ৰক্ৰিয়া আৰম্ভ হয়। কছাৰী ৰাজ্যৰ ৰাজধানী ডিমাপুৰত থকালৈকে কছাৰী ৰাজ্যত বহুতো উন্নত স্থাপত্য ৰচিত হৈছিল। বৰ্তমান এই অঞ্চলত বহু স্থাপত্য ভগ্ন অৱস্থাতহে পোৱা গৈছে। সম্পূৰ্ণ আৰু ভগ্নৰূপত থকা প্ৰাচীন ঐতিহ্য দাবী কৰিব পৰা স্থাপত্যসমূহকহে এই আলোচনাৰ আওতালৈ অনা হৈছে।

বীজ শব্দ :

স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য, স্বৰ্ণপীঠ, কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰ, দুৰ্জয়া, কপিল-গংগিকা

০.০ অৱতৰণিকা :

অসমৰ প্ৰাচীন সভ্যতাৰ নিদৰ্শন দাঙি ধৰাত কপিলীপাৰে এক বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। অবিভক্ত নগাঁও অঞ্চলৰ মাজেৰে বৈ যোৱা প্ৰধান নদীখন হ’ল- কপিলী। উত্তৰ কাছাৰৰ পৰা উৎপত্তি হোৱা এই নদীখনে নগাঁও জিলাৰ দক্ষিণ আৰু দক্ষিণ-পশ্চিম অঞ্চল বিভিন্ন দিশৰ পৰা সমৃদ্ধ কৰি তুলিছে। কালিকা পুৰাণত গংগাৰ দৰে পবিত্ৰ এখন নদী ‘কপিল গংগিকা’ ৰ উল্লেখ আছে। বৰ্তমানৰ কপিলী নদীকে ৰাজমোহন নাথে ‘কপিল গংগিকা’ বুলি চিনাক্ত কৰিছে।<sup>১</sup> ইয়াৰ দুয়োপাৰে গঢ়ি উঠা সভ্যতাক ‘কপিলী সভ্যতা’ বুলি জনা যায়। কপিলীৰ উপৰিও এই অঞ্চলৰ আন এখন নদী হ’ল- যমুনা। যমুনামুখত এই নদীখনে কপিলীৰ লগত মিলি গৈছে। এসময়ত কছাৰী ৰজাই কপিলী-যমুনা অঞ্চলত দীৰ্ঘদিন ধৰি শাসন কৰিছিল। কছাৰীসকলে

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ  
নগাঁও বিশ্ববিদ্যালয় (অট’নমাচ)  
নগাঁও - ৭৮২০০১  
☎ ৭০৮৬৬৭৭৭৫৭  
✉ nirmaliamanash@gamil.com

ৰাজত্ব কৰাৰ বাবে এই অঞ্চলটো ‘কছাৰীপাৰ’ বুলিও জনা যায়। এই লেখাটোত ‘কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰ’ শব্দৰ দ্বাৰা অবিভক্ত নগাঁও অঞ্চল তথা স্বৰ্ণপীঠক বুজোৱা হৈছে। কপিলীপাৰ এসময়ত কামৰূপ ৰাজ্যৰ অন্তৰ্গত আছিল। প্ৰাচীন কামৰূপ ৰাজ্যৰ চাৰিখন পীঠ আছিল ক্ৰমে- বত্ৰপীঠ, কামপীঠ, স্বৰ্ণপীঠ আৰু সৌমাৰ পীঠ। কপিলীপাৰ তথা অবিভক্ত নগাঁও অঞ্চল এই স্বৰ্ণপীঠৰ অন্তৰ্গত। স্বৰ্ণপীঠৰ সীমা আছিল- ৰূপহী আৰু ভৈৰৱী তথা ভৰলু নদীৰ মাজ অংশ। প্ৰাচীন কামৰূপৰ সীমা অতি বিস্তৃত আছিল। এসময়ত নেপাল, ভূটান, ৰংপুৰ, কোচবিহাৰ আৰু সমগ্ৰ ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকা কামৰূপ ৰাজ্যৰ ভিতৰুৱা আছিল। ভাস্কৰ বৰ্মাৰ দিনত মধ্য বঙ্গ কামৰূপৰ অন্তৰ্গত আছিল। চীনা পৰিব্ৰাজক হিউয়েন চাঙেও সমতট্ অৰ্থাৎ মধ্যবঙ্গৰ পৰাই কামৰূপৰ পশ্চিম সীমা আৰম্ভ হোৱা বুলি কৈ গৈছে।<sup>১</sup> বুৰঞ্জীবিদ কনকলাল বৰুৱাৰ মতেও প্ৰাচীন ভাৰতৰ গৌতম বুদ্ধৰ সময়ৰ যোদ্ধা মহাজন পদতকৈ কামৰূপ ৰাজ্য বিস্তৃত আছিল। কামৰূপ ৰাজ্যৰ চাৰিওখন পীঠে সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ বিকাশত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি আহিছে। বিভিন্ন বংশৰ ৰজাসকলে এই ভূখণ্ডত শাসন কৰিছিল। বৰ্মন বংশৰ দিনত কামৰূপৰ শাসন কেন্দ্ৰ আছিল- প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ, পৰৱৰ্তী সময়ত শালস্তম্ভ আৰু ভৌমপাল বংশৰ দিনত হটকেশ্বৰপুৰ বা হাৰুপেশ্বৰ, দুৰ্জয়া, ডবাক আদি অঞ্চললৈও ৰাজধানী স্থানান্তৰিত হয়। এককথাত, প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ বা প্ৰাচীন কামৰূপেই আছিল- হিন্দু সংস্কৃতি ৰক্ষাৰ ভঁৰাল আৰু তাৰ পৰাই পিছলৈ এটা সুঁতি কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰলৈও আহিছিল।

শালস্তম্ভ বংশৰ পিছত কামৰূপত ভৌমপাল বংশই ৰাজত্ব কৰিছিল। এই বংশৰ এজন ৰজা ৰত্নপালে ‘দুৰ্জয়া’ নামৰ তেওঁৰ ৰাজ্যখন দুৰ্গৰে সজাই তুলিছিল আৰু বহুতো শিৱ-মন্দিৰ আৰু প্ৰাসাদেৰে ৰাজ্যখন জিলিকাই তুলিছিল বুলি ইন্দ্ৰপালৰ ভূমিদান লিপিত উল্লেখ আছে। ৰাজমোহন নাথৰ মতে, হোজাই-যোগীজান অঞ্চলেই প্ৰাচীন ‘দুৰ্জয়া’ আছিল। গুপ্ত সম্ৰাট সমুদ্ৰ গুপ্তৰ (চতুৰ্থ শতিকা) এলাহাবাদত পোৱা স্তম্ভলিপিত স্বৰ্ণপীঠৰ অন্তৰ্গত ডবাক ৰাজ্যৰ উল্লেখ আছে। এই স্তম্ভলিপিত কামৰূপ-নেপালৰ লগতে চুবুৰীয়া ৰাজ্য হিচাপে ডবকাৰ উল্লেখ আছে। এই ৰাজ্যৰ ৰজাসকলে গুপ্ত সম্ৰাটৰ প্ৰাধান্য মানি চলিছিল। এই সংযোগৰ বাবেই ভাৰতীয় হিন্দু সভ্যতা আৰু শিল্পৰীতিৰ

লগত স্বৰ্ণপীঠৰ চিনাকি হৈছিল। ভৌমপাল বংশৰ পিছত কামৰূপ ৰাজ্য বংগৰ পাল বংশৰ হাতলৈ যায়। তাৰ পিছত কামৰূপ ৰাজ্য দুৰ্বল হৈ পৰে আৰু সেই সময়ছোৱাতে কছাৰীপাৰ স্বাধীন হৈ উঠে। কছাৰীপাৰৰ কিৰাট ৰজাসকলেও স্বৰ্ণপীঠৰ সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ বিকাশত ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল। কপিলী যমুনা পাৰৰ মূৰ্তি ভাস্কৰ্যত গুপ্ত শিল্পৰীতিৰ পৰা আৰম্ভ কৰি বংগৰ সেন-পালবংশলৈকে ভাৰতীয় মূৰ্তি-ভাস্কৰ্যৰ ঐতিহ্য আছে। তদুপৰি প্ৰাচীন কামৰূপৰ ৰজাসকলে বিহাৰ, নেপাল আৰু দক্ষিণ ভাৰতৰ লগত যুদ্ধ, মিত্ৰতা আৰু বৈবাহিক সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিছিল। এইদৰেই বিভিন্ন স্থাপত্য-ভাস্কৰ্যবোৰৰ আগমন কামৰূপলৈ হৈছিল। বৰ্তমান কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰ অঞ্চলৰ বহু স্থাপত্য ভগ্ন ৰূপতহে পোৱা যায়। স্থাপত্যবোৰৰ ভগ্নাৱশেষ আৰু মূৰ্তি ভাস্কৰ্যৰ পয়োভৰলৈ চাই এইবোৰ মন্দিৰৰ প্ৰয়োজনত গঢ়া হৈছিল বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য শিল্প ৰচনাৰ মাধ্যম আছিল- শিল আৰু পোৰামাটি। ষষ্ঠ শতিকাৰ পৰা ত্ৰয়োদশ শতিকালৈকে এই চৰ্চা অব্যাহত আছিল। এই আলোচনাত কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰ অঞ্চলৰ প্ৰাচীন ঐতিহ্য বহন কৰিব পৰা স্থাপত্যসমূহৰ বিষয়ে এটি সমীক্ষাত্মক আলোচনা আগবঢ়োৱা হৈছে।

### ০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যঃ

কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য শীৰ্ষক বিষয়টোৰ উদ্দেশ্য হ’ল-

- ক) কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্যবোৰৰ বৰ্তমান স্থিতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।
- খ) এই স্থাপত্যবোৰৰ প্ৰাচীনত্ব উদঘাটন কৰা।
- গ) কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্যৰ অন্তৰালত জড়িত হৈ থকা ধৰ্মীয় মৰ্গবোৰ উদঘাটন কৰা।
- ঘ) স্থাপত্যবোৰৰ নিৰ্মাণ শৈলী সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

কপিলীপাৰ এসময়ত কামৰূপ ৰাজ্যৰ অন্তৰ্গত আছিল। প্ৰাচীন কামৰূপ ৰাজ্যৰ চাৰিখন পীঠ আছিল ক্ৰমে- বত্ৰপীঠ, কামপীঠ, স্বৰ্ণপীঠ আৰু সৌমাৰ পীঠ। কপিলীপাৰ তথা অবিভক্ত নগাঁও অঞ্চল এই স্বৰ্ণপীঠৰ অন্তৰ্গত। স্বৰ্ণপীঠৰ সীমা আছিল- ৰূপহী আৰু ভৈৰৱী তথা ভৰলু নদীৰ মাজ অংশ। প্ৰাচীন কামৰূপৰ সীমা অতি বিস্তৃত

আছিল। এসময়ত নেপাল, ভূটান, বংপুৰ, কোচবিহাৰ আৰু সমগ্ৰ ব্ৰহ্মপুত্ৰ উপত্যকা কামৰূপ ৰাজ্যৰ ভিতৰুৱা আছিল। ভাস্কৰ বৰ্মাৰ দিনত মধ্য বঙ্গ কামৰূপৰ অন্তৰ্গত আছিল। চীনা পৰিব্ৰাজক হিউৱেন চাঙেও সমতট্ অৰ্থাৎ মধ্যবঙ্গৰ পৰাই কামৰূপৰ পশ্চিম সীমা আৰম্ভ হোৱা বুলি কৈ গৈছে।<sup>১</sup> বুৰঞ্জীবিদ কনকলাল বৰুৱাৰ মতেও প্ৰাচীন ভাৰতৰ গৌতম বুদ্ধৰ সময়ৰ যোদ্ধা মহাজন পদতকৈ কামৰূপ ৰাজ্য বিস্তৃত আছিল। কামৰূপ ৰাজ্যৰ চাৰিওখন পীঠে সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ বিকাশত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি আহিছে। বিভিন্ন বংশৰ ৰজাসকলে এই ভূখণ্ডত শাসন কৰিছিল। বৰ্মন বংশৰ দিনত কামৰূপৰ শাসন কেন্দ্ৰ আছিল- প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ, পৰৱৰ্তী সময়ত শালস্তম্ভ আৰু ভৌমপাল বংশৰ দিনত হটকেশ্বৰপুৰ বা হৰাপেশ্বৰ, দুৰ্জয়া, ডবাক আদি অঞ্চললৈও ৰাজধানী স্থানান্তৰিত হয়। এককথাত, প্ৰাগজ্যোতিষপুৰ বা প্ৰাচীন কামৰূপেই আছিল- হিন্দু সংস্কৃতি ৰক্ষাৰ ভঁড়াল আৰু তাৰ পৰাই পিছলৈ এটা সুঁতি কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰলৈও আহিছিল।

শালস্তম্ভ বংশৰ পিছত কামৰূপত ভৌমপাল বংশই ৰাজত্ব কৰিছিল। এই বংশৰ এজন ৰজা ৰত্নপালে 'দুৰ্জয়া' নামৰ তেওঁৰ ৰাজ্যখন দুৰ্গৰে সজাই তুলিছিল আৰু বহুতো শিৱ-মন্দিৰ আৰু প্ৰাসাদেৰে ৰাজ্যখন জিলিকাই তুলিছিল বুলি ইন্দ্ৰপালৰ ভূমিদান লিপিত উল্লেখ আছে। ৰাজমোহন নাথৰ মতে, হোজাই-যোগীজান অঞ্চলেই প্ৰাচীন 'দুৰ্জয়া' আছিল। গুপ্ত সম্ৰাট সমুদ্ৰ গুপ্তৰ (চতুৰ্থ শতিকা) এলাহাবাদত পোৱা স্তম্ভলিপিত স্বৰ্ণপীঠৰ অন্তৰ্গত ডবাক ৰাজ্যৰ উল্লেখ আছে। এই স্তম্ভলিপিত কামৰূপ-নেপালৰ লগতে চুবুৰীয়া ৰাজ্য হিচাপে ডবকাৰ উল্লেখ আছে। এই ৰাজ্যৰ ৰজাসকলে গুপ্ত সম্ৰাটৰ প্ৰাধান্য মানি চলিছিল। এই সংযোগৰ বাবেই ভাৰতীয় হিন্দু সভ্যতা আৰু শিল্পৰীতিৰ লগত স্বৰ্ণপীঠৰ চিনাকি হৈছিল। ভৌমপাল বংশৰ পিছত কামৰূপ ৰাজ্য বংগৰ পাল বংশৰ হাতলৈ যায়। তাৰ পিছত কামৰূপ ৰাজ্য দুৰ্বল হৈ পৰে আৰু সেই সমছোৱাতে কছাৰীপাৰ স্বাধীন হৈ উঠে। কছাৰীপাৰৰ কিৰাট ৰজাসকলেও স্বৰ্ণপীঠৰ সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ বিকাশত ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল। কপিলী যমুনা পাৰৰ মূৰ্তি ভাস্কৰ্যত গুপ্ত শিল্পৰীতিৰ পৰা আৰম্ভ কৰি বংগৰ সেন-পালবংশলৈকে ভাৰতীয় মূৰ্তি-ভাস্কৰ্যৰ ঐতিহ্য আছে। তদুপৰি প্ৰাচীন কামৰূপৰ ৰজাসকলে বিহাৰ, নেপাল আৰু দক্ষিণ ভাৰতৰ লগত যুদ্ধ, মিত্ৰতা আৰু বৈবাহিক সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিছিল।

এইদৰেই বিভিন্ন স্থাপত্য-ভাস্কৰ্যবোৰৰ আগমন কামৰূপলৈ হৈছিল। বৰ্তমান কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰ অঞ্চলৰ বহু স্থাপত্য ভগ্ন ৰূপতহে পোৱা যায়। স্থাপত্যবোৰৰ ভগ্নাৱশেষ আৰু মূৰ্তি ভাস্কৰ্যৰ পয়োভৰলৈ চাই এইবোৰ মন্দিৰৰ প্ৰয়োজনত গঢ়া হৈছিল বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য শিল্প ৰচনাৰ মাধ্যম আছিল- শিল আৰু পোৰামাটি। ষষ্ঠ শতিকাৰ পৰা ত্ৰয়োদশ শতিকালৈকে এই চৰ্চা অব্যাহত আছিল। এই আলোচনাত কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰ অঞ্চলৰ প্ৰাচীন ঐতিহ্য বহন কৰিব পৰা স্থাপত্যসমূহৰ বিষয়ে এটি সমীক্ষাত্মক আলোচনা আগবঢ়োৱা হৈছে।

### ০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য শীৰ্ষক বিষয়টোৰ উদ্দেশ্য হ'ল-

- ক) কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্যবোৰৰ বৰ্তমান স্থিতি সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।
- খ) এই স্থাপত্যবোৰৰ প্ৰাচীনত্ব উদঘাটন কৰা।
- গ) কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্যৰ অন্তৰালত জড়িত হৈ থকা ধৰ্মীয় মাৰ্গবোৰ উদঘাটন কৰা।
- ঘ) স্থাপত্যবোৰৰ নিৰ্মাণ শৈলী সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।

### ০.২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব :

কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য শীৰ্ষক বিষয়টিৰ গুৰুত্ব আছে। বিষয়টোৰ অধ্যয়নে স্থাপত্যসমূহৰ সময় সীমা নিৰ্ধাৰণৰ ক্ষেত্ৰত সহায় কৰাৰ লগতে সমকালীন সামাজিক, ধৰ্মীয়, ৰাজনৈতিক দিশবোৰ উদঘাটনত সহায় কৰিব। স্থাপত্যবোৰৰ নিৰ্মাণৰ অন্তৰালত জড়িত থকা আৰ্য সভ্যতাৰ বাহক হিন্দু ধৰ্মৰ বিভিন্ন মাৰ্গবোৰৰ বিষয়ে জ্ঞান লাভ কৰিব পৰা যাব। স্থাপত্যবোৰত উল্লেখ থকা বিভিন্ন লিপি, মূৰ্তি ভাস্কৰ্যই স্থানীয় বৈশিষ্ট্য উদঘাটন কৰাত সহায় কৰিব। তদুপৰি, শিলাকুটিসকলৰ স্থাপত্য নিৰ্মাণ শৈলীৰ নৈপুণ্য সম্পৰ্কে জানিব পৰা যাব।

### ০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ বাবে 'তথ্য আহৰণ' আৰু 'তথ্য বিশ্লেষণ' দুই ধৰণৰ পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। তথ্য আহৰণৰ বাবে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়নৰ সহায় লোৱা হৈছে। তথ্য আহৰণৰ বাবে নগাঁও জিলাৰ বিভিন্ন অঞ্চললৈ গৈ স্থাপত্যসমূহ পৰিদৰ্শন কৰা হৈছে। তদুপৰি, ৰাজ্যিক সংগ্ৰহালয়লৈ গৈ নগাঁও জিলাৰ পৰা স্থাপত্যসমূহ দৰ্শন কৰা

হৈছে। বিষয় অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত বিশ্লেষণাত্মক, বৰ্ণনাত্মক আৰু ঐতিহাসিক পদ্ধতি সংগ্ৰহ কৰা হৈছে। সমল সংগ্ৰহৰ ক্ষেত্ৰত গৌণ উৎস হিচাপে বিভিন্ন গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধ-পাতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

#### ০.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ সীমিত। প্ৰাচীনত্ব দাবী কৰিব পৰা বৰ্তমান সম্পূৰ্ণ ৰূপত আৰু ভগ্নৰূপত উপলব্ধ স্থাপত্যসমূহৰ বিষয়েহে আলোচনা কৰা হৈছে। উল্লেখ্য যে বহু স্থাপত্যৰ সময় সীমা, স্থাপত্য নিৰ্মাণ কৰোঁতাৰ উল্লেখ পোৱা নাযায়। এই আলোচনাত তেনে স্থাপত্যসমূহকো বিশ্লেষণত অনা হৈছে।

#### ১.০ কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰৰ স্থাপত্য-ভাস্কৰ্য :

##### বৰগঙ্গাৰ দ্বাৰপালৰ মূৰ্তি :

খ্ৰীষ্টীয় ষষ্ঠ শতিকাত তেজপুৰৰ দ পৰ্বতীয়াত গুপ্ত সাম্ৰাজ্যই আত্মপ্ৰকাশ কৰাৰ সময়তে কপিলীপাৰৰ বৰগংগাত শিলত দ্বাৰপালৰ মূৰ্তি খোদিত কৰা হৈছিল। এই মূৰ্তিটোৰ কাষতে ৫৫৪ খ্ৰীষ্টাব্দৰ এখন শিলালিপি পোৱা যায়। এই শিলালিপিখন দ্বাৰপালৰ মূৰ্তিৰ সমসাময়িক বুলি ক'ব পাৰি। দ্বাৰপালৰ মূৰ্তিটোৰ কেশবিন্যাস আৰু নিৰ্মাণ শৈলীয়ে সেই সময়ৰ ধাৰণা দিয়ে। এই মূৰ্তিটোৰ ৰূপ নিৰ্মাণ অতি নিপুণ, নিৰ্মাণ কৌশল স্পষ্ট। দেহভঙ্গীৰ নিপুণ প্ৰকাশে ভাস্কৰ্য শিল্পীৰ দক্ষতাৰ চিনাকি দিয়ে। তদুপৰি ভৰি দুখনত ক্ষয়বৃদ্ধিৰ স্বাভাৱিকতা প্ৰকাশিত হৈছে।

##### হাওৰাঘাটৰ সমীপৱৰ্তী দেৱস্থানৰ প্ৰাচীন মন্দিৰৰ ভাস্কৰ্য :

হাওৰাঘাটৰ ওচৰত থকা দেৱস্থানৰ প্ৰাচীন মন্দিৰৰ দ্বাৰ শিৱপট্টীৰ ভাস্কৰ্য আৰু স্বতন্ত্ৰ কাৰ্তিক মূৰ্তিটোৱে অষ্টম শতিকাৰ গুপ্ত শিল্প ঐতিহ্যৰ স্বাক্ষৰ বহন কৰিছে। কাৰ্তিকৰ মূৰ্তিটোত ডৌলৰেখাই কাৰ্তিকৰ দেহত সৰলতা ফুটাই তুলিছে। ভৰিৰ গঠন নিখুঁত আৰু সৌষ্ঠৱপূৰ্ণ। সেইদৰে দ্বাৰ-শিৱপট্টীৰ ললাটস্থানত খোদিত উমা-মহেশ্বৰৰ চিত্ৰখন কাব্যিক। আৰ্যৰ ওখ কাৰ্তিকতকৈ ই আপেক্ষিকভাৱে চুটি চাপৰ। তদুপৰি ডাঙৰ মুখ, সৰু ভৰি আৰু ফুলি উঠা চকুৱে আঞ্চলিক জনগোষ্ঠীৰ আৱয়বিক বৈশিষ্ট্যও ফুটাই তুলিছে।

##### ডবকাৰ উমা-মহেশ্বৰ মূৰ্তি :

এই মূৰ্তিটো বৰ্তমান অসম ৰাজ্যিক সংগ্ৰহালয়ত সংৰক্ষিত হৈ আছে। হাওৰাঘাটৰ দেৱস্থানৰ মূৰ্তিখনৰ কাব্যিকতাৰ পৰিৱৰ্তে ৰাজ্যিক সংগ্ৰহালয়ত সংৰক্ষিত

ডবকাৰ উমা-মহেশ্বৰ মূৰ্তিটো চঞ্চল অনুৰাগেৰে ভৰপূৰ। এই মূৰ্তি নৱম-দশম শতিকাৰ বুলি ক'ব পাৰি। এই মূৰ্তিত নাৰী দেহৰ আকৰ্ষণীয় বহুসময় ৰূপক দেৱীত্ব প্ৰদান কৰি শিল্পীয়ে উমাৰ দেহ-ভংগীৰ মাজেৰে ফুটাই তুলিছে। ৰূপময়ী নাৰীক দেৱীৰ আসনত প্ৰতিষ্ঠা কৰাটোত তাত্ত্বিক সাধনাৰ প্ৰত্যক্ষ প্ৰভাৱ আছে। উমাই দীঘল নখেৰে শিৱৰ সোঁবাহুত ছাপ দিয়া আঁচোৰৰ মাজত কামনাৰ অভিব্যক্তি লক্ষ্য কৰা যায়। কঁকালৰ পৰা তললৈ বাঁওভৰিখনৰ নিখুঁত হোৱা নাই যদিও ওখ হনু, সৰু চকু আৰু তলৰ ওঁঠতকৈ ঈষৎ ডাঙৰ ওঁঠে আঞ্চলিক মানুহৰ বৈশিষ্ট্য প্ৰতিফলিত হৈছে। নিৰ্মাণ গাঁথনি আৰু খালী ঠাইৰ মাজত সংহতি ৰক্ষিত হোৱা নাই। শিল্পীসকলে চানেকিবোৰতহে বিশেষ মনোযোগ দিছিল।

##### যোগীজানৰ ৰাজবাৰী আৰু বহাৰ আৰক্ষী চকীৰ উমা-মহেশ্বৰ মূৰ্তি :

যোগীজানৰ ৰাজবাৰী আৰু বহাৰ আৰক্ষী চকীৰ শিৱমন্দিৰত পোৱা উমা-মহেশ্বৰৰ মূৰ্তি দুখন একে। এই দুয়োখন মূৰ্তিৰে নিৰ্মাণ শৈলী নিখুঁত। এই দুয়োটা মূৰ্তিৰ আসনভঙ্গীত গতি আছে। শিৱৰ ত্ৰিশূলৰ ব্যতিক্ৰম উপস্থাপনে চিত্ৰগত ভাব ফুটাই তুলিছে। এই ব্যতিক্ৰমী উপস্থাপন গুপ্তযুগৰ অজস্ৰ চিত্ৰৰ ঐতিহ্য। ব্যতিক্ৰম বাবেই উমাৰ বাঁওহাতৰ দাপোণখনৰ লগত ত্ৰিশূলপাত সমতালত নিবদ্ধ কৰা হৈছে আৰু নিৰ্মাণ গাঁথনি সংহতপূৰ্ণ কৰি তোলা হৈছে। শিৱৰ মূৰ্তিটোৰ কঁকাল অংশৰ কৃশভাব আৰু দীঘল চানেকিৰ গঠন পূব ভাৰতীয় পাল শৈলীৰ পৰা অহা হ'ব পাৰে। সেইদৰে মূৰ্তিৰ দেহকাণ্ডৰ দুয়োফালে খোলনি দি পূৰ্ণভাস্কৰ্য কটাৰ প্ৰৱণতাও দশম শতিকাৰ পিছৰ। সেই দিশৰ পৰা মূৰ্তিখন একাদশ শতিকাৰ বুলি ভবাৰ থল আছে। জাগীৰ পৰা সাত-আঠ কিলোমিটাৰ ভিতৰত পশ্চিমফালে বুঢ়া মায়ং, কাছশিলা পাহাৰ আৰু গণেশ পাহাৰতো এখনকৈ উমা-মহেশ্বৰ মূৰ্তি পোৱা যায়। বুঢ়া মায়ং আৰু গণেশ পাহাৰৰ দুয়োখন মূৰ্তিয়েই অলংকৃত আৰু আড়ম্বৰপূৰ্ণ। এই দুয়োটা মূৰ্তিয়েই শিল্পীৰ চৌখিন ভাবৰ ধাৰণা দিয়ে।

##### বহাৰ খাইগড় গাঁৱৰ সূৰ্যমূৰ্তি :

এই মূৰ্তিটো অষ্টম শতিকাৰ। এই মূৰ্তিটোৰ দেহৰ গঠন আটিল আৰু মুখাৱয়ব অভিব্যক্তিসম্পন্ন। সূৰ্য মূৰ্তিটোৰ ডৌলৰেখাই আৰু ওঁঠে সূৰ্যদেৱতাৰ সৰলতা ফুটাই তুলিছে।

## ডবকাৰ সূৰ্যমূৰ্তি :

ডবকাৰ সূৰ্য মূৰ্তিটোৱে আৰ্য পুৰুষৰ দেহৰ সৌন্দৰ্যৰ ইঙ্গিত বহন কৰে। ইয়াত উত্তৰ-ভাৰতীয় সাজসজ্জা দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই মূৰ্তিটোত স্থানীয় প্ৰভাৱ দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই সম্পৰ্কে নৰেণ কলিতাই তেওঁৰ ‘কপিলীপাৰ কছাৰীপাৰ’ গ্ৰন্থত কৈছে- “মূৰ্তিটোত কোনো স্থানীয় ঐতিহ্য নথকালৈ চাই এইটো কোনো আচহুৱা (Ex-otic) উৎসৰ পৰা অহা বুলি ভাবিব পাৰি।” পুৰুষৰূপৰ সুন্দৰ প্ৰকাশ সংকুচিত কঁকাল আৰু বুকুত প্ৰস্ফুটিত হৈছে। মূৰ্তিটোৰ দুয়োকাষে উৰণীয়া পতাকা আৰু জ্যোতি শিখা অংকন কৰা হৈছে। ইয়াৰ পাদদেশতো বিভিন্ন ভাস্কৰ্য দেখিবলৈ পোৱা যায়। এই ভাস্কৰ্যবোৰে মূৰ্তিটোক গতিশীল কৰি তুলিছে। মূৰ্তিখনৰ সোঁফালে অঙ্গৰা আৰু বাঁওফালৰ বাণীৰ (ৰাজ্জীৰ) চোঁৱৰ দুডালৰ নিৰ্মাণ বিপৰীতধৰ্মী হৈছে। মূৰ্তিটোৰ তলত উষা আৰু প্ৰত্যাৰ সংস্থাপনো কৰিছে। মূৰ্তিটোৰ তলৰ অংশৰ মাজভাগত এটা চকাৰ প্ৰতীক আৰু সাতটা ঘোঁৰাৰ ৰথৰ ব্যঞ্জন ফুটাই তোলা হৈছে, যেন সূৰ্যই ৰথত আকাশত অবিৰামভাৱে ভ্ৰমণ কৰি আছে।

## যোগীজানৰ শংখাদেৱী মন্দিৰ :

এই মন্দিৰৰ দুৱাৰ শাখাত তিনিটা থিয় হৈ থকা মুখাৱয়ব দেখিবলৈ পোৱা যায়। প্ৰতিটো দুৱাৰ শাখাৰ তলত একোটা খোটালাৰ মাজত এটাকৈ মূৰ্তি খোদিত কৰা হৈছে। দুৱাৰ শাখাৰ সোঁফালে থকা পূজাৰিনী মূৰ্তিটোত ত্ৰিপাৰ্শ্ব ৰূপ খোদিত কৰা হৈছে। খোজত গতিৰ সঞ্চাৰ হৈছে যাৰ বাবে মূৰ্তিটো গতিশীল হৈ পৰিছে। মাজৰ মূৰ্তিটোৱে দুৱাৰীৰ নিৰ্দেশ কৰিছে আৰু বাঁওফালৰ মূৰ্তিটোৱে কাষলৈ গতি কৰি থকা দেখুৱাইছে। তিনিওটা মূৰ্তিৰে আঁঠুৰ তলৰ অংশ খুব নিখুঁতভাৱে প্ৰকাশিত হৈছে। শংখাদেৱীৰ একেখন দুৱাৰতে খোদিত যমুনাদেৱীৰ ৰূপনিৰ্মাণত সাৰ্থকতাৰ অভাৱ দেখা যায়। যমুনা আৰু যমুনাৰ ওপৰৰফালে থকা নাগকন্যা দুগৰাকীৰ মুখৰ অৱয়ব বৰ্গাকৃতিৰ হ’লেও আটাইকেইটা মূৰ্তিৰ নিৰ্মাণ শৈলী তথা দেহৰ অৱয়বত গধুৰ ভাব দেখিবলৈ পোৱা যায়। গধুৰ হাত আৰু বুকুৰ গঠনত স্থানীয় প্ৰভাৱ পৰা বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। এই নিৰ্মাণ শৈলীত প্ৰকাশিত বৈশিষ্ট্যৰ আধাৰত শংখাদেৱী মন্দিৰৰ ভাস্কৰ্য হাওৰাঘাটৰ দেৱস্থানৰ অষ্টম শতিকাৰ ভাস্কৰ্য আৰু ডবকাৰ নৱম শতিকাৰ উমা-মহেশ্বৰ মূৰ্তিৰ মাজৰ সময়ছোৱা বুলি ধাৰণা কৰিব পাৰি।

## ৰাজবাৰীৰ ত্ৰিপুৰা-ভৈৰৱী মূৰ্তি :

ডবকাৰ সূৰ্য মূৰ্তিৰ দৰে এই মূৰ্তিৰ ৰূপ নিৰ্মাণো কোনো আচহুৱা উৎসৰ হ’ব পাৰে। বৰ্তমান ৰাজবাৰীত পোৱা এই মূৰ্তিটো ৰাজ্যিক সংগ্ৰহালয়ত আছে। মূৰ্তিটোৰ চেলাউৰি, চকু, ডিঙিৰ হাৰ সুন্দৰ ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে। ডিম্বাকৃতিৰ এখন ফলকত এই মূৰ্তিটো খোদিত কৰা হৈছে। ফলকখনৰ চাৰিওফালে ভৈৰৱ-ভৈৰৱীৰ মূৰ্তিবোৰ সংস্থাপন কৰা হৈছে। ডিম্বাকৃতি ফলকখনৰ দৰে মূৰ্তিবোৰকো ডিম্বাকৃতিৰে সজোৱা হৈছে। এই আৰ্হিৰ গাঁথনি অতি প্ৰাচীন। অজন্তা (দশম শতিকাৰ বোধিসত্ত্ব) আৰু পাল-চিত্ৰকলাতো এই ৰীতি আছিল।\*

## কাৱৈমাৰিৰ বিষুঃমূৰ্তি :

প্ৰাচীন কামৰূপত দ্বাদশ শতিকাৰ ভিতৰত বিষুঃমূৰ্তিসমূহ নতুন ৰূপেৰে সজ্জিত হৈ প্ৰকাশিত হয়। ইয়াৰ আগেয়েও কামৰূপত বিষুঃমূৰ্তি পোৱা গৈছিল। অষ্টম-নৱম শতিকাৰ বিষুঃমূৰ্তিও পোৱা গৈছিল। এই শতিকাৰ বিষুঃমূৰ্তিৰ শৈলীগত বৈশিষ্ট্য আছিল। এই সময়ৰ মূৰ্তিত বাহন দেখুওৱা নহয়, পৰিবাৰ দেৱ-দেৱী দেখুওৱা হয়। এই সময়ৰ মূৰ্তিবোৰৰ আৰ্হি আছিল চকু আধামেলা, জোঙা নাক, দীঘল আকৃতিৰ নখ। পৰৱৰ্তী শতিকাৰোৰত এই বিষুঃমূৰ্তিয়ে বিভিন্ন অলংকাৰ ধাৰণ কৰিলে। কাৱৈমাৰিৰ বিষুঃমূৰ্তিত বংগৰ শিল্পৰীতিৰ সৈতে সাদৃশ্য পোৱা যায়। এই মূৰ্তিখনত বহু দেৱ-দেৱীৰ ৰূপ নিৰ্মাণ কৰা হৈছে। কাৱৈমাৰিত পোৱা আন এটা বিষুঃ মূৰ্তিৰ ফুলি উঠা চকু, চকুল মুখ, থুতৰিৰ ডৌল আৰু বহল কঁপালে সমকালীন আঞ্চলিক বৈশিষ্ট্যৰ ইঙ্গিত দিছে। মূৰ্তিটোৰ মূৰত চুলি দেখা নাযায়। চুলি কাটি পেলোৱা ব চুটি চুটিকৈ কটাৰ ৰীতি তিব্বত-বৰ্মী মানুহৰ মাজত আছে। কালিকা পুৰাণতো ‘অকাৰণ মুণ্ডিতমস্তক’ শিৱগণৰ উল্লেখ আছে।

## বকুলগুৰিৰ ৰূপপট্টিকা :

এই ফলিখনত শিৱ পূজা, ময়ূৰ আৰু চিকাৰীৰ দৃশ্যৰ ব্যঞ্জনাত্মক ৰূপৰ প্ৰতিফলন দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। এই পট্টিকাখনৰ কোঠা বিভাজন গুৰুত্বপূৰ্ণ। মাজৰ কোঠালিত থকা ময়ূৰজনীৰ ফানকোছা শিল্পীগৰাকীয়ে কৌশলপূৰ্ণভাৱে চিকাৰীজনৰ সন্মুখত থকা স্তম্ভটোৰলৈকে লৈ গৈ স্তম্ভটোৰ ৰেখাডাল ভাঙি দিছে। এই কাৰ্যই ৰূপপট্টিকাখন সজীৱ কৰি তুলিছে।

### যোগীযানৰ ননাথৰ থান :

এই স্থান হোজাইৰ পৰা সাত মাইল দূৰত অৱস্থিত। খনন কাৰ্যৰ দ্বাৰা ইয়াত সাতটা শিৱলিংগ উদ্ধাৰ হৈছে। প্ৰতিটো বিগ্ৰহৰ চাৰিওফালে থকা ইটাৰ পৰা পকা দেৱালখনৰ ভগ্নাৱশেষ পোৱা গৈছে। এই বিগ্ৰহবোৰ ক'লা-বগা শিলেৰে নিৰ্মিত আৰু এইবোৰক অক্ষত অৱস্থাত উদ্ধাৰ কৰা হৈছে।

### চাপানলা :

নগাঁও জিলাৰ চলচলি মৌজাৰ চাপানলা পৰ্বতত শিলৰ মন্দিৰ আৰু প্ৰাচীন দুৰ্গৰ ধ্বংসাৱশেষ পোৱা গৈছে। মহাভাৰতৰ এক কাহিনী অনুসৰি চম্পক ৰাজ্যৰ ৰজা হংসধ্বজে বৰ্তমান নগাঁৱৰ চাপানলাৰ চম্পাৱতীত ৰাজত্ব কৰিছিল।<sup>১৬</sup> তেওঁৰ পুত্ৰ সুৰথ আৰু সুধনাই অৰ্জুনৰ অশ্বমেধ যজ্ঞৰ ঘোঁৰা বন্দী কৰি ৰখাত অৰ্জুনৰ হাতত দুয়োৰে মৃত্যু হয়। মাক প্ৰভাৱতীয়ে পুত্ৰ দুজনৰ শোক সহ্য কৰিব নোৱাৰি মৃত্যুৱৰণ কৰে। ৰাণীক পাবলৈ হংসধ্বজে শিৱক আৰাধনা কৰে। তেতিয়া শিৱই ৰাণীৰ চকুলোৰ পৰা এটা জলাধাৰ সৃষ্টি কৰি ৰজাই তাত স্নান কৰিলে প্ৰভাৱতীক পাব বুলি বৰ দিছিল। তেতিয়াৰ পৰা ৰাজ্যখনৰ নাম অনুসৰি জলাধাৰৰ নামো চম্পাৱতী হয়। বৰ্তমান এই স্থানত প্ৰাচীন মন্দিৰৰ ধ্বংসাৱশেষ পোৱা যায় আৰু বহুতো পুৰণি শিলৰ ভাস্কৰ্য পোৱা যায়।

### গোসাইজুৰি :

ডবকাৰ পৰা তিনিমাইল দূৰৰ গোসাইজুৰিত আঠটা টিপ বা হাফলু আছিল। খনন কাৰ্যত চাৰিফুট ওখ এটি বিষুংমূৰ্তি পোৱা গৈছিল। মূৰ্তিটোৰ দুয়োফালে লক্ষ্মী আৰু সৰস্বতীৰ ভাস্কৰ্য। বিষুং মূৰ্তিটোৰ শিৰত মুকুট, ডিঙিত বনমালা, হাৰ আদি দেখিবলৈ পোৱা যায়। ইয়াত ইটা আৰু শিলৰ মন্দিৰৰ ভগ্নাৱশেষো পোৱা যায়।

### আকাশী গংগা :

ডবকাৰ পৰা কিছু নিলগৰ হাবিৰ মাজত দুটা শিলত কটা শিৱমন্দিৰৰ ধ্বংসাৱশেষ পোৱা গৈছে। ইয়াৰ কাষতে আকাশী গংগা নামৰ জলপ্ৰপাতটো আছে। ইয়াত চালুক্য ৰীতিৰ বহুতো প্ৰত্নতাত্ত্বিক ভগ্নাৱশেষ পোৱা গৈছে। তদুপৰি মন্দিৰৰ খোদিত একোটা অংশত শিৱৰ ধ্যান মূৰ্তি, গণ, নৰ্তকী, নৃত্যৰত গণেশ, মন্দিৰৰ সৰু সৰু চিত্ৰও পোৱা গৈছে। গাই, বলদৰ মূৰ্তি, শিৱলিংগ আদিও সিঁচৰিত হৈ

আছে। এইবোৰৰ পৰা ইয়াত দুটি শিৱ-মন্দিৰ আছিল বুলি অনুমান কৰা হৈছে।

### গছতলৰ ভাস্কৰ্য :

ডবকাৰ পৰা দুইমাইল আঁতৰৰ গছতলতো দুটি গ্ৰেনাইট শিলৰ শিৱ মণ্ডপ আছিল বুলি অনুমান কৰা হয়। ইয়াত পোৱা ধ্বংসাৱশেষবোৰ দশম-একাদশ শতিকামানৰ বুলি অনুমান হয়।<sup>১৭</sup> ইয়াত অন্ততঃ চাৰিখন দুৱাৰৰ সৈতে গৰ্ভগৃহ আৰু পাৰ্শ্বত খোদিত ছবিবোৰ হৈছে- গণেশৰ মূৰ্তি, পূজকসকলৰ মূৰ্তি, সোঁ হাতত জপমালা আৰু বাঁওহাতত ত্ৰিশূল লৈ থকা শিৱৰ মূৰ্তি পানীৰ পাত্ৰ, হাতী, ফুল, এজোপা গঠৰ সমস্ত পাত, প্ৰাণী, মেৰ খাই থকা সৰ্প আৰু অমলকৰ ওপৰত থকা পাত্ৰ ইয়াত পোৱা গৈছে। এই সকলোবিলাক আহিলাই দশম-একাদশ শতিকাৰ উন্নত স্থাপত্যৰ আভাস দিয়ে।

### মহাদেওশাল :

নগাঁও চহৰৰ পৰা ১৯ মাইল দূৰত মহাদেওশাল নামৰ এখনি গাঁও আছে। ইয়াত স্থাপত্যৰ সাঁচ থকা কিছুমান শিল পোৱা যায়। ইয়াত এটি শিলৰ নিৰ্মিত শিৱ মন্দিৰ আছিল বুলি ধাৰণা কৰা হয়। ধনু-কাঁড় লোৱা এক দ্বাৰপাল, এজনী পূজাৰিণী, এজনী নটী আৰু কেইবাশাৰীও মূৰ্তিৰ দুৱাৰৰ চৌকাঠ এডাল গাঁৱৰ নামঘৰত ৰক্ষিত হৈ আছে। গাঁৱৰ লোকসকলে মূলতঃ জয়ন্তীয়া ৰজাৰ অধীনত তাত বসবাস কৰা জয়ন্তীয়া লোক বুলি কয়। মহাদেওশাল গাঁৱৰ পৰা ডেৰমাইলমান দূৰত জোঙাল গড়, প্ৰবাদ অনুসৰি আৰিমন্তৰ পুত্ৰ জোঙাল বলহ ।

### বসুম্ভৰী পৰ্বত :

কথিত আছে বসুম্ভৰী থান জয়ন্তীয়া ৰজাই প্ৰতিষ্ঠা কৰাইছিল। বৰপানী-কপিলীৰ সঙ্গমৰ পৰা ডেৰমাইল দূৰত বসুম্ভৰী পৰ্বত অৱস্থিত। বৰ্তমান ৰহা ৰাজহ চক্ৰৰ অন্তৰ্গত চাপৰমুখৰ পৰা প্ৰায় সাত কিল'মিটাৰ নিলগত বৰপানী নদীৰ পাৰত এই পৰ্বত অৱস্থিত। বৰ্তমান এই পৰ্বত বসুম্ভৰী থান নামেৰে জনা যায়। এই পৰ্বতৰ দুটা শিলত তিনি আৰু চাৰে পাঁচফুট ওখ দুটি গণেশ আৰু আন এটি শিলত বসুম্ভৰী নামে জগদ্ধাত্ৰী দেৱীৰ চতুৰ্ভুজ মূৰ্তি খোদিত আছে। এই পৰ্বতত হৰ-গৌৰীৰ শিলামূৰ্তিৰ লগতে প্ৰকাণ্ড শিলৰ যোনী পীঠো পোৱা যায়।

### আমতলা :

মণিপুৰীসকল কাছাৰৰ পৰা আহি হোজাইত পতা গাঁওখনেই হ'ল- আমতলা। ইয়াত কেইবাটাও শিৱমন্দিৰৰ ভগ্নাৱশেষ আছে বুলি মহেশ্বৰ নেওগে কৈছে। ইয়াত নৰ্তক, দ্বাৰপাল আৰু পূজাৰিণীৰ মূৰ্তি থকা শিল এচটা পোৱা যায়। ২০১৩ চনত অসমৰ পূৰ্বাতাত্ত্বিক সঞ্চালকালয়ে আমতলাত ইটাৰে বনোৱা মন্দিৰৰ ভেটি পাইছিল।

উল্লিখিত স্থাপত্যসমূহৰ উপৰিও প্ৰত্নতাত্ত্বিকভাৱে উল্লেখযোগ্য বহু শিলালিপি, তাম্ৰলিপি এই অঞ্চলত পোৱা যায়। সেইবোৰ ক্ৰমে- মহাভূতি বৰ্মাৰ বৰগঙ্গা শিলালিপি (৬ষ্ঠ শতিকা), মহাৰাজাধিৰাজ শ্ৰী জীৱৰৰ ৰাজকীয় আঙুঠি লিপি (কৰৈয়নী, ৮ম শতিকা), হৰ্জৰ বৰ্মাৰ হায়ুংথল তাম্ৰলিপি (৯ম শতিকা), বনমাল বৰ্মাৰ দীঘলী গাঁও তাম্ৰলিপি (কলিয়াবৰ, ৯ম শতিকা), তৃতীয় বলবৰ্মাৰ উত্তৰ বৰবিল শিলালিপি (হাওৰাঘাট, ৯-১০ম শতিকা), তৃতীয় বলবৰ্মাৰ নগাঁও তাম্ৰলিপি (৯-১০ম শতিকা), ইন্দ্ৰপালৰ এৰাদীঘপানী তাম্ৰলিপি (হাওৰাঘাট ১১ শতিকা), গোপাল বৰ্মাদেৱৰ গছতল তাম্ৰলিপি (ডবকা ১১ শতিকা), ধৰ্মপাল খনামুখ তাম্ৰলিপি (মৰিগাঁও, ১২ শতিকা), গছতল স্তম্ভলিপি (ডবকা, ১৪শতিকা), মহামাণিক্য প্ৰদত্ত লক্ষা শিলালিপি (১৪ শতিকা), চামধৰা গড়ৰ ৰণজয়ৰ আৰু

ভাণ্ডাৰী গোহাঁইৰ গড় নিৰ্মাণৰ শিলালিপি (১৭ শতিকা), কলিয়াবৰৰ কামাখ্যাৰ শিলালিপি (১৮ শতিকা)।

### উপসংহাৰ :

আলোচনাৰ অন্তত ক'ব পাৰি যে প্ৰাচীন কামৰূপৰ স্বৰ্ণপীঠৰ অন্তৰ্গত কপিলীপাৰ-কছাৰীপাৰ সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰত আগবঢ়া আছিল। কছাৰীপাৰৰ সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰত বৰ্মন বংশ, শালস্তম্ভ, ভৌমপাল, পাল বংশৰ ৰজাসকলে বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত কিৰাত ৰজাসকলেও সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ বিকাশত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছিল। কৈৰাতিক সংস্কৃতিৰ হ'লেও তেওঁলোকে আৰ্য ধৰ্মত বিশেষ গুৰুত্ব দিছিল। হিন্দুৰ শিৱ, বিষ্ণু আদি দেৱতাক তেওঁলোকে আদৰি লৈছিল আৰু স্থানীয় লোকৰ দেৱ-দেৱীৰ পূজা হিন্দুৰ শিৱ, বিষ্ণু, উমা আদি দেৱ-দেৱীৰ লগত মিলি গৈছিল। এক কথাত ক'ব পাৰি কিৰাতমূলীয় ৰজাসকলৰ উদাৰ মানসিকতাৰ বাবে সাংস্কৃতিক সংমিশ্ৰণ আৰম্ভ হয় আৰু অনাৰ্য সংস্কৃতিৰ ওপৰত আৰ্যীকৰণ আৰম্ভ হয়। পৰৱৰ্তী সময়ত কামাখ্যাকেন্দ্ৰিক কামৰূপৰ শিল্প চৰ্চা কেন্দ্ৰ হাৰপেশ্বৰ হৈ দুৰ্জয়ালৈ আহে আৰু বহু হাজাৰ বছৰীয়া কপিলী-কছাৰীপাৰৰ সভ্যতাত শিৱ-শক্তি-বিষ্ণু আদি মাৰ্গীয় ধাৰণাই বিকাশ লাভ কৰে। এই ধাৰণাটোকে বাস্তৱকণা তথা স্থাপত্য-ভাস্কৰ্যৰ মাধ্যমেৰে শিলাকুটিসকলে আগবঢ়াই নিয়ে। □

### প্ৰসঙ্গ সূত্ৰ :

- ১। ড° নৰেন কলিতা, *কপিলীপাৰ কছাৰীপাৰ*, পৃ. ৯
- ২। দীপক কুমাৰ বৰা, *অসমীয়া কথা সাহিত্য*, পৃ. ৩৬
- ৩। ড° নৰেন কলিতা, *কপিলীপাৰ কছাৰীপাৰ*, পৃ. ৪৩
- ৪। মহেশ্বৰ নেওগ (সম্পা.) *পৰিত্ৰ অসম*, পৃ. ১৫৫
- ৫। দীপক কুমাৰ বৰা, *অসমীয়া কথা সাহিত্য*, পৃ. ৩৮
- ৬। মহেশ্বৰ নেওগ (সম্পা.) *পূৰ্বোলিখিত*, পৃ. ১৫৬

### সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

কলিতা, নৰেন. (১৯৮৬). *কপিলীপাৰ কছাৰীপাৰ* (প্ৰথম প্ৰকাশ). গীতপদ.  
নেওগ, মহেশ্বৰ. (সম্পা.). (২০০৮). *পৰিত্ৰ অসম* (প্ৰথম প্ৰকাশ). অসম সাহিত্য সভা.  
বৰা, দীপক কুমাৰ. (২০১৪). *অসমীয়া কথা সাহিত্য* (প্ৰথম প্ৰকাশ). আলিবাট

## বিশ্বায়ন আৰু অসমৰ থলুৱা সংস্কৃতিৰ বাণিজ্যিকীকৰণ

সাৰাংশ :



ড° মালবিকা বাগলাৰী

বিশ্বব্যাপী অৰ্থনৈতিক ব্যৱস্থা সমূহক এক নিয়মেৰে অন্তৰ্ভুক্ত কৰাকে বিশ্বায়ন বোলা হয়। ইয়াৰ জৰিয়তে বিশ্বব্যাপী চৰকাৰ সমূহৰ, সংস্থা সমূহৰ আৰু জনসাধাৰণৰ মাজত যোগাযোগ আৰু একত্ৰীকৰণ কৰা হয়। ইয়াৰ ফলত প্ৰযুক্তিৰ অগ্ৰগতি আৰু বাণিজ্যিক উদাৰীকৰণ হৈছে। বিশ্বায়ণৰ মূল সুবিধাটোৱেই হৈছে মুক্ত অৰ্থনীতি আৰু সাংস্কৃতিক একীভূতকৰণ। আমাৰ আলোচনা পত্ৰিকাৰ গোলকীকৰণ বা বিশ্বায়ণৰ প্ৰভাৱত অসমৰ থলুৱা সংস্কৃতিৰ বাণিজ্যিকৰণ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে।

অৱতৰনিকা :

একবিংশ শতিকাৰ এক বহু চৰ্চিত বিষয় বিশ্বায়ন বা গোলকীকৰণ। সময়ৰ পৰিবৰ্তনে মানুহৰ ধ্যান ধাৰণাক ৰুচিবোধক পৰিবৰ্তন কৰাৰ ফলতেই গোলকীকৰণৰ ধাৰণা সৃষ্টি হোৱা বুলি কব লাগিব। বৰ্তমান সমগ্ৰ বিশ্বই গোলকীকৰণৰ প্ৰাসত পৰিছে। বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তি বিদ্যাই যোগাযোগৰ মাধ্যম সহজ কৰি তোলাৰ লগতে মুক্ত অৰ্থনীতিতো বিশেষ অৰিহণা যোগাই আহিছে। ইয়াৰ সৈতে জড়িত হৈ পৰিল বাণিজ্যিকীকৰণ। ইংৰাজী Globalization শব্দৰ অসমীয়া প্ৰতিশব্দ হ'ল বিশ্বায়ন বা গোলকীকৰণ। বিশ্বক এক কৰি গঢ়ি তোলাৰ মানসিকতাৰে এক সাৰ্বজনীন উমৈহতীয়া সংস্কৃতি গঢ় দিয়াৰ চেষ্টা কৰা হ'ল। ফলত Global village ৰ ধাৰণাৰ জন্ম হ'ল। নকলেও হব যে সাৰ্বজনীন উমৈহতীয়া সংস্কৃতিৰ সৃষ্টি কৰিবলৈ যাওতে থলুৱা সংস্কৃতিৰ বিপৰ্যয় হৈছে। বহুতৰ মতে বিশ্বায়ন মানেই আধুনিকতাৰে প্ৰতি আকৰ্ষণ, বিশ্বায়ন মানেই থলুৱা কৃষ্টিৰ বিপৰীতমুখীতা। বিশ্বায়নে মানুহক ঐতিহ্য, পৰম্পৰাৰ প্ৰতি অৱহেলা, অনাদাৰ কৰিবলৈ শিকাইছে। তেনেদৰে বিশ্বায়ন মানেই সুখ-স্বচ্ছন্দ্যৰে পূৰ্ণ জীৱন। বিশ্বায়ন মানেই ভোগবাদী সমাজ। এক সাধাৰণ অভিযোগ যে ভাৰতীয় ঐতিহ্য পৰম্পৰা সাতামপুৰুষীয়া অসমীয়া সংস্কৃতি সময়ৰ সোতত হেৰাই যাবলৈ ধৰিছে।

সময় পৰিবৰ্তনশীল। সময়ে সকলোকে পৰিবৰ্তন কৰে। এই পৰিবৰ্তন আনিছে বিশ্বায়নে। পৰিবৰ্তিত সমাজত জনগোষ্ঠীয় জীৱন পদ্ধতিৰ বিভিন্ন দিশত পৰিবৰ্তন আহিছে। এই পৰিবৰ্তনে থলুৱা সংস্কৃতিৰ বিপৰ্যয় অনাৰ দৰে বিশ্বক এক কৰাৰ প্ৰচেষ্টাও কৰিছে।

০.১ অধ্যয়নৰ লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য :

সংস্কৃতি বোঁৱতী সূতী। বোঁৱতী নৈ। নৈ বা সূতীয়ে ভঙা গঢ়াৰ খেল খেলিও বৈ থাকে। সংস্কৃতিও ভঙা গঢ়াৰ খেল খেলিও নিদিষ্ট গতিৰে বৈ থাকে তাৰ সুকীয়া পৰিচয় হেৰাই নেপেলায়। বিশ্বায়নে Global village ৰ ধাৰণা গঢ় দিয়াৰ দৰে ক্ষুদ্ৰ উদ্যোগ আৰু বাণিজ্যৰ যোগেদি থলুৱা সংস্কৃতিক সৰ্বভাৰতীয় পৰ্যায়ত দাঙি ধৰাৰ

-----  
সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ  
নৱজ্যোতি মহাবিদ্যালয়, কলগাছিয়া  
বৰপেটা, অসম - ৭৮১৩১৩  
☎ ৯১০১৪৩০০১২  
✉ baglarimalabika49@gmail.com  
-----

প্ৰচেষ্টাও কৰিছে। এক কথাত থলুৱা সংস্কৃতিৰ বাণিজ্যিকীকৰণ আৰু সাৰ্বজনীন উমৈহতীয়া সংস্কৃতি সৃষ্টি হৈছে।

## ০.২ গোলকীকৰণ বাণিজ্যিকীকৰণ আৰু অসমৰ থলুৱা সংস্কৃতি :

বিশ্বায়ন এক নব্য উদাৰীকৰণ প্ৰক্ৰিয়া। বিশ্বায়ন এক যোগ বিয়োগৰ সমীকৰণ, ই ৰাজনীতি আৰু ক্ষমতাৰ অৰিয়া অৰিৰ উৰ্দ্ধত অৱস্থান কৰা এক স্বতন্ত্ৰ প্ৰক্ৰিয়া। এই স্বতন্ত্ৰ প্ৰক্ৰিয়াই অপসংস্কৃতি সৃষ্টি কৰাৰ লগতে থলুৱা সংস্কৃতিকো বিশ্বমুখী কৰি তোলাত অৰিহণা যোগাই আহিছে। গোলকীকৰণ অথবা বিশ্বায়নে অসমৰ থলুৱা সংস্কৃতিৰ বিপৰ্য্যয় আনিছে এই কথা স্বীকাৰ কৰিবই লাগিব। বিশ্বায়নে গোষ্ঠীগত বৈশিষ্ট্য, জীৱনৰ সৰলতা আৰু হেপাহবোৰে কাঢ়ি লৈ গৈছে। থলুৱা সংস্কৃতি জীয়াই আছে যদিও সি বজাৰমুখী হৈছে। গছতলৰ বিহু আহি চহৰৰ মঞ্চত ঠাই পাইছেহি। তথাপি বিহুমঞ্চ শুৱনি কৰে আমদানিকৃত মুগা-সাজ পিন্ধা, প্লাষ্টিকৰ কপৌ পিন্ধা গাভৰুৱে। নোহোৱা হ'ল ঢেঁকীৰ কোব তথাপি মিস্কত গুৰি কৰা পিঠা গুৰিৰে বজাৰত কিনা সান্দহগুৰি কাৰে গুৰিৰে বিহু পতা হ'ল। বিহুৰ নাচনিয়ে ব্যৱহাৰ কৰা সামগ্ৰীবোৰ সস্তীয়া হোৱাৰ লগতে অৰ্থনৈতিক প্ৰসাৰতাও সস্তীয়া হোৱা দেখা গৈছে। তেনেদৰে অসমৰ থলুৱা খাদ্য প্ৰণালীৰ পৰিবৰ্তন হ'ল। কিটচেনত গেছ, মিকচি, অভেন, মাইক্ৰৱেভ, গেছ ছিলিণ্ডাৰ আদিয়ে ঠাই পালে। কাটা চামুচেৰে এ.চি ৰেষ্টুৰেণ্টত বহি ভাৰতীয় চাইনীজ খাদ্যৰ সোৱাদ লব পৰাকৈ পৰিবৰ্তন হ'ল অসমীয়া থলুৱা খাদ্য প্ৰণালী। ঘৰৰ আগচোতাল, পাচচোতালৰ ঠাই ললে চাদখনে। গড়াল, গোহালি, ভড়াল, মাৰল ঘৰৰ অভাৱ হ'ল। বিভিন্ন উৎসৰ অনুষ্ঠানৰ লোকবিশ্বাস, লোকাচাৰ নামমাত্ৰ পালন কৰি বহিৰাগত পৰম্পৰাৰে প্ৰদৰ্শনকামী মনোবৃত্তিৰে আয়োজন কৰা হয়।

বিশ্বায়নে কোনো এখন সমাজৰ সামাজিক আৰু অৰ্থনৈতিক বিকাশ অথবা প্ৰগতিত এক বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰি আহিছে। এক সহজ ভাষাত অৰ্থনৈতিক প্ৰগতিৰ বাবে বাণিজ্যিকীকৰণ সম্প্ৰসাৰণ প্ৰক্ৰিয়াই মানুহৰ জীৱন ধাৰণ প্ৰণালীও এক বিৰাট পৰিবৰ্তন আনিছে। জনগোষ্ঠীয় সংস্কৃতিৰ বিভিন্ন দিশতে উদ্যোগী সকলে সাৰ্বজনীন কৰি তুলিবলৈ চেষ্টা কৰিছে সেয়া স্বীকাৰ্য্য। তলত অসমৰ থলুৱা সংস্কৃতিৰ বাণিজ্যিকীকৰণৰ দিশসমূহ আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হ'ল-

অসমৰ থলুৱা সংস্কৃতি অথবা জনগোষ্ঠীয় সংস্কৃতিৰ বাণিজ্যিকীকৰণৰ ভিতৰত সাজপাৰৰ কথা প্ৰথমে কবই লাগিব। বৰ্তমান সময়ত 'ছাতে শুকোৱা মুঠিতে লুকোৱা' কাপোৰৰ অভাৱ হলেও পৰম্পৰাগত সাজপাৰ আৰু অলংকাৰৰ মাৰ্কেটিং বিষয়টো আওকান কৰিব নোৱাৰি। আনকি পৰম্পৰাগত সাজপাৰেৰে (মেখেলা চাদৰ, দখনা অথবা অন্যান্য জনগোষ্ঠীয় সাজপাৰ) চুৰিদাৰ, কুৰ্তা পুৰুষৰ জেকেট, শিশুৰ বিভিন্ন ডিজাইনৰ ফ্ৰক আদি প্ৰস্তুত কৰি বজাৰত মুকলি কৰি দিয়া হৈছে। আধুনিক পদ্ধতিৰে বহুতো ডিজাইনাৰে পৰম্পৰাগত আৰ্হিক মূল হিচাপে লৈ বজাৰ দখল কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। আন নালাগে জনগোষ্ঠীয় সাজপাৰেৰে মডেল এগৰাকীয়ে ৰেম্পত খোজ দিব পৰাকৈ সাজপাৰ তৈয়াৰ কৰা হৈছে। ফলত জনগোষ্ঠীয় সাজপাৰ সৰ্বভাৰতীয় পৰ্য্যায়লৈ আগুৱাই গৈছে। গামোছা, আৰনাই আদিৰ লগতে বিভিন্ন জনগোষ্ঠীৰ আলোৱান সদৃশ সাজপাৰৰ বৰ্তমান বাণিজ্যিকীকৰণ হৈছে, মাৰ্কেটিং হৈছে। এক কথাত ক্ষুদ্ৰ উদ্যোগ অথবা গ্ৰাম্য মহিলাৰ ভূমিকা এই ক্ষেত্ৰত দেখা যায়। বৰ্তমান সময়ত অসমৰ বিভিন্ন ঠাইত জনগোষ্ঠীয় সাজপাৰ আৰু অলংকাৰ বিপনী দেখা যায়। তাৰে ভিতৰত ধেমাজী পৰিবাৰ, কাংকন ধেমাজী, গামোছা আদিৰ বিপনীৰ যোগেদি থলুৱা সাজপাৰৰ বাণিজ্যিকীকৰণ হৈছে। এয়ে নহয়, বৰ্তমান অনলাইনৰ যোগেদিও পৰম্পৰাগত সাজপাৰ আৰু আ-অলংকাৰে এখন বজাৰ দখল কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। কেইখন মান অলংকাৰৰ বিপনীয়ে বৰ্তমান বজাৰ দখল কৰি আছে। তাৰে ভিতৰত মেজাংকৰি, জাংফাই, গামখাৰু, অংগনা, ৰূপশ্ৰী, ডুগডুগী, বাংঢালী, কিংকিনী, গহনা, পাদমাদে ইত্যাদি। পৰম্পৰাগত অসমীয়া গহনা, জনগোষ্ঠীয় আ-অলংকাৰ কেৱল বিপনীৰ মাজতে সীমাবদ্ধ হৈ থকা নাই, ডিজিটেল মাধ্যমেদিও পৰম্পৰাগত সাজপাৰ আৰু আ-অলংকাৰে মাৰ্কেট দখল কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। আনহাতে ভোগালী মেলা, বহাগী মেলা, বিভিন্ন সময়ৰ পৰম্পৰাগত অনুষ্ঠানত বিপনীৰে এই সামগ্ৰীয়ে বজাৰ দখল কৰিছে সেয়া সাধাৰণৰ চকুত পৰা। বৰ্তমান অসমৰ পৰম্পৰাগত গহনা গাঠৰিৰ ভিতৰত গামখাৰু, ডুগডুগী, জোনবিৰি আদিকে ধৰি জনজাতীয় আ-অলংকাৰ বজাৰত উপলব্ধ হৈছে। এক কথাত বিশ্বায়নে গ্ৰাম্য অৰ্থনীতিক টনকিয়াল কৰি তোলাৰ লগতে থলুৱা সামগ্ৰীক ভৌগোলিক সীমা অতিক্ৰমী সৰ্ব ভাৰতীয় সমাজত চিনাকী কৰাই দিছে।

অসমৰ থলুৱা সাজপাৰ আৰু আ-অলংকাৰে গোলকীকৰণৰ ফলত বজাৰ দখল কৰাৰ দৰে অসমৰ থলুৱা খাদ্য প্ৰাণালীয়েও বজাৰ দখল কৰিছে তাত সন্দেহ নাই। বিশ্বায়ন বা গোলকীকৰণে থলুৱা খাদ্য সামগ্ৰীৰ বা পদ্ধতিৰ বিপৰ্যয় মাতি আনিছে। অৱশ্যে এই কথাও স্বীকাৰ্য যে বিশ্বায়নে থলুৱা খাদ্য প্ৰাণালী আৰু সামগ্ৰীক বজাৰ মুখী কৰি তুলিছে। অসমৰ থলুৱা খাদ্য সম্ভাৰ বৰ্তমান ভোগালী জলপান, থলগিৰি ভূৰুকা আদি বিপনীত উপলব্ধ। ইয়াৰ উপৰিও বিভিন্ন সময়ত বহাগী মেলা, ভোগালী বিহু আদি অনুষ্ঠানৰ যোগেদি থলুৱা সামগ্ৰীক বজাৰমুখী কৰি তোলা হৈছে। বৰ্তমান সময়ত কোমল চাউল, হুৰুমা, বৰা চাউল দৈ, বিভিন্ন লাৰু পিঠা আদি থলুৱা খাদ্যৰ বজাৰ পোৱা যায়। তেনেদৰে বিভিন্ন থলুৱা শাক-পাচলি নৰসিংহ।

ভেদাইলতা, কচু, ঢেকিয়া, মানিমুনি আদিৰে প্ৰস্তুত কৰা খাদ্য সম্ভাৰ আদিও ৰেপ্তুৰাত পোৱা যায়। জনজাতীয় খাদ্যৰ ভিতৰত নাফাম, নামচিং, বাঁহ গাজৰ বিভিন্ন খাদ্য, বিভিন্ন ধৰণৰ গাহৰি মাংস, টেঙাৰে সৈতে বিভিন্ন মাছ, কাছদি, খৰালি অথবা বিভিন্ন শাক পাতৰ খাৰ, পইতা ভাত বিভিন্ন পোৰা, পিটিকা বৰ্তমান অত্যাধুনিক ৰেপ্তুৰাত উপলব্ধ। চিকেন উইথ তিল, চিকেন উইথ পিঠাগুৰি, চিকেন উইথ বাননা ফ্লাৱাৰ, কোমোৰা উইথ খাৰ পিঠাগুৰি আদি মেনুত পোৱা যায়। ৰেপ্তুৰাত আচবাব, কৰ্মচাৰী সাজপাৰ, বাচন বৰ্তন আদি সকলো পৰম্পৰাগত অথবা থলুৱা আৰ্হিৰে পৰিৱেশন কৰা দেখা গৈছে। এই পদ্ধতিয়ে অসমৰ থলুৱা সংস্কৃতিৰ বাণিজ্যিকীকৰণত বিশেষ সহায় কৰিছে বুলি কব লাগিব। এই প্ৰসংগত কেইখনমান পৰম্পৰাগত ৰেপ্তুৰাৰ নাম উল্লেখ কৰিব পাৰি। তাৰে ভিতৰত মিচিং কিটচেন, ভোট জলকীয়া, উৰুকা, মাইহাং, খৰিকা, বৰলুইত, মাজুলীৰ এসাজ, নাগা কিটচেন, নগা বাউল, কাৰেং, দ্যা আহোম কিটচেন, আলহীৰ এসাজ, বাজৈ হোটেল গোৰ্খা কিটচেন ইত্যাদি প্ৰধান। আকৌ থলুৱা, জনজাতীয় খাদ্যৰ বজাৰ গুৱাহাটীৰ বেলতলাকে আদি কৰি বহু ঠাইত দেখা গৈছে। যিকোনো পূজাৰ সামগ্ৰী কলপুলি, দুৰৰি, ফুল আদিও বজাৰত উপলব্ধ হৈছে।

বৰ্তমান সময়ত বিবাহ অথবা তেনে কোনো ঘৰুৱা অনুষ্ঠাতো পৰম্পৰাগত খাদ্যৰে আপ্যায়ন কৰা হয়। বহু ক্ষেত্ৰত থলুৱা সাজপাৰেৰে বিভিন্ন নামৰে কেটেৰিঙৰ ব্যৱস্থাও দেখা যায়। বৰ্তমান আপ্যায়ন ব্যৱস্থাত বুফে, কেটাৰিং, কাটা চামুচ আদি শব্দৰ সমাহাৰ হৈছে যদিও মাইহাং,

হাতীখুজীয়া বাতি শুকুতাৰ খাৰ, বুঢ়া কোমোৰাৰ খাৰ আদি থলুৱা শব্দৰো আদৰ কম নাই, বৰং বাঢ়িছেহে। নকলেও হব যে এই ক্ষেত্ৰত বিশ্বায়নে বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে।

অসমৰ লোক উৎসৱত বিশ্বায়নে এক বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। লোক উৎসৱ সমূহত পালন কৰা লোক বিশ্বাস, লোকাচাৰৰ মৰ্যদা কমিলেও বহুক্ষেত্ৰত সামাজিক মাধ্যম অথবা ইলেক্ট্ৰনিক মিডিয়াই ইয়াক প্ৰচাৰ কৰিছে। বিহু উৎসৱ আৰু বিহু উৎসৱৰ সৈতে জড়িত অনুষ্ঠানবোৰ, বিহু উৎসৱৰ সামগ্ৰীবোৰ বজাৰমুখী হৈছে তাত সন্দেহ নাই। বৰ্তমান বিহুৰে স্বকীয়তা হেৰুৱাই পেলোৱা বুলি অভিযোগ আছে। কিন্তু ইয়াকো কব পাৰি যে স্বকীয়তা হেৰাই পেলোলেও বিশ্বায়নে বিহুক অসমৰ ভৌগোলিক সীমা অতিক্ৰম কৰাইছে। আনকি বিহুৰ সামগ্ৰী, সাজপাৰ, বাদ্যযন্ত্ৰ আদিৰ বজাৰ তৈয়াৰ হৈছে। বিবাহ উৎসৱৰ লগত জড়িত অনুষ্ঠানো বজাৰ কেন্দ্ৰিক হোৱা দেখা গৈছে। বিশেষকৈ নামতী, আয়তীদল গঠন কৰা হৈছে বিয়া নাম গাবলৈ।

অসমৰ বিভিন্ন লোক উৎসৱ সমূহত লোক নাটানুষ্ঠাৰ প্ৰচাৰ মনকৰিবলগীয়া বিভিন্ন অনুষ্ঠানত ঠিয় নাম, ভোৰতাল নৃত্যৰ নাম, ভাওনা, নাগৰা নাম, ওজাপলি, টেপাচুলীয়া আদি অনুষ্ঠানৰ এক বজাৰ তৈয়াৰ হৈছে। যি বজাৰে অসমৰ থলুৱা লোক কলাক বিশ্বমুখী কৰি তোলাত অগ্ৰনী ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিছে। কেৱল এয়ে নহয় বিভিন্ন অনুষ্ঠানৰ বাবে তৈয়াৰ হোৱা পেঙেল সমূহো পৰম্পৰাগত আৰ্হিৰ। বিশেষকৈ গামোছা, আৰনাই, মিচিং আৰলক, শৰাই জাপিৰে পেঙেলবোৰ সজাই তোলা হয়। এই পদ্ধতিয়ে অসমৰ থলুৱা শিল্পক, লোক সংস্কৃতিক বিশ্বমুখী কৰি তুলিছে তাত সন্দেহ নাই। অসমৰ লোক কলাৰ ভিতৰত অসমৰ গৃহ নিৰ্মাণ প্ৰণালীৰ কথা কব লাগিব। গৃহ নিৰ্মাণত বৰ্তমানো বাহ বেতৰ ব্যৱহাৰৰ কথা স্বীকাৰ কৰিব লাগিব। গৃহ সজ্জাত বাহ বেতৰ সামগ্ৰীৰ ব্যৱহাৰে অসমৰ থলুৱা শিল্পক আগুৱাই যোৱাত সহায় কৰিছে। অসমৰ লোক কলাক বিশ্বমুখী কৰি সকলোৰে আগত চিনাকী কৰাই দিয়াত সৰ্থেবাৰীৰ কাহ শিল্প, বিভিন্ন সামগ্ৰীৰ হস্তশিল্পৰ উদ্যোগ সমূহৰ বিশেষ ভূমিকা দেখা যায়। ইয়াৰ ওপৰিও পূজা বা থাপনাৰ বিগ্ৰহ, সিংহাসন, মনিকুট, পুথিৰ বাকচ, ঠগি, দবা, শংখ আদি লোক স্থাপত্যৰ বিশেষ বজাৰ সৃষ্টি হৈছে। এই ক্ষেত্ৰত অসমৰ প্ৰায় মৃত অৱস্থাত থকা ধুবুৰীৰ আছাৰি কাণ্ডিৰ মৃৎ শিল্পৰ উদ্যোগৰ কথা কব লাগিব। অসমৰ বৰপেটা জিলাৰ হাউলীৰ

বায়পুৰ অঞ্চলতো তেনে হস্তশিল্পৰ উদ্যোগ গঢ়ি উঠিছে। এক কথাত অসমৰ থলুৱা ক্ষুদ্ৰ উদ্যোগসমূহে গ্ৰাম্য অৰ্থনীতিত অৰিহণা যোগোৱা বুলি কব লাগিব।

সময় পৰিবৰ্তনশীল। সংস্কৃতি পৰিবৰ্তনশীল। সমাজ পৰিবৰ্তনশীল বাবেই সমাজৰ সৈতে জড়িত দিশৰো পৰিবৰ্তন হৈছে। বৰ্তমান সময়ত বিশ্বায়নে সমাজ জীৱনত যি ভূমিকা পালন কৰিছে সেয়া বিচাৰ কৰি চালে কব পাৰি যে বিশ্বায়নে সাৰ্বজনীন উমৈহতীয়া সংস্কৃতিৰ সৃষ্টি কৰিছে। অসমৰ বিভিন্ন জনগোষ্ঠীয় সমাজে ভাৰতবৰ্ষৰ অইন ৰাজ্যৰ বহুলোক উৎসৱ, সাজপাৰ, আ-অলংকাৰ অথবা খাদ্য সম্ভাৰক আকোৱালী লোৱাৰ দৰেই অসমৰ জনগোষ্ঠীয় সংস্কৃতিকো ভাৰতবৰ্ষৰ অইন ৰাজ্যৰ লোকে আকোৱালী লৈছে। ইলেক্ট্ৰনিক মিডিয়া অথবা সামাজিক মাধ্যমেও সংস্কৃতিৰ সাৰ্বজনীনতাত বিশেষ ইন্ধন যোগাইছে বুলি একে কব লাগিব। বৰ্তমান সময়ত অসমৰ গামোছা, আৰনাই, শৰাই, জাপি টেকেলি পিঠা সকলো জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লোকে আদৰি লৈছে। তেনেদৰে দক্ষিণ ভাৰতীয় খাদ্যৰ ভিতৰত দোচা, ইডলি, চান্দাৰ, বঙালী খাদ্যৰ ভিতৰত মুৰী, বসগোল্লা আদি ভাৰতীয় খাদ্যৰ তালিকাত সোমাই পৰিছে। উত্তৰ পশ্চিম ভাৰতীয় ৰুটি, পৰঠা, পোলাও আদি ভাৰতীয় খাদ্য হিচাপে স্বীকৃতি লাভ কৰিছে সেয়া নকলেও হব। এক কথাত ৰাজ্যিক অথবা আঞ্চলিক সংস্কৃতি সাৰ্বজনীন উমৈহতীয়া সংস্কৃতি লৈ পৰিবৰ্তন হৈছে। এইখিনিতে বিবাহ অনুষ্ঠানৰ হালদি, মেহন্দি, পৰম্পৰাই সৰ্বভাৰতীয় পৰ্যায়ত স্থান লাভ কৰিছে, সাৰ্বজনীন হৈ পৰিছে উমৈহতীয়া হৈ পৰিছে সেয়া সৰ্বজনৰ চকুত পৰা বিষয়।

#### ০.৪ উপসংহাৰ :

বৰ্তমান সময়ৰ কেতবোৰ বিষয়ে সমাজৰ নৱ প্ৰজন্মৰ ওপৰত বিশেষ প্ৰভাৱ পেলাইছে। বিশেষকৈ ভাল নম্বৰেই ভাল শিক্ষা, প্ৰাশ্চাত্য শিক্ষা, চাকৰিমুখী শিক্ষা, ব্যক্তিগত

খণ্ডৰ অনুষ্ঠান প্ৰতিষ্ঠান আদি। এই ক্ষেত্ৰত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰা বিষয়টো হৈছে বিশ্বায়ন আৰু বিশ্বায়নৰ সৈতে ‘মাৰ্কেট ভেলু’। নকলেও হব এটা জাতিৰ উত্তৰণত আৰ্থিক দিশটোৰ বিশেষ ভূমিকা আছে। অৰ্থনৈতিক স্বাধীনতাই জাতি এটাৰ উত্তৰণত বিশেষ অৰিহণা যোগায়।

বিশ্বায়নে বৰ্তমান সময়ত থলুৱা সংস্কৃতিৰ অস্তিত্বৰ সংকট সৃষ্টি কৰি গোলকীকৰণ আৰু বিশ্বজনীনতাৰ মাজত দ্যোদুল্যমান অৱস্থাৰ সৃষ্টি কৰিছে। সেয়ে বহু পণ্ডিতৰ মতে **Globalization** আৰু **Localization** ৰ মাজত এক দন্ধ-সংঘাতৰ সৃষ্টি হৈছে। অৱশ্যে পৰিবৰ্তিত সময়ৰ আহবানক স্বীকাৰ কৰি থলুৱা সংস্কৃতিক বিশ্বজনীন কৰি তুলিব লাগিব। বজাৰৰ চাহিদাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি লোক জীৱনৰ সৈতে জড়িত সামগ্ৰী প্ৰস্তুত কৰি সকলোৰে গ্ৰহণযোগ্য কৰি তুলিব লাগিব। নকলেও হব যে বহুক্ষেত্ৰত বহু বিষয় বজাৰৰ চাহিদাৰ স্বাৰ্থত গ্ৰহণ কৰা হৈছে। কিন্তু কেৱল বজাৰমুখী নহৈ, থলুৱা সংস্কৃতিক বিশুদ্ধ ৰূপত উপস্থাপন কৰিব লাগিব। আন এক কথাত থলুৱা লোকে দক্ষতা আৰু কৰ্মনিষ্ঠাৰে গ্ৰাম্য উদ্যোগ স্থাপন কৰি অৰ্থনৈতিক ভাৱে টনকিয়াল হবলৈ চেষ্টা কৰিব লাগিব। এইক্ষেত্ৰত ইলেক্ট্ৰনিক মিডিয়া, সামাজিক মাধ্যম আৰু অনলাইন বাণিজ্যৰ ভূমিকা গ্ৰহণযোগ্য। তেনেদৰে প্ৰয়োজনীয় বজাৰ তৈয়াৰৰ বাবে চৰকাৰ অথবা বিভাগীয় কৰ্তৃপক্ষই ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিব লাগিব। ইয়াৰ বাবে উন্নতমানৰ আন্তঃ গাঠনিৰ প্ৰয়োজন। এই ক্ষেত্ৰত বিদ্যাতনিক ক্ষেত্ৰৰ ভূমিকা গ্ৰহণযোগ্য। আলোচনা চক্ৰ, কৰ্মশালাৰে লোক শিল্পৰ বজাৰ তৈয়াৰ কৰিব লাগিব।

যি-কি নহওঁক প্ৰগতিৰ বাবে পৰিবৰ্তন লাগিব। সেয়ে পৰিবৰ্তনক স্বীকাৰ কৰি থলুৱা সংস্কৃতিক বজাৰমুখী কৰি বিশ্বজনীন কৰি তুলিব লাগিব। এক কথাত ৰূপান্তৰ প্ৰক্ৰিয়াক সহজ ভাবেই গ্ৰহণ কৰিব লাগিব। □

#### গ্ৰন্থপঞ্জী :

অধিকাৰী, শুকদেৱ (সম্পা)ঃ অসমীয়া সংস্কৃতি আৰু বিশ্বায়ন, শিঙ মহাবিদ্যালয় / ২০১১  
কাকতি-দ্বিপেনঃ বিশ্বায়নৰ খিৰিকিয়েদি ভাৰতবৰ্ষ, আখৰ প্ৰকাশ ২০০৫  
নাথ, স্বপন জ্যোতি (সম্পা)ঃ লোক সংস্কৃতি আৰু বিশ্বায়ন, খাগৰিজন মহাবিদ্যালয় ২০১২

## ড° ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ চুটিগল্প ‘গ্ৰহণ’ : এক অৱলোকন



ড° নন্দিতা গোস্বামী

### সংক্ষিপ্ত সাৰ :

অসমীয়া গল্প সাহিত্যৰ জগতখনত স্বকীয় বৈশিষ্ট্যৰে সমুজ্জল ‘ৰামধেনু’ যুগৰ এগৰাকী সফল গল্পকাৰ ড°ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়া। ১৯৪৭ চনত ‘পথ নিৰূপণ’ গল্পৰে ‘উদয়’ নামৰ আলোচনীত শইকীয়াই গল্পকাৰ হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰে। তেওঁ গল্প সমূহত কাহিনী আৰু চৰিত্ৰক প্ৰধান্য দিছিল। মানুহৰ মনস্তাত্ত্বিক বিশ্লেষণ গল্পৰ মাজত সুন্দৰভাৱে প্ৰতিফলিত কৰিছিল। তেওঁৰ ‘গহবৰ’ নামৰ গল্প সংকলনখনৰ অন্তৰ্গত ‘গ্ৰহণ’ এক অন্যতম শ্ৰেষ্ঠ গল্প। ব্যক্তিৰ জীৱনত বৃদ্ধকাল আহি উপস্থিত হোৱাৰ পিছত কিদৰে সমাজত, ওচৰ চুবুৰীয়াৰ ওচৰত আনকি নিজৰ সন্তানৰ ওচৰতো উপেক্ষিত হ’ব লগা হয় তাকেই গল্পটোত প্ৰকাশ কৰিছে। নীৰেন নামৰ কলেজ এখনৰ অৱসৰপ্ৰাপ্ত অধ্যক্ষ এজনৰ চৰিত্ৰৰ জৰিয়তে উক্ত ভাবধাৰা সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰিছে। নীৰেন নামৰ চৰিত্ৰটোৰ বৃদ্ধকালত নিঃসঙ্গতাই পীড়া কৰা অৱস্থাৰ বিশ্লেষণেই গল্পটোৰ অধ্যয়ন মূল বিষয়।

### বীজ শব্দ :

গ্ৰহণ, নীৰেন, বৃদ্ধকাল, নিঃসঙ্গতাবোধ।

### অৱতৰণিকা :

ড°ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াই অসমৰ সাহিত্য সাংস্কৃতিক জগতলৈ যথেষ্ট অৰিহণা আগবঢ়াই থৈ গৈছে। তেওঁ এগৰাকী সফল গল্পকাৰ, উপন্যাসিক, শিশু সাহিত্যিক আত্মজীৱনী লেখক, প্ৰবন্ধকাৰ, নাট্যকাৰ, আলোচনী সম্পাদক, কথাছবি পৰিচালক আদি বিভিন্ন ৰূপে পৰিচিত। গল্পসংকলন ‘শৃংখল’ৰ বাবে সাহিত্য অকাডেমীৰ পুৰস্কাৰ আৰু ‘সেন্দূৰ’ৰ বাবে অসম প্ৰকাশন পৰিষদৰ বঁটা লাভ কৰিছে। আনকেইখন উৎকৃষ্ট সংকলন হ’ল — ‘প্ৰহৰী’, ‘গহবৰ’, ‘এই বন্দৰৰ আবেলি’। শইকীয়াদেৱৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু, চৰিত্ৰ আৰু বৰ্ণনাৰ শৈলীয়ে পাঠকক গল্পসমূহৰ প্ৰতি আকৰ্ষিত কৰে।

### অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু পদ্ধতি:

‘গ্ৰহণ’ তেওঁৰ দ্বাৰা ৰচিত গল্পসমূহৰ ভিতৰত এটা উৎকৃষ্ট গল্প। বাদ্ৰ্কাৰ নিঃসঙ্গতা গল্পটোৰ মূল বিষয়। ‘নীৰেন’ গল্পটোৰ মূল চৰিত্ৰ। নীৰেন নামৰ চৰিত্ৰটোৰ নিঃসঙ্গতাই সৃষ্টি কৰা মানসিক অৱস্থাৰ চিত্ৰণক অধ্যয়নৰ পৰিসৰলৈ অনা হৈছে। গৱেষণাৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

গল্পটোৰ কাহিনীভাগ প্ৰথম পুৰুষত বৰ্ণনা কৰিছে। নীৰেন নামৰ অৱসৰপ্ৰাপ্ত কলেজৰ অধ্যক্ষ এজন গল্পটোৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ। এই অধ্যক্ষজনৰ মনৰ অভিব্যক্তি প্ৰকাশেৰে গল্পটোৰ আৰম্ভণি কৰিছে - “ইহঁতে মোক বুৰুক বুলি ভাবে হ’বলা। যদি ভাবে সিহঁতে ভুল কৰে। - এই এদিন গীতাই আহি মোক কলেহি “দেউতা এয়া সুবোধ দাদা, মই যে আপোনাক কৈছিলো- মোৰ লগৰ সুৰভিহঁতৰ-” ইত্যাদি ইত্যাদি

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ  
বহা মহাবিদ্যালয়, নগাওঁ, অসম-৭৮২১০৩  
৯৯৫৭৯৯৫৪৫৫  
nanditanita@gmail.com

আৰু মই যে হাঁহি হাঁহি সুবোধক সম্ভাষণ জনালোঁ, সেইটো কথাত গীতাই ছাগে ভাবিলে- দেউতাতো সহজ-সৰল বেঙা, বুৰ্বক মানুহ, চিনাকি কৰি দিয়াৰ কামটো বাকী আছিল, কৰি থলোঁ, লেঠা মৰিল, দেউতাই আৰু এইবোৰ কথা লৈ মগজ ঘোলা নকৰে। কিন্তু আচলতে মই ইমান বুৰ্বক নহঁও।” (গহুৰ, ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়া, প'লাৰ্ড, গুৱাহাটী-৩, দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ১৯৭৮ চন<sup>পৃ. ৯৪</sup>) “নীৰেন” নামৰ এই অৱৰপ্ৰাপ্ত অধ্যাপকজনৰ এজন ল'ৰা আৰু এজনী ছোৱালী অতুল আৰু গীতা। গল্পটোৰ আৰম্ভণিতেই গল্পকাৰে ইংগিত দিছে তেওঁৰ সন্তানে তেওঁক ফাঁকি দিয়াৰ কথা। নীৰেন নামৰ ব্যক্তিজনে তেওঁৰ সন্তানে মিছা কথা কৈছে বুলি গম পাইও মনে মনে থাকে। বুজিও নুবুজাৰ ভাও ধৰি, তেওঁ মনে মনে থাকিবলৈ বাধ্য, কাৰণ কিবা এটা কথা কলেই ঘৰখনত অশান্তিৰ পৰিবেশৰ সৃষ্টি হ'ব বুলি তেওঁ বুজি পায়। তেওঁৰ মতে- “এইবোৰ মোৰ কাৰণে ঢেকীয়াৰ নিচিনা বস্তু; কোনেও হেপাহ কৰি খেতি নকৰে, কিন্তু সদায় গজে, পালেং-বাবৰি, চুকা-ধনিয়াৰ মাজেদিয়েই কেতিয়াবা পাকঘৰ সোমায়হি; খাই বেয়া নালাগে, লাগিলেও বেয়া পাঁও বুলি কোৱাৰ সাহস নাই, কলেই সকলোৱে খেংখেঙাই আহে।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ পৃ. ৯৫)

নীৰেন নামৰ ব্যক্তিজনে আনক কথা পাতি আমনি কৰিব নিবিচাৰে। সেয়ে তেওঁৰ ছোৱালী গীতাই চিনাকি কৰি দিয়া সুবোধৰ লগত বেছি কথা পাতি আমনি কৰিলে নেকি বুলি ভাবি সচকিত হৈ উঠিছে “ব'ৰ হোৱাটোক মই মনে প্ৰাণে ঘিন কৰোঁ।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ পৃ. ১০০) ব্যক্তিজনে “লেমলেমীয়া কৈ বিৰক্তিকৰ কথা পাতি ধৈৰ্য্যচ্যুতি” ঘটোৱা বুঢ়া মানুহৰ লগত কথাপাতি বিৰক্তি পায়। সেয়ে ডেকাকালত “ঘন বুঢ়া” নামৰ ব্যক্তিজনে দেখিলে আঁতৰি যায়। ঘন বুঢ়া এনে এজন ব্যক্তি আছিল তেওঁ ঘৰৰ সন্মুখৰে যোৱা মানুহক মাতি আনি বহুসময় কথাপাতি থাকিবলৈ ভাল পায়। নীৰেনে ঘন বুঢ়াৰ এই আচৰণ ভাল পোৱা নাছিল। সেয়ে সুবোধক ঘন বুঢ়াৰ দৰে আমনি কৰিছে নেকি বুলি ভাবি সচেতন হৈ উঠিছিল। - “আৰু মই সেই মানুহটোৱে এজিয়া লোকক কথাৰে আমনি কৰিম ? নহয় নহয় নকৰোঁ।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ পৃ. ১০১) তেওঁ ডেকাকালৰ পৰাই ভাবিছিল বৃদ্ধকালত কাকো কথাপাতি আমনি নকৰে লগতে বৃদ্ধ বয়সত প্ৰতিটো বিষয়তে বিবেচনাৰ সুচিন্তিত কৰ্মৰে আগবঢ়াৰ আশা কৰিছিল। সেয়ে তেওঁ পত্নীক কৈছিল -

“আমি এটা কাম কৰিম বুইছা। আমি বুঢ়া হ'লে এই বুঢ়া-বুঢ়ী বিলাকৰ নিচিনা টিপিকেল বুঢ়া-বুঢ়ী নহঁও; এই যে দেখিছা এই বুঢ়া-বুঢ়ী বিলাকৰ সদায় পুতেক-জীয়েকহঁতক লৈ অশান্তি, আমি তেনেকুৱা অশান্তি হ'বলৈ নিদিওঁ।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ, ১০২) ব্যক্তিজনে ল'ৰা-ছোৱালীৰ দ্বাৰা পৰিচালিত হোৱাৰ পৰিৱৰ্তে স্বাধীনভাৱে থকাৰ আশা কৰিছে। আত্মসন্মানেৰে জীয়াই থকাৰ আশা কৰা ব্যক্তিজনে তেওঁৰ সন্তান দুটাও ভাল হ'ব বুলি দৃঢ় বিশ্বাস আছিল- “ইহঁত যদি আমাৰ সন্তান হয়, সিহঁত ভাল হ'বলৈ বাধ্য।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ, ১০৩) সন্তান দুটাই তেওঁলোকৰ লগত মৰম আৰু সহযোগিতাৰে আগবাঢ়িব বুলি আশা কৰি আনন্দ লভিছিল। ডেকাকালত সেয়ে পত্নীৰ আগত তেওঁ কৈছিল- “গীতাই নিজে আহি মোক ক'ব- ইচৰাম দেউতাৰ ইমানবোৰ চুলি পকিল, মই এডাল-এডালকৈ আটাইসোপা পকাচুলি শেষ কৰিম আজি ? এঘণ্টামানৰ পাছত ক'ম 'থ দে, হ'ল আৰু একেথৰে মূৰটো পেলাই থওঁতে গলধনটো বিয়াই গৈছে।” তাই ক'ব 'ব'চোন, এই হৈ গ'ল; আজি এই ফালটো শেষ কৰি দিওঁ, কাইলৈ সিটোফাল কৰিম। প্ৰতিবাদ কৰা মিছা বুলি বুজি মই আকৌ চকু মুদি পৰি থাকিম।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ, পৃ. ১০৪) বুঢ়া বয়সত কাকো আমনি নকৰে বুলি তেওঁৰ পত্নীৰ আগত যি আচঁনি কৰিছিল সেই আচঁনি তেওঁ মানি চলিছিল। তেওঁৰ বয়সৰ বাবে ভৰিৰ গাঁঠিবোৰ মাজে মাজে বিষালেও ল'ৰা-ছোৱালীক পিটিকিবলৈ দি আমনি কৰা নাই। পত্নীৰ মৃত্যুৰ পিছত মানুহজন একেবাৰে নিঃসঙ্গ হৈ পৰিল। মানুহে তেওঁ পত্নীক ভালকৈ যত্ন নোলোৱা বাবে মৃত্যু হ'ল বুলি কয়। কিছুদিনৰ পিছত তেওঁ আগতীয়াকৈ অৱসৰ ল'লে। কিতাপ পত্ৰ পঢ়িবলৈ এৰি দিলে। আগতে পত্নীৰ আগত কোৱা কথাবোৰ তেওঁৰ মনত পৰে। গীতাক বিয়া দিব। অতুললৈ এজনী ইন্টাৰমিডিয়েট পঢ়ি থকা ছোৱালী বিয়াপাতি আনি তাইক পঢ়াশুনা কৰাই ডক্টৰেট কৰিব, কিন্তু তেওঁৰ এই আশা পূৰণ নহ'ব বুলি গীতা আৰু অতুলৰ আচৰণৰ পৰাই বুজি পালে। সুবোধ আৰু অনুৰ, গীতা আৰু অতুলৰ লগত সম্পৰ্কৰ কথা তেওঁ বুজি পায়- “ইহঁত চাৰিটাই যেতিয়াই সিটো কোঠালিত প্ৰতিদিনাই ঘণ্টাৰ পিছত ঘণ্টা কথা পাতি বহি থাকে, তেতিয়া মইনো এইখন কথাও নুবুজোনে যে অণু আৰু অতুল আৰু গীতা আৰু সুবোধ দুটা যোৰ পাতিছে ?” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ, পৃ. ১০৬) সকলো জানিও তেওঁ মনে মনে থাকে, কিজানি তেওঁক ঠেক মনৰ মানুহ বুলি ভাবে। ঘেনীয়েকৰ মৃত্যুৰ পিছত নিঃসঙ্গ হৈ পৰা নীৰেনে ল'ৰা-ছোৱালীৰ লগত

কথা পাতিব ইচ্ছা গলেও পাতিব নোৱাৰে। কাৰণ তেওঁৰ লগত কথা পাতিবলৈ ল'ৰা-ছোৱালীৰ সময় নাই। কিছুদিনৰ পিছত দেউতাকে আবেলি ঘৰত থকাটো গীতা আৰু অতুলৰ বাবে অসুবিধা হ'ল। সিহঁতৰ গোপন প্ৰেমৰ নিবিড়তা ভংগ হ'ব বুলি সেয়ে দেউতাকক শৰীৰৰ সুস্থ হৈ থাকিব বুলি আবেলি খোজকাঢ়িবলৈ যাবলৈ জোৰ কৰে। নীৰেন নামৰ ব্যক্তিজনে ল'ৰা-ছোৱালী দুটাৰ এই প্ৰচেষ্টা দেখি বেজাৰ পায় যদিও অনিচ্ছাকৃত ভাবে খোজকাঢ়িবলৈ যাবলৈ বাধ্য হয়। খোজকাঢ়িবলৈ যাওঁতে তেওঁৰ ভৰিৰ গাঁঠিবোৰ বিষায়। সেয়ে কোনোবা এঘৰত সোমাবলৈ মন যায় অলপ জিৰণী লবৰ বাবে। তেওঁৰ মনলৈ আহে ডেকাকালত ভবা কথা-বুঢ়া হ'লে কাৰো ঘৰলৈ কাম নাথাকিলে নোযোৱা কথা আৰু গধূলি মানুহৰ ঘৰলৈ যোৱাটো বেয়া কথা। তথাপিও তেওঁ ৰামপ্ৰসাদৰ ঘৰত সোমায়। নহা মানুহ অহা দেখি তেওঁলোকে নীৰেন নামৰ ব্যক্তিজনক বৰ আদৰ কৰে। তেওঁলোকৰ লগত কথা পাতি মানুহজনৰ মনটো মুকলি লাগিল। এনেদৰে কেইবাদিনো ৰামপ্ৰসাদৰ ঘৰত সোমায় পিছলৈ তেওঁলোকে মানুহজনৰ গুৰুত্ব নিদিয়া হ'ল। ইয়াৰ পিছত তেওঁ আন আন মানুহৰ ঘৰলৈকো যাবলৈ ল'লে। সভা-সমিতি আদিলৈকো যোৱা হ'ল। কিছুদিনৰ পিছত সুবোধ আৰু অণুৰ বিয়া হৈ গ'ল। কথাটোৱে তেওঁক হাঁহিৰ খোৰাক দিলে। গীতাই হম ছায়েন্স পঢ়িব বুলি ঘৰৰ পৰা আতঁৰি গ'ল। মানুহজনে এদিন ভনীয়েকৰ পৰা গম পালে তেওঁলোকৰ ঘৰখনক ক্লাব ঘৰ বুলি মানুহবোৰে হাঁহে। সেয়ে মানুহজনে তেওঁলোকৰ ঘৰখনৰ প্ৰতি মানুহৰ মনোভাৱ কি জানিবলৈ ওচৰ চুবুৰীয়াৰ ঘৰলৈ যাবলৈ ইচ্ছাকৰিলেও কিন্তু তেওঁ যিখন ঘৰলৈকে যায় কাকো ঘৰত লগ নাপায়। সকলো 'কেনিবা যায়'। উত্তৰবোৰ ঘৰখনৰ সৰু ল'ৰা-ছোৱালীবোৰে দিয়ে।" (গাওঁত গৃহ, পৃ. ১১১) মানুহজনৰ ভৰিৰ গাঁঠিৰ বিষবোৰ লাহে লাহে বাঢ়িবলৈ ধৰে। সেয়ে আগফালে হেলনীয়া চকী এখনত বহি থাকে। তেওঁৰ মনৰ কথাবোৰ ক'বলৈ মানুহৰ প্ৰয়োজনীয়তা অনুভৱ কৰে। নিঃসঙ্গ হ'লেই এটা সম্পূৰ্ণ জীৱনৰ বেদনাই তেওঁক হেঁচা মাৰি ধৰে। ঘন বুঢ়াৰ দৰে তেওঁ বাটেদি যোৱা মানুহ ৰখাই কথা পাতিব বিচাৰে- "এহ যাবা দিয়াচোন বজাৰলৈ"। - এনেকৈ মানুহজনে বাটৰ মানুহ ৰখাই কথা পাতিব বিচাৰ আকাঙ্ক্ষা প্ৰকাশ কৰি গল্পটো শেষ কৰিছে।

### গল্পৰ বিষয়বস্তুৰ পৰ্যালোচনা :

ড° ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ 'গ্ৰহণ' এটা কালজয়ী গল্প। গল্পটোত পৰিপাটি কাহিনী এটা নাই। বৃদ্ধকালৰ সময়ছোৱাৰ নিঃসঙ্গতাক মূল হিচাপে লৈ বিভিন্ন পৰিস্থিতিৰ সহায়ত গল্পটোৰ বিষয়বস্তু উপস্থাপন কৰিছে। গল্পটোৰ বিষয়বস্তুৰ প্ৰথম পুৰুষত বৰ্ণনা কৰিছে। অৱসৰ প্ৰাপ্ত অধ্যক্ষ নীৰেন নামৰ চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে গল্পটোৰ আৰম্ভণি আৰু শেষ কৰিছে। গল্পটোৰ মূল বিষয় বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতাক নীৰেন নামৰ চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে উপস্থাপন কৰিছে।

'বৃদ্ধকাল' সকলোৰে জীৱনলৈ আহে। এই সময়খিনি কিছুমানৰ বাবে পৰম বিষাদত পৰিণত হয়। গোটেই জীৱন সন্তান আৰু আত্মীয় সজজনক দুখ-কষ্ট নোপোৱাকৈ ৰখা ব্যক্তিগৰাকী বৃদ্ধ কালত অনাদৃত অৱহেলিত হৈ পৰে। ল'ৰা-ছোৱালী ডাঙৰ হয়। কৰ্মব্যস্ততাৰ বাবেই হওঁক বা ইচ্ছাকৃত ভাবেই হওঁক কিছুমানে পিতৃ-মাতৃক সময় দিব নোৱাৰে। পিতৃ-মাতৃয়ে সন্তানৰ এযাৰ মাতৰ বাবে অধীৰ অপেক্ষাত থাকে। ঘৰখনৰ মঙ্গলৰ হকে বৃদ্ধকালত মাত এযাৰ দিলেও অশান্তিৰ সৃষ্টি হয়। সমাজৰ ডেকা মানুহবোৰেও বৃদ্ধ মানুহৰ লগত কথা পাতি সময় নষ্ট কৰিব নিবিচাৰে। ঘৰ তথা সমাজৰ মানুহৰ লগত মনৰ ভাব আদান-প্ৰদান কৰিব নোৱাৰি বৃদ্ধলোকসকল নিঃসঙ্গতাৰ বলি হৈ পৰে। বৃদ্ধ কালছোৱাত অতীত ৰোমন্থন কৰি ভাল পায়। অতীতৰ অভিজ্ঞতা মানুহ আনৰ আগত প্ৰকাশ কৰিবলৈ পালে আনন্দ পায়। কিন্তু প্ৰকাশ কৰিবলৈ মানুহ বিচাৰি নাপায়। সেয়ে বৃদ্ধকালত মানুহে কথা এযাৰ পাতিবলৈ মানুহ বিচাৰি হাবাথুৰি খায়। মানুহৰ জীৱনৰ এই বাস্তৱ চিত্ৰ ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াই গল্পটোত কলেজৰ অৱসৰপ্ৰাপ্ত অধ্যক্ষ 'নীৰেন' নামৰ ব্যক্তিজনৰ জৰিয়তে কলা সন্মত ভাবে উপস্থাপন কৰিছে।

গল্পটোৰ মূল চৰিত্ৰ অৱসৰপ্ৰাপ্ত অধ্যক্ষ নীৰেন। তেওঁৰ জীৱনলৈও আহে বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতাৰ যন্ত্ৰণা। চাকৰিৰ পৰা অৱসৰ লৈ ঘৰতে থাকিব লগা হোৱাত ল'ৰা-ছোৱালীৰ নীতি বিৰুদ্ধ কৰ্ম দেখিও মাত মাতব পৰা নাই। ভাও ধৰি মনে মনে থাকিবলৈ বাধ্য হৈছে- "মই ঠিক বুজিলো এই যে ঘৰখনলৈ সুবোধ আহিল, তাৰ মানে এটা লেঠা আহিল। ইয়াৰ মাজত গণ্ডগোল আছে।" (গাওঁত গৃহ, পৃ. ৯৪) বৃদ্ধকালত আত্মসন্মানৰে জীয়াই থাকিব বিচাৰে মানুহজনে। ল'ৰা-ছোৱালীৰ কথা লঘু হ'ব নিবিচাৰে। সেয়ে

তেও আত্মসন্মান বক্ষা কৰিবলৈ মনে মনে থাকে। “ইহঁতক মই বেছি কথা নকওঁ, ‘এ-দেউতা বুঢ়া মানুহ দেউতাৰ টেপ্তৰ লগত আমাৰ টেপ্তৰ” ইত্যাদি বুলি সিটো কোঠালিত সিহঁতে ভোৰভোৰাব, কথাবোৰ মই নুশুনিলেও মোৰ আত্মাটোৱে শুনিব, মই লঘু হ’ম, সৰু হ’ম, তেনেকুৱা অৱস্থা এটাত পেলোৱাৰ সুবিধা মই সিহঁতক নিদিওঁ।” (শ্ৰীমদ্ভগৱৎ, পৃ. ৯৫)

মানুহজনৰ বাবে যাতে আনে আমনি নাপাই এই ক্ষেত্ৰত তেওঁ যথেষ্ট সচেতন আছিল। সেয়ে সুবোধনৰ লগত কথাপাতি থাকোতে গীতাক দেখি সচেতন হৈ উঠিছে — “সুবোধক কব খোজা বাক্যটো আৰম্ভ নকৰি মই গীতাৰ চকুৰ ভাষা পঢ়িবলৈ চেষ্টা কৰিছোঁ। কি ? মই বিৰক্তিকৰ ভাবে বেছি কথা কৈছোঁ নেকি ? — তেন্তে পাছত সুবোধৰ আগত তাই ক’ব নেকি-

“দেউতাতো আজিকালি বৰ ব’ৰ হ’ল বুলি; ছি ছি ছি সেইটো কেতিয়াও হ’বলৈ দিব নোৱাৰোঁ।”

নীৰেন নামৰ ব্যক্তিজনে ডেকাকালতে বেয়া পাইছিল বৃদ্ধসকলে কথা পাতি ব্যতিব্যস্ত কৰা কাৰ্যক। সেয়ে তেওঁ পত্নীৰ আগত কৈছিল- “আমি বুঢ়া হ’লে এই বুঢ়া-বুঢ়ী বিলাকৰ নিচিনা টিপিকেল বুঢ়া-বুঢ়ী নহ’ও। অতুল গীতাহঁতে আমাক অশান্তি দিয়াৰতো কোনো সুবিধাই নাপাব বৰঞ্চ আমি সদায়ে লক্ষ্য কৰি থাকিব লাগিব সিহঁতে আমাৰ পৰা কিবা অশান্তি পাইছেনেকি ?” (শ্ৰীমদ্ভগৱৎ, পৃ. ১০২)

পত্নীৰ মৃত্যুৰ পাছত নীৰেন নামৰ ব্যক্তিজনে নিঃসঙ্গতাই কোঙা কৰি পেলাইছে। তেওঁৰ ল’ৰা-ছোৱালীৰ লগত কথা পাতিবৰ মন যায় কিন্তু ল’ৰা-ছোৱালীৰ তেওঁৰ লগত কথা পাতিবৰ সময় নাই।

আত্মসন্মানেৰে যিজন ব্যক্তিয়ে জীৱন অতিবাহিত কৰিম বুলি ভাবে সেইজন ব্যক্তিয়েই বৃদ্ধকালত অনিচ্ছাকৃত ভাবেই ল’ৰা-ছোৱালীৰ দ্বাৰা পৰিচালিত হ’ব লগা হৈ তীব্ৰ মানসিক আঘাত পাই। পত্নীৰ আগত তেওঁ কৈছিল- “আমি ঘৰৰ গৃহস্থ হৈ বহি থকিম আৰু প্ৰয়োজন হ’লে সিহঁতে আহি আমাৰ সহায় বিচাৰিব, পৰামৰ্শ বিচাৰিব।” (শ্ৰীমদ্ভগৱৎ, পৃ. ১০০)

মানুহজনে আত্মসন্মান বজাই ৰখাৰ আশাত পুতেক-জীয়েকৰ ভুল কৰ্ম দেখিও মাত মাতিলে বিচৰা নাই— “সিহঁতক কিবা এয়াৰ ক’ম- সিহঁতে মোক পুৰণিকলীয়া, ঠেক মনৰ মানুহ বুলি মই নুশুনাকৈ তৰ্জন-গৰ্জন কৰিব, সেইটো হ’বলৈ দিব নোৱাৰোঁ।” (শ্ৰীমদ্ভগৱৎ, পৃ. ১০৬)

আত্মসন্মান বজাই ৰাখি নিজস্বভাবে জীৱন অতিবাহিত কৰিবলৈ আশা

কৰা ব্যক্তিজনে সেয়ে ল’ৰা-ছোৱালী দুটাই তেওঁক আবেলি ঘৰৰ পৰা ওলাই ফুৰিবলৈ যাবলৈ বাধ্য কৰাত মানুহজনে বেজাৰ পায়— “ঠিক আছে, যাম ওলাই। উঠিলোঁ। উঠোতে মোৰ গোটেই গাটো, গোটেই মনটো জিকাৰ খাই উঠিল। মই গম পালোঁ মোৰ চকুযোৰ সেমেকিছে। চশমা খুলি চুৰিয়াৰ আগেৰে চকুৰ কোণ দুটা মচি ললোঁ।” (শ্ৰীমদ্ভগৱৎ, পৃ. ১০৮)

এনেদৰে কাকো আমনি কৰিব নিবিচৰা মানুহজনে শেষত মানুহ বিচাৰি হাহাকাৰ কৰিছে। পৰিস্থিতিৰ সন্মুখত নিজৰ মূল্যবোধক বিসৰ্জন দিছে। মানুহৰ ঘৰে ঘৰে যাবলৈ সংকোচ নকৰা হ’ল। নিঃসঙ্গতাই কোঙা কৰা জীৱনটোত সেয়ে তেওঁক ৰামপ্ৰসাদৰ ঘৰৰ আতিথ্যই মন পুলকিত কৰি তোলে। নিঃসঙ্গতা দূৰ কৰিবলৈ মানুহজনে মানুহ বিচাৰিবলৈ ধৰিলে, মূল চৰিত্ৰটোৰ বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতাৰ বৰ্ণনাই কৰুণ বসৰ সঞ্চাৰ কৰিছে। সকলো মানুহৰ জীৱনলৈ আহে এই নিঃসঙ্গতাৰ পৰা অহা বিষাদবোধ। এই বিষাদবোধক কলাত্মক ৰূপ দিয়াত গল্পটোৰ সৌন্দৰ্য বৃদ্ধি পাইছে।

গল্পটোৰ বৰ্ণনামূলক আকৰ্ষণীয়। পৰিপাটী কাহিনী এটা নাই যদিও নীৰেন নামৰ চৰিত্ৰটোৰ জৰিয়তে পৰিস্থিতি একোটাৰ বৰ্ণনাৰে গল্পটো আৰম্ভ হৈছে আৰু শেষো হৈছে। মানুহে পৰিস্থিতিৰ ওচৰত নিজৰ চিন্তাধাৰাক কিদৰে বিসৰ্জন দিব লগা হয় তাক গল্পটোত সুন্দৰভাবে উপস্থাপন কৰিছে। নীৰেন নামৰ ব্যক্তিজনে আত্মসন্মানেৰে নিজৰ জীৱন অতিবাহিত কৰিব বুলি থকা দৃষ্টিভংগীক পুতেক-জীয়েকৰ ওচৰত সমৰ্পন কৰিব লগা হ’ল। নিজৰ চিন্তাধাৰাৰ পৰা আঁতৰি আহিব লগা হোৱাত ব্যক্তিজনে যি মানসিক অৱস্থাৰ সৃষ্টি হৈছিল তাক অতি মৰ্মস্পৰ্শী ভাবে উপস্থাপন কৰিছে— “উঠোতে মোৰ গোটেই গাটো, গোটেই মনটো জিকাৰ খাই উঠিল। মই গম পালোঁ, মোৰ চকুযোৰ সেমেকিছে। চশমা খুলি চুৰিয়াৰ আগেৰে চকুৰ কোণ দুটা মচি ল’লোঁ। কলেজৰ বিদায় সভাত উপহাৰ দিয়া আৰু কেতিয়াও ব্যৱহাৰ নকৰিম বুলি থৈ দিয়া লাঠিডাল হাতত ললোঁ। কেনেকৈ লাঠিডালত ধৰিলে সুবিধা হয় কেইবাবাৰো বেলেগ বেলেগ ভংগীত পৰীক্ষা কৰি চালোঁ, তাৰ পাছত এটা সুবিধাজনক ভংগীত লাঠিডালত খামোচ মাৰি ধৰিলোঁ বাটলৈ ওলাবৰ সময়ত মোৰ গোটেই গাটো আকৌ কঁপিল।” (শ্ৰীমদ্ভগৱৎ, পৃ. ১০৮)

গল্পটোত বৃদ্ধকালৰ নিঃসঙ্গতাবোধৰ বৰ্ণনাই কৰুণ বস সঞ্চাৰ কৰিছে। মানুহক আমনি নিদিও বুলি ডেকাকালত

সংকল্প কৰা মানুহজনে বাৰাণ্ডাৰ হেলনীয়া চকীখনত বহি শেষত মানুহৰ মাত এষাৰ পাবৰ বাবে হাহাকাৰ কৰি উঠিছে। “মোক মানুহ লাগে। অনবৰত মোক ওচৰত মানুহ একোজন লাগে। নহ'লে মই বৰ কষ্ট পাওঁ। মানুহ নাথাকিলেই, ডিঙিত শব্দহে নাথাকিলে নিঃসঙ্গতাৰ সুবিধা পালেই এটা সম্পূৰ্ণ জীৱনৰ বেদনাই মোক হেঁচি ধৰে, যন্ত্ৰনাত মই হাহাকাৰ কৰি উঠোঁ।

মোক মানুহ লাগে। সৌজন —

“হেৰা সেয়া ধীৰেণে নেকি হে?.....

.....এহ যাবা দিয়াচোন বজাৰলৈ। বজাৰখন কিবা উঠি যাবনে?” নীৰেন নামৰ ব্যক্তিজনৰ এই ভাবধাৰাৰ মাজতে লুকাই আছে অসহনীয় নিঃসঙ্গ যাতনা। এই নিঃসঙ্গতাবোধৰ যি কাৰুণ্য সেই কাৰুণ্য সকলোৰে জীৱনৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। এই ভাবধাৰাক কলাত্মকভাবে উপস্থাপন কৰাত গল্পটো আৰ্কাষণীয় হৈছে। চিত্ৰধৰ্মী আৰু ব্যঞ্জনাত্মক বৰ্ণনাই গল্পটোৰ সৌন্দৰ্য বৃদ্ধি কৰিছে।

চিত্ৰধৰ্মী বৰ্ণনা : “দেহ মন দুয়োটাকে সংকুচিত কৰি সুবোধ বহিল। মোৰ কথাৰ উত্তৰত সি লাজুকীয়া, সেমেকা হাঁহি এটা মাৰিলে। তাৰ পাছত অলপ সময় কাৰো মুখত মাত নাই। হঠাতে মোৰ মনত খেলালে- এইটো বেয়া কথা। মই গৃহস্থ, মই কথা-বতৰা আৰম্ভ কৰি নতুন অতিথিৰ জড়তা নাইকিয়া কৰিব লাগে।” (ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ গল্প সমগ্ৰ, ৯৬ পৃ)

“মই প্ৰায়েই বাটৰ সিটো দাঁতিয়েদি সিফালৰ মানুহ

কেইঘৰৰ বেৰত যেন ছবিৰ প্ৰদৰ্শনী হৈছে তেনে এটা ভাবেৰে লৰালৰিকৈ খোজ পেলাওঁ আৰু মনে মনে অস্থিৰ হৈ হিচাপ কৰোঁ— এটা ফাঁক গ'ল— বাচিলোঁ, দুটা ফাঁক গ'ল— বাচিলোঁ, তিনিটা —” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ, পৃ. ১০১) “মই তালৈ মোৰ সমগ্ৰ চেতনা থুপ খুৰাই চাই থাকোঁ।”

ব্যঞ্জনাত্মক বৰ্ণনাঃ “হঠাতে গীতাৰ হম ছায়েঙ্গ পঢ়াৰ প্ৰতি তীব্ৰ আগ্ৰহ হ'ল।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ, পৃ. ১১০)

“সকলো “কেনিবা ওলাই যায়।” উত্তৰবোৰ ঘৰখনৰ সৰু ল'ৰা-ছোৱালীবোৰে দিয়ে।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ, পৃ. ১১১)

“মানুহ নাথাকিলেই, ডিঙিত শব্দহে নাথাকিলে নিঃসঙ্গতাৰ সুবিধা পালেই এটা সম্পূৰ্ণ জীৱনৰ বেদনাই মোক হেঁচি ধৰে।” (প্ৰাণ্ডক্ত গ্ৰন্থ, পৃ. ১১১)

### সামৰণি :

গল্পটোত মানুহৰ মনৰ নিঃসঙ্গতাক উপস্থাপন কৰাত গল্পকাৰ সফল হৈছে। সকলো মানুহেই জীৱনত এনে পৰিস্থিতিৰ সন্মুখীন হয়। এই অৱস্থাতোক মানুহে গ্ৰহণ কৰিবই লাগিব। সেই নিঃসঙ্গতাবোধক গ্ৰহণ কৰিব পাৰিলেই জীৱন যুদ্ধত জয়ী হ'ব পাৰি, নহ'লে নিঃসঙ্গতাৰ পীড়াই বৰ কষ্ট দিয়ে। এনেদৰে বিষয়বস্তুৰ সু-সমন্বয় আৰু জীৱনৰ বাস্তৱতাক সুন্দৰভাৱে গল্পটোত উপস্থাপন কৰিছে। সেয়ে অসমীয়া গল্প সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত ‘গ্ৰহণ’ গল্পটোক ড° ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ এক অপূৰ্ব সৃষ্টি বুলি ক'ব পাৰি। □

### সহায়ক গ্ৰন্থ :

- ১। হাজৰিকা, অনন্তঃ ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ গল্প সমগ্ৰ, বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১, চতুৰ্থ প্ৰকাশ, ২০১৫
- ২। বৰুৱা, প্ৰ। দ কুমাৰঃ অসমীয়া চুটিগল্প অধ্যয়ন, ডিব্ৰুগড়, বনলতা, প্ৰথম প্ৰকাশ, নবেম্বৰ, ১৯৯৫।
- ৩। গহৰ, ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়া, প'লাৰ্ড, গুৱাহাটী-৩, দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ১৯৭৮ চন।

## অসমীয়া চুটিগল্পত আন্দোলনৰ প্ৰতিচ্ছবি : এক আলোচনা

(বিশেষ উল্লিখন চৈয়দ আব্দুল মালিকৰ ‘পোৰা গাঁৱত পহিলা ব’হাগ’,  
যতীন্দ্ৰ কুমাৰ বৰগোহাঞিৰ ‘পিতৃ’ আৰু অৰূপা পটংগীয়া কলিতাৰ ‘অস্থি’)

### সংক্ষিপ্তসাৰ :



ড° ভাস্কৰজ্যেৎ বৰা

অসমীয়া চুটিগল্পসমূহত বিভিন্ন বাস্তৱ ঘটনাৰ সমান্তৰালভাৱে বিভিন্ন সময়ত হোৱা আন্দোলনৰ চিত্ৰও কিছুমান গল্পত প্ৰতিফলিত হোৱা যায়। তেনে শাৰীৰ গল্পৰ ভিতৰত চৈয়দ আব্দুল মালিকৰ ‘পোৰা গাঁৱত পহিলা ব’হাগ’, যতীন্দ্ৰ কুমাৰ বৰগোহাঞিৰ ‘পিতৃ’, অৰূপা পটংগীয়া কলিতাৰ ‘অস্থি’ অন্যতম। গল্পকেইটাৰ মূল বিষয়বস্তু আন্দোলন। আন্দোলনৰ কাৰণ, আন্দোলন কেনেদৰে হৈছিল, মানুহবোৰৰ অৱস্থা সেই সময়ত কি হৈছিল, নিজৰ মাটি বক্ষাৰ বাবে মানুহবোৰ কেনেদৰে ওলাই আহিছিল তাৰ বিস্তৃত বিৱৰণ পোৱা যায়। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰখনত উল্লিখিত গল্প তিনিটাৰ মাজেৰে আন্দোলনৰ প্ৰতিচ্ছবি কিদৰে চিত্ৰিত হৈছে সেই বিষয়ে আলোচনা কৰা হ’ব।

### বীজশব্দ :

আন্দোলন, বাংলাদেশী, ছাই, ঘৰ, মিলিটেৰী।

### ০.১ আৰম্ভণি :

চৈয়দ আব্দুল মালিকে আৱাহন যুগতে গল্পকাৰ হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰিছিল। ১৯৩৫ চনত ‘জেউতি’ আলোচনীত তেখেতৰ প্ৰথমটো চুটিগল্প ‘বন্ধ কোঠা’ প্ৰকাশ পায়। বঙাগড়া, মৰহা পাপৰি, এজনী নতুন ছোৱালী, পোৰা গাঁৱত পহিলা ব’হাগকে ধৰি প্ৰায় পঁচিশখন গল্প সংকলন পোৱা যায়। ‘পোৰা গাঁৱত পহিলা ব’হাগ’ গল্পটিত আন্দোলনকাৰীসকলে ঘৰ-দুৱাৰ জ্বলাই দিয়া, মানুহ হত্যা কৰা আদিৰ বিৱৰণ দাঙি ধৰাৰ লগতে ফজলৰ কৃষিকৰ্মত পুনৰ আগবাঢ়ি অহা কাৰ্যই নতুন আশাৰ পাতনি মেলিছে।

অসমীয়া গল্প সাহিত্যত যতীন্দ্ৰ কুমাৰ বৰগোহাঞিৰ অৱদান উল্লেখযোগ্য। তেখেতৰ অন্যতম সৃষ্টি ‘পিতৃ’ গল্পটি। ‘পিতৃ’ গল্পটোত আন্দোলনৰ বৰ্ণনা কৰাৰ লগতে জীৱন কৃষ্ণ আৰু তেওঁৰ পিতৃৰ অকুণ্ঠ স্নেহ গল্পটিত প্ৰথমৰ পৰা শেহলৈকে বিস্তাৰিত হৈ আছে।

অসমীয়া সাহিত্যিক সমৃদ্ধিশালী কৰা এগৰাকী লেখক অৰূপা পটংগীয়া কলিতা। মৰুয়াত্ৰা আৰু অন্যান্য, মৰুভূমিত মেনকা আৰু অন্যান্য, দেও পাহাৰৰ ভগ্নস্তম্ভকে ধৰি প্ৰায় বাৰখন গল্প সংকলন পোৱা যায়। তেখেতৰ আন্দোলনক লৈ ৰচনা কৰা এটি গল্প হৈছে ‘অস্থি’। ‘অস্থি’ গল্পত আন্দোলনকাৰীসকলে আন্দোলন কেনেদৰে কৰিছে, বাংলাদেশীয়ে কেনেকৈ ঠাইসমূহ দখল কৰিছে আৰু ৰাজনৈতিক চিত্ৰপট বৰ্ণনা কৰিছে।

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ  
এল, টি, কে, মহাবিদ্যালয়  
আজাদ, উত্তৰ লক্ষ্মীমপুৰ - ৭৮৭০০১  
☎ ৯৩৬৫১৭৭২৬২  
✉ bjbora82@gmail.com

## ০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

আন্দোলনক বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ অসমীয়া সাহিত্যিকসকলে সাহিত্য ৰচনা কৰিছে। আমাৰ নিৰ্বাচিত এই গল্প তিনিটাৰ মাজেৰে আন্দোলনৰ চিত্ৰ কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে, কিয়নো ৰাইজে আন্দোলন কৰিবলগা হৈছে, সেই বিষয়ে আলোচনা কৰাই এই গৱেষণা পত্ৰখনৰ মূল উদ্দেশ্য।

## ০.৩ তথ্য আহৰণৰ উৎস :

গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্য উৎস হিচাপে সঞ্জীৱ পল ডেকাই সম্পাদনা কৰা 'অসম আন্দোলনৰ গল্প' গ্ৰন্থখনি লোৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে এই সম্পৰ্কত প্ৰকাশ পোৱা গ্ৰন্থ, প্ৰবন্ধৰ সহায় লোৱা হৈছে।

## ০.৪ বিষয়ৰ পৰিচয় :

### ০.৪.১ 'পোৰা গাঁৱত পহিলা ব'হাগ'ৰ কাহিনী :

চৈয়দ আব্দুল মালিকৰ 'পোৰা গাঁৱত পহিলা ব'হাগ' গল্পটিত আন্দোলনৰ ফলত এখন গাঁৱৰ ভয়ীভূত দৃশ্যৰ বৰ্ণনা কৰিছে। ফজলৰ এখন সুখৰ সংসাৰ আছিল। পৰিবাৰ আৰু স ৰু ল'ৰা-ছোৱালীকেইটাৰ সৈতে খেতি-বাতি কৰি জীৱন নিৰ্বাহ কৰিছিল। সময়বোৰ একেদৰে নাযায়। ফজলৰ লগতে গাঁওখনৰো তেনেকুৱাই হ'ল। বিদেশী খেদা আন্দোলনত গাঁওখন শেষ হৈ গ'ল। ফজলে নৈৰ সিপাৰৰ লালুং গাঁৱলৈ গৈছিল। ঘৰৰ মানুহে তাক

যাবলৈ মানা কৰিছিল। কিন্তু কথা নুশুনি নদীৰ সিপাৰৰ গোলোক মুদৈৰ পৰা আনি থোৱা টকাকেইটা দিবলৈ আৰু ভলুকা বাঢ়ৈৰ পৰা নাঙল আৰু কাঠৰ যুঁৱলিখন আনিবলৈ গুচি গৈছিল। ঘূৰি আহি সি দেখা পালে তাৰ ঘৰ-দুৱাৰ, পৰিবাৰ, ল'ৰা-ছোৱালী কোনো নাছিল। ফজলহঁতৰ ঘৰবোৰ কোনোবাই জ্বলাই দিলে। গাঁওখনৰো কোনো চিন চাব নাইকিয়া হ'ল। ঘৰলৈ আহি পোৰা ছাৰিবাৰিৰে সি একো নেদেখিলে। সি ছাইখিনি গছকিবলৈও তাৰ বেয়া লাগিল। হয়তু সেয়া তাৰ ল'ৰা-ছোৱালী দুটাৰ ছায়ো হ'ব পাৰে। গাঁওবিলাকত বাকী থকা মানুহবোৰক চৰকাৰে ব্যৱস্থা কৰা ৰিলিফ কেম্পলৈ লৈ গ'ল। ফজলো গ'ল। ৰিলিফ কেম্পত চৌৱম দিন থকাৰ পিছত সি গাঁৱলৈ ঘূৰি আহিল। চৰকাৰে দিয়া টিংপাত কেইচলাৰে ঘৰটো নিৰ্মাণ কৰি লৈছে। ফজলে গাঁওখনলৈ উভতি আহি মন কৰিছে যে তাৰ আগৰ চিনাকি পৃথিৱীখন একেবাৰে হেৰাই গ'ল। লাহে লাহে

মানুহবোৰে কৃষি কৰ্ম আৰম্ভ কৰিছে। ফজলৰ এইবোৰলৈ মন-কাণ নাই। ফজলৰ ভনী জেঁৱায়েকে পুনৰ কৃষি কৰ্মত হাত দিবলৈ বুজনি দিলে। লাহে লাহে ফজলেও মনটোক বুজনি দিলে। পুনৰ পথাৰলৈ যাবলৈ ওলাল। পথাৰলৈ যাওঁতে কাফনুৰ মুঙ্গি ফজলক নামাজ পঢ়ি আহোঁতে লগ পালে। কাফনুৰ মুঙ্গিয়ে খবৰ দিলে গফুৰৰ হেৰোৱা মাজু বোৱাৰীজনী ওলাল। ভৰিটো কটা গ'ল আৰু যোৱাৰাতি এটা পুত্ৰ সন্তানৰ জন্ম দিলে। ফজলৰ মনটো কিবা এটা ভাল লাগি গ'ল। গফুৰে ভাবিলে কেও কিছু নোহোৱা সেই মহিলাগৰাকী বা কেঁচুৱাটো বা নিজেই খাবলৈয়ো খেতি কৰিব লাগিব। গতিকে সি খৰখেদাকৈ পথাৰৰ ফালে গতি কৰিলে। সি পোৰাগাঁৱখনৰ সীমাৰ বাহিৰত থকা মাটিখিনিত পহিলা ব'হাগৰ বৰষুণৰ পানী গচকিলে।

### ০.৪.২ গল্পটোত চিত্ৰিত হোৱা আন্দোলনৰ চিত্ৰ :

'পোৰা গাঁৱত পহিলা ব'হাগ' গল্পটোত মূলতঃ আন্দোলনৰ ফলত গাঁও বা গাঁৱৰ বাসিন্দাসকলৰ কেনেকুৱা অৱস্থাৰ সৃষ্টি হৈছিল তাৰ আভাস পোৱা যায়। ফজল গাঁওখনৰ বাসিন্দা। কৃষিকৰ্মই তাৰ প্ৰধান উপাৰ্জন। ঘৰখনত তাৰ পৰিবাৰ আৰু ল'ৰা-ছোৱালী কেইটা। ইতিমধ্যে গাঁওবোৰত গণ্ডগোল আৰম্ভ হৈছে। ফজলে নৈৰ সিপাৰৰ লালু গাঁৱলৈ যাবলৈ ওলাল। ঘৰৰ মানুহবোৰে তাক ঘৰ এৰি যাবলৈ মানা কৰিছিল। কিন্তু সি নুশুনিলে। ভেকাহি মাৰি ফজলে কৈছিল—

'মোক বুজাব নালাগে তহঁতবোৰে। খেদাইছে যদি, কাটিছে মাৰিছে যদি বিদেশীকহে কাটিছে। আমি কিবা বিদেশী নেকি?'

### ফজলৰ কথা শুনি ফজলৰ ছোৱালীজনীয়ে কৈছিল :

'জেলিলহঁতৰ গাঁওখন কিবা বিদেশীৰ গাঁও আছিল নেকি? সেইখন বোলে আমাৰ খনতকৈও পুৰণি মিঞাৰ গাঁও। তেওঁ তাৰ মানুহবোৰ কাটি মাৰি খাস্তাং কৰিলে। আটাইবোৰ ঘৰ জ্বলাই দিলে। নালাগে যাব ক'লৈকো।''

কিন্তু ফজল নাচোৰ বান্দা। সি একো নামানে। তাৰ মতে সিহঁত এই গাঁওখনত থকা বহু বছৰ হ'ল। তাৰ প্ৰমাণ দাঙি ধৰে হাইস্কুলখনে। কাৰণ হাইস্কুলখন প্ৰতিষ্ঠা হোৱাই পঞ্চাশ বছৰ অতিক্ৰম কৰিলে। তাত পাঠদানো হয় অসমীয়াতে। গতিকে চিন্তা কৰিব লগা নাই। ফজল গুচি গৈছিল নৈৰ সিপাৰৰ লালুং গাঁওখনলৈ। দুদিনৰ পিছত যেতিয়া ঘৰলৈ ঘূৰি আহিল তাৰ পৰিয়ালৰ সদস্য বা

গাঁওখনৰ কাকোকে লগ নাপালে। সি তাৰ ঘৰটো কোনখিনিত আছিল সেইয়াও চিনিব পৰা নাই—

‘সিহঁতৰ ঘৰ-বাৰী কোনখিনিত আছিল নিৰ্ণয় কৰিবৰ চেষ্টা কৰিলে সি। সকলো ঘৰ পুৰি একে বকমৰ ক’লা ছাই হৈ গৈছে। বুঢ়া মানুহ আৰু সৰু ল’ৰা-ছোৱালীবোৰো ঘৰবোৰৰ লগতে পুৰি ছাই হৈ গ’ল।’

ফজলে ঘৰত থকা নাৰিকল কেইজোপা দেখি তাৰ ভেটিটো নিশ্চিত কৰিলে। নাৰিকল কেইজোপাৰ পাতবোৰো জ্বলি গৈছিল। তাৰ ঘৰৰ ভেটিটোৰ ওপৰলৈ উঠিবলৈ বৰ অস্বস্তি অনুভৱ কৰিলে—

‘তাৰ সৰু ল’ৰা-ছোৱালী দুয়োটা পোৰা গ’ল। ছবছৰীয়া ছোৱালীজনী অৱশ্যে ঘৰৰ পৰা ওলাই লৰ মাৰি চোতালৰ আগ পাইছিলগৈ। কোনোবা এটাই একে ঘাপে কাটি দুটুকুৰা কৰিলে। আন এটাই ধৰফৰাই থকা টুকুৰাকেইটা জুইলৈ দলিয়াই পেলাই দি হাঃ হাঃ কে হাঁহি অন্যক কাটিবলৈ আগবাঢ়ি গ’ল। ফজলে পিছত শুনিছিল এইবোৰ কথা।’

ফজলৰ ছাইবোৰ গছকিবলৈ বেয়া লাগিল। হয়তো এই ছাইবোৰ তাৰ ল’ৰা-ছোৱালীকেইটাৰো হ’ব পাৰে। সি কিছু দূৰত বন্দুক লৈ থকা পুলিচ কেইটামান দেখা যেন লাগিল। তাৰ পিয়াহ লাগিছে। দূৰত থকা পুখুৰীটোৰ ফালে যাব খুজিছিল। কিন্তু পুলিচটোৱে তাক বাধা দিলে—

‘.....কেইবাটাও মানুহ কাটি তাত পেলাই দিছিল। লাচ চব পচি গৈছিল আৰু মানুহ চবে দা ছুৰীত লাগি থকা তেজবোৰো তাতে ধুইছিল। তাৰ পানী চব লাল হৈ গৈছিল।’

ফজলৰ খুব পিয়াহ লগা বুলি কোৱাত পুলিচটোৱে সিহঁতৰ কেম্পটোলৈ লৈ গ’ল। পানী এগিলাচ তালৈ আগবঢ়াই দিলে। সি চাৰি গিলাচ পানী খালে কিন্তু সি পানীবোৰত তেজ শুকাই গ’লে কেচেমা কেচেম গোন্ধ এটা পালে। পুলিচকেইটাই তাক ৰিলিফ কেম্পলৈ পঠাই দিলে। ৰিলিফ কেম্পৰ চিত্ৰ গল্পটিত এনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে—

‘কেম্পত থকা মানুহবোৰ কেইবাখনো বেলেগ বেলেগ গাঁৱৰ.....মানুহবোৰে কোনোৱে কাকো বিশ্বাস নকৰে। যেন সকলো কিছুমান চাৰ্কাচৰ জন্তু—ৰিং মাষ্টৰ অকণমান আঁতৰ হ’লেই ইটোৰ ওপৰত সিটো জঁপিয়াই পৰিব।’

চৈয়দ আব্দুল মালিকৰ পোৰা গাঁৱত পহিলা ব’হাগ গল্পটিত এনেদৰে আন্দোলনৰ ফলত সৃষ্টি হোৱা এক পৰিৱেশ ফুটি উঠিছে।

### ০.৪.৩ পিতৃ গল্পটোৰ বিষয়বস্তু :

আন্দোলনক লৈ ৰচিত যতীন্দ্ৰ কুমাৰ বৰগোহাঞিৰ ‘পিতৃ’ গল্পটি অন্যতম। আন্দোলনৰ ৰূপ দেখি জীৱন কৃষ্ণই ভয় খাইছে। সি ততাতৈয়াকৈ শিক্ষক কালি প্ৰসন্নৰ ওচৰ পালেগৈ। শিক্ষক কালি প্ৰসন্নৰ পৰা কোনো সুদুত্তৰ নাপালে। কাৰণ শিক্ষক কালি প্ৰসন্নয়ো মানুহখিনিক মানুহখিনিক বুজাব নোৱৰা বুলি জীৱন কৃষ্ণক স্পষ্টভাৱে কৈ দিলে। জীৱন কৃষ্ণই ততাতৈয়াকৈ ৰাইজ সমবেত হৈ থকা বৰনামঘৰ পালেগৈ। কোনোবা এজনে কৈ আছিল ৰাইজ শেষ নিশাই আপোনালোক নামঘৰত গোট খাব। যাৰ হাতত যি অস্ত্ৰ দা, কুঠাৰ, লাঠী, কোল, পচা, তৰোৱাল সকলো লৈ আহিব। ৰাইজৰ সিদ্ধান্ত সকলোৱে মানিব লাগিব। জীৱন কৃষ্ণই কথাবোৰ মানি ল’ব পৰা নাই। তথাপিও নামঘৰত সমবেত হোৱা ৰাইজক উদ্দেশ্য ক’বলৈ ধৰিলে আচলতে যিবোৰ কাম কৰাৰ পৰিকল্পনা কৰা হৈছে সেইবোৰ আইন বিৰোধী। মানুহবোৰে জীৱন কৃষ্ণৰ কথাবোৰ শুনিলে কিন্তু মানুহবোৰে কথাবোৰ মানি নল’লে। কথাবোৰ কোৱাৰ কাৰণে ৰাইজে তাক শাস্তিৰ বিধান দিলে। শাস্তি মতে জীৱনেই সন্মুখত পোৱা প্ৰথম ঘৰটোত জুই দিব লাগিব। নিশা নৌপুৱাওঁতেই নামঘৰৰ ডবা কোবাব লাগিব। জীৱন কৃষ্ণই প্ৰতিবাদ কৰিব খুজিছিল সি নোৱাৰিলে।

পুৱাই সি হাতত যাঠিডাল লৈ নামঘৰলৈ আগবাঢ়িল। গাটো ধুম বুলি ভাবিও নুধুলে, ইমান অপবিত্ৰ কাম কৰিবলৈ গা ধুই যোৱাৰ প্ৰয়োজনবোধ নকৰিলে। সি মন কৰিলে তাৰ পাছে পাছে দেউতাকো গৈ আছে। নামঘৰৰ ডবাটোত সেৱা এটা কৰি সৰ্বশক্তিৰে ডবাটো কোবাবলৈ ধৰিলে। ডবাৰ মাত শুনিয়েই গাঁৱৰ মানুহ ওলাই আহিল। সকলোৱে ডবা-কাঁহ লৈ শোভাযাত্ৰা কৰি আগবাঢ়িল। গাঁওবুঢ়াৰ নিৰ্দেশমৰ্মে প্ৰথম ঘৰটোত সিয়ে জুই দিলে। মানুহ এজনে খেদি আহিছিল। খেদি অহা দেখি জীৱন কৃষ্ণৰ পিতৃ বৈষ্ণৱ ভকতজনে যাঠি পাটেৰে বুকু শেলি পেলালে। যাকে য’তে পালে মাৰিলে। দিনৰ দহমান বজাত সি দেখা পালে পিটনিখন ৰঙা হৈ গ’ল। সেই সময়তে দেখা পালে সিহঁতৰ ফালে দুটা মানুহ দৌৰি আহিছে। সি এটাক চিনি পালে। তাৰ পৰাই সি শাক-পাচলি ত্ৰয় কৰে। দেউতাকে যাঠিডাল

পোনাই ল'লে। পুতেকক আঁৰ কৰি বাপেকে বুকুখন পাতি দিলে। জীৱন কৃষ্ণই যাঠিডাল টানি নমাই সিহঁতক পলাবলৈ ক'লে। এইবোৰ কথাই তাক আমনি কৰিলে। পুৱাই সি গুৱাহাটীলৈ ওলাই আহিল। তিনিবছৰমান সি গাঁৱলৈ যোৱা নাই। হঠাৎ এদিন দেউতাক তাৰ ওচৰ পালেহি। মাকৰ অসুখ বেছি। গতিকে সি যাব লাগে। সিহঁতৰ ঘৰলৈ যোৱা ৰাস্তাটো পানীত ডুবি থকাৰ কথা সি বাতৰি কাগজত পঢ়িছে। দেউতাক কেনেদৰে আহিলে বুলি সোধাত দেউতাকে মিঞৰ দলঘাঁহ কটা গুটীয়া নাৱত আহিলে বুলি জনালে। গুৱাহাটীৰ পৰা আহোঁতে দেউতাকক তাৰ সিদ্ধান্তৰ কথা জনালে যে সি নগাঁৱতে ওকালতি কৰিব। গুৱাহাটীৰ পৰা দেউতাকৰ লগত জাগীৰোডলৈ বাছেৰে আহি ৰাস্তাত পানী বাগৰা ঠাইলৈ টেক্সি এখন ভাড়াত লৈ আহিল। দেউতাকে হাত চাপৰি মাৰি কাৰোবাক মাতিলে। কিন্তু নুশুনিলে চাগে। কালু মিঞ বুলি মতাত কালুমিঞ আৰু পুতেকে নাওখন চপাই আনিলে। জীৱন কৃষ্ণই দেউতাকক সুধিলে দেউতা সেই কালুমিঞইনে। দেউতাকে ক'লে সেই দুটাক যে মৰা নহ'ল। জীৱন কৃষ্ণই নাৱৰ পৰা নামিবৰ সময়ত কালু মিঞক দহ টকা এটা আগবঢ়াই দিলে। কিন্তু কালু মিঞই নল'লে। কৃতজ্ঞতা জনাই গুচি গ'ল। দুৰ্গণিৰ পৰা ভাহি আহিছে কালু মিঞৰ ভাটিয়ালী সুৰ। জীৱন কৃষ্ণক বাপেকে সাৱটি ধৰিছে। দুয়োটাৰ চকুৰ পৰা চকুপানী ওলাই আহিছে।

#### ০.৪.৪ গল্পটোত প্ৰতিফলিত আন্দোলনৰ চিত্ৰ :

গাঁৱৰ মানুহে আন্দোলনত নাহে। খবৰটো পাই জীৱন কৃষ্ণই দৌৰি শিক্ষক কালি প্ৰসন্নৰ ওচৰলৈ গ'ল। মানুহবোৰক বুজনি দিবলৈ কালি প্ৰসন্নক অনুৰোধ জনালে :

‘নহ'লে চাৰ কালিলৈ ছালত শগুণ পৰিব। সৰ্বনাশ হ'ব ছাৰ। সৰ্বনাশ হ'ব।’<sup>১৯</sup>

কিন্তু কালিপ্ৰসন্নই হাত দাঙি দিলে। কালিপ্ৰসন্ন মাষ্টৰৰ পৰা বিশেষ সঁহাৰি নাপাই ৰাইজ সমবেত হৈ থকা বৰ নামঘৰ পালেগৈ। কোনোবা এজনৰ কথা জীৱন কৃষ্ণৰ কাণত পৰিল—

‘ৰাইজ কালিলৈ শেহ নিশাই ৰাইজ গোট খাব নামঘৰত। যাৰ হাতত যি অস্ত্ৰ আছে সকলো লৈ আহিব। দা, কুঠাৰ, লাঠী, কোল, পচা, শেল, তৰোৱাল, মেচি দা যি আছে। যাৰ একো নাই, সিও এনেয়ে নাথাকিব। কেৰাচিন, পেট্ৰ'ল, ডিজেল যি আছে লৈ আহিব...’<sup>২০</sup>

এই কথাবোৰ শুনি জীৱনকৃষ্ণৰ একেবাৰে ভাল লগা নাই। সি নামঘৰলৈ সোমাই গ'ল। এজনে ঘোষণা কৰিলে ৰাইজৰ এই সিদ্ধান্ত যদি কোনোবাই বাহিৰত প্ৰকাশ কৰে তেতিয়া চৰম শাস্তি প্ৰদান কৰা হ'ব। জীৱন কৃষ্ণই ভাবিলে সমাজখনক এনেকুৱা হ'বলৈ দিব নোৱাৰি। কিন্তু কি কৰিব? মৰসাহ কৰি ৰাইজক বুজাবলৈ চেষ্টা কৰিলে,

‘ৰাইজ আপোনালোকে যিবোৰ কাম কৰাৰ কথা কৈছে, সেই কথাবোৰ আইনৰ চকুত গুৰুতৰ অপৰাধ। এনে অপৰাধৰ বাবে আমাৰ আইন মতে মানুহৰ প্ৰাণদণ্ড হয়।

ৰাইজ আইন আমি হাতৰ মুঠিত কিয় ল'ব লাগে? আইন অনুসৰি কাম কৰিবলৈ আমাৰ পুলিচ আছে, চৰকাৰ আছে। আমি দাবী কৰি আহিছোঁ চৰকাৰক, চৰকাৰে দায়িত্ব পালন কৰক।’

‘আমি যদি এই নিৰীহ দুখীয়া মানুহখিনিৰ ঘৰ-বাৰী জ্বলাই দিওঁ তেন্তে সিহঁতৰ অৱস্থা কি হ'ব? সিহঁতৰ মাটি-বাৰীখিনি যদি কাটি লওঁ সিহঁতে খাব কি? সিহঁতক যদি খেদিও দিওঁ তেন্তে যাব ক'লে? সিহঁতে কাৰো অন্যায় নকৰাকৈ দুবেলা দুমুঠি অৰ্জন কৰিছে।’<sup>২১</sup>

জীৱনকৃষ্ণৰ এই কথাবোৰ শুনি মানুহবোৰে কিবা এটা বুজি পালে যদিও কোনেও সঁহাৰি নিদিলে। লিকচন ওৰফে দণ্ডপাণি দেউৰীয়ে চিঞৰি চিঞৰি ক'বলৈ ধৰিলে—

‘আমি এই কথাবোৰ শুনি যদি এতিয়া বহি থাকিবই লাগে তেন্তে ইমানদিন কৰিলোঁ কি? এই জীৱনৰ কথাবোৰ শুনাত ভাল, কিন্তু এইবোৰ শুনি সেই মানুহবোৰেহে ভাল পাব। আমাৰ মাটি কোনোবাই দখল কৰিছে। আমি ভালদৰে কৈছোঁ। নাই যোৱা। গতিকে আমি জোৰ কৰি হ'লেও খেদাম।’<sup>২২</sup>

দণ্ডপাণি দেউৰীয়ে ক'লে যে জীৱনকৃষ্ণই আবোল তাবোল বকিছে। গতিকে তাৰ শাস্তি হ'ব লাগে। সিয়েই প্ৰথমতে পোৱা ঘৰটোত জুই দিব লাগিব আৰু সন্মুখত পোৱা মানুহটোক সিয়েই কাটিব লাগিব। দেউৰীৰ এই কথা সিদ্ধান্ত হৈ গ'ল। গাঁওবুঢ়াই মোহৰ মাৰিলে। পুৱা নহওঁতেই সি নামঘৰত ডবা কোবাব লাগিব। জীৱন কৃষ্ণই কিবা ক'ব বিচাৰিছিল কিন্তু কোনেও তাৰ কথা নুশুনিলে।

ৰাতিটো তাৰ টোপনি নাছিল। সি চিন্তা কৰিলে সি ক'বলৈ পলাই যাব নেকি? পলাই গ'লে ঘৰখনৰ অৱস্থা কি হ'ব? এইবোৰ ভাবি থাকোতেই কুকুৰাই ডাক

দিলে। সি উঠি পোনে পোনে ভঁৰালৰ পৰা যাঠিডাল নমাই হাতেৰে খামুচি নামঘৰলৈ আগবাঢ়িল। পদূলিমুখৰ পৰা ঘূৰি আহি মাকক মাত এযাৰ লগাই গ'ল। পদূলিমুখৰ পৰাই সি দেখা পালে তাৰ পাছে পাছে দেউতাকো আহি আছে। সি নামঘৰলৈ গৈ ডবা কোবালে। ডবাৰ মাত শুনি সকলো ওলাই আহিল। জীৱন কৃষ্ণৰ মানসিক দ্বন্দ্ব গল্পকাৰে গল্পটোত এনেদৰে চিত্ৰিত কৰিছে—

‘...প্ৰভু তুমি ৰুদ্ৰই হোৱা বা ব্ৰহ্মাই হোৱা বা কৃষ্ণই হোৱা এদিনলৈ অন্ততঃ মোক অন্ধ কৰি দিয়া। মই যাতে কটা মানুহৰ তেজ নেদেখোঁ।’<sup>১১</sup>

তাৰ পিছত সি যাঠিডাল লৈ আগবাঢ়ি গ'ল। সি দেখা পালে সিহঁতৰ গাঁৱৰ ডেৰশমান মানুহ আহিছে। সিহঁতৰ মৌজাটোত প্ৰায় আঢ়ৈশখন গাঁও আছে। প্ৰত্যেকৰে পৰা যদি সিমান আহে তেতিয়া হ'লে কিমান হ'ব বাকু? এই কথাটো ভাবি তাৰ ভয়ো লাগিল। আন্দোলনকাৰীসকল ওলাই যোৱাৰ দৃশ্য এনেদৰে বৰ্ণিত হৈছে—

য'সি দেখা পালে শোভাযাত্ৰাৰ দৰে মানুহখিনি ওলাইছে। নামঘৰৰ ডবাটো আনি গাড়ীত তুলি দিলে। শংখ বাজিল, ঘণ্টা বাজিল। ডবা বাজিল, বৰ কাঁহে গমগমনি তুলিলে। ভোৰতাল বজাই আগবাঢ়িল এৰাতিৰ বাবে হোৱা গায়ন বায়নৰ দল।’<sup>১২</sup>

জীৱনকৃষ্ণই দেখা পালে শাৰী শাৰী জুপুৰী থকা চাপৰিটো। গাঁওবুঢ়াই তাক আগবাঢ়িবলৈ ক'লে আৰু সি সন্মুখত থকা পঁজাটোত জুই লগাই দিলে। ঘৰটো জ্বলি উঠা দেখি চাৰিওফালে হুৱাদুৱা লাগিল—

‘সি সন্মুখলৈ দৌৰ দিলে। হাতৰ জোঁৰডাল জ্বলাই দিলে। সন্মুখতে পঁজাঘৰটোত সি জুই দিলে। কেউফালে চিঞৰ-বাখৰ লাগি গ'ল লগে লগে। ঘৰটোত জুই জ্বলি উঠা সময়তে দুৱাৰ খুলি হাতত আঁকোৰা দাখন লৈ খেদি আহিছিল মানুহটোৱে। তাৰ ফালে খেদি অহা মানুহটোলৈ জোঁৰডাল পেলাই ধৰি গুজি দিলে জীৱনকৃষ্ণই। তথাপি সি খেদি আহিল। জীৱনকৃষ্ণই দেখা পালে ঠিক তেনেতে যাঠী এপাটে তাৰ বুকুৱে পিঠিয়ে শালি পেলালে। সি আটাই পাৰি দৌৰ দিব খুজিছিল হয়তো। কিন্তু বাগৰি পৰিল হামখুৰি খাই। জ্বলি থকা ঘৰটোৰ পৰা আৰ্ত চিঞৰ ভাহি আহিল। এটা ল'ৰা ওলাই দৌৰ দিছিল। তাকো যাঠী মাৰি বগৰাই দিলে।’<sup>১৩</sup>

আন্দোলনকাৰীসকলে এফালৰ পৰা ঘৰবোৰ পুৰি পেলালে। মানুহবোৰ পিটনি এখনৰ ফালে দৌৰিবলৈ ধৰিলে।

তাৰ পৰৱৰ্তী দৃশ্যটো গল্পটোত এনেদৰে চিত্ৰিত হৈছে—

‘হাতে হাতে কোল, শেল, যাঠী, দা, কৃপান, দুটামানৰ হাতত খজা বন্দুক। শেষ পৰ্বটো আৰম্ভ হ'ল দিনৰ দহ বজাত। পিটনিখনৰ পানী ৰঙা হৈ গ'ল।’<sup>১৪</sup>

জীৱনকৃষ্ণই দেখা পালে সিহঁতৰ ফালে দুটা মানুহ দৌৰি আহিছে। সি ডাঙৰটোক চিনি পালে। সদায় শাক পাচলি কিনি। নাম তাৰ কালু মিঞা। জীৱন কৃষ্ণৰ দেউতাকে যাঠীডাল তাৰফালে পোনাইছিল যদিও বাপেকে হাতযোৰ কৰি পুতেকক আঁৰ কৰি বুকুখন পাতি দিলে। জীৱনকৃষ্ণই সিহঁতক পলাবলৈ ক'লে।

লাহে লাহে আন্দোলনকাৰীসকল স্ফান্ত হ'ল। ইয়াৰ পিছৰ চিত্ৰ এনেদৰে চিত্ৰিত হৈছে—

‘আধা পোৰা খুঁটাবোৰৰ মাজেদি যেন সমগ্ৰ চাপৰিখনৰ জঁকাটো ওলাই পৰিল। অ'ত-ত'ত অসহায় আধাপোৰা কুকুৰ, ছাগলী, গৰুবোৰ যন্ত্ৰণাত টেটাইছে। গাঁওবুঢ়াই হুকুম দিলে, ‘আধামৰাবোৰ পূৰা মাৰি থৈ আহ।’<sup>১৫</sup>

তাৰ পিছত জীৱনকৃষ্ণ গুৱাহাটীলৈ গুচি গ'ল। মাকৰ অসুখৰ খবলৈ দিবলৈ দেউতাক গৈ গুৱাহাটী পালেগৈ। দেউতাকৰ লগত ঘূৰি যাওঁতেই পানী হোৱাৰ বাবে সেই কালু মিঞাই নাৱেৰে ঘৰত থৈ আহিল।

#### ০.৪.৫ ‘অস্থি’ গল্পৰ বিষয়বস্তু :

অৰুপা পটংগীয়া কলিতাৰ ‘অস্থি’ গল্পটোত আন্দোলনৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হৈছে। ৰূপহী গাঁৱৰ এজন লোকক কোনোবাই হত্যা কৰিছে। মানুহজনৰ নাম বগীৰাম গায়ন। কেও কিছু নোহোৱা গায়নক গাঁৱৰে মানুহে ভাল পাইছিল। তেওঁ আছিল স্পষ্টবাদী আৰু অন্তৰ চুই যোৱাকৈ গীত পৰিৱেশন কৰিব জানিছিল। গায়ন নোহোৱাটো ৰূপহী গাঁৱৰ বাবে বৰ দুৰ্ভাগ্যজনক। গায়নক গধুৰ কিবা বস্তুৰে মৰিওৱাৰ ফলত মগজুৰ পৰা জুলীয়া অংশ ওলাই আহিছে। তেজৰ ডোঙাত তেওঁৰ মুখখন থেকেচা খাই পৰি আছে। মানুহবোৰে ফুচফুচাই কথা পাতিছে কামৰূপ, শিৱসাগৰ, তেজপুৰ, দুলিয়াজানত তেজৰ নৈ বৈছে। লাহে লাহে গায়নৰ মৃতদেহটো পচিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে। এদিনৰ বিজাৰ্ভৰ ফালে দেখিলে বসন্ত গোৱালৰ গৰুৰ হেৰেলনি, সৰস্বতীৰ মাকৰ কান্দোন, কাৰণ বিজাৰ্ভত কোনোবাই জুই জ্বলাইছে। গায়নক কোনে মাৰিলে নিশ্চিত নহয়। কোনোবাই কৈছে বাংলাদেশীয়ে মাৰিলে, কোনোবাই কৈছে বৰগীত গাই থাকোঁতে বঙালী লোক এজনে বাউল গাবলৈ ক'লে,

গায়নে নোগোৱাত ছলস্থূল লাগিল আৰু সেই নিশাই কোনোবা আটটায়ীয়ে মাৰিলে। লাহে লাগে গায়নৰ দেহাৰ পৰা পচা মাংস খহিবলৈ ধৰিছে। ৰূপহী গাঁৱত পুলিচ মিলিটেৰীৰ অত্যাচাৰ চলিল। গায়নৰ মৃতদেহটোত মঙহৰ চিন চাব নাইকিয়া হ'ল। শুকান হাড়কেইডালমানহে আছে। এদিন হঠাতে ৰূপহী গাঁৱলৈ এজাক ল'ৰা-ছোৱালীয়ে মানুহবোৰলৈ চিৰা, কেৰাচিন, নিমখ মৌজাদাৰৰ ঘৰত জমা দিলেহি। ছলস্থূলৰ সময়ত মৌজাদাৰ চহৰলৈ গুচি গৈছিল। এতিয়া তেওঁ ঘূৰি আহিল।

গায়নৰ শুকান হাড়কেইডালৰ ফটো ল'বলৈ সাংবাদিক আহিল। মন্ত্ৰী, এম.এল.এ. আহি পোৰা ঘৰবোৰ চাই যায়। মহিলা, ছাত্ৰ-ছাত্ৰীসকলে কিবা কিবি লৈ গাঁওখনলৈ আহে। যাওঁতে সকলোৱে গায়নৰ হাড়কেইডালত ফুল দি যায়। লাহে লাহে ফুলৰ সংখ্যা বাঢ়ি আহিল। গায়নৰ হাড়কেইডাল দেখা নোপোৱা হ'ল। গাঁৱৰ মানুহবোৰে যে শুনিবলৈ পাইছে ফুলেৰে পুতি পেলোৱা গায়নৰ বুকুৰ পৰা কেৰাচিনে ওলাইছে। ফুলবোৰ গেলিছে। মাথি দুটামানো আহিবলৈ লৈছে। মানুহবোৰে দেখিলে এখন ট্ৰাকত গায়নৰ জঁকাটো চহৰলৈ নিয়াৰ পৰিকল্পনা কৰিছে। মৌজাদাৰে ক'লে গায়ন হেনো শ্বহীদ হৈছে। তেওঁৰ স্মৃতি ৰক্ষাৰ বাবে মূৰ্তি সজা হ'ব। গায়ন অমৰ হ'ব, গায়নৰ নামত এটা পথ নিৰ্মাণ হ'ব। ৰাইজে অনুভৱ কৰিলে তেওঁলোকৰ গায়নক বুকুৰ পৰা কোনোবাই লৈ যাব বিচাৰিছে। শেষত জঁকাটো ট্ৰাকৰ পৰা নমাই গায়নৰ জঁকাটো লৈ মানুহবোৰ ৰাজহুৱা মৰিশালিলৈ বাট ল'লে। য'ত শুই আছে ৰূপহী গাঁৱৰ ৰাইজ, ৰূপহী গাঁৱৰ মানুহ।

#### ০.৪.৬ গল্পটোত প্ৰতিফলিত আন্দোলনৰ চিত্ৰ :

ৰূপহী গাঁৱত সকলো ঠিকেই আছিল। ব'হাগৰ নিজম নিশাও কোনেও উচপিচাই থাকিবলগা নাছিল। কিন্তু ৰূপহী গাঁৱৰ সকলোৰে মৰমৰ বগীৰাম গায়নৰ মৃতদেহ মুকলি আকাশৰ তলত পৰি থকাটোৱে বহু কিবা কিবি ঘটনাৰ বৰ্ণনা কৰি গ'ল। মাজনিশা কোনোবাই গায়নক হত্যা কৰি বৰপথাৰৰ মাজত পেলাই থৈ গ'ল। গায়নৰ মৃত্যুৰ খবৰ পাই মানুহবোৰৰ মাজত বিভিন্ন কথা-বতৰা আৰম্ভ হ'ল—

'কামৰূপত তিনিশ মানুহ মৰিল, ওহোঁ তিনিশ নহয়, হাজাৰো হ'ব পাৰে। শিৱসাগৰত বঙালী বস্তি জ্বলিছে, তেজপুৰত অসমীয়া মৰিছে, দুলীয়াজানত তেজৰ নৈ বেছে। বহু কথা কিছু সঁচা কিছু মিছা।'<sup>১৬</sup>

গাঁওখনত পিছদিনাৰ পৰা গায়নৰ মৃতদেহটো গেলিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে। কোনোবাই কৈছে গায়নক বাংলাদেশীয়ে মাৰিলে। বাংলাদেশী সম্পৰ্কত গল্পকাৰে গল্পটোত এনেদৰে বৰ্ণনা কৰিছে—

'বাংলাদেশৰ পৰা অহা মানুহ ৰূপহী গাঁৱৰ মানুহে দেখিছে। দেখিছে বসন্ত গুৱালক। ৰিফিউজী কেম্পত মাক, বাপেক, ককায়েক সকলোকে হেৰুৱাই তাল পাতৰ পঁজা এটা সাজি এজনী গৰুৰে আৰম্ভ কৰি এতিয়া দহজনী গৰুৰ গাখীৰৰ ব্যৱসায় কৰি পেটে-ভাতে খাই আছে। ...দেখিছে বাম ৰতনক। মাটি এচিকটাও নাপাই সি জলাহ পৰিষ্কাৰ কৰি পেটৰ ভাত উলিয়াইছে। দেখিছে সৰস্বতীৰ মাকক...তাই ৰূপহী গাঁৱৰ ৰিজাৰ্ভত ৰাইজৰ সৈতে সমানে হাবি ভাঙিছিল।'<sup>১৭</sup>

কিন্তু এদিন ৰূপহী গাঁৱৰ মানুহে দেখা পালে ৰিজাৰ্ভত থকা চুবুৰীত জুই লাগিছে। ৰূপহী গাঁৱৰ মানুহে ভাবিছে গায়নৰ মৃত্যুৰ কোনোবাই প্ৰতিশোধ লৈছে। ইয়াৰ লগতে ৰূপহী গাঁৱত বহুতো ঘটনা ঘটিবলৈ ঘৰিলে। মানুহবোৰৰ ধৈৰ্যচ্যুত হৈ পৰিল—

'ৰাইজে পানীখোৱা পুখুৰীৰ পাৰত পোৱা গ'ল গৰুৰ হাড়। মছজিদত পোৱা গ'ল মৰা কাছ। মানুহবোৰৰ মূৰত পথাৰৰ পৰা ঘূৰি অহা ভোকাতুৰ, ক্লাস্ত হালোৱাৰ অঁকাৰা খং।'<sup>১৮</sup>

আন্দোলন চলি আছে। মানুহবোৰৰ ঘৰ জ্বলিছে। নিতাই পণ্ডিতৰ কুঁৱাত পাঁচটা মৃতদেহ পোৱা গ'ল। কোনোবাই ক'লে গায়নক বঙালীয়ে মাৰিলে। গায়নক মৰা চিপ্ৰাংখন বোলে কোনোবাই সুধীৰ মিত্ৰৰ ঘৰত দেখিলে। সুধীৰ মিত্ৰৰ ঘৰটো জ্বলাই দিয়া হ'ল—

'সুধীৰ মিত্ৰৰ ঘৰ জ্বলিল, লগতে কাষৰ ৰমেন হাজৰিকাৰো খেৰী ঘৰটোত জুই লাগিল। মিত্ৰ আৰু হাজৰিকাৰো ল'ৰা-ছোৱালীবোৰে সেই নিশা আতংকত বিহুল হৈ ৰাস্তাৰ একাষে থূপ খাই চিএগৰি চিএগৰি কান্দিছিল।'<sup>১৯</sup>

লাহে লাহে ৰূপহী গাঁৱৰ পৰিৱেশ সলনি হ'ল। পুলিচ-মিলিটেৰীয়ে সকলোকে অত্যাচাৰ কৰিবলৈ ধৰিলে। কোনো সাৰি নগ'ল। ইয়াৰ চিত্ৰ গল্পকাৰে এনেদৰে বৰ্ণনা কৰিছে—

'মিলিটেৰীৰ লাঠীৰ আগত হিন্দু-মুছলমান, বঙালী

অসমীয়াৰ তেজ একে হৈ গ'ল...এতিয়া ৰূপহী গাঁৱত বঙালী-অসমীয়া, হিন্দু-মুছলমান নাই, আছে মাথোন এজাক নিৰ্যাতিত মানুহ, এজাক দুখীয়া মানুহ।<sup>২০</sup>

গায়নৰ মৃতদেহটোৰ মাত্ৰ হাড়কেইডাল মানহে আছে। লাহে লাহে ৰূপহী গাঁৱলৈ মানুহ আহিবলৈ ল'লে। গাঁওবাসীৰ মাজত খাদ্য বিতৰণ কৰিবলৈ আহিল, মন্ত্ৰী, এম.এল.এ. আহিল, সাংবাদিকে গায়নৰ হাড়কেইডালৰ ফটো তুলিলে, সকলোৱে সেই শুকান হাড়কেইডালত পুষ্প বৃষ্টি কৰিবলৈ ধৰিলে। ফুলেৰে গায়নৰ হাড়কেইডাল পুটি পেলালে। এদিন এখন ট্ৰাকত ফুলৰ মাজৰ পৰা জঁকাটো উলিয়াই চহৰলৈ নিয়াৰ ব্যৱস্থা কৰিলে। গাঁৱৰ মানুহে একো নুবুজিলে। মৌজাদাৰৰ পৰাহে ৰাইজে জানিব পাৰিলে গায়ন বোলে শ্বহীদ হৈছে। গল্পটোত এই চিত্ৰ এনেদৰে বৰ্ণিত হৈছে—

‘চহৰত গায়নক সন্মানেৰে খৰি দিয়া হ'ব। মৰিশালিৰ ওপৰত গায়নৰ এক মূৰ্তি সজা হ'ব। গায়ন হোনো অমৰ হ'ব। ...গায়নৰ নামত হেনো এক পথ নিৰ্মাণ হ'ব...।<sup>২১</sup>

গায়নৰ জঁকাটো ফুলেৰে সজাই ট্ৰাকত তোলাৰ ব্যৱস্থা কৰিছে। ৰাইজৰ বুকুত গায়নে গোৱা ‘মাঝিৰে সুৰৰ বাংকাৰ। তেওঁলোকে অনুভৱ কৰিছে। গায়নক তেওঁলোকৰ পৰা কোনোবাই আঁতৰাই নিব বিচাৰিছে। কছাৰী ল'ৰা অলপ অকৰা বলোৰামে উত্তেজনাতে যেন কঁপি উঠিছে, সুধীৰ

মিত্ৰই কান্দিবলৈ ধৰিলে, ৰহিম মিয়া চিঞৰি উঠিল পিছত যেন সকলোৰে প্ৰতিবাদৰ কণ্ঠ নিগৰি আহিল—

‘নিদিওঁ, দিমনা, দেবনা।<sup>২২</sup>

চহৰৰ মানুহবোৰে গাঁৱৰ ৰাইজৰ প্ৰতিবাদ দেখি গুচি গ'ল আৰু ৰাইজে গায়নৰ জঁকাটো কান্ধত তুলি লৈ মৰিশালিৰ ফালে আগবাঢ়িল।

#### ০.৫ উপসংহাৰ :

চৈয়দ আব্দুল মালিকৰ ‘পোৰা গাঁৱত পহিলা ব'হাগ’, যতীন্দ্ৰ কুমাৰ বৰগোহাঞিৰ ‘পিতৃ’, অৰূপা পটংগীয়া কলিতাৰ ‘অস্থি’ গল্পকেইটাত আন্দোলনৰ চিত্ৰ অংকিত হৈছে। ‘পোৰা গাঁৱত পহিলা ব'হাগ’ গল্পটিত আন্দোলনকাৰীয়ে ঘৰ জ্বলাই দিয়া, চৰকাৰী বিলিফ কেম্প আৰু চৰকাৰে বাসস্থানৰ বাবে প্ৰদান কৰা সামগ্ৰীৰ বিষয়ে বৰ্ণনা কৰা হৈছে। ‘পিতৃ’ গল্পটিত মানুহে নিজৰ মাটিবোৰ দখল কৰাত মাটিসমূহ মুক্ত কৰিবৰ বাবে গাঁৱৰ মানুহ একত্ৰিত হৈ ঘৰ জ্বলাই মানুহ হত্যা কৰাৰ চিত্ৰ প্ৰতিফলিত হৈছে। ‘অস্থি’ গল্পটোত বাংলাদেশীয়ে খোপনি পুতা, হিন্দু-মুছলমান-বঙালী সম্প্ৰদায়ৰ সংঘৰ্ষ, বিজাৰ্ভত থকা মানুহবোৰৰ ঘৰ জ্বলাই দিয়াৰ দৃশ্যৰ লগতে মিলিটেৰীৰ অত্যাচাৰ সম্পৰ্কত বৰ্ণনা পোৱা যায়। শেষত হিন্দু-মুছলমান বঙালী সম্প্ৰদায় একত্ৰিত হৈ গায়নৰ জঁকাটো ৰাজহুৱা মৰিশালীলৈ লৈ যোৱা দৃশ্যটোৱে এক সম্প্ৰীতিৰ দৃশ্য অংকিত কৰিছে। □

#### ক) পাদটীকা :

- ১। পোৰা গাঁৱত পহিলা ব'হাগ, পৃষ্ঠা-১৪
- ২। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৪
- ৩। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫
- ৪। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫
- ৫। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫
- ৬। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৬
- ৭। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৬৬
- ৮। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫৫
- ৯। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫৬
- ১০। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৬
- ১১। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫৭
- ১২। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫৯
- ১৩। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫৯
- ১৪। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৫৮
- ১৫। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-১৬৯

- ১৬। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-২৬৯
- ১৭। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-২৭০
- ১৮। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-২৭০
- ১৯। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-২৭১
- ২০। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-২৭১
- ২১। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-২৭২
- ২২। উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃষ্ঠা-২৭৩

#### খ) প্ৰসংগ গ্ৰন্থ :

- ১। ডেকা, সঞ্জীৱ পল (সম্পা.) : অসম আন্দোলনৰ গল্প, বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম সংস্কৰণ, জানুৱাৰী, ২০২৩
- ২। বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ : অসমীয়া চুটি গল্পৰ অধ্যয়ন, প্ৰদ্যুৎ হাজৰিকা, নতুন বজাৰ, ডিব্ৰুগড়-১, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০০৫ চন
- ৩। নেওগ, মহেশ্বৰ : অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৮৬
- ৪। শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ : অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০০৬

## গঠনমূলক উপন্যাসৰ আধাৰত নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ উপন্যাস 'অভিযাত্রী' : এক বিশ্লেষণ



বৰ্ণালী দত্ত

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ  
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী  
অসম- ৭৮১০০১

৭০০২৩০০৮৫৩

duttabornali51@gmail.com

### সংক্ষিপ্তসৰ :

সমাজত ব্যক্তিৰ ব্যক্তিত্ব গঢ় লয়। সাহিত্যত ব্যক্তিত্বৰ প্ৰকাশ ঘটে। সাহিত্যত জীৱন যিদৰে নিহিত হৈ থাকে ঠিক একেদৰে জীৱনত নিহিত হৈ থাকে সাহিত্য। সাহিত্যৰ অন্যান্য ক্ষেত্ৰতকৈ স্বাভাৱিকতে উপন্যাসৰ ক্ষেত্ৰখন বহল। উপন্যাসত কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ, সমাজ লগতে আনুসংগিক চৰিত্ৰ সামগ্ৰিক দিশবোৰ তুলি ধৰাত ঔপন্যাসিক স্বাধীন। আধুনিক সাহিত্যত ব্যক্তিত্বৰ গঠনৰ আধাৰত ৰচিত উপন্যাসক গঠনমূলক উপন্যাস বুলি কোৱা হয়। এই ধৰণৰ উপন্যাসে সমাজত যোগাত্মক প্ৰভাৱ পেলোৱাত অৰিহণা যোগায়। অসমীয়া সাহিত্যৰ এগৰাকী সমাজ সচেতন ঔপন্যাসিক নিৰুপমা বৰগোহাঞি। তেওঁ চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়াৰ জীৱনৰ আধাৰত অভিযাত্রী উপন্যাসখন লিখি উলিয়াইছে। এই গৱেষণা পত্ৰৰ যোগেদি গঠনমূলক উপন্যাসৰ আধাৰত অভিযাত্রী উপন্যাসখন আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

### ০.০ অৱতৰণিকা :

কাহিনী এটাৰ গতানুগতিকতাৰ বিপৰীতে নতুন ধৰণে কৰা আলোচনাই পাঠক তথা সমাজখনক সমৃদ্ধ কৰে। গঠনমূলক উপন্যাসৰ চৰিত্ৰই লেখক, পাঠকৰ লগত সমাজখনত যোগাত্মক দিশত প্ৰভাৱাৰিত কৰে। নাৰীজাতি সাম্প্ৰতিক সময়তো বহু ক্ষেত্ৰত অৱদমিত শোষিত হৈ আছে এই কথা নুই কৰিব নোৱাৰি। প্ৰাক্-স্বাধীন অসমৰ শিক্ষা আজিৰ তুলনাত তথৈবচঃ। বক্ষণশীল সমাজখন বিভিন্ন দিশত ব্যক্তিত্বৰ বিকাশত বাধা স্বৰূপ হৈ পৰিছিল। সেই সময়ত শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ লগতে যাতায়াত সুবিধা নাছিল, বাট-পথবোৰ অসুচল হোৱাৰ কাৰণে বোকা-পানী গচকি দুৰ্গম বাট অতিক্ৰম কৰি দুৰ্গম গাঁৱত থকা বিদ্যালয়লৈ যাব লগা হৈছিল।

শিশু অৱস্থাতে পৰা চন্দ্ৰপ্ৰভাই শিক্ষাৰ জৰিয়তে শাৰীৰিক, মানসিক সংঘাতক প্ৰত্যাহ্বান জনাই আগুৱাই যাবলৈ শিকিছিল। কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰৰ শিশু অৱস্থাৰ পৰা মানসিক বিকাশৰ উত্তৰণ ঘটোৱা উপন্যাসখনত গঠনৰ আধাৰত আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

### ০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

- ১। গঠনমূলক উপন্যাসৰ আধাৰত অভিযাত্রী সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা।
- ২। নাৰীয়ে সমাজত আগুৱাই যোৱাত কেনেধৰণৰ প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হয় এই বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা।
- ৩। লিংগ বৈষম্যই নাৰীক শিক্ষিত মানৱ সত্ত্বা ৰূপত গঢ়ি তোলাত কিদৰে বাধা প্ৰদান কৰে আদি বিভিন্ন দিশৰ সামগ্ৰিক মূল্যায়ন দাঙি ধৰা।



ড° স্বপ্নালী দাস

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ  
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী  
অসম- ৭৮১০০১

৯৩৬৫৫৯০৬৪০

swapnalidasghy@gmail.com

## ০.২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

‘গঠনমূলক উপন্যাসৰ আধাৰত নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ উপন্যাস’ শীৰ্ষক গৱেষণা বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে মূলতঃ বিষয়বস্তুৰ বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

## ০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

‘গঠনমূলক উপন্যাসৰ আধাৰত নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ ‘অভিযাত্রী’ শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে অভিযাত্রী উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত সমাজ বাস্তৱতাৰ দিশসমূহ অধ্যয়নৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে।

## ০.৪ অধ্যয়নৰ উৎস :

বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে মুখ্য উৎস হিচাপে নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ অভিযাত্রী উপন্যাসখন লোৱা হৈছে আৰু গৌণ উৎস হিচাপে অন্যান্য প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থৰ সহায় লোৱা হৈছে।

## ১.০ মূল বিষয়ৰ আলোচনা :

সাহিত্য সমালোচনাত বিল্ডিংছৰোমান (Bildungsroman) হৈছে নায়কৰ শৈশৱৰ পৰা প্ৰাপ্তবয়স্কলৈকে মানসিক আৰু নৈতিক বৃদ্ধিৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰা এটা সাহিত্যৰ ধাৰা, য’ত চৰিত্ৰৰ পৰিৱৰ্তন গুৰুত্বপূৰ্ণ। অসমীয়াত আমি ইয়াক বিকাশমূলক উপন্যাস বা গঠনমূলক উপন্যাস বুলিব পাৰোঁ।

গঠনমূলক উপন্যাসৰ দৃষ্টিকোণেৰে আলোচনা কৰিব পৰা উপন্যাস অসমীয়া সাহিত্যতো ৰচিত হৈছে। নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ ‘অভিযাত্রী’ উপন্যাসৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ চন্দ্ৰপ্ৰভা শইকীয়ানীক এই আলোচনাৰ মূল হিচাপে ধৰা হৈছে।

নিৰুপমা বৰগোহাঞিৰ অভিযাত্রী উপন্যাসখনে প্ৰাক্-স্বাধীন আৰু স্বাধীনোত্তৰ অসমীয়া সমাজখনক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিছে। প্ৰাক্-স্বাধীন অসমীয়া সমাজখনত স্ত্ৰী শিক্ষাৰ কাৰণে কোনো যোগাত্মক প্ৰতিক্ৰিয়া নাছিল। বৰ্দ্ধগণশীল সমাজে ছোৱালীৰ বাবে বিশেষ কিছুমান যুক্তিহীন নিয়ম-নীতি কৰি থৈছে। যিবোৰে ছোৱালী এজনীক মানৱ সত্তা হিচাপে নহয়, আধিপত্যৰ বলি হোৱা দাসী ৰূপত গঢ়ি তুলিছিল। উপন্যাসখনত কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ চন্দ্ৰপ্ৰভাই শিশু অৱস্থাবে পৰা শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত শাৰীৰিক মানসিক সংঘাতক প্ৰত্যাহ্বান ৰূপে লৈ আঙুৱাই যাবলৈ শিকিছিল। উত্তৰ আধুনিক যুগ তথা বৰ্তমানেও আমাৰ দেশত যে লিংগ বৈষম্য আছে, এই কথা নুই কৰিব নোৱাৰি। পুৰুষপ্ৰধান সমাজ যদিও মানসিকভাৱে মহিলাই

মহিলাক দমন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত যি কাৰুকাৰ্য আজিও চলি আছে, তাৰ তুলনাত প্ৰাক্-স্বাধীন কালৰ দেশৰ অৱস্থা বহলাই কোৱাৰ প্ৰয়োজন হয়তো নহ’ব। অভিযাত্রী নামৰ শব্দটোৱে এটা লক্ষ্যহীন দিগন্তৰ পিনে আঙুৱাই নিছে, উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণিতে শিশু চন্দ্ৰপ্ৰিয়াৰ মানসিক অন্তৰ্দ্বন্দ্বৰ প্ৰকাশ ঘটিছে।

‘চন্দ্ৰপ্ৰিয়াৰ চুলি ছিঙি নিজকে আকুহি-বাকুহি বখলিয়াবৰ মন যায়। পঢ়া-শুনা এই চখটোনো ভগৰানে তাইক কিয় এনেকৈ দিলে, গাঁৱৰ আন ছোৱালীবোৰোতো আছে, সিহঁতৰ কাৰো এনেকৈ পঢ়ালৈ ধাউতি নাই। সিহঁতবোৰ ঘৰৰ কাম-কাজ লৈয়ে সন্তুষ্ট, কাৰো গৰজ নাই এনেকৈ বোকা-পানী গছকি বাট কুৰি বাই ল’ৰাৰ এম ভি স্কুল এখনত পঢ়ি ‘পণ্ডিতনী হ’বলৈ অহাৰ’। (অভিযাত্রী, পৃ. ১২)।

উপন্যাসিকে অতি নিখুঁত ৰূপত চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ লগে লগে শিক্ষাৰ প্ৰতি আগ্ৰহী ভনীয়েক ৰজনীপ্ৰভাৰ চৰিত্ৰটোকো উপস্থাপন কৰিছে। চন্দ্ৰপ্ৰিয়াই শুকান মাটিত ভৰি দিয়া ভনীয়েকলৈ চাই ক’লে— ‘কনমাই বাৰিষাৰ দিনকেইটা কষ্ট কৰিবই লাগিব অ’, নহ’লে আমাৰ পঢ়া নহ’ব।’ (অভিযাত্রী, পৃ. ১২)

উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণিতে মুখ্য চৰিত্ৰ চন্দ্ৰপ্ৰভা আৰু ভনীয়েক ৰজনীপ্ৰভাৰ উচ্চাকাঙ্ক্ষী, বিদ্ৰোহী আৰু সমস্যািক প্ৰত্যাহ্বান নাই আঙুৱাই যাব পৰা দৃঢ় মনটোৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ জীৱনযাত্ৰা শিশু অৱস্থাৰ পৰাই মসৃণ নাছিল যদিও শিক্ষাৰ জৰিয়তে নিজৰ লগতে সমাজৰ উৎকৰ্ষ সাধন কৰাৰ বাবে তেওঁ আজীৱন চেষ্টা কৰিলে। বৰ্দ্ধগণশীল সমাজ এখনত সাধাৰণতে লিংগভিত্তিক বৈষম্যই মুখ্য ভূমিকা পালন কৰে। ছোৱালী এজনী জন্মৰ পিছৰে পৰা চাল-চলন, আচাৰ-আচৰণ, কথা-বাৰ্তা আদি সকলোতে সমাজৰ বিশেষ কিছুমান যুক্তিহীন নিয়মৰ আধাৰত বৰ্তি আছে। গতানুগতিকভাৱে সকলো মহিলায়ে এইসমূহ মানি লৈছে।

মনু সংহিতাত উল্লেখ আছে —

পিতা ৰক্ষতি কৌমাৰে ভৰ্তা ৰক্ষতি যৌৱনে।

ৰক্ষন্তি স্থৰিৰে পুত্ৰ ন স্ত্ৰী স্বাতন্দ্ৰ্যমৰ্হতি।।

অৰ্থাৎ শিশুকালত স্ত্ৰীক পিতাকে ৰক্ষা কৰে, যুৱা কালত স্বামীয়ে আৰু বৃদ্ধকালত পুত্ৰই ৰক্ষা কৰে। গতিকে স্ত্ৰী নিজেই নিজৰ দ্বাৰা ৰক্ষিত হোৱাৰ যোগ্যা নহয়।—

মনুসংহিতাত অৱশ্যে নাৰীৰ বিষয়ে ভালকৈয়ে লিখা হৈছে কিন্তু এই বিশেষ কথাকেইটা আজিও সমাজত চলি আছে; ফলস্বৰূপে শিক্ষাহীন আৰু অথহীন মহিলাগৰাকী বিয়াৰ পিছত আনকি বৃদ্ধা অৱস্থাতো শাৰীৰিক-মানসিকভাৱে নিৰ্যাতিত হৈ মৃত্যুবৰণ কৰিব লগা হয়। উপন্যাসখনৰ মুখ্য চৰিত্ৰ চন্দ্ৰপ্ৰভাই কিন্তু শিশু অৱস্থাৰ পৰাই যুক্তিহীনভাৱে প্ৰচলিত নিয়মবোৰ মানি ল'ব পৰা নাছিল! উচ্চাকাঙ্ক্ষী শিশু মনটোৱে শিক্ষাৰ জৰিয়তে নিজৰ লগতে সমাজৰ উন্নতি সাধন হ'ব এই কথা বুজি উঠিছিল, তেওঁ দুৰ্গম বাট-পথকো অতিক্ৰম কৰি শিক্ষা গ্ৰহণ কৰিছিল। স্কুলীয়া শিক্ষা সমাপ্ত কৰিয়েই গাঁৱত আৰু পঢ়াৰ সুবিধা নথকাত মাত্ৰ তেৰ বছৰ বয়সতে ছোৱালীৰ বাবে স্কুল প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। শিক্ষাৰ প্ৰতি আগ্ৰহী উচ্চাকাঙ্ক্ষী মনৰ অধিকাৰী চন্দ্ৰপ্ৰভাক স্কুল পৰিদৰ্শক নীলকান্ত বৰুৱাই নগাঁৱৰ মিছন স্কুলত দুয়ো বাই-ভনীকে পঢ়াৰ সুবিধা কৰি দিয়ে।

শিক্ষয়িত্ৰী হিচাপে কৰ্মজীৱনৰ পাতনি মেলা চন্দ্ৰপ্ৰভাই স্ত্ৰী শিক্ষাৰ হকে কাম কৰিছিল, মহিলা সমিতি গঠন কৰি মহিলা উৎকৰ্ষ সাধনৰ কাৰণে কাম কৰাৰ লগতে স্বাধীনতা আন্দোলনত সক্ৰিয়ভাৱে যোগদান কৰিছিল। স্বাধীনতা আন্দোলন অংশগ্ৰহণ কৰোঁতে তেওঁ জেললৈও যাব লগা হৈছিল তেওঁ গঢ়ি তোলা মহিলা সমিতিয়ে অসমৰ প্ৰতিখন জিলাতে গঠনমূলক কাম কৰি আঙুৰাই গৈছিল। উদাহৰণ স্বৰূপে ১৯৩৪ চনত মহিলা সমিতি চতুৰ্থ বাৰ্ষিক অধিবেশনত কটন কলেজত ছাত্ৰীসকলকো পঢ়িবলৈ দিব লাগে বুলি লোৱা প্ৰস্তাৱটো কাৰ্যকৰী কৰা হ'ল। ৰাজবালা দাসহঁতে কলেজ কৰ্তৃপক্ষক বৰকৈ ছানি ধৰাত বহুতো আলোচনা-বিলোচনাৰ পিছত কটনত সহশিক্ষাৰ প্ৰচলন কৰা হ'ল।

আশ্ৰয়হীন মহিলাৰ কাৰণে 'অনাথ কল্যাণ কেন্দ্ৰ' নামৰ আশ্ৰম খোলা হ'ল। বোৱা-কঁটা কেন্দ্ৰ, নিৰক্ষৰতা দূৰীকৰণৰ স্কুল, হাতৰ বিবিধ কামৰ প্ৰশিক্ষণৰ কেন্দ্ৰ আদি কৰি নানান অনুষ্ঠান মহিলা সমিতিয়ে গঠন কৰে। ১৯৪৭ চনত প্ৰকাশ পোৱা 'অভিযাত্ৰী' প্ৰথম মহিলা আলোচনীখন চন্দ্ৰই মহিলা সমিতিৰ মুখপত্ৰ কৰি উলিয়াইছিল। ঔপন্যাসিকৰ ভাষাত তাইৰ আদৰ্শ 'কন্যা' 'অভিযাত্ৰী' যেন সমাজৰ পুৰণি কু-সংস্কাৰাচ্ছন্ন ৰীতি-নীতিৰ বিৰুদ্ধে থিয় হোৱা এক মূৰ্তিমতী বিদ্ৰোহিনীহে' (অভিযাত্ৰী, পৃ. ৩৪৮)

চন্দ্ৰপ্ৰভাই সামাজিক কাম-কাজৰ মাজতে সাহিত্য চৰ্চাও কৰিছিল। তেওঁৰ পিতৃ-ভিঠা' উপন্যাসখনত শ্ৰদ্ধাঞ্জলি শিতানত মনুবাক্য 'দশপুত্ৰ সমকন্যা' ৰূপে জ্ঞান

কৰা তেওঁৰ পিতৃ যিগৰাকীয়ে ছোৱালীক কেতিয়াও ল'ৰাতকৈ সৰু বা অশ্ৰেষ্ঠ বুলি নাভাবিছিল, স্ত্ৰীশিক্ষা প্ৰচলন আৰু সুবিধা নথকা সত্ত্বেও দূৰ প্ৰবাসত থৈ কন্যাক শিক্ষা দিয়া পিতৃৰ চৰণত শ্ৰদ্ধাঞ্জলি নিবেদন কৰে।

তেজপুৰত শিক্ষয়িত্ৰী হৈ থাকোঁতেই দণ্ডীনাথ কলিতাৰ সৈতে গন্ধৰ্ব বিবাহ হয়। কিন্তু জাত-পাতৰ বিচাৰৰ কাৰণে দণ্ডীনাথে চন্দ্ৰপ্ৰভাক সমাজৰ আগত স্বীকৃতি দিবলৈ সাহস নকৰিলে আৰু ঘৰৰ কথামতে অন্য ছোৱালী বিয়া কৰাই সংসাৰ কৰে। আনফালে চন্দ্ৰপ্ৰভাই সমাজৰ কটু কথা শুনি পিতৃ-মাতৃৰ দায়িত্ব অকলে পালন কৰি অতুলক শিক্ষাৰে সমাজৰ সুব্যক্তিকৰূপে গঢ়ি তোলাত সফল হয়। ড° নিৰঞ্জন কলিতাৰ অসমীয়া জীৱনভিত্তিক উপন্যাস এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন নামৰ গ্ৰন্থখনত তেওঁ লিখিছে "অগ্নিক সাক্ষী কৰি গন্ধৰ্ব বিবাহৰ দ্বাৰা পত্নীৰূপে বৰণ কৰা চন্দ্ৰপ্ৰভা আৰু পুত্ৰ অতুলৰ দায়িত্ব স্বামী আৰু পিতৃৰূপে তেওঁ পালন কৰাত অকণো কুণ্ঠিত হোৱা নাই। উপৰ্যুপৰি চিঠিৰে তেওঁ চন্দ্ৰপ্ৰভাৰ প্ৰতি হিয়াৰ নৈবেদ্য যচাৰ লগতে পুত্ৰৰ কাৰণে সামৰ্থানুসাৰে অৰ্থ সাহায্যও যাঁচিছে।" (পৃ. ১৪২)

উক্ত মন্তব্যটি পঢ়াৰ লগে লগে এগৰাকী পাঠক অথবা সমালোচক হিচাপে এটা প্ৰশ্ন মনলৈ অহাটো স্বাভাৱিক যে, তদানীন্তন বক্ষণশীল সমাজত নিজ পুত্ৰ আৰু পত্নীক সমাজৰ আগত স্বীকৃতি নিদিয়াকৈ কেৱল কেইটামান টকা আৰু চিঠিৰে গোপনে পিতৃদায়িত্ব পালন কৰাত তেওঁ কিমান সফল পিতৃ বা স্বামী? পিতৃ বা স্বামী হিচাপে কেৱল কেইটামান টকা আৰু চিঠিতে তেওঁৰ দায়িত্ব শেষ নেকি?

অৱশ্যে জাত-পাতৰ বিচাৰত ব্যক্তিগত সাংসাৰিক জীৱনে পূৰ্ণতা নাপালেও তেওঁলোক দুয়ো সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰলৈ অৱদান আগবঢ়ায়। চন্দ্ৰপ্ৰভাই ব্যক্তি জীৱনৰ উদ্ভূত সমাজ জীৱনত জীয়াই থকাৰ প্ৰেৰণা বিচাৰি গোটেই জীৱন সমাজৰ হিতৰ বাবে কাম কৰে।

## ২.০ সিদ্ধান্ত :

গণেশপত্ৰখনৰ যোগেদি তলত দিয়া সিদ্ধান্ত কেইটাত উপনীত হ'ব পৰা যায়—

- ক) গঠনমূলক উপন্যাসে নাৰীক শিক্ষিতা আৰু স্বাৱলম্বী কৰি তোলাত অৰিহণা যোগায়।
- খ) জাত-পাতৰ বিচাৰে সমাজ উত্তৰণত বাধা দিয়ে।

গ) অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰে সমাজখনৰ ধ্বংসহে কৰিব পাৰে। ইয়াৰ দ্বাৰা সমাজত উন্নতি সাধন নহয়।

ঘ) লিংগবৈষম্য তথা কৰ্ম বিভাজনে সুস্থ সমাজ গঢ় দিয়াত বাধা দিয়ে।

ঙ) আৰ্থিক, সামাজিক সমস্যাক প্ৰত্যাহ্বান স্বৰূপে লৈ শিক্ষাৰ জৰিয়তে আগুৱাই যাব পাৰিলে নিজৰ লগতে সমাজখনতো যোগাত্মক চিন্তা-চেতনাৰ প্ৰভাৱ পৰে।

### ৩.০ উপসংহাৰ :

উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ চন্দ্ৰপ্ৰভাই সৰুৰে পৰা বহু সমস্যাৰ সন্মুখীন হৈছে, শিক্ষাৰ কাৰণে শিশু অৱস্থাৰ পৰাই

কষ্ট কৰিছিল তেওঁ শিশু অৱস্থাতে বুজি উঠিছিল যে শিক্ষাইহে মানুহক সৰ্বাংগীন বিকাশত সহায় কৰিব। লিংগভিত্তিক বৈষম্য, জাত-পাতৰ বিচাৰ, আৰ্থিক অনাটন, ব্যক্তিগত জীৱন সমাজৰ কটু সমালোচনা আদি বিভিন্ন সমস্যাবোৰৰ প্ৰত্যাহ্বান জনাই গঠনমূলক কামেৰে তেওঁ নিজৰ লগতে সমাজৰ আৰু দেশৰ কাৰণে আজীৱন কষ্ট কৰিলে।

কাহিনী, চৰিত্ৰ, সমাজ দ্বন্দ্ব, প্ৰত্যাহ্বান আদি সকলো দিশৰ পৰাই সফল উক্ত উপন্যাসখনক গঠনমূলক উপন্যাস বুলি বিনা দ্বিধাই ক'ব পাৰোঁ। এইক্ষেত্ৰত উপন্যাসিক নিশ্চিতভাৱে সফল হৈছে। □

### অন্ত্যটীকা :

- ১। কলিতা নিৰঞ্জন, অসমীয়া জীৱনভিত্তিক উপন্যাস এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন, পৃ. ১৪২
- ২। বৰগোহাঞি নিৰুপমা, অভিযাত্ৰী, পৃ. ১২
- ৩। উল্লিখিত, পৃ. ৩৪৮
- ৪। শৰ্মা কিৰণ, মনুসংহিতা, পৃ. ৩০০

### গ্ৰন্থপঞ্জী :

#### অসমীয়া :

- ১। কলিতা নিৰঞ্জন, অসমীয়া জীৱনভিত্তিক উপন্যাস এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন, বাণী মন্দিৰ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৯।
- ২। ঠাকুৰ নগেন, এশ বছৰীয়া অসমীয়া উপন্যাস, জ্যোতিপ্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০০।
- ৩। বৰগোহাঞি নিৰুপমা, অভিযাত্ৰী, ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্ট'ৰচ্, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০১৯

#### ইংৰাজী :

Digeon, Aurelien The Novelist Fielding, London, 1925.

David Scott Kastan The Oxford Encyclopedia of British Literature, 2006

Leavis, F.R. The Great Tradition, Chatto & Windows, London, 1948

## শংকৰদেৱৰ কীৰ্তন ঘোষাৰ ৰস বিচাৰ : এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন



ড° বন্দনা বৰুৱা

### সংক্ষিপ্তসূচী :

শংকৰদেৱে একশৰণ হৰি নাম ধৰ্ম প্ৰচাৰ কৰিবলৈ যাওঁতে জনসাধাৰণৰ মাজত ইয়াৰ জনপ্ৰিয়তালৈ লক্ষ্য ৰাখি সাহিত্য নাট ভাওনা আদিৰ সৃষ্টি কৰিব লগা হৈছিল। তেওঁ যাগ যজ্ঞ বলি বিধানৰ বিৰোধিতা কৰি এক সৰল উপাসনা পদ্ধতিৰ যোগেদি সাধাৰণ মানুহক আধ্যাত্মিক উৎকৰ্ষ সাধনৰ পথ দেখুৱাইছিল। ভগবানৰ নাম শ্ৰৱণ কীৰ্তন কৰিব পৰাকৈ কীৰ্তন পুথি ৰচনা কৰি উলিয়াইছিল। অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ অমূল্য সম্পদ হৈছে কীৰ্তন পুথি। সাহিত্যৰ নৱৰসৰ উন্মেষ ঘটিছে এই কীৰ্তন গ্ৰন্থখনত। শৃঙ্গাৰ ৰসৰ পৰা ক্ৰমে বীৰ কৰুণ, বৌদ্ধ, হাস্য, ভয়ানক, অদ্ভুত, বীভৎস শাস্ত ৰসৰ সমাহাৰত সৃষ্টি হৈছে এই কীৰ্তন পুথি। কীৰ্তন পুথিৰ মাজেদিয়েই বিকশিত হৈ উঠিছে শংকৰদেৱৰ মৌলিক প্ৰতিভা ৰাজি। পৰৱৰ্তী গৱেষণা পত্ৰত কীৰ্তন গ্ৰন্থত কেনেদৰে সাহিত্যৰ নৱৰসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে এই বিষয়ে বিস্তৃতভাৱে আলোচনা কৰা হ'ব।

### সূচক শব্দ :

কীৰ্তন, নৱৰস, ৰাসক্ৰীয়া, কালীয়দমন, প্ৰহ্লাদ চৰিত্ৰ, অজামিল উপাখ্যান, শিশুলালা, হৰমোহন।

### ১.০ অৱতৰণিকা :

বেষৰ্ণ ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্য আগত ৰাখিয়েই শংকৰদেৱে নানান গীত, পদ, ভটিমা, অক্ষীয়া নাট কাব্য, ভক্তিভ্ৰু প্ৰকাশক গ্ৰন্থ, নাম প্ৰসংগ মূলক গ্ৰন্থ আদি ৰচনা কৰিছিল। ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্য আগত থাকিলেও গুৰুজনৰ ৰচনা ৰাজিত সাহিত্যিক সৌন্দৰ্যৰ অভাৱ নাই। ভক্তসকলক ভক্তিৰ অপাৰ সমুদ্ৰত নিমজ্জিত কৰাবলৈ যাওঁতে শংকৰদেৱে য'তেই হাত দিছে তাতেই সৃষ্টি হৈছিল ৰসৰ নিজৰা। এইফালৰ পৰা শংকৰদেৱৰ 'কীৰ্তন' পুথিখন ব্যতিক্ৰম নহয়। শংকৰদেৱে এই পুথিখন নাম প্ৰসংগৰ উপযোগীকৈ ৰচনা কৰিছিল। 'কীৰ্তন' পুথিখনে শংকৰদেৱৰ এই পৰম্পৰা এতিয়াও বহন কৰি আছে। গীত, পদ, সাহিত্য, তত্ত্বজ্ঞান, কাব্যিক দৃষ্টিভঙ্গী আদি সকলো দিশৰ পৰা চালে এইখন গ্ৰন্থৰ মূল্য অপৰিসীম। ভকতসকলে 'কীৰ্তন' পুথি পাঠ কৰি সাহিত্যৰ নৱৰসৰ সমুদ্ৰত ডুব মাৰি নিজকে কৃতার্থ কৰিব পাৰে।

অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ অমূল্য সম্পদ হৈছে— কীৰ্তন পুথি। অসমৰ ধৰ্মীয় জীৱনৰ আধ্যাত্মিকতাৰ প্ৰকৃত স্বৰূপটো গঢ়ি তোলাত 'কীৰ্তন'ৰ অৱদান আটাইতকৈ বেছি। 'কীৰ্তন'ৰ জনপ্ৰিয়তাৰ প্ৰসংগত সত্যেন্দ্ৰ নাথ শৰ্মাই তেখেতৰ অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্তত এষাৰ সুন্দৰ কথা কৈছে। "উত্তৰ ভাৰতৰ হিন্দী প্ৰধান অঞ্চলত তুলসী দাসৰ 'ৰাম চৰিত মানস'ৰ যি আদৰ যি জনপ্ৰিয়তা

সহকাৰী অধ্যাপিকা, অসমীয়া বিভাগ  
চৰাইবাহী মহাবিদ্যালয়, মৰিগাঁও  
অসম-৭৮২১০৬  
☎ ৬০০১৮২১০৬১  
✉ bandanaboruah655@gmail.com

অসমত কীৰ্তনৰ তেনে আদৰ তেনে জনপ্ৰিয়তা আছে।” বৰ্তমান কীৰ্তন গ্ৰন্থখন ২৭ টা স্বয়ং সম্পূৰ্ণ খণ্ডৰ সমষ্টি। বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ সকলো সাৰমৰ্ম, ভগবৎ ভক্তিৰ মহিমা এই সকলোবোৰ যেন কীৰ্তনৰ প্ৰতিটো পদতেই মুখৰিত হৈ আছে। দেখা যায় যে প্ৰতিটো ‘কীৰ্তন’ দুটা ভাগত বিভক্ত যেনে- ঘোষা আৰু পদ। প্ৰতিটো কীৰ্তনৰ পদবোৰ গোৱাৰ সময়ত পদৰ মাজে মাজে একোটি ঘোষা আবৃত্তি কৰা হয়, ফলত পদবোৰৰ শ্ৰুতি মাধুৰ্য দুগুণে বাঢ়ি যায়।

### ১.১ গৱেষণা পত্ৰখনিৰ পদ্ধতি :

গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুতকৰণৰ বাবে তথ্য সংগ্ৰহ কৰা হৈছে মুখ্য আৰু গৌণ উৎস সমূহৰপৰা। শংকৰদেৱৰ দ্বাৰা বিৰচিত কীৰ্তন গ্ৰন্থখনক মুখ্য উৎস হিচাপে গণ্য কৰি আন প্ৰাসঙ্গিক পুথি সমূহক গৌণ উৎস হিচাপে ধৰা হৈছে। এনেদৰে তথ্য সংগ্ৰহৰ পিছত বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰে বিশ্লেষণ কৰিব বিচৰা হৈছে।

### ১.২ গৱেষণা পত্ৰখনিৰ উদ্দেশ্য :

(ক) কীৰ্তন পুথিৰ যোগেদি সাহিত্যৰ নৱৰসৰ কেনেদৰে প্ৰকাশ ঘটিছে এই বিষয়ে আলোচনা কৰা।

(খ) শংকৰদেৱৰ ধৰ্মীয় দৰ্শন কিদৰে কীৰ্তন পুথিৰ যোগেদি প্ৰকাশিত হৈছে এই বিষয়ে আলোচনা কৰা।

### ১.৩ গৱেষণা পত্ৰখনিৰ পৰিসৰ :

কীৰ্তন পুথিৰ আলোচনা কৰিবলগীয়া বহুবোৰ দিশ আছে। ইয়াৰ দৰ্শনৰ পৰা আৰম্ভ কৰি কাহিনী চৰিত্ৰ, লোক উপাদান, সাহিত্যিক সৌন্দৰ্য, বস ইত্যাদি বিভিন্ন দিশ সোমাই আছে। গোটেইবোৰ দিশ আলোচনা কৰিবলৈ গলে গৱেষণা পত্ৰখনিৰ সংগতি নোহোৱা হৈ যাব। সেয়েহে এই গৱেষণা পত্ৰখনিত অকল কীৰ্তনৰ বস বিচাৰৰ ওপৰতেই আলোচনা সীমাবদ্ধ ৰাখিবলৈ বিচৰা হৈছে।

### ১.৪ মূল আলোচনা :

‘কীৰ্তন’ গ্ৰন্থখন ৰচনাৰ আঁৰত শংকৰদেৱৰ বৈষ্ণৱ ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্য লুকাই আছিল। উদ্দেশ্য প্ৰণোদিত সাহিত্যই সাধাৰণতে সাহিত্যিক মূল্যৰাজিৰ পৰা অৱনমিত হোৱা দেখা যায়। শংকৰদেৱৰ অমূল্য গ্ৰন্থৰাজিৰ ক্ষেত্ৰত কিন্তু এই কথা প্ৰণিধান যোগ্য নহয়। শংকৰদেৱৰ কি কীৰ্তনেই হওক, কি অক্ষীয়া নাটেই হওক নাইবা তেওঁৰ ৰচিত কাব্যসমূহেই হওক সকলোৰে মাজত সাহিত্যিক গুণৰাজি এনেদৰে নিহিত হৈ আছে যে কলাত্মক দিশত ইয়াৰ স্থান বহু উচ্চ পৰ্যায়ত বুলিব পাৰি। ছন্দ, অলংকাৰ,

বস, সমসায়িক জীৱন চিত্ৰ প্ৰকাশ, ভাষাৰ মাধুৰ্য আদি — এই সকলো দিশৰ পৰা ‘কীৰ্তন’ পুথিখন উন্নত মানৰ বুলিব পাৰি।

সাহিত্যত বসৰ প্ৰকাশ ঘটে। বসযুক্ত সাহিত্যইহে মানবাত্মক আলোড়িত কৰি চৰম সুখ প্ৰদান কৰিব পাৰে। সাহিত্যত প্ৰকাশ পোৱা নৱৰসৰ প্ৰকাৰ ভেদৰ ওপৰত বিভিন্ন আলংকাৰিকে বিভিন্ন মত দিয়া দেখা যায়। ভৰত মুনিয়ে শৃংগাৰ, হাস্য, কৰুণ, বৌদ্ধ, বীৰ, ভয়ানক, বীভৎস, অদ্ভুত এই আঠবিধ বসৰ কথা স্বীকাৰ কৰিছে। আনহাতে আনন্দবৰ্ধন আৰু অভিনৱগুপ্ত আদিয়ে শান্ত নামৰ আৰু এবিধ বসৰ কথা স্বীকাৰ কৰিছে। শান্ত বসৰ স্থায়ীভাব হৈছে শম বা নিৰ্বেদ বা বৈৰাগ্য শঙ্কৰদেৱে কীৰ্তনত এই নৱৰসৰ উন্মেষ ঘটাইছিল। এই নৱৰসত ডুব গৈ ভক্ত সমাজে শ্ৰীকৃষ্ণৰ চৰণ কমলত আত্ম নিবেদন কৰি মুক্তিৰ হকে পদ ঘোষা আওৰাইছিল। সাহিত্যত নৱৰস বুলিলে— শৃংগাৰ, কৰুণ, বীৰ, বৌদ্ধ, ভয়ানক অদ্ভুত, বীভৎস, হাস্য, শান্ত আদি বসকেই বুজা যায়।

সাহিত্যৰ এই নৱৰসৰ উন্মেষ ঘটিছিল শংকৰদেৱৰ ‘কীৰ্তন’ গ্ৰন্থৰ বিভিন্ন পদ ঘোষাত। শৃংগাৰ বস সম্বন্ধে আলংকাৰিক ভোজৰাজে মন্তব্য দিছে যে এই বসেই মূল বস। ভোজৰাজৰ মতে শৃংগাৰ বসৰ স্থায়ীভাৱ কেৱল স্ত্ৰী-পুৰুষৰ মাজৰ প্ৰেম বা ৰতি নহয়। তেওঁৰ মতে শৃংগাৰ বসৰ স্থায়ীভাৱ হৈছে অহংকাৰ বা আত্মৰতি। এই অহংকাৰ বা আত্মৰতি বা জীৱই নিজকে নিজে ভালপোৱা ধৰ্মটোৱেই সৰ্ববসৰ মূল যি শৃংগাৰ তাৰ স্থায়ীভাৱ। সেইফালৰ পৰা চালে সকলো বসৰ মূলতে থাকে আত্মৰতি বা প্ৰেম। নায়ক-নায়িকাৰ পৰস্পৰৰ প্ৰতি থকা প্ৰেমে ৰতি বা শৃংগাৰ বসৰ প্ৰকাশ ঘটাই যদিও কীৰ্তনৰ ৰতি বা শৃংগাৰ বসে শেষত গৈ ভক্তি বসতেই নিমজ্জিত হয়গৈ। ভক্ত আৰু ভগৱানৰ মাজত যি প্ৰেমৰ উদ্ভব হয়, সেই প্ৰেমে ৰতিভাব সৃষ্টি নকৰে বৰং ভক্তৰ অন্তৰত এক নিৰ্মোহ ভক্তি-বসৰহে উদ্ভব ঘটায়। বৈষ্ণৱ ভক্ত সমাজৰ বাবে শ্ৰীকৃষ্ণই মূল; অৰ্থাৎ তেওঁলোকৰ ৰতিৰ আধাৰ হ’ল কৃষ্ণৰতি। এই কৃষ্ণৰতি কিন্তু লৌকিক নহয়। এক অনাদি অনন্ত পৰম ব্ৰহ্মৰ প্ৰতি জীৱৰ যি প্ৰেম; সেই প্ৰেম কেতিয়াও লৌকিক বা পাৰ্থিৱ হ’ব নোৱাৰে। কৃষ্ণৰতি অৰ্থাৎ ই হৈছে ভগবৎ ভক্তি। কীৰ্তনৰ হৰমোহন খণ্ডই হওক বা ৰাসলীলা খণ্ডই হওক তাত যি শৃংগাৰ বসৰ প্ৰকাশ দেখুৱাইছে সি

অৱশেষত গৈ ভক্তিৰসতেই নিমজ্জিত হৈছেগৈ। উদাহৰণ স্বৰূপে—

“বাছ মেলি কাকো আলিঙ্গি ধৰি।  
কাৰো স্তন নখে পৰশে হৰি।।  
মুখ চায়া কাৰো তোলন্ত হাস।  
মাতন্ত কাকো কৰি পৰিহাস।।  
লন্ত বস্ত্ৰ কাঢ়ি বঢ়ায়া বঙ্গ।  
বেকত কৰন্ত গুপ্ত অঙ্গ।।”<sup>১</sup>

সাহিত্যৰ নৱৰসৰ ভিতৰত আন এবিধ উল্লেখযোগ্য বস হৈছে কৰুণ বস। বসবাদী আচাৰ্যসকলৰ ভিতৰত কৰুণ বসৰ সমৰ্থকসকলৰ মতে সকলো বসৰ মূল বস হৈছে কৰুণ বস। আন বস বিলাক কৰুণ বসৰ বিকৃতি বা বিকাৰহে। কৰুণ বসৰ মূলতঃ আছে বিচ্ছেদ বা অপ্ৰাপ্তি। শংকৰদেৱৰ কীৰ্তনৰ বহুবোৰ পদৰ মাজত নিহিত হৈ আছে কৰুণ বস। শোক, দুখ, বিবহ, সন্তাপৰ পৰাই এই কৰুণ বসৰ বিকাশ ঘটিছে। কীৰ্তনৰ ‘বাসক্ৰীড়া’ খণ্ডত শ্ৰীকৃষ্ণই গোপী হৃদয়ত দেখা দিয়া অহমিকা দূৰ কৰিবৰ বাবে হঠাতে তেওঁলোকৰ মাজৰ পৰা অন্তৰ্ধান হয়। গোপীসকলে শ্ৰীকৃষ্ণৰ সংগ সুখৰ পৰা বঞ্চিত হৈ তেওঁৰেই গুণগান গাই তেওঁক বিচাৰি ফুৰিবলৈ ধৰিলে। মৃতপ্ৰায় হৈ পৰিল তেওঁলোকৰ দেহ-মন; কাৰুণ্যই তেওঁলোকৰ মনৰ অহমিকা ধুইধাই পবিত্ৰ কৰি পেলালে—

কৃষ্ণক নপাই পাছে গোপীয়ে।  
মিলিল সন্তাপ ভৈলন্ত ভয়।।  
যেন যুথপক নেদেখি বলে।  
কান্দে আৰ্তৰাৱে হস্তিনীগণে।।  
বিচাৰি ফুৰৈ সিটো বৃন্দাবনে।  
কৃষ্ণ কৃষ্ণ বুলি উন্নত মনে।।  
যিটো হৰি আছা জগত ব্যাপি।  
বৃক্ষত তাক সোধে পাশ চাপি।।”<sup>২</sup>

সেইদৰে ‘কালীয় দমন’ খণ্ডত বিশেষ জৰ্জৰিত হোৱা শ্ৰীকৃষ্ণক দেখি গোপ-গোপীসকলৰ দুখৰ অন্ত নাই। শংকৰদেৱে কালীয় দমন খণ্ডত কৰুণ বসৰ সুন্দৰ প্ৰয়োগ কৰিছে। কৃষ্ণ বিহীন যমুনাৰ তীৰত নন্দ যশোদা গোপ-গোপী সকলোৱে যেন শ্ৰীকৃষ্ণৰ স্মৃতি সোঁৱৰি দুখত কাতৰ হৈ পৰিছে। বিচ্ছেদৰ পীড়াই তেওঁলোকৰ অন্তৰ অগ্নিৰ দৰে দগ্ধ কৰিছে শংকৰদেৱে সেই দুখৰ কথা এনেদৰে বৰ্ণনা কৰিছে—

কৃষ্ণ কৃষ্ণ বুলি দিলেক গেড়ি।  
কান্দে যমুনাৰ তীৰক বেটি।।  
যশোদা সুন্দৰী নন্দ গোৱালে।  
পাৰন্ত লোটাৰি পৰি নিচালে।।  
কি ভৈল পুত্ৰ বুলি উকি দিয়া।  
দুহাত ঝাৱলে ঢাকুৰে হিয়া।।  
কৃষ্ণৰ সুন্দৰ বদন চাই।  
যশোদা কান্দন্ত গুণ বৰ্ণাই।।”<sup>৩</sup>

শংকৰদেৱৰ ‘কীৰ্তন’ গ্ৰন্থখনত বীৰ বসৰো প্ৰকাশ ঘটিছে। যুদ্ধক্ষেত্ৰত বীৰসকলৰ লক্ষ্য, জক্ষ্য, শত্ৰুক পৰাভূত কৰা ইত্যাদিৰ মাজেৰেই বীৰ বস প্ৰকাশিত হয়। কীৰ্তনত বিভিন্ন পদৰ মাজেদি শ্ৰীকৃষ্ণৰ বীৰত্ব প্ৰকাশ পোৱাৰ লগে লগে বীৰ বসৰো উন্মেষ ঘটিছে। কালীয় দমন খণ্ডত কালী নাগৰ দৰ্প-চূৰ্ণ কৰিবৰ বাবে কালী নাগৰ ফনাত উঠি নৃত্য কৰাৰ যি বৰ্ণনা দিছে তাত বীৰ বসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে বুলি ক’ব পৰা যায়। সেইদৰে কীৰ্তনৰ স্যমন্ত হৰণ, প্ৰহ্লাদ চৰিত, কংসবধ, জৰাসন্ধ যুদ্ধ, কালযৱন বধ আদিৰ মাজেদি বীৰ বসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। কংসবধত এই বীৰ বসত প্ৰকাশ এনেদৰে ঘটিছে—

দেখি কংস আসনৰ উঠি তাৰক্ষণে।  
ধৰিলেক খাণ্ডা-বাৰু যুজিবাক মনে।।  
ঝাৰুক বাহুৰে লুক্ষি ফিফাৰে খাণ্ডাক।  
যেন শেনগোটে আকাশতে পাক।।  
অচিন্ত্য মহিমা হৰি লীলায়ে হাসিয়া।  
আলগতে কংসক ধৰিয়া চাম্প দিয়া।।  
গুচিল প্ৰভাৱ তাৰ হ’ত হৈল দৰ্প।  
গৰুড়ৰ হাতে যেন বন্দী ভৈল সৰ্প।।”<sup>৪</sup>

এনেবোৰ বৰ্ণনাৰ আঁৰত বীৰ বসৰেই প্ৰকাশ ঘটিছে। বীৰ বসৰ উপৰিও ৰৌদ্ৰ, ভয়ানক, অদ্ভুত, বীভৎস আদি বসৰ সমাবেশ হোৱা দেখা যায়। বৈৰী ভাৱক কেন্দ্ৰ কৰি যি ক্ৰোধৰ সৃষ্টি হয়, তৰ্জন-গৰ্জন কম্পন আদিৰ দ্বাৰা অনুভৱিত আৰু গৰ্ব, অসহিষ্ণুতাৰ আদিৰ দ্বাৰা সঞ্চারিত হৈ সামাজিকৰ দ্বাৰা আত্মদিত হয় সি়েই ৰৌদ্ৰ বস। ইয়াৰ প্ৰকাশো এনেদৰে হোৱা দেখা যায়—

“হেন শুনি মহা ক্ৰোধে দৈত্য ৰাজ  
জ্বলি গৈল অহঙ্কাৰী  
মাটিক লাগিয়া পুত্ৰক পেলাইলা  
কোলাৰ পৰা আছাৰি।।”<sup>৫</sup>

কীৰ্তনৰ পদ আৰু ঘোষাৰ মাজত ভয়ানক বসৰো

বিকাশ দেখা যায়। ভয়ৰ সৃষ্টি কৰিব পৰা যিকোনো বস্তুক অৱলম্বন কৰি, বিকট অৱস্থা বা কৰ্ম আদিৰ দ্বাৰা উদ্দীপিত হৈ কম্পন পলায়ন আদিৰ দ্বাৰা অনুভৱিত আৰু ত্ৰাস উদ্বেগ আদিৰ দ্বাৰা সঞ্চাৰিত হয় সেয়ে ভয়ানক বস। এই ভয়ানক বসেও কীৰ্তনৰ পদ আৰু ঘোষাৰ মাজত সঞ্চাৰিত হোৱা দেখা যায়।

হাতে পাশ জৰী চক্ষু টেৰ কৰি  
থুলন্তৰ তাৰ জাঙ্গ।  
কৃষ্ণ বৰ্ণ কায় দেখি ধাতু যায়  
হাতত লোহাৰ ডাঙ্গ।<sup>১</sup>

সাহিত্যৰ আন এটি উল্লেখযোগ্য বস হৈছে অদ্ভুত বস। বিস্ময় নামৰ স্থায়ীভাৱক, অস্বাভাৱিক বস্তু বা ঘটনাক আলম্বন কৰি তাৰ অস্বাভাৱিকতা বা অসাধাৰণ মাহাত্ম্য আদিৰ দ্বাৰা উদ্দীপিত, শিহৰণ, স্তম্ভন, চক্ৰোৱা আদিৰ দ্বাৰা অনুভৱিত আৰু বিতৰ্ক, চিন্তা, আবেগ আদিৰ দ্বাৰা সঞ্চাৰিত হৈ আত্মাদিত হ'লে সি অদ্ভুত বসৰ সৃষ্টি কৰে। কীৰ্তনৰ পদৰ মাজত শংকৰদেৱে এই বসৰো প্ৰকাশ এনেদৰে ঘটাইছিল—

বকাসুৰে কৃষ্ণক গিলিলে ঠোঁটে ধৰি।  
দেখি গোপ শিশুগণ যেন গৈলা মৰি।।  
পাছে তাৰ তালুত লাগিল যেন জুই।  
ছাদিলা কৃষ্ণক বকে বিমুৰ্ছিত ছই।।<sup>২</sup>

সাহিত্যত বীভৎস বসৰ যি প্ৰকাশ দেখা যায় শংকৰদেৱৰ কীৰ্তনতো এই বসৰ বিকাশ দেখা যায়। অজামিলৰ ব্যভিচাৰ, পুতনাৰ ৰূপ বৰ্ণনাত, শিশুলীলা, মুচুকুন্দ স্ততি, হৰমোহন আদি খণ্ডত এই বসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। হৰমোহনৰ শ্ৰীকৃষ্ণৰ মোহিনী ৰূপ দেখি মহাদেৱৰ

অস্থিৰ ৰূপৰ বৰ্ণনাত বীভৎস বসৰ উন্মেষ ঘটাই দেখা যায়। উদাহৰণ স্বৰূপে—

একো নেদেখমত কামাতুৰ ভৈল হৰ।  
কন্যাক ধৰিবে মনে দিলন্ত লৱৰ।।  
খটমট কৰি গ'লে বাঞ্চে মুণ্ড-মাল।  
কঙ্কালৰ সুলকি পৰিল বাঘছাল।।<sup>৩</sup>

সাহিত্যৰ নৱবসৰ ভিতৰত শান্তও এবিধ বস। শান্তবসৰ স্থায়ীভাব হৈছে নিৰ্বেদ বা শম। বহিঃ বিষয়ৰ প্ৰতি আসক্তিৰ অভাৱেই নিৰ্বেদ বা শম। সংসাৰৰ প্ৰতি বিৰাগ বা হেয় ভৱৰ পৰাই শান্ত বসৰ উদ্ভৱ হয়। প্ৰত্নাদ চৰিতত দেখুৱা হৈছে সংসাৰৰ মায়া মোহ বিষয় পাশত আৱদ্ধ হৈ একো লাভ নাই। কাৰণ সৰ্বশেষত মৃত্যুৱে আহি সকলোকে গ্ৰাস কৰে। সেয়ে শংকৰদেৱে সংসাৰ সমুদ্ৰৰ বিষয় সুখত আৱদ্ধ নাথাকি হৰিৰ চৰণত শৰণ ল'বলৈ উপদেশ দিছে—

আজিকালি মিলিবে মৰণ।  
হৰি হৰি বোলা সৰ্বজন।।<sup>৪</sup>

এনেদৰে চালে দেখা যায় যে কীৰ্তনত সাহিত্যৰ নৱবসৰ প্ৰকাশ ঘটিছে। সাহিত্যৰ নৱবসৰ প্ৰকাশ ঘটিলেও কীৰ্তনত কিন্তু এই সকলোবোৰ বসেই গৈ ভক্তিৰ অপাৰ সমুদ্ৰত বিলীন হৈ গৈ সৰ্বশেষত ভক্তি বসতেই নিমজ্জিত হৈছে। বোপদেৱৰ মতে ভক্তিৱেই একমাত্ৰ বস; এই ভক্তি বসেই হাস্য, শৃংগাৰ, কৰুণ, বৌদ্ৰ, ভয়ানক, বীভৎস, শান্ত, অদ্ভুত আৰু বীৰ এই ৯ টা ৰূপত আত্মাদিত হয় বাবে ভক্তিও নৱবিধ। সকলো বসৰ মূলতঃ আছে ভক্তি। কীৰ্তনত এই নৱবসৰ উন্মেষ ঘটি সৰ্বশেষত গৈ ভক্তি বসতেই নিমজ্জিত হৈছেগৈ। □

পাদটীকা :

- ১। হাজৰিকা সূৰ্য (সম্পাদনা) ২০১৪ শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ বাক্যামৃত পৃ. ৭২
- ২। উল্লিখিত পৃ. ৭২
- ৩। উল্লিখিত পৃ. ৬৭
- ৪। উল্লিখিত পৃ. ৯৯
- ৫। উল্লিখিত পৃ. ৩৩
- ৬। উল্লিখিত পৃ. ১৯
- ৭। উল্লিখিত পৃ. ৬৩
- ৮। উল্লিখিত পৃ. ৪৯
- ৯। উল্লিখিত পৃ. ৪১

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- ১। চলিহা, হৰিপ্ৰসাদ (২০১৪) কীৰ্তন ঘোষাৰ সৰল গদ্য ৰূপান্তৰ, বাণী মন্দিৰ, গুৱাহাটী- ৩
- ২। বৰা, ইন্দিৰা শইকীয়া (২০০৫), বৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ অধ্যয়ন, বাণী মন্দিৰ, গুৱাহাটী- ৩
- ৩। বৰা, ইন্দিৰা শইকীয়া (২০১৫), শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ সংঘ, নগাওঁ, অসম
- ৪। ভকত, দ্বিজেন্দ্ৰ নাথ, (২০০৭) কীৰ্তন এক সমীক্ষাত্মক আলোচনা, চন্দ্ৰ একাশ, গুৱাহাটী- ১
- ৫। শৰ্মা, হেমন্ত কুমাৰ (২০১৩) অসমীয়া সাহিত্যত দৃষ্টিপাত, বীনা লাইব্ৰেৰী, গুৱাহাটী, অসম,
- ৬। হাজৰিকা, সূৰ্য (সম্পাদনা) (২০১৪), শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱ বাক্যামৃত, বাণী মন্দিৰ, গুৱাহাটী, অসম।

## আউলিঙৰ জুই উপন্যাসত বাধাগ্ৰস্ততাৰ উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক তাৎপৰ্য বিচাৰ

সংক্ষিপ্তস্বৰ :



অংশুমান বৰা

সহকাৰী অধ্যাপক, ইংৰাজী বিভাগ  
দেবৰাজ ৰয় মহাবিদ্যালয়  
গোলাঘাট - ৭৮৫৬২১  
☎ ৯৪৩৫৫৩৫৪৫  
✉ anshumtl@gmail.com

সাম্প্ৰতিক কালৰ সাহিত্যত প্ৰতিফলিত বাধাগ্ৰস্ততাক কেৱল জৈৱ-চিকিৎসাশাস্ত্ৰগত দৃষ্টিভংগীৰে বিচাৰ কৰাৰ সলনি ইয়াৰ সামাজিক-ৰাজনৈতিক প্ৰাসংগিকতাক তুলি ধৰাৰ প্ৰচেষ্টা লক্ষ্য কৰা যায়। আধিপত্যশীল সমাজ-ৰাজনৈতিক প্ৰক্ৰিয়া হিচাপে ঔপনিৱেশিকতাই বিভিন্ন ধৰণৰ বাধাগ্ৰস্ততাৰ জন্ম দিয়াৰ বিপৰীতে উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক প্ৰতিক্ৰিয়াশীল সাহিত্যই বাধাগ্ৰস্ততাৰ বৈকল্পিক প্ৰতিনিধিত্বৰে ঔপনিৱেশিক স্থিতাৱস্থাক প্ৰত্যাহ্বান জনায়। একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া সাহিত্যৰ বেলিকা প্ৰতিনিধিত্বমূলকভাৱে অনুৰাগ মহন্তৰ *আউলিঙৰ জুই* (২০০৭) উপন্যাসত সন্নিৱিষ্ট বাধাগ্ৰস্ততাৰ নিদৰ্শনসমূহৰ মাজেৰে বাধাগ্ৰস্ততাৰ বিশিষ্ট প্ৰতিফলন লক্ষ্য কৰিব পাৰি। এই আলোচনাত উপন্যাসখনৰ কেইটিমান বিশেষ চৰিত্ৰ আৰু সেইসমূহৰ সৈতে সংপৃক্ত পাৰিপাৰ্শ্বিকতাৰ বিশ্লেষণৰ চেষ্টা কৰা হৈছে। এনে আলোচনাই বাধাগ্ৰস্ততাৰ গভীৰ সমাজ-ৰাজনৈতিক তাৎপৰ্য, ঐতিহাসিক প্ৰমূল্য আৰু উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক পৰিসীমাৰ ভিতৰতে নব্য জ্ঞান-পৰম্পৰাৰ সন্ধান দিব পাৰে।

বীজশব্দ :

বাধাগ্ৰস্ততা, ঔপনিৱেশিকতা, অসমীয়া সাহিত্য, আউলিঙৰ জুই, উপন্যাস।

১.০ প্ৰস্তাৱনা :

সাহিত্য নাইবা অন্যান্য সাংস্কৃতিক মাধ্যমযোগে শাৰীৰিক তথা মানসিক বাধাগ্ৰস্ততাৰ প্ৰতিনিধিত্ব নতুন বিষয় নহয়। কিন্তু, পাৰম্পৰিকভাৱে বাধাগ্ৰস্ততাক কেৱল জৈৱ-চিকিৎসাশাস্ত্ৰগত (bio-medical) দৃষ্টিভংগীৰে বিচাৰ কৰা দেখা গৈছিল। ইয়াৰ সামাজিক প্ৰাসংগিকতা যদিও গুৰুত্বপূৰ্ণ বুলি সততেই উপলব্ধি কৰা যায়, সমাজ-ৰাজনৈতিক প্ৰেক্ষাপটত বাধাগ্ৰস্ততাক লৈ পদ্ধতিগতভাৱে চৰ্চা অথবা গৱেষণা বিংশ শতিকাৰ শেষৰ দুটা দশকতহে পশ্চিমৰ বিদ্যায়তনিক মহলত সম্ভৱ হৈ উঠে। ইয়াৰ ফলশ্ৰুতিত বাধাগ্ৰস্ততা অধ্যয়ন (Disability Studies) নামৰ আন্তঃশাখামূলক বিদ্যায়তনিক অধ্যয়ন আৰু গৱেষণাৰ এক ব্যৱস্থাই শেহতীয়াকৈ বিস্তাৰ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। এই ব্যৱস্থাৰ অন্তৰ্গত অধ্যয়ন অনুসৰি বাধাগ্ৰস্ততাক এক সামাজিক নিৰ্মিত হিচাপে গণ্য কৰা হয়। সমালোচক লেনাৰ্ড জে' ডেভিছে তেওঁৰ দ্বাৰা সম্পাদিত *The Disability Studies Reader* গ্ৰন্থৰ পাতনিত উল্লেখ কৰিছে যে বাধাগ্ৰস্ততাৰ সামাজিক কাঠামক ন্যায্যতা প্ৰদান কৰিছে ইয়াৰ বিপৰীতৰ্থক শব্দটোৱে নিৰ্দেশ কৰা ধাৰণাটোৱেহে— সেয়া হ'ল স্বাভাৱিকতা (normalcy)। ডেভিছৰ মতে, স্বাভাৱিকতা নিজেই এক সামাজিক, সাংস্কৃতিক নিৰ্মিত যাক আধিপত্যশীল সমাজ-ৰাজনৈতিক প্ৰক্ৰিয়াসমূহে গঢ় দি আহিছে (পৃঃ ১২)। বাধাগ্ৰস্ততা সেইদিশৰ পৰা কেৱল এক জৈৱ-চিকিৎসাশাস্ত্ৰগত বিষয় হৈ নাথাকি এক সামাজিকতা আৰু ঐতিহাসিকতাপুষ্টি সূচক অথবা ওপৰিসোধ হৈ পৰে, যাৰ যোগেদি



ডঃ ৰাখী কলিতা মৰল

প্ৰাধ্যাপক, ইংৰাজী বিভাগ  
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী  
অসম-৭৮১০০১  
☎ ৯৮৭১৯২৮৮৭  
✉ rakhee.moral@cottonuniversity.ac.in

প্ৰভাৱশালী শক্তিসমূহে বিয়পোৱা জ্ঞানতত্ত্ব বা জ্ঞান-পৰম্পৰা (epistemology)-ৰ বহুমাত্রিক ব্যাখ্যা আৰু সমালোচনা সম্ভৱ হৈ উঠে।

ঔপনিৱেশিকতা হৈছে আধিপত্যশীল সমাজ-ৰাজনৈতিক প্ৰক্ৰিয়াসমূহৰ দ্বাৰা সৃষ্ট জ্ঞান-পৰম্পৰাসমূহৰ অন্যতম, যি মতাদৰ্শগত এক স্থিতাবস্থাক দেশীয় জনসমষ্টিৰ ওপৰত 'স্বাভাৱিকতা' বুলি আৰোপিত কৰি বাহাল ৰাখে। ঔপনিৱেশিকতাৰ সৈতে বাধাগ্ৰস্ততাৰ এনে এৰাব নোৱাৰা সম্পৰ্কৰ বিষয়ে শ্বেফিল্ড বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অধ্যাপক ইছমে' ক্লীলে তেওঁৰ "Disability and postcolonialism" শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰত আলোচনা কৰি মত পোষণ কৰিছে যে অৰ্থনৈতিকভাৱে প্ৰভুত্বশীল পাশ্চাত্য ঔপনিৱেশিক শক্তিসমূহে গোলকীয় দক্ষিণাত্য (Global South)-ৰ বিভিন্ন অঞ্চলত ভিন্নধৰ্মী বাধাগ্ৰস্ততাৰ জন্ম দি আহিছে (পৃঃ ৫)। তেওঁ ইয়াকো উল্লেখ কৰিছে যে ঔপনিৱেশিকতাৰ কৰাল প্ৰাসত জীৱন নিৰ্বাহ কৰিবলৈ বাধ্য হোৱা জনসমষ্টিৰ মাজত কেতিয়াবা এক ধৰণৰ বাধাগ্ৰস্ততাই অন্য এক ধৰণৰ বাধাগ্ৰস্ততাৰ সৃষ্টি কৰে; আৰু আন কেতিয়াবা একোটা জনসমষ্টি একেসময়তে একাধিক বাধাগ্ৰস্ততাৰে আক্ৰান্ত হ'বলগীয়া হয় (পৃঃ ৬)। এক কথাত ক'বলৈ গলে ক্লীলৰ গৱেষণাই ঔপনিৱেশিক শাসনৰ ফলশ্ৰুতিত শোষিত-নিষ্পেষিত জনতাই কি দৰে শাৰীৰিক আৰু মানসিক অক্ষমতাৰ মাজেৰে জীৱন পাৰ কৰিবলগীয়া হয়, সেয়া প্ৰকাশ কৰিছে। এই প্ৰসংগত ঔপনিৱেশিক পৰাধীনতা নিজেই বাধাগ্ৰস্ততাৰ নামান্তৰ। উল্লেখযোগ্য যে ঔপনিৱেশিকতাৰ বাগধাৰাই ঔপনিৱেশিক শোষণক স্বাভাৱিকতা বুলি প্ৰক্ষেপ কৰে কিন্তু ইয়াৰ বিপৰীতে উত্তৰ-ঔপনিৱেশিকতাৰ ৰাজনীতিয়ে প্ৰতিক্ৰিয়াশীলতাৰে তেনে স্বাভাৱিকতাক প্ৰত্যাহ্বান জনায়। ইয়াৰ জ্ঞানতাত্ত্বিক তাৎপৰ্য এয়ে যে সাহিত্যৰ দৰে প্ৰতিনিধিত্বৰ মাধ্যমযোগে প্ৰবাহিত হোৱা বাধাগ্ৰস্ততাৰ চিত্ৰণে ঔপনিৱেশিকতা সম্পৰ্কীয় নতুন জ্ঞানৰ সন্ত্ৰেয় দিয়াৰ লগতে প্ৰতিক্ৰিয়াশীলতাৰ বৈকল্পিক প্ৰমূল্যৰো বাৰ্তা কঢ়িয়াই আনিব পাৰে।

সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক সাহিত্যত বাধাগ্ৰস্ততাৰ প্ৰতিফলন বিৰল নহয়। অথচ যথোপযুক্ত আলোচনা পদ্ধতিৰ দ্বাৰা এনে নিদৰ্শনৰ বিশ্লেষণৰ যথেষ্ট অভাৱ পৰিলক্ষিত হয়। এই ক্ষেত্ৰত একবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দশকত আত্মপ্ৰকাশ কৰা ঔপন্যাসিক অনুৰাগ মহন্তৰ উপন্যাস *আউলিঙৰ জুই* (২০০৭) উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত বাধাগ্ৰস্ততাৰ বিশিষ্ট চিত্ৰণৰ কথা উলিয়াব পাৰি। উপন্যাসখনত বৰ্ণিত সামাজিক-ৰাজনৈতিক আৰু ভৌগোলিক পাৰিপাৰ্শ্বিকতা আৰু

ঔপন্যাসিকৰ চৰিত্ৰায়ণত বাধাগ্ৰস্ততাৰ উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক প্ৰতিক্ৰম পৰিস্ফুট হৈছে। সেয়েহে এই আলোচনাৰ জৰিয়তে উপন্যাসখনত বাধাগ্ৰস্ততাৰ উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক বাগধাৰাক চিহ্নিত কৰি ইতিমধ্যে আলোচিত তাত্ত্বিক অৱস্থানৰ আলমত তাৰ সমাজ-ৰাজনৈতিক প্ৰাসংগিকতা বিচাৰ কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে।

## ২.০ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

এই আলোচনাৰ বাবে দুটা মূল উদ্দেশ্য নিৰ্ধাৰণ কৰা হৈছে—

প্ৰথম, বাধাগ্ৰস্ততাৰ সামাজিক আৰু ৰাজনৈতিক তাৎপৰ্য সন্ধানৰ বাবে উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক সাহিত্য পাঠক গুৰুত্বপূৰ্ণ জ্ঞানতাত্ত্বিক মাধ্যম হিচাপে গ্ৰহণ। দ্বিতীয়, একবিংশ শতিকাৰ উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক সাহিত্য পাঠৰ নিদৰ্শন হিচাপে *আউলিঙৰ জুই* উপন্যাসত সন্নিৱিষ্ট বাধাগ্ৰস্ততাৰ নিদৰ্শনসমূহৰ বিশ্লেষণৰ যোগেদি সেইসমূহৰ সমাজ-ৰাজনৈতিক আৰু ঐতিহাসিক মূল্য নিৰূপণ।

## ৩.০ পদ্ধতি :

এই আলোচনাত মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি প্ৰয়োগ কৰা হৈছে।

## ৪.০ মূল বিষয়বস্তুৰ আলোচনা :

এই কথা ইতিমধ্যে উল্লেখ কৰা হৈছে যে আধিপত্যশীল ঔপনিৱেশিক শক্তিৰ দ্বাৰা নিয়ন্ত্ৰিত স্বাভাৱিকতাৰ ধাৰণাই বাধাগ্ৰস্ততাৰ ধাৰণাক সামাজিক অথবা সাংস্কৃতিক গ্ৰহণযোগ্যতা প্ৰদান কৰিছে। গতিকে, বাধাগ্ৰস্ততাৰ বৈকল্পিক বিশ্লেষণৰ দ্বাৰা বাধাগ্ৰস্ততাই বহন কৰা উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক ঐতিহাসিকতাবিশিষ্ট তাৎপৰ্যক সম্যক ৰূপত তুলি ধৰিব পৰা যায়।

অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসত বাধাগ্ৰস্ততাৰ সামাজিক প্ৰাসংগিকতাক পাৰ্শ্বীয় বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ বহু বসোত্তীৰ্ণ সাহিত্যৰ সৃষ্টি হৈছে। একবিংশ শতিকাত অৱশ্যে বাধাগ্ৰস্ততাক মূল বিষয় হিচাপে লৈও একাধিক লেখকে কল্পবৃত্তান্ত অথবা আত্মজীৱনীমূলক সাহিত্য ৰচনা কৰি জনপ্ৰিয়তা অৰ্জন কৰিছে। এই ক্ষেত্ৰত শমিষ্ঠা প্ৰীতম, ৰশ্মিৰেখা ভূঞা আৰু গীতালি বৰাৰ নাম বিশেষভাৱে ল'ব পাৰি। ইয়াৰ বিপৰীতে এই আলোচনাত বাধাগ্ৰস্ততাৰ প্ৰত্যক্ষভাৱে উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক চৰিত্ৰ আৰু তাৎপৰ্য বহন কৰা সাহিত্যকৰ্ম হিচাপে অনুৰাগ মহন্তৰ *আউলিঙৰ জুই* উপন্যাসখন নিৰ্বাচন কৰা হৈছে।

*আউলিঙৰ জুই*ৰ পটভূমি হৈছে ভাৰত-ম্যানমাৰ সীমান্তৰ বিবাদমান ন' মেনছ লেণ্ড (No Man's Land)-ত বসবাস কৰা কন্যাক নগা জনগোষ্ঠীৰ এচাম লোকৰ দুৰ্দশাগ্ৰস্ত সমাজ জীৱন। বৃটিছ ঔপনিৱেশিক শাসকে নিৰ্বিচাৰ আৰু

নিৰ্বিকাৰভাৱে কৰা সীমা নিৰ্ধাৰণৰ ফলত ভাৰত আৰু ম্যানমাৰৰ মাজত বিভক্ত হৈ কোনোখন দেশৰে অংশ হ'ব নোৱাৰা এই লোকসকলৰ কোনো স্বীকৃতিপ্ৰাপ্ত ৰাজনৈতিক পৰিচয় নাই আৰু সেয়েহে তেওঁলোক দেশহীন। তদুপৰি অতীজৰে পৰা এই ভূ-খণ্ডত সমাজ পাতি বসবাস কৰা চহকী লোককৃষ্টিৰে এইসকল নিৰ্দোষ নগা জনতাৰ জীৱনক বিপদাপন্ন আৰু ক্ষণভংগৰ কৰি তোলে এইখিনি অঞ্চলতে বাহৰ পাতি থকা বিদ্ৰোহী সংগঠনসমূহে। অটব্য অৰণ্য আৰু দুৰ্গম পাহাৰৰে আবৃত এই অঞ্চলত বিদ্ৰোহী শিবিৰৰ সন্ধানত থকা দুয়োখন দেশৰ সেনাই বিভিন্ন সময়ত বিদ্ৰোহীৰ সন্দেহত এই অঞ্চলত থকা সাধাৰণ মানুহৰ বস্তিসমূহত অতৰ্কিতে আক্ৰমণ চলায় অথবা হিংসাত্মক পদ্ধতিৰে বাসস্থানসমূহ উচ্ছেদ কৰে। এনে বিপদসংকুলতা, অনিশ্চয়তাৰ আৰু সৰ্বতোপ্ৰকাৰৰ প্ৰতিকূলতাৰ মাজত পাৰ হয় হন্যাট বস্তিৰ দৈনন্দিন জীৱন। উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক ৰাজনৈতিক ঘটনাক্ৰমৰ পাকচক্ৰত পৰি স্বীকৃতি বিহীন এচাম মানুহৰ জীৱন পৰিক্ৰমাক সাহিত্য পাঠৰ মাধ্যমেৰে উপন্যাসখনে প্ৰতিনিধিত্ব প্ৰদান কৰিছে। ইয়াত বৰ্ণিত মানৱীয় অৱস্থাৰ ইতিপূৰ্বে আলোচিত ঔপনিৱেশিক স্বাভাৱিকতাৰ ধাৰণাৰ বিপৰীত মেৰুত প্ৰক্ষেপ কৰিব পৰা যায় আৰু সূক্ষ্ম অধ্যয়নত এই কথা প্ৰতীয়মান হ'ব যে উপন্যাসখনত বৰ্ণিত মানৱীয় অৱস্থাৰ দ্বাৰা প্ৰতিবিস্তিত হোৱা বাধাগ্ৰস্ততাৰ ধাৰণাই স্বাভাৱিকতাৰ সাৰ্বজনীন ৰূপটোক নিৰ্গঠিত কৰিছে।

ঔপন্যাসিক মহন্তই উপন্যাসখনৰ 'প্ৰস্তাৱনা'ত উল্লেখ কৰিছে কি দৰে বৃটিছ ঔপনিৱেশিক প্ৰশাসকে উপনিৱেশ-বিলুপ্তি (decolonization)-ৰ এক পৰ্যায় হিচাপে উপনিৱেশোত্তৰ ভূ-খণ্ডৰ সীমা নিৰ্ধাৰণ কৰিছিল—

“...ৰেডক্লিফ নামৰ সভ্য পৃথিৱীৰ প্ৰতিনিধি এজনৰ চোকা তৰোৱালে জন্মদিনৰ কে'ক কটাৰে এই ভূ-খণ্ডক খণ্ডিত কৰি পেলালে। এফালে ভাৰতবৰ্ষ আৰু আনফালে বাৰ্মা। ...তোমালোক ভাৰতৰ মানুহ আৰু তোমালোক বাৰ্মাৰ— ধুনীয়াকৈ বুজাই দি চাহাব গ'লগৈ।

শুনা যায় ৰেডক্লিফ চাহাবে এই এঁকা-বেঁকা আঁচডাল টানোতে বৰ নিৰ্বিকাৰভাৱে চাহাবী চঙত পাইপ টানি আছিল।” (পৃঃ ১০-১১)

ঔপন্যাসিকে লিখিছে যে এই সীমা নিৰ্ধাৰণৰ ফলত দুই দেশৰ নিৰাপত্তাৰ প্ৰয়োজনত এখন দেশহীন দেশৰ সৃষ্টি হ'ল, যাৰ নাম ন' মেনছ লেণ্ড— “জনশূণ্য নহয়—মানুহ থকা ন'

মেনছ লেণ্ড” (পৃঃ ১১)। এই উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক ন' মেনছ লেণ্ডৰ বিষয়ে মহন্তই পুনৰ বৰ্ণনা কৰিছে—

“এইবোৰ দুৰ্গম ঠাইৰ কথা। আধুনিক মানুহৰ বাবে ৰিমট এৰিয়া। দুৰ্গম পথ, হিংস্ৰ জন্তুৰ বিভীষিকা, অধুনালুপ্ত হেড হাণ্ডিং ট্ৰেডিচনৰ নিচা থকা মানুহৰ আবাসভূমি এই ভূ-খণ্ড, আৰু তাৰ পূৰ্বলৈ? হয়, তাৰ পূৰ্বলৈ আছে নাম শুনিলেই গাৰ নোম ঠিয় হৈ যোৱা ৰহস্য আৰু বিভীষিকাৰে ভৰা মৃত্যু উপত্যকা...” (পৃঃ ১১-১২)

যদিও ৰাজনৈতিক ঔপনিৱেশিকতাৰ সমাপ্তিয়ে জনগণৰ মাজলৈ স্বতন্ত্ৰতা আৰু মুক্তিৰ বতৰা কঢ়িয়াই আনিলে, উপন্যাসখনত বৰ্ণিত পাৰিপাৰ্শ্বিকতাৰ অংশস্বৰূপ সমাজ সমূহত সেয়া হৈ নুঠিল। বৰঞ্চ এইবোৰ সমাজত গা কৰি উঠিল ভিন্নধৰ্মী বাধাগ্ৰস্ততাই। অধ্যাপক ক্লীলৰ গৱেষণাত প্ৰকাশিত এক উল্লেখযোগ্য সিদ্ধান্ত আছিল যে উপনিৱেশ-মুক্তিৰ প্ৰক্ৰিয়াসমূহে নিজেও হিংসা-প্ৰতিহিংসাৰ কাৰক হৈ কেতিয়াবা দেশীয় জনসমষ্টিৰ মাজত বাধাগ্ৰস্ততাৰ জন্ম দিয়ে আৰু আন কেতিয়াবা বাধাগ্ৰস্ততাৰ সম্ভাৱনীয়তাক সাৰ-পানী যোগায় (...processes of decolonization, themselves sometimes violent and generative of disabled populations, have not ended these processes whereby those living... are subjected to conditions that make disability more likely) (পৃঃ ৬)।

ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা এই কথা বোধগম্য হয় যে *আউলিঙৰ জুই* উপন্যাসত সন্নিৱিষ্ট হোৱা বাধাগ্ৰস্ততাৰ পাঠ্যতা এক সামাজিক-ৰাজনৈতিকভাৱে প্ৰাসংগিক আলোচ্য বিষয় আৰু এই বৃত্তান্তত সংযুত বাধাগ্ৰস্ততাৰ বাগধাৰাক উপন্যাসখনৰ কেইটিমান বিশেষ চৰিত্ৰৰ বিশ্লেষণৰ জৰিয়তে আলোচনালৈ আনিব পৰা যায়। বৰ্তমানৰ আলোচনাৰ বাবে নিৰ্বাচিত চৰিত্ৰকেইটা হ'ল— লাইপা, কুচুম, টেম্পু আৰু উপন্যাসখনৰ মূল কথক অতনু। চৰিত্ৰকেইটিৰ আলোচনাৰ দ্বাৰা উপন্যাসখনৰ বৃত্তান্তই বহন কৰা বাধাগ্ৰস্ততাৰ উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক লক্ষণসমূহৰ মূল্যায়ন কৰিব পৰা যায়।

### ৪.১ বাধাগ্ৰস্ত চৰিত্ৰসমূহৰ আলোচনা :

প্ৰত্যক্ষভাৱে শাৰীৰিক বা মানসিক বাধাগ্ৰস্ততাত আক্ৰান্ত নহ'লেও উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ অতনুক বাধাগ্ৰস্ততাৰ দৃষ্টিভংগীৰ আলমত আলোচনা কৰিব পৰা যায়। কাহিনীভাগত অতনুৰ অতীত সম্পৰ্কে স্পষ্টকৈ কোনো কথা উল্লেখ কৰা হোৱা নাই। বৰঞ্চ উপন্যাসৰ আৰম্ভণিত তেওঁ হতাশাগ্ৰস্ততা

অতিক্রমি হন্যাট বস্তিত এক উদ্দেশ্যপূৰ্ণ জীৱন বিচাৰি অহা এজন ব্যক্তি হিচাপেহে পৰিচয় লাভ কৰিছে। আনিয়ামৰ সৈতে দুৰ্গম যাত্ৰাপথ পাৰ কৰি হন্যাট বস্তিত উপস্থিত হোৱা অতনুৰ উদ্দেশ্য এটাই — বস্তিৰ শিশুসকলক শিক্ষাদান কৰি তেওঁলোকৰ জীৱন গঢ়াৰ চেষ্টা কৰিব। কিন্তু হন্যাট বস্তিৰ বিপদাপন্ন দৈনন্দিন বাস্তৱতাৰ সৈতে অপৰিচিত অতনুৱে খুব সোনকালে তেওঁৰ উদ্দেশ্য পূৰণৰ দুঃসাধ্যতা উপলব্ধি কৰিব পাৰিছে আৰু ব্যথিত হৈছে। অতনু সন্মুখীন হৈছে ন’ মেনছ লেণ্ডৰ ভয়াবহ বাস্তৱতাৰ সৈতে আৰু অনুভৱ কৰিছে যে ধ্বংস আৰু মৃত্যুৰ বিভীষিকা হন্যাটৰ বাসিন্দাসকলৰ কাৰণে অনিবাৰ্য প্ৰাত্যহিকতা মাথোন। বাৰ্মিজ সেনাই বোমা-বাৰুদেৰে নিৰ্বিচাৰ আক্ৰমণ কৰাৰ ফলত নিমিষতে চাৰ-খাৰ হৈ যোৱা হন্যাট বস্তিৰ মৰ্মস্তুদ ছবিখন দেখি অতনু মুখামুখি হৈছে জীৱনৰ অন্তঃসাৰশূণ্যতাৰ সৈতে—

“আনিয়ামে কোৱাৰ দৰে তাত তেতিয়া কোনো বস্তি নাছিল, আছিল ঘৰবোৰৰ ঠাইত কিছুমান আধাপোৰা এঙাৰ, ফুটছাইৰ দ’ম। তাৰ মাজে মাজে দুই এটা আধাপোৰা কাঠৰ খুটা শ্মশানত পুতি থোৱা ক্ৰছৰ দৰে বেঁকা হৈ ঠিয় হৈ আছিল। অতনুৰ বুকুখন ধৰফৰাই উঠিল।” (মহন্ত, পৃঃ ৭৩)

বধ্যভূমিৰ এই ছবিৰ সৈতে সংযুক্ত মানৱীয় কৰ্তৃত্বৰ ছবিখন অৱধাৰিতভাৱে বাধাগ্ৰস্ততাৰ। হন্যাট বস্তিৰ বাসিন্দাসকলে যদিও বস্তিখনৰ লগতে জ্বলি ছাই হৈ যোৱা স্কুলঘৰটো বাৰে বাৰে নিৰ্মাণ কৰিবলৈ বদ্ধপৰিকৰ হোৱা বুলি উপন্যাসখনত উল্লেখ আছে, তথাপি হন্যাটত লাভ কৰা অভাৱনীয় অভিজ্ঞতাসমূহৰ পাছত অতনুৰ ব্যক্তিসত্তাৰ মাজত বস্তিখনলৈ শিক্ষাদানৰ দ্বাৰা ইতিবাচক পৰিৱৰ্তন কঢ়িয়াই অনিব পৰাকৈ উদ্যম আৰু কৰ্তৃত্ব — কোনোটেৱেই পূৰ্ণ ৰূপত বিচাৰি পোৱা নাযায়। ইয়াৰ বিপৰীতে বেছিখিনি সময়তে অতনু হৈ পৰিছে হন্যাটত ঘটা প্ৰতিটো ঘটনাৰ নীৰৱ পৰ্যবেক্ষক মাথোন। দৰাচলতে হন্যাট বস্তিত অতনুৱে লগ পোৱা প্ৰতিটো চৰিত্ৰই কম-বেছি পৰিমাণে অতনুৰ দৰেই ক্ষমতাহীন, অসহায় আৰু বিপদাপন্ন। ই বাধাগ্ৰস্ততাৰ এক সাৰ্বিক অৱস্থাবে ইংগিত বহন কৰে। সেয়েহে দাবী কৰিব পাৰি যে উপন্যাসিকৰ চৰিত্ৰায়ণত বাধাগ্ৰস্ততা একপ্ৰকাৰ ৰূপকধৰ্মিতাবে প্ৰকাশিত হৈ উপন্যাসখনৰ বৃত্তান্তক সামগ্ৰিকভাৱে নিয়ন্ত্ৰিত কৰিছে।

আউলিঙৰ জুইত বাধাগ্ৰস্ততাৰ আক্ষৰিক নিদৰ্শনসমূহৰো যথেষ্ট তাৎপৰ্য আছে। বিশেষ গুৰুত্ববিহীন অন্যান্য পাৰ্শ্বীয়

চৰিত্ৰসমূহৰ কথা যদি বিবেচনা কৰা নাযায়, তেনেহ’লে শাৰীৰিক বাধাগ্ৰস্ততাৰ প্ৰতিনিধিত্বৰে উপন্যাসখনত বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰি থকা লাইপা, কুচুম আৰু টেম্পুৰ চৰিত্ৰকেইটাৰ আলোচনা প্ৰয়োজনীয় হৈ পৰে। এই চৰিত্ৰকেইটাৰ সাহিত্যিক মূল্য উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক প্ৰেক্ষাপটত মানৱীয় কৰ্তৃত্বৰ সীমাবদ্ধতাৰ প্ৰশ্নটোৰ সৈতে সংযুক্ত হৈ আছে।

উপন্যাসৰ আৰম্ভণিত সাময়িকভাৱে কথক হিচাপে আত্মপ্ৰকাশ কৰা লাইপাক পাঠকে হন্যাট বস্তিৰ এজন কৰ্মঠ যুৱক হিচাপে আৱিষ্কাৰ কৰে। প্ৰেয়সী আমনৰ সৈতে সোনকালেই ঘৰ পাতি এক স্বাভাৱিক জীৱন কটোৱাৰ সপোন দেখা লাইপা ঘটনাক্ৰমে সীমান্তত বিদ্ৰোহীৰ সন্দেহত সেনাৰ হাতত বন্দী হয় আৰু কিছুদিনৰ পাছত বস্তিৰ মানুহে তেওঁক ঘৃণীয়া ৰূপতহে বস্তিলৈ ঘূৰাই আনিবলৈ সক্ষম হয়। লাইপাৰ বাধাগ্ৰস্ততাই আমনৰ সৈতে তেওঁৰ সাংসাৰিক জীৱনৰ সম্ভাৱনীয়তাক ধ্বংস কৰাৰ লগতে উদ্যমী যুৱক হিচাপে হন্যাটৰ সামাজিক জীৱনকো প্ৰভাৱিত কৰে। উপন্যাসৰ শেষাংশত লাইপাৰ অসুস্থতাই গুৰুতৰ ৰূপ লয় আৰু আধুনিক চিকিৎসা অবিহনে তেওঁৰ জীয়াই থকাৰ সম্ভাৱনা ক্ষীণ হৈ পৰাত ওমলি আপাৰ নেতৃত্বত অতনুকে ধৰি বস্তিৰ কেইবাজনো লোকে বিপদসংকুল পথেৰে ভাৰত-ম্যানমাৰ সীমা অতিক্ৰম কৰি লাইপাক টুৱেনচাং চহৰৰ হস্পিটাললৈ চাঙিত কঢ়িয়াই নিয়াৰ সিদ্ধান্ত কৰে। কিন্তু, এই দীঘলীয়া দুৰ্গম যাত্ৰাপথতে বিদ্ৰোহীৰ বিৰুদ্ধে চলা সামৰিক অভিযানৰ ফলত সেনাই অতৰ্কিতে কৰা গুলীচালনাত লাইপাৰ লগতে বস্তিৰ নেতৃত্বস্থানীয় ওমলি আপা আৰু তাইজাতে কৰুণ মৃত্যুক সাৱটি ল’ব লগা হয়।

আধুনিক চিকিৎসা সেৱা উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক কালৰ প্ৰাথমিক প্ৰয়োজন আৰু জনগণই এই সেৱা সুকলমে লাভ কৰাটো এক ‘স্বাভাৱিক’ ব্যৱস্থা। অথচ উপন্যাসখনত লাইপাৰ চৰিত্ৰটোৰ বাধাগ্ৰস্ততাই মুকলি কৰি দিয়া এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰশ্ন হৈছে যে, হন্যাটৰ দেশহীন লোকসকলৰ বাবে ই এক দুৰূহ আৰু দুস্প্ৰাপ্য ব্যৱস্থা। বাধাগ্ৰস্ত লাইপা যদি আধুনিক চিকিৎসাৰ অবিহনে মৃত্যুমুখত পৰাটো নিশ্চিত, চিকিৎসাৰ কাৰণে বিপদসংকুল পথেৰে কৰা যাত্ৰাত প্ৰাণৰক্ষা কৰি চিকিৎসালয় গৈ পোৱাটোও অত্যন্ত দুঃসাধ্য। আউলিঙৰ জুইৰ চৰিত্ৰায়ণত ফুটি উঠা এই অপাৰগতাই ঔপনিৱেশিকতাবাদী স্বাভাৱিকতাৰ বিনিৰ্মাণকে স্পষ্টৰূপত প্ৰত্যায়িত কৰে।

লাইপাৰ দৰেই চৌখাং আপাৰ চেমনীয়া পুতেক কুচুমৰ চৰিত্ৰটোৰ ক্ষেত্ৰতো এক আৰ্জিত বাধাগ্ৰস্ততাৰ উদাহৰণ পোৱা

যায়। ঘন অৰণ্যত বন গাহৰি চিকাৰ কৰিবলৈ যাওঁতে নিজৰ দেউতাকৰ খজা বন্দুকৰ গুলীত আঘাতপ্ৰাপ্ত হয় কুচুম। এনেদৰে দুৰ্ঘটনাৰ সন্মুখীন হোৱা ব্যক্তিৰ বিজ্ঞানসন্মত প্ৰাথমিক চিকিৎসাৰ কোনো ব্যৱস্থা নথকা বস্তুখনত কুচুমৰ বাবেও যত্নশীল প্ৰাত্যহিকতা বুলি গ্ৰহণ কৰি দুৰ্বিসহ জীৱন পাৰ কৰাৰ বাহিৰে একো গত্যন্তৰ নাই। ঔপন্যাসিকে কথক অতনুৰ যোগেদি কুচুমৰ শৰীৰৰ নুশুকোৱা ঘা-ডোখৰৰ বীভৎসতাক এটি মৃত বন্যপ্ৰাণীৰ শৰীৰৰ ঘা-ৰ সৈতে বৈপৰীত্যৰে তুলনা কৰিছে; ইয়াৰ যোগেদি পশুৰ সহজ মৃত্যু কিপৰীতে হন্যাটৰ মানুহৰ দুৰ্বিসহ বাধাগ্ৰস্ত জীৱনৰ ছবি উন্মোচিত হৈছে—

“দাগটো চাওঁতেই তেজৰ কেচেমা-কেচেম গোন্ধ এটা আহি অতনুৰ নাকত লাগিল। কেঁচা তেজৰ গোন্ধ। দাগটোৰ পৰা মাজে মাজে এতিয়াও তেজ নিগৰি আছে। ...হঠাৎ আৰু এটা উৎকট গেলা গোন্ধ আহি অতনুৰ নাকত লাগিলহি। অতনুৱে ঘূৰি চালে। কুচুম ঠিয় হৈ আছে।

গুলী লগা ভৰিতোত কাপোৰ এসোপামান মেৰিয়াই থোৱা স্বত্বেও মঙহৰ গেলা গোন্ধটো ওলাই আহি অতনুৰ নাকত লাগিছে। গোন্ধ নহয়, এটা দুৰ্গন্ধ।” (পৃঃ ১৩৩-১৩৪)

লাইপাৰো শৰীৰৰ ঘাৰ পৰা ওলোৱা দুৰ্গন্ধৰ কথা উপন্যাসখনত অতনুৰ যোগেদি বৰ্ণিত হৈছে। দুৰ্গন্ধৰ এই অৰ্থবহ সংবেদনে দৰাচলতে উপন্যাসখনত প্ৰকাশ লাভ কৰা বাধাগ্ৰস্ততাৰ প্ৰসংগক এক নতুন ব্যাপ্তি প্ৰদান কৰিছে যাৰ দ্বাৰা মানৱীয় কৰ্তৃত্বৰ সীমাবদ্ধতা উত্তৰ-ঔপনিৱেশিকতাৰ এক জ্বলন্ত পৰিপ্ৰেক্ষা হিচাপে চিহ্নিত হৈছে।

উপন্যাসখনৰ বাধাগ্ৰস্ত চৰিত্ৰসমূহৰ বিশ্লেষণ আধৰুৱা হৈ ৰ'ব যদিহে লাইপাৰ ভাতৃ টেম্পু (টিংলাই)-ৰ চৰিত্ৰটিৰ আলোচনা কৰা নাযায়। টেম্পু হৈছে হন্যাট বস্তিৰ এটি মুক-বধিৰ কিশোৰ যাৰ শাৰীৰিক বাধাগ্ৰস্ততা জন্মগত। যদিও শব্দেৰে নিজৰ ভাৱ প্ৰকাশ কৰিবলৈ অক্ষম, টেম্পুৰ চৰিত্ৰটোৰ বিশেষত্ব এয়ে যে কাহিনীভাগত তাৰ শৰীৰটো মানুহৰ সৈতে যোগাযোগ কৰাৰ অজ্ঞান অথবা সজ্ঞান মাধ্যম হিচাপে ব্যৱহৃত হৈছে (বৰা, পৃঃ ৫৮৫)।

হন্যাট বস্তিৰ মানুহে ওচৰৰ এখন পাহাৰত শিবিৰ পাতি থকা নগা-বিদ্ৰোহীক নিত্য-প্ৰয়োজনীয় সামগ্ৰী (চাখান) বাধ্যতামূলকভাৱে যোগান ধৰাৰ বিদ্ৰোহী শিবিৰৰ দ্বাৰাই নিৰ্ধাৰিত নিয়মৰ কথা উপন্যাসখনত উল্লেখ আছে। সেই নিয়ম পালন কৰিবলৈ যাওঁতে বস্তিৰ এটা ‘অঁকৰা’ ল’ৰা টেম্পুৰ ওপৰতে আটাইতকৈ বেছি দায়িত্ব পৰে। ঔপন্যাসিকে বৰ্ণনা কৰিছে যে সৰু মালবাহী গাড়ী (টেম্পু) এখনৰ দৰে সি পিঠিৰ

গধুৰ হোৱাটোত সামগ্ৰীবোৰ লৈ দৌৰি ফুৰে কাৰণেই তাৰ নাম ‘টেম্পু’—

“...দৈনিক কেম্পলৈ চাখান কঢ়িওৱাৰ পৰিণতিতেই টেম্পুৱে তাৰ মুৰৰ মাজত দ খাঁজটো উপহাৰ পালে। হোৱাৰ চেপেটা ৰচীডাল মুৰৰ সেই নিৰ্দিষ্ট অংশত লগাই কম বয়সীয়া ল’ৰাটোৱে চাখান কঢ়িয়াওঁতে সেই স্থানত এটা দ-খাঁজেই বহি গৈছে। ঠিক বিলাতী কুকুৰৰ ডিঙিত টানকৈ চামৰাৰ ফিটা বান্ধি ৰাখিলে যেনেধৰণৰ এটা খাঁজ বহে, ঠিক তেনেকুৱাই।” (পৃঃ ৮৮)

উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক পৃথিৱীত মানৱ অধিকাৰ বাগধাৰাৰ অন্তৰ্গত বাল্য-শ্ৰম সম্পৰ্কীয় নীতিৰ বিশেষ গুৰুত্ব আছে। অথচ ন’ মেনছ লেগুৰ বাল্য-শ্ৰমিক টেম্পু মানৱ অধিকাৰৰ সেই বিশেষ পৰিসীমা-বহিৰ্ভূত এক সত্তা। টেম্পুৰ বাধাগ্ৰস্ততা সেই দিশৰ পৰা এক বিকল্প মানৱীয় অৱস্থা (state of exception)। সাধাৰণভাৱে স্বীকৃত মানৱীয় কৰ্তৃত্ব, যাৰ সুবাদত মানুহে নিজকে জীৱশ্ৰেষ্ঠ বুলি প্ৰতিপন্ন কৰিবলৈ চেষ্টা কৰে, তাৰ অনুপস্থিতি অথবা বিলুপ্তিয়েই হৈছে এনে মানৱীয় অৱস্থাৰ মূল উপজীব্য। এইখিনিতে ঔপন্যাসিকৰ দ্বাৰা টেম্পুৰ পৰাধীন মানৱীয় সত্তাৰ সৈতে ইতৰ প্ৰাণীৰ পৰাধীন সত্তাৰ তুলনা লক্ষণীয়। ইতৰ প্ৰাণীৰ জান্তৰ সত্তাৰ সৈতে মানৱীয় পাৰস্পৰিকতাৰ এই বিশিষ্ট ৰূপ পুনৰ টেম্পুৰ মৃত্যুৰ সময়ৰ বিৱৰণত পৰিলক্ষিত হয়। লাইপা আৰু কুচুমৰ দৰেই আধুনিক চিকিৎসা সেৱাৰ পৰা বঞ্চিত হৈ টেম্পুৱেও এটা সময়ত অকাল মৃত্যুক সাৱটি ল’ব লগা হৈছে। ৰুগ্ন ব্যক্তিক সুস্থ কৰি তোলাৰ বাবে বস্তিৰ মানুহে লোৱা দেশীয় পদ্ধতিটো হ’ল কোনো জন্তুক হত্যা কৰি তাৰ গৰম তেজ ৰোগীজনক পিবলৈ দিয়া। সেইমতে চেংবাঙৰ ঘৰৰ পোহনীয়া কুকুৰটোক দুচেও কৰি তাৰে তেজ ৰুগ্ন টেম্পুক পিবলৈ দিয়া হয়।

“আমনে লাহেকৈ মগটো বেঁকা কৰি টেম্পুৰ মুখত তেজখিনি বাকী দিবলৈ যত্ন কৰিলে। ...মগটোৰ পৰা কিছু তেজ বাগৰি টেম্পুৰ মুখলৈ সোমাই গ’ল। আৰু তাৰ লগে লগে টেম্পুৰ চকু দুটাও মুদ খাই গ’ল।” (পৃঃ ১৭২)

স্বাভাৱিকতে এই চিকিৎসাই কোনো ফল নিদিয়ে আৰু টেম্পুৰ মৃত্যু হয়। টেম্পুৰ মৃত্যুৰ পিছতে অতনুৱে হঠাতে আৱিষ্কাৰ কৰে ন’ মেনছ লেগুত প্ৰতিনিধিত্বমূলকভাৱে টেম্পুৰ অস্বীকৃত, বাধাগ্ৰস্ত মানৱীয় সত্তাৰ আক্ষৰিকভাৱে বৈপৰীত্যমূলক অথচ পাৰস্পৰিকতাৰ অদৃশ্য বান্ধোনেৰে সম্পৰ্কিত জান্তৰ সত্তাক। এই দ্বিতীয় সত্তাৰো মূল পৰিচয় এক দ্বি-খণ্ডিত দেহ— যি উপন্যাসখনৰ ভূ-ৰাজনৈতিক

প্ৰেক্ষাপটক কেন্দ্ৰ কৰি সৃষ্টি হোৱা বাধাগ্ৰস্ততাৰ বাগধাৰাৰ সাক্ষ্য বহন কৰে।

“মাইচাঙত ভৰি দিয়েই অতনুৰ চকুত পৰিল চেংবাঙৰ মৰমৰ কুকুৰটোৰ দ্বি-খণ্ডিত দেহ এতিয়াও শুকান বাঁহৰ মাইচাঙত পৰি আছে। মূৰটো ভাৰতৰ ফালে, বাকী অংশ ম্যানমাৰৰ ফালে।” (পৃঃ ১৭৩)

ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা এই সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পৰা যায় যে, *আউলিঙৰ জুই* উপন্যাসৰ চৰিত্ৰায়ণ আৰু তাৰ যোগেদি উন্মোচিত হোৱা ঘটনাক্ৰমে বাধাগ্ৰস্ততাৰ এক উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক বাগধাৰাৰ গঢ় দিছে। এই বাগধাৰা ঔপনিৱেশিকতা বিৰোধী বিকল্প জ্ঞান-পৰম্পৰাৰ ধ্বজাবাহক হোৱাৰ লগতে ইয়াৰ অধ্যয়নে সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া সাহিত্যত নতুন ঐতিহাসিক প্ৰমূল্য সংস্থাপিত কৰাৰ সম্ভাৱনীয়তা বহন কৰে।

## ৫.০ উপসংহাৰ :

এই আলোচনাত কেইটিমান বিশেষ চৰিত্ৰৰ বিশ্লেষণৰ যোগেদি *আউলিঙৰ জুই* উপন্যাসত প্ৰতিফলিত বাধাগ্ৰস্ততাৰ বাগধাৰাক তুলি ধৰাৰ চেষ্টা কৰা হ'ল। সাহিত্যত বাধাগ্ৰস্ততাৰ প্ৰতিনিধিত্বই কি দৰে উত্তৰ-ঔপনিৱেশিকতাৰ বৈকল্পিক তাৎপৰ্য সন্ধান কৰিব পাৰে তাক এই আলোচনাৰ ফাঁহিয়াই দেখুৱালে। আন কথাত, *আউলিঙৰ জুই* উপন্যাসে প্ৰতিনিধিত্বমূলকভাৱে সাম্প্ৰতিক কালৰ অসমীয়া সাহিত্যত উত্তৰ-ঔপনিৱেশিক স্থিতাৱস্থা স্বৰূপ 'স্বাভাৱিকতা'ৰ ধাৰণাক প্ৰত্যাহ্বান জনাই ইয়াৰ বিনিৰ্মাণৰ মাজেৰে বাধাগ্ৰস্ততাৰ সামাজিক মূল্য আৰু ঐতিহাসিকতাক প্ৰতিষ্ঠিত কৰিছে। এই আলোচনাৰ সীমাবদ্ধতাৰ হেতু উপন্যাসখনত চিহ্নিত বাধাগ্ৰস্ততাৰ অন্য কিছু সূক্ষ্ম নিদৰ্শনৰ অধ্যয়ন কৰিব পৰা নগ'ল। তাৰ বাবে সুকীয়া তাত্ত্বিক অৱস্থান আৰু পদ্ধতিসমৃদ্ধ অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজনীয়তাক নুই কৰিব নোৱাৰি। □

## প্ৰসংগ সূচী :

বৰা, অংশুমান। “আউলিঙৰ জুই: উত্তৰ-মানৱতাবাদী বৃত্তান্ত”, *একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া উপন্যাস* (প্ৰথম প্ৰকাশ), সম্পাঃ জয়ন্ত দত্ত আৰু গীতাত্মী শইকীয়া, অসম বুক ট্ৰাষ্ট, ২০২০, পৃঃ ৫৮১-৫৮৬  
মহন্ত, অনুৰাগ। *আউলিঙৰ জুই* দ্য পেনজীয়া হাউচ, ২০০৭

Cleal, Esme. “Disability and postcolonialism”, *Postcolonial Studies*, 27(1), 15 March 2024. pp. 1-16.

Doi: 10.1080/13688790.2024.2322252

Davis, Lennard J. “Introduction: Normalcy, Power, and Culture.” *The Disability Studies Reader* (4th Edition), Edited by Lennard J. Davis, Routledge, 2013. pp. 1-14

## ৰুদ্ৰানী শৰ্মাৰ 'কাঁহিবুনৰ মালিতা' উপন্যাসত প্ৰতিফলিত সমন্বয় আৰু সংঘাতৰ চিত্ৰ : এক আলোচনা



বন্দিতা শইকীয়া

### সংক্ষিপ্তসূচী :

সাহিত্য আৰু সমাজৰ মাজৰ সম্পৰ্ক অতি নিবিড়। সমাজত সংঘটিত হোৱা সৰু-বৰ সকলো ঘটনাৰ লগতে সমাজত বাস কৰি অহা বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ জীৱন চৰ্যাও সাহিত্যই দাঙি ধৰে। সেয়েহে বহু বছৰৰ পূৰ্বতে অসমলৈ প্ৰব্ৰজন ঘটা বংগমূলীয় অসমীয়া মুছলমান সকলৰ জনজীৱনৰ চিত্ৰও অসমীয়া সাহিত্যৰ মাজত প্ৰতিফলিত হৈছে। ঔপনিৱেশিক কুট-কৌশলৰ বাবে হওঁক বা জীৱিকাৰ সন্ধানতেই হওঁক বিভিন্ন কাৰণত বংগমূলীয় মুছলমান সকল অসমলৈ আহিছিল। বছৰ বছৰ ধৰি অসমৰ চৰ-চাপৰি অঞ্চলসমূহত বসতি স্থাপন কৰাৰ বাবেই এই লোকসকলক বংগমূলীয় অসমীয়া মুছলমান হিচাপে জনা গৈছিল। বৃহত্তৰ অসমীয়া জাতিৰ অবিচ্ছেদ্য অংগৰ দৰে হৈ পৰা এই লোকসকলক লৈ ৰচিত উপন্যাস সমূহৰ ভিতৰত ৰুদ্ৰানী শৰ্মাৰ *কাঁহিবুনৰ মালিতা* অন্যতম। তিনিটা প্ৰজন্মৰ কাহিনীৰে সমৃদ্ধ উপন্যাসখনত আছে সমন্বয় আৰু সংঘাতৰ অনেক উদাহৰণ। য'ত এচামলোকে অনাহাৰী, আশ্ৰয়হীনাক সুৰক্ষা দিয়াৰ বিপৰীতে আন এচামে সম্প্ৰীতিৰ বাটত আনিছে কুটিল ৰাজনীতি আৰু আধিপত্যবাদী মনোভাৱ। অসমতেই জন্ম হৈ ডাঙৰ-দীঘল হোৱা এই চৰ-চাপৰীবাসীয়ে অসমীয়া ভাষা, সাহিত্য, সংস্কৃতি সকলো আঁকোৱালী লোৱা স্বত্বেও নিজৰ পৰিচয়ৰ কাৰণে সংগ্ৰাম কৰিবলগীয়া হৈছিল। আমাৰ এই অধ্যয়নত *কাঁহিবুনৰ মালিতা* উপন্যাসখনৰ মাজত সমন্বয় আৰু সংঘাতৰ চিত্ৰ কিদৰে প্ৰকাশিত হৈছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব।

### বীজ শব্দ :

বংগমূলীয় অসমীয়া মুছলমান, অসম, সমন্বয়, সংঘাত, চৰ-চাপৰি।

### ০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

*কাঁহিবুনৰ মালিতা* উপন্যাসখনক বংগমূলীয় অসমীয়া মুছলমান সকলৰ সমাজ জীৱনৰ এক জীৱন্ত দলিল হিচাপে আখ্যা দিব পাৰি। এই লোকসকল অসমলৈ কেতিয়া আহিছিল সঠিকভাৱে ক'ব নোৱাৰি যদিও ঊনবিংশ শতিকাৰ শেষভাগত অসমলৈ আহিছিল বুলি অনুমান কৰা হয়। ব্যৱসায়ৰ স্বার্থতে বহু লোক বংগৰ পৰা অসমলৈ আহিছিল। বিপ্লৱৰ বেপাৰীও ব্যৱসায়িক স্বার্থতে অসমলৈ আহিছিল আৰু তেওঁৰ লগত আহিছিল বহুৰ মিত্ৰ। অসমৰ শস্য-শ্যামলা পৰিৱেশত মুগ্ধ হৈ বহুৰ মিত্ৰ অসমতে নিগাজীকৈ বাস কৰিছিল। দেশ বিভাজনৰ পূৰ্বতে অহা এই লোক সকলৰ জীৱনলৈ দেশ বিভাজনৰ পাছত পৰিচয় আৰু অস্তিত্বৰ কাৰণে নানা সংকট আহিছিল। নিজৰ দেশ হোৱাৰ পাছতো অসমতে থকাৰ বাবে বাংলাদেশী বিদেশী, মিত্ৰ বুলি গণ্য কৰিছিল। উপন্যাসখনত এই লোকসকল সন্মুখীন হোৱা নানা সংঘাতৰ লগতে সমন্বয়ৰ চিত্ৰও উপন্যাসিকৈ

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ  
অসম বিশ্ববিদ্যালয়, ডিফু চৌহদ  
জিলা : কাৰ্বি আংলং  
পিন : ৭৮২৪৬০  
৬০০০২-৮৩৫৩৩  
saikiabondita81@gmail.com

অতি বাস্তৱ সম্মতভাৱে তুলি ধৰিছে।

## ০.২ বিষয়ৰ পৰিচয় :

বংগমুলীয় অসমীয়া মুছলমান সকলক লৈ অসমীয়া সাহিত্যত ভালেসংখ্যক উপন্যাস ৰচিত হৈছে। এই বংগমুলীয় অসমীয়া মুছলমান সকল অসমলৈ আহি কেনেধৰণৰ সংঘাতৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছিল আৰু হিন্দুলোকসকলে তেওঁলোকক কেনেদৰে আকোঁৱালী লৈছিল সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰিবৰ বাবে ৰুদ্ৰানী শৰ্মাৰ *কাঁহিবুনৰ মালিতা* উপন্যাসখন নিৰ্বাচন কৰা হৈছে।

## ০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

নিৰ্বাচিত বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু ঠায়ে ঠায়ে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

## ০.৪ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু উদ্দেশ্য :

উপন্যাসখনৰ মাজত প্ৰকাশিত হিন্দু-মুছলমানৰ সমন্বয়ৰ লগতে সংঘাতৰ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰাই অধ্যয়নৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব। ইয়াৰ উপৰিও বংগমুলীয় অসমীয়া মুছলমান সকল অসমলৈ আহি অসমত এক স্থায়ী ঠিকনা পাবৰ কাৰণে কৰা সংগ্ৰাম সমূহৰ আলোচনাও অধ্যয়নৰ অন্যতম উদ্দেশ্য।

## ১.০ মূল আলোচনা :

### ১.০.১ উপন্যাসখনৰ কাহিনীভাগ :

উনবিংশ শতিকাৰ শেহভাগত অসমলৈ আহি প্ৰজন্মৰ পাছত প্ৰজন্ম ধৰি অসমতে বাস কৰা বংগমুলীয় অসমীয়া মুছলমানসকলক লৈ *কাঁহিবুনৰ মালিতা* উপন্যাসখন ৰচিত হৈছে। দেশ বিভাজন নোহোৱাৰ আগতে অখণ্ড ভাৰতবৰ্ষলৈ নানা ঠাইৰ পৰা মানুহৰ সোঁত বৈছিল। অসমতো চট্টগ্ৰাম, মৈমনসিং আদি ঠাইৰ পৰা মানুহবোৰ আহিন্দী কাষৰ মুকলি ঠাইবোৰত বসতি স্থাপন কৰিবলৈ ধৰিছিল। মৈমনসিংহৰ পৰা অহা বহিৰ মিঞাৰ পৰিয়ালো প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগত জনশূন্য হৈ পৰা নদীৰ কাষতে বাস কৰিছিল আৰু বিপ্লৱৰ বেপাৰীৰ লগত কথা পাতি মাধু মহাজনৰ পামতে কাম কৰিছিল। বহিৰ মিঞাৰ কামত সন্তুষ্ট হৈ মহাজনে পামৰ কাষতে থাকিবলৈ মাটি এডোখৰো দিছিল। অকাল দুৰ্ভিক্ষ অতিক্ৰম কৰি এই পূৰ্ববংগবাসীয়ে অসমলৈ আহি স্বস্তিৰ নিশ্বাস এৰিছিল। মাধু মহাজনৰ উদাৰ-মহানুভৱতাৰ বলতে বহিৰ মিঞাৰ দৰে লোকসকলে নিজ জন্মভূমি এৰি আহিও অসমত

কোনো সমস্যা নোহোৱাকৈ জীয়াই আছিল যদিও বহিৰ মিঞাৰ পাছৰ প্ৰজন্ম সমূহে কিন্তু নিজৰ পৰিচয় আৰু অস্তিত্বৰ কাৰণে সংগ্ৰাম কৰিবলগীয়া হৈছিল। ঔপনিৱেশিক শাসক গোষ্ঠীৰ কূট ৰাজনৈতিক প্ৰক্ৰিয়া আৰু জীয়া-নেহৰুৰ ক্ষমতাৰ অৰিয়া অৰিৰ বাবে হোৱা দেশ বিভাজনৰ ফলত বহিৰ মিঞাৰ পুত্ৰ মাধু আৰু মাধুৰ পুত্ৰ ৰমিজৰ জীৱনলৈ আহিছিল নানা সংকট। বিভাজনে মানুহৰ মনত এনে এক ধৰ্মৰ পোক সুমুৱাইছিল যে মানুহে সকলো মানৱতা পাহৰি গৈছিল, মাথো মনত ৰাখিছিল হিন্দু আৰু মুছলমানৰ শ্ৰেণী বিভাগ। কিন্তু বহিৰ মিঞাৰ নাতি ৰমিজ মাস্তৰে কোনো ধৰণৰ হিন্দু-মুছলমানৰ মাজত বিভেদ নানি মুছলমান হিন্দু সকলোৰে সহযোগত 'সমন্বয় আৰু মানৱতা' মঞ্চ গঠন কৰি সমাজৰ হিতৰ হকে কাম কৰিছিল। হিন্দু সকলক ভ্ৰাতৃৰ দৰে জ্ঞান কৰা ৰমিজক নিজৰ সম্প্ৰদায়ৰ মানুহে ভাল পোৱা নাছিল কাৰণ 'হিন্দু মানে শত্ৰু' বুলি মানি ল'ব পৰা নাছিল আৰু ইছলামী মৌলবাদী, সন্তাসবাদী আদি গোট খোলাৰ পৰিপন্থী আছিল ৰমিজ। সমাজৰ ভালৰ বাবে প্ৰতিবাদ কৰা ৰমিজৰ কণ্ঠ সমাজৰ অশুভ চিন্তক সকলে চিৰদিনলৈ নাইকিয়া কৰি দিছিল। এজন ৰমিজ মাস্তৰক হত্যা কৰিলে দহটা ৰমিজ মাস্তৰ ওলাব বুলি উপন্যাসখনৰ শেষৰ ভাগত আবিদে চিঞৰি কৈছিল —

“জান জলিল, সিহঁতে ভাবিছে এটাক মাৰিলে সকলো শেষ হৈ যাব। সিহঁতে ভাবিব পৰা নাই এটা ৰমিজ মাস্তৰ মৰিলে - দহটা ৰমিজ মাস্তৰ ওলাই আহিব।”

(শৰ্মা, পৃ. ২৪৮)<sup>১</sup>

### ১.০.২ *কাঁহিবুনৰ মালিতা* উপন্যাসত প্ৰতিফলিত সমন্বয়ৰ চিত্ৰ :

*কাঁহিবুনৰ মালিতা* উপন্যাসখনৰ মাজত হিন্দু-মুছলমানৰ সমন্বয়ৰ চিত্ৰ সুন্দৰ ৰূপত প্ৰকাশিত হৈছে। মৈমনসিংহৰ নাগপুৰৰ ওচৰতে থকা পাইছনা গাঁৱৰ পৰা অহা বহিৰ মিঞাৰ অসমত কোনো নাছিল। মাথো দুৰ্ভিক্ষত সৰ্বস্বান্ত হৈ পৰা বহিৰ মিঞাহঁতে এমুঠি পেট ভৰাই খাবৰ বাবে অসমলৈ আহিছিল। অসমত কোনো ঠিকনা নথকা বহিৰ মিঞাক মাধু মহাজনে এক স্থায়ী ঠিকনা প্ৰদান কৰিছিল।

“পামৰ কাষতে থাকিবলৈ তাক মাটি এডোখৰো দিছে। পিছলৈ লেখা-পঢ়া কৰি পাকা পাট্টা কৰি দিম বুলি কৈছে।” (শৰ্মা, পৃ. ১৪)<sup>২</sup>

কোনো ধৰণৰ চিনা-পৰিচয় নোহোৱাকৈ ধৰ্ম, জাত, ৰীতি-নীতি, আচাৰ পৃথক এজন পূৰ্ববংগীয় মুছলমানলোকক নিজৰ মাটিত থাকিবলৈ দিয়াটোৱে সমন্বয়ৰ এক বাৰ্তা বহন কৰিছে। পেটৰ ভোকত সৰ্বশৰীৰ দহি থকা সময়তে এইদৰে এমুঠি অন্ন আৰু স্থায়ী ঠিকনা পাই বহিৰ মিঞায়েও মাধু মহাজনক ফৰিষ্টা হিচাপে গণ্য কৰিছিল, সেয়ে তেওঁ নৱজাত শিশুটোৰ নাম ৰাখিছিল মাধু। শিক্ষাৰ প্ৰতি আগ্ৰহী মাধুৱে উপযুক্ত সুবিধা নোপোৱাত মাথো আখৰ চিনি পাইয়ে শিক্ষা এৰিব লগা হোৱাত ৰামানন্দ পাঠকে তেওঁৰ জ্ঞানৰ উমান পাই কিতাপ উপহাৰ হিচাপে প্ৰদান কৰিছিল। এজন পূৰ্ববংগীয় মুছলমান ল'ৰাক শিক্ষিত কৰিবলৈ চেষ্টা কৰাৰ মাজেৰে হিন্দু-মুছলমানৰ সমন্বয়ৰে ইংগিত দিছে।

সমন্বয়ৰ বাহক হিচাপে উপন্যাসিকে অংকন কৰা আন এটা চৰিত্ৰ হ'ল ভৰ মেধি। মুছলমান সকল আগবাঢ়ি যাবলৈ আৰু তেওঁলোকৰ সমস্যা সমূহৰ এক স্থায়ী সমাধানৰ পথ বিচাৰি ভৰ মেধিয়ে পঢ়াশালী স্থাপনৰ উপদেশ দিছিল। কাৰণ নিৰক্ষৰ হৈ থাকিলে এইলোকসকল কোনো ক্ষেত্ৰতে আগবাঢ়ি যাব নোৱাৰিব।

“তহঁতৰ মানুহবোৰে একেবাৰে লিখা-পঢ়া নাজানে। লিখা-পঢ়া জানিলে কাগজ-পত্ৰবোৰ নিজেই চাব পাৰিবি .... তহঁতৰ ল'ৰা-ছোৱালীয়ে যেতিয়া পঢ়িব তেতিয়াহে অৱস্থা ভাল হ'ব।” (শৰ্মা, পৃ. ৭৭)°

মুছলমান সকলক নিলগাই ৰখা উগ্ৰ হিন্দুত্বৰ পৰা বিপৰীত স্থানত অৱস্থান গ্ৰহণ কৰা মেধিয়ে কেৱল শিক্ষাৰ ক্ষেত্ৰতেই নহয় সকলো ফালৰ পৰা মাধুহঁতৰ দৰে মানুহক আগুৱাই যাবলৈ বাট দেখুৱাই দিছিল। শিক্ষাৰ সমানে অসমীয়া ভাষাটো সুন্দৰকৈ শিকিবলৈ পৰামৰ্শ আগবঢ়াইছিল —

“আমাৰ অসমত হিন্দু-মুছলমান বুলি কোনো ভেদ নাই। আগতে অহা সকলো মানুহে অসমীয়া হৈ গৈছে। .... তাকে কৰিবলৈ যাওঁতে অসমীয়া ভাষাটো পোনতে গ্ৰহণ কৰিব লাগিব। ভাষাৰ মাজেৰেহে ৰীতি-নীতিবোৰ শিকিব পাৰি, সমাজখনৰ লগত মিলিব পাৰি।”

(শৰ্মা, পৃ. ৭৮)°

উপন্যাসখনত বৰ্ণিত তৃতীয় প্ৰজন্ম অৰ্থাৎ বহিৰ মিঞাৰ নাতি ৰমিজ মাষ্টৰক কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ হিচাপে দেখুওৱা হৈছে। জগদীশ শৰ্মা আৰু ৰমিজৰ সম্পৰ্কও

সমন্বয়ৰ দিশটোকে উজ্জ্বলাই তুলিছে। ইমানবোৰ পঢ়া-শুনা মেধাৰী হিন্দু ল'ৰা থকাৰ পাছতো ৰমিজক পুত্ৰক পঢ়াবৰ বাবে দায়িত্ব দিছে। সমগ্ৰ সমাজখনৰ বিপৰীতে গৈ শৰ্মাই ৰমিজক সহায় কৰাৰ লগতে সুৰক্ষা প্ৰদান কৰিছে। আনহাতে ৰমিজেও হিন্দু-মুছলমান উভয়ে লগ হৈ ‘সমন্বয় আৰু মানৱতাৰ মঞ্চ’ গঠন কৰি সমাজখনৰ উন্নতিৰ হকে আগবাঢ়ি আহিছিল। বন্ধু বিভূতিৰ মাকৰ বেমাৰত ৰমিজে যথেষ্ট কষ্ট কৰিছিল যাৰ ফলত এগৰাকী হিন্দু ধৰ্মৰ মহিলা হৈ ৰমিজক নিজ পুত্ৰৰ দৰে জ্ঞান কৰিছিল। হিন্দু-মুছলমানৰ সমন্বয় শিখৰত পাইছিল গৈ যেতিয়া কুঁজাৰ পীঠৰ বিহু সন্মিলনত মুকলি সভাত ৰমিজক অতিথি হিচাপে নিমন্ত্ৰণ কৰিছিল। এজন মুছলমান ল'ৰাক অতিথি হিচাপে নিমন্ত্ৰণ কৰাতোৱে উপন্যাসখনত প্ৰকাশিত হিন্দু-মুছলমানৰ সমন্বয় দিশতো অধিক স্পষ্ট ৰূপত তুলি ধৰিছিল। বাংলাদেশী বুলি উপহাস কৰা সকলো চৰ-চাপৰী বাসীয়ে বিহু নাচত অংশ গ্ৰহণ কৰিছিল। এইদৰে বংগমূলীয় অসমীয়া মুছলমান সকলে অসমীয়া সকলৰ বিহু নৃত্য প্ৰদৰ্শন কৰাৰ মাজেৰে বৃহত্তৰ অসমীয়া জাতিৰ লগত মিলি যাবলৈ যে এই লোকসকলে প্ৰয়াস কৰিছিল সেই সম্পৰ্কে জানিব পাৰি।

উপন্যাসখনত যে কেৱল হিন্দু-মুছলমানৰ মাজতে সমন্বয় হৈছে তেনে নহয়, বিভিন্ন ঠাইৰ পৰা অহা মুছলমান সকলৰ মাজতো সমন্বয় সাধন হৈছিল।

### ১.০৩ কাঁহিবুনৰ মালিতা উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত সংঘাতৰ চিত্ৰ :

উপন্যাসখনৰ মাজত সমন্বয়ৰ চিত্ৰ যিদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে সংঘাতৰ চিত্ৰও তেনেদৰে প্ৰকাশিত হৈছে। অসমলৈ আহি যে কেৱল হিন্দু-মুছলমানৰ মাজতেই সংঘাতৰ সৃষ্টি হৈছে তেনে নহয় বিভিন্ন ঠাইৰ পৰা অহা বংগমূলীয় মুছলমান সকলৰ মাজতো সংঘাতৰ সৃষ্টি হৈছিল। আকাল দুৰ্ভিক্ষত পৰি সৰ্বহাৰা হোৱা মানুহ সকলক বগা চাহাবে দেখুওৱা ৰঙীন ছবিখনত ভোল গৈ নিজৰ মাটি-ভেঁটি, আপোন মানুহ সকলো এৰি অসমৰ চৰ-চাপৰি অঞ্চলত বাস কৰিবলৈ লৈছিল। কিন্তু বগা চাহাবে পমুৰা মানুহবোৰে এইদৰে অবৈধভাৱে ভূমি দখল কৰি স্থানীয় লোকসকলৰ সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰিছে বুলি এখন মিছা প্ৰতিচ্ছবি দেখুৱাই সংঘাতৰ সৃষ্টি কৰিছিল। আনহাতে দেশ বিভাজনে এই সংঘাতসমূহ সফল কৰাত জুইত ইফ্ৰন

যোগোৱাৰ দৰে কাম কৰিছিল। বিভাজনৰ বাতৰি প্ৰচাৰ হোৱাৰ লগে লগে সাতামপুৰুষীয়া ঐক্য এনাজৰীডাল ধৰ্মৰ পোকে শেষ কৰি পেলাইছিল। ৰমিজ যেতিয়া কলেজৰ নিৰ্বাচনত প্ৰতিদ্বন্দ্বিতা কৰিব বিচাৰিছিল, ৰমিজক সকলোৱে মিঞা বুলি গালি পাৰিছিল —

“মিঞা হৈ কলেজৰ জি.এছ. হ'ব আহিছ। গ'ম পোৱা নাই, থুতৰি ভাঙি দিম বাপ্তেকে।” (শৰ্মা, পৃ. ১১৬)৬

ৰমিজৰ পূৰ্বপুৰুষ সকল অসমলৈ যেতিয়া আহিছিল, তেতিয়া কোনো বিভাজন নাছিল বা তেওঁলোকবোৰক দিয়া ‘বিদেশী’ অভিধা অনুসৰি কোনো বিদেশৰ পৰাও অহা নাছিল। কিন্তু দেশ ভাগ হোৱাৰ পাছত তেওঁলোক দেশ, অসম তথা অসমীয়াৰ শত্ৰু হৈ পৰিছিল বুলি অসমৰ পৰা খেদাবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। হিন্দু-মুছলমানৰ সংঘাত ইমানেই চূড়ান্ত ৰূপ পাইছিল যে ৰমিজে কোনো হিন্দু মানুহৰ ঘৰত টিউচন ল'ব পৰা নাছিল। সকলোকে ভাবুলি প্ৰদান কৰিছিল যে মুছলমান ল'ৰাই শিক্ষা দিলে সমাজৰ পৰা এঘৰীয়া কৰিব।

“পঢ়ুৱাবলৈ বুলি সেই মিঞা ল'ৰাটোৱে আছেনে? আমি সিহঁতৰ লগত সম্পৰ্ক বাদ দিব লাগে।” (শৰ্মা, পৃ. ১২৩)৭

অসম আন্দোলনত ৰমিজে যোগদান কৰিছিল যদিও তাক লৈ তথাকথিত অসমীয়া সকলে সন্দেহ কৰিছিল। অসমীয়া সকলৰ লগত মিলি যাবলৈ সকলো ফালৰ পৰা চেষ্টা কৰা ৰমিজৰ নাগৰিকত্বক লৈ নানা প্ৰশ্নৰ উদয় হৈছিল। আপোন মানুহ এৰি বছৰ বছৰ ধৰি অসমত বাস কৰি কেইবাটাও প্ৰজন্ম অসমতে থকাৰ পাছতো বিদেশী বুলিহে গণ্য কৰিছিল। আনহাতে মৈমনসিংহৰ পৰা আহি অসমৰ চৰ-চাপৰি অঞ্চলত বাস কৰা এইলোকসকলৰ মাজতো মাটিৰ সীমাক লৈ টনা-আঁজোৰাৰ সৃষ্টি হৈছিল। মাটি দখল কৰা মানুহৰ মাজতো যে মাটিৰ সীমাক লৈ বিবাদ চলিছিল সেয়া ওচমান আৰু লালচান্দহঁতৰ কাজিয়াই প্ৰমাণ কৰিছিল।

## ২.০ উপসংহাৰ :

পেটৰ তাড়নাত বংগমূলীয় মুছলমান সকল শস্য-শ্যামলা অসমভূমিলৈ আহি মনে-প্ৰাণে অসমক নিজ জন্মভূমি হিচাপে মানি লৈছিল। অসমৰ একাংশ লোকে হিন্দু-মুছলমান হিচাপে বিভাগ নকৰি এই লোকসকলক

আঁকোৱালী লৈছিল। নদী কাষৰ চাপৰি অঞ্চলসমূহত এই লোকসকল থাকিবলৈ ঠাই বাছি লৈছিল। বংগভূমি এৰি অসমভূমিত বসতি স্থাপন কৰালৈকে তেওঁলোকৰ এই যাত্ৰা সুগম নাছিল। চাপৰি ভাঙি বছৰ বছৰ ধৰি বাস কৰাৰ পাছতো অসমত তেওঁলোকৰ স্থিতি সুনিশ্চিত নাছিল, ইয়াৰ মূলতঃ হ'ল বিভাজনকে কেন্দ্ৰ কৰি ঘটনা নানা সংঘাতসমূহ। বিভাজনৰ সীমাৰেখাই চুব নোৱাৰা সময়তে অসমলৈ অহা বংগমূলীয় লোকসকলৰ ভৱিষ্যত প্ৰজন্মক বাংলাদেশী মিঞা আৰু বিদেশী বুলি কোৱা হৈছিল। তেওঁলোকৰ ওপৰত নানা অত্যাচাৰ কৰা হৈছিল, কোনো কামতে আগবাঢ়ি যাব দিয়া নাছিল। কাৰণ অসমত ইমানবোৰ অসমীয়া মানুহ থাকোঁতে বাংলাদেশী মিঞাসকলে এইবোৰ কৰিব নোৱাৰে বুলি নিলগাই ৰখা হৈছিল। নিৰক্ষৰ হোৱা বাবে তেওঁলোক বহু ষড়যন্ত্ৰবোৰ বৰি হ'ব লগা হৈছিল। এইদৰে অসমলৈ আহি বসতি স্থাপন কৰাৰ পৰাই কিদৰে অসমৰ লোকসকলৰ লগত সম্বন্ধ আৰু সংঘাতৰ মাজেৰে জীৱন অতি বাহিত কৰিবলগীয়া হৈছিল সেয়া উপন্যাসখনত সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশিত হৈছে।

ৰুদ্ৰানী শৰ্মাৰ *কাঁহিবুনৰ মালিতা উপন্যাস*ত প্ৰতিফলিত সম্বন্ধ আৰু সংঘাত শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ শেষত লাভ কৰা সিদ্ধান্তসমূহ হ'ল —

১) অখণ্ড ভাৰতবৰ্ষলৈ পূৰ্ববংগৰ পৰা বহু লোকৰ প্ৰব্ৰজন ঘটিছিল। আকাল দুৰ্ভিক্ষত পৰা মানুহবোৰক অসমৰ এখন ৰঙীন ছবি দেখুৱাই অসমৰ আৰু বংগৰ মাজত ৰেলৰ ব্যৱস্থা কৰি অসমলৈ লোকসকলক আনি ঔপনিৱেশিক গোষ্ঠীয়ে নিজৰ স্বার্থ পূৰণ কৰিছিল।

২) প্ৰজন্মৰ পাছত প্ৰজন্ম ধৰি অসমতে বাস কৰাৰ পাছতো পৰিচয়ক লৈ যথেষ্ট সন্দেহৰ সৃষ্টি হৈছিল আৰু তেওঁলোকে স্থিতি সুনিশ্চিত কৰিব পৰা নাছিল।

৩) একাংশ অসমীয়া লোকে অতি আন্তৰিকতাৰে এই বংগমূলীয় অসমীয়া মুছলমান সকলক গ্ৰহণ কৰাৰ বিপৰীতে আন এচামৰ তেওঁলোকক অসমত থকাৰ লৈ সমস্যাৰ সৃষ্টি হৈছে।

৪) বংগৰ ভূমিৰ পৰা আহি অসমৰ ভাষা, সাহিত্য-সংস্কৃতি সকলো এই লোকসকলে গ্ৰহণ কৰি নিজৰ লগতে অসমীয়া সমাজখনৰ উন্নতিৰ হকে কাম কৰিছিল। □

---

প্ৰসংগসূত্ৰ :

১) ৰুদ্ৰানী শৰ্মা, *কাঁহিবুনৰ মালিতা*, পৃ. ২৪৮।

২) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ১৪।

৩) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৭৭।

৪) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ৭৮।

৫) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ১১৬।

৬) উল্লিখিত গ্ৰন্থ, পৃ. ১২৩।

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

মুখ্য গ্ৰন্থ :

১) শৰ্মা, ৰুদ্ৰানী। *কাঁহিবুনৰ মালিতা*। পূৰ্বায়ন প্ৰকাশন, গুৱাহাটী। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৭, ডিচেম্বৰ।

গৌণ গ্ৰন্থ :

১) নাথ, মনোজ কুমাৰ। *অসমৰ ৰাজনীতিত মুছলমান, বিশ্বাস, বাস্তৱ আৰু সংঘাত*। ত্ৰাস্তিকাল প্ৰকাশ, নগাঁও। দ্বিতীয় সংস্কৰণ, ২০১২।

২) ৰায় চৌধুৰী, অনিল। *অসমত বাংলাদেশী*। জাগৰণ সাহিত্য প্ৰকাশন, নগাঁও। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৯।

৩) শইকীয়া, গীতাত্ৰী আৰু জয়ন্ত দত্ত। *একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া উপন্যাস*। অসম বুক ট্ৰাষ্ট, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০২৪।

৪) হোছেইন, ইছমাইল। *হিন্দু-মুছলমান প্ৰশ্ন : সমস্যা আৰু সংঘাত*। বান্ধৱ প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১৮।

---

## ফেৰেংগাদাও উপন্যাসত লোকসাহিত্যৰ সমল : এক অধ্যয়ন

### সংক্ষিপ্তসূচী :



#### ভূপ্তম বৰা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ  
নৰ্থ লখিমপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়,  
লখিমপুৰ, অসম- ৭৮৭০০১

☎ ৮৮৭৬০-৪২৯০৮

✉ bborah993@gmail.com

লোকসংস্কৃতি উদ্ভৱ আৰু বিকাশ হয় লোকসমাজত। লোকসংস্কৃতি মানৱ জাতিৰ সমানেই প্ৰাচীন। ই সংস্কৃতিৰ আধাৰ স্বৰূপ। লোকসংস্কৃতিৰ পৰিপূৰ্ণ অধ্যয়নৰ বাবে সংস্কৃতিৰ চিন্তা-চৰ্চা আৰু বিচাৰ-বিশ্লেষণ অতি প্ৰয়োজনীয়। ই পৰম্পৰাগত সমাজৰ পৰম্পৰাৰ ভেটিত গঢ় লৈ উঠা জন জীৱনৰ জীৱনধাৰা প্ৰতিফলিত কৰে। ই পৰম্পৰাগত জীৱন সমাজ আৰু সমাজৰ ব্যক্তিৰ দ্বাৰা ৰূপান্তৰিত। সেয়ে ই কৃষি, জন্ম, বিবাহ, মৃত্যুৰ ৰীতি-নীতি, আচাৰ-অনুষ্ঠান আদিৰ বিশ্বাসৰ ভেটিত গঠিত।

লোকসংস্কৃতিৰে এটা অন্যতম বিভাগ লোকসাহিত্য। মুখ পৰম্পৰাৰে যুগ যুগ চলি অহা মৌখিক সৃষ্টি (Oral creations); নাইবা বাচিক কলাৰ নামেই লোক সাহিত্য বা মৌখিক সাহিত্য। কোনোৱে এইবিধ লোকবিদ্যাক বুজাবলৈ মৌখিক প্ৰক্ৰম (traditional oral process), জনপ্ৰিয় সাহিত্য (popular literature), আদি সাহিত্য (primitive literature) পৰম্পৰাগত সাহিত্য আদি পৰিভাষা প্ৰয়োগ কৰা দেখা যায়। এইবিধ সাহিত্য বা কলা ব্যক্তি নিৰপেক্ষ ৰচনা। মৌখিক ভাৱেই মুখ পৰম্পৰাৰে ই প্ৰবাহমান হৈ থাকে। সেয়েহে এইবিধ সাহিত্যক অখ্যাত কবিৰ বিখ্যাত ৰচনাও বুলিব পাৰি। সেয়েহে মেদিনী চৌধুৰীৰ ৰচিত অসমীয়া জীৱনীমূলক উপন্যাস 'ফেৰেংগাদাও' উপন্যাসত লোকসাহিত্যৰ সমলৰাজি পোহৰলৈ অনাৰ প্ৰয়াসেৰে অলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

### সূচক শব্দ :

লোক, জন, জন সাহিত্য, পৰম্পৰা, জীৱনী, উপন্যাস।

### অৱতৰণিকা :

মৌখিক সাহিত্য জনগণৰ সাহিত্য। সমগ্ৰ জনগণে হাতৰ কাপ দি এইসমূহ ৰচনা বা লিখিত ৰূপ দিবলৈ চেষ্টা কৰা নাই যদিও জনগণৰ মাজত ইয়াৰ জনপ্ৰিয়তা খুব সাৱলীলতাৰে অনুভৱ কৰিব পাৰি। Y. M. Sokolov ৰ এই মন্তব্য এইক্ষেত্ৰত উপস্থাপন কৰিব পাৰি—

During recent times it has continually been discovered, with increasing frequency, that this or that popular song, which everyone had considered as truly a 'folk song' proved to be a literary production of this or that well known or little known poet :<sup>১</sup>

ইয়াৰ সামাজিক ৰূপ অতিকৈ ব্যাপক। সেয়ে লোকসাহিত্যৰ স্বৰূপ অতীত, বৰ্তমান আৰু ভৱিষ্যত জুৰি বিস্তৃত। এনেক্ষেত্ৰত লোকসাহিত্যই অতীততো সামাজিক প্ৰকাৰ্য সাধন কৰি আহিছে বৰ্তমানতো সামাজিক প্ৰকাৰ্য সাধন কৰি আছে আৰু ভৱিষ্যতেও সামাজিক প্ৰকাৰ্য সাধন কৰিব। এনেবোৰ দৃষ্টিভংগীৰপৰা মৌখিক



#### ড° ধীৰাজ পাটিল

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ  
নৰ্থ লখিমপুৰ বিশ্ববিদ্যালয়,  
লখিমপুৰ, খুটিকটীয়া, হাৰাজান

পিন : ৭৮৭০০১

☎ ৮৬৩৮২৮০৯৯২

✉ dhirajpatar@gmail.com

সাহিত্যিক দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি— জাতিগত শ্ৰেণী বিভাজন (ethnic genres) আৰু তাত্ত্বিকভাৱে কৰা শ্ৰেণী বিভাজন (analytical categories)। নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই বৰ্ণনা কৰা অনুসৰি জাতিগত শ্ৰেণীবিভাজনৰ উদ্দেশ্য জাতি-জনগোষ্ঠীসমূহক সাংস্কৃতিক পদ্ধতিৰে একগোট কৰা। এনেক্ষেত্ৰত লোকসাহিত্যৰ বিভিন্ন শ্ৰেণীক সূচাবৰ বাবে বিবিধ পৰিভাষা বা অভিধা ব্যৱহাৰ কৰা হয়। অসমৰ ক্ষেত্ৰত গীত অৰ্থাৎ song ক সূচাবৰ বাবে গীত, গীদ, পদ, মেথায়, আলুন, নিতম; সাধুকথা ক সূচাবৰ বাবে সাধু, সাজোকথা, উপকথা, উককথা, কাহিনী, কিছা, চলো আদি ব্যৱহাৰ কৰে। তাত্ত্বিক শ্ৰেণী বিভাজনত বাচিক কলা বা লোকসাহিত্যৰ পাঠ্য (text) পদ্ধতিগত সংগঠনৰ নিদৰ্শন আৰ্হি দেখুওৱা হয়। অসমৰ জনগোষ্ঠীসমূহৰ মাজতো লোকসাহিত্যৰ অন্যতম ভাগৰ পাৰিভাষিক ৰূপটোক আন্তৰ্জাতিক স্বীকৃতি প্ৰদানৰ বাবে বেলাড বা মালিতা ৰূপে ব্যৱহৃত হয়। তাত্ত্বিক শ্ৰেণী বিভাগে জাতিগত বা নৃগোষ্ঠীগত দিশৰ অসুবিধাবোৰ আঁতৰ কৰাত বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। তাত্ত্বিক শ্ৰেণী বিভাজনৰ নীতি অনুসৰি বাচিক কলা বা লোকসাহিত্যৰ পাঠ্য নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই ভাগ কৰা অনুসৰি —

- ১। লোককবিতা বা লোকগীত (folk poem or oral song or verbal poem/song);
- ২। গদ্যধৰ্মী লোককথা (Prose narratives)
- ৩। প্ৰবচন, লোকোক্তি, যোজনা, পটন্তৰ (Proverbs, sayings, maxims, etc.)
- ৪। সাঁথৰ, দিষ্টন (riddles)
- ৫। লোকভাষা (folk speech or folk language)২

ইয়াৰে লোককবিতা বা লোকগীতৰ ভাগ অতি বিস্তৃত। অন্যহাতে গদ্যৰূপত বা ‘কথাবন্ধে’ মুখ পৰম্পৰা প্ৰচলিত কথা বা কাহিনীক গদ্যধৰ্মী লোককথা বোলে।<sup>১০</sup> এই শ্ৰেণীৰ সাহিত্য পৃথিৱীৰ সৰ্ব দেশতে জনপ্ৰিয় হোৱাৰ লগতে গদ্য-পদ্য উভয় ৰূপতে কাহিনী ৰচিত হয়। পৃথিৱীৰ সৰ্বদেশত, সৰ্বসমাজত জনপ্ৰিয়তা লাভ কৰাৰ বাবে লোককথা যুগে যুগে ধৰি সৃষ্টি হৈ থকাৰ লগতে ই নিৰৱচ্ছিন্নভাৱে জীয়াই আছে। ইয়াৰ কথক আৰু শুণোতা অৰ্থাৎ শিশুৰপৰা সমাজৰ জ্যেষ্ঠ বা বৃদ্ধলৈকে সকলোৱে অংশগ্ৰহণ কৰিব পাৰে। এনেক্ষেত্ৰত নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই বৰ্ণনা অনুসৰি —তেওঁৰ কাহিনী বা কথা সাম্প্ৰতিক কালৰ ঘটনাৰ বৰ্ণনাই হওঁক বা অতি পুৰণি কালৰ পুৰাণ কথা বা

জনশ্ৰুতিগত কাহিনীয়েই হওঁক নাইবা মনে সজা কাহিনীয়েই হওক পুৰুষ-স্ত্ৰী, বাকল-বালিকা নিৰ্বিশেষে আনন্দ লাভ বা বীৰত্বপূৰ্ণ ঘটনাৰ দ্বাৰা উত্তেজিত হ’বৰ বাবে বা ধৰ্মীয় শিক্ষা লাভৰ বাবে নাইবা অৱসাদ দূৰ কৰিবৰ বাবে সেই কাহিনী মনোযোগেৰে শুনে। পৃথিৱীৰ বিভিন্ন সমাজত প্ৰচলিত পৰম্পৰাগত সাধুকথা বা লোককথাৰ পৰা সহজে অনুমান কৰিব পাৰি যে, অন্ততঃ তিনিহাজাৰ, চাৰিহাজাৰ বছৰৰ পূৰ্বেৰে পৰা লোককথাৰ কথন শৈলীৰ উৎকৰ্ষ সাধিত হৈ আহিছে। আধুনিক সমাজতো কথা বা কাহিনীৰ সমাদৰ অনস্বীকাৰ্য হৈ আছে।<sup>১১</sup>

#### অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

অসমীয়া জীৱনীমূলক উপন্যাসসমূহৰ মাজৰ পৰা মেদিনী চৌধুৰীৰ ‘ফেৰেংগাদাও’ উপন্যাসখনক অধ্যয়নৰ মুখ্য সমল হিচাপে লৈ এই গৱেষণা পত্ৰ প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। বিষুৱ ৰাভাৰ জীৱন আধাৰিত উপন্যাসখন অসম আৰু অসমীয়া লোকায়ত জীৱন আৰু লোককৃষ্টিৰ ভিন্ন উপাদানেৰে সমৃদ্ধ। সেয়েহে গৱেষণা পত্ৰৰ পৰিসৰত অসমীয়া জীৱনীমূলক উপন্যাসত লোকসাহিত্যৰ প্ৰতিফলনৰ বিষয়ে সামৰি লোৱা হ’ব।

#### অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব :

অসমীয়া জীৱনীমূলক উপন্যাসসমূহৰ বিষয়ে বিভিন্ন দিশ আলোচনা হৈছে যদিও লোকসাহিত্যৰ দিশসমূহৰ বিষয়ে পদ্ধতিগত অধ্যয়ন হোৱা নাই। সেয়েহে মেদিনী চৌধুৰীৰ ‘ফেৰেংগাদাও’ জীৱনীমূলক উপন্যাসত লোকসাহিত্যৰ ভিন্ন দিশ অধ্যয়ন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। উপন্যাসখনত লোকসাহিত্যৰ বহু উপাদান সন্নিবিষ্ট হৈ আছে। এনেক্ষেত্ৰত স্বাভাৱিকতেই এই অধ্যয়নে যথেষ্ট গুৰুত্ব আৰু তাৎপৰ্য বহন কৰিব। চৌধুৰীৰ ‘ফেৰেংগাদাও’ জীৱনীমূলক উপন্যাসত ৰূপায়িত হোৱা লোকসাহিত্যৰ উপাদানবোৰে অসমৰ লোকসাহিত্যৰ বৈশিষ্ট্যসমূহক কেনেধৰণে প্ৰতিফলিত কৰিছে উপৰোক্ত দিশসমূহো পোহৰলৈ আহিব।

#### অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

গৱেষণা গ্ৰন্থখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে আলোচনাৰ মূল দিশসমূহৰ বাবে পাঠ্য বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰে তথ্য উন্মোচন কৰা হ’ব। জীৱনীমূলক উপন্যাস হোৱা হেতু বিষুৱাভাৰ জন্মৰ ঠাইসমূহ পৰিদৰ্শন কৰাৰ

উপৰিও উপন্যাসখনত উল্লেখ থকা অঞ্চলসমূহৰ পৰা ভিন্ন সমল লাভৰ বাবে ক্ষেত্ৰভিত্তিক অধ্যয়নৰ ওপৰতো গুৰুত্ব দিয়া হ'ব।

#### অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

জীৱনীমূলক উপন্যাসৰ আলোচনাত সমসাময়িক সমাজত ব্যৱহৃত লোকসাহিত্যৰ সমলৰাজিৰ প্ৰকাশ আৰু ইয়াৰ বিভিন্ন দিশসমূহ আলোচনাৰ জৰিয়তে পোহৰলৈ অনা ইয়াৰ মুখ্য উদ্দেশ্য।

#### পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা :

গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুতৰ পূৰ্বে এই পত্ৰৰ লগত সংগতি থকা বিভিন্ন আলোচনাৰ তথ্যই এই বিষয়ক পোহৰলৈ অনাত সুবিধা কৰিলে। 'প্ৰফুল্লদত্ত গোস্বামীৰ ৰচনাৱলী প্ৰথম খণ্ড' (অসমীয়া সমল- ক) অসম প্ৰকাশন পৰিষদে প্ৰকাশ কৰা গ্ৰন্থখনত অসমীয়া জনসাহিত্যৰ বিভিন্ন দিশসমূহ বিস্তৃতভাৱে আলোচনা হৈছে। জনসাহিত্যৰ অন্তৰ্গত জনকৃষ্টি, বিভিন্ন গীত-মাত, ফকৰা-যোজনা, মালিতা, সাধুকথা, অসমীয়া জন সাহিত্যত ধ্বনি-প্ৰতিধ্বনি, জন সাহিত্যৰ সময়ৰ সোঁত ইত্যাদি বিভিন্ন দিশৰ আলোচনা লক্ষণীয়।

নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাৰ 'অসমীয়া লোকসংস্কৃতিৰ আভাস' (১৯৮৯) উল্লেখযোগ্য গ্ৰন্থ। গ্ৰন্থখনত সংস্কৃতিৰ স্বৰূপ, সংস্কৃতিৰ ব্যাখ্যা আৰু লোকসংস্কৃতিৰ চাৰিটা বিভাগৰ বিষয়ে আলোচনা হৈছে। ইয়াৰে মৌখিক সাহিত্যৰ আলোচনাৰ জৰিয়তে গৱেষণা পত্ৰৰ লগত সংগতি থকা সম্যক তথ্য লাভ কৰিব পাৰি। শৰ্মাৰ 'লোকসংস্কৃতি' (২০১৫) গ্ৰন্থখনত লোকসাহিত্য বা বাচিক কলাৰ লগতে বাচিক কলাৰ অন্তৰ্গত লোককথা, বেলাড বা মালিতা, গীত-মাত, মন্ত্ৰ, সাধুকথা, প্ৰবাদ-প্ৰবচন ইত্যাদি আলোচনাৰ পৰা তথ্য লাভ কৰিব পাৰি।

অসমীয়া উপন্যাসৰ সাহিত্যৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা নগেন ঠাকুৰৰ সম্পাদিত 'এশ বছৰ অসমীয়া উপন্যাস' (২০০০) এখন উল্লেখযোগ্য গ্ৰন্থ। গ্ৰন্থখনত এশ বছৰ অসমীয়া উপন্যাসৰ গতি-প্ৰকৃতিৰ ভিন্ন দিশৰ আলোচনাৰ লগতে মেদিনী চৌধুৰীৰ উপন্যাসৰ বিষয়েও আলোচনা হৈছে। সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাৰ 'অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা' (১৯৭৬) গ্ৰন্থখনত স্বাধীনতা লাভৰ পৰা সাম্প্ৰতিক সময়লৈকে প্ৰকাশ পোৱা উপন্যাসসমূহ বিষয়ে আলোচনা কৰিছে। শৰ্মাৰ 'অসমীয়া উপন্যাসৰ ভূমিকা' (১৯৬৫) অসমীয়া উপন্যাসৰ আৰম্ভণিৰ পৰা আধুনিক উপন্যাসৰ

আৰম্ভণিলৈকে আলোচনা হৈছে। গোবিন্দ প্ৰসাদ শৰ্মাৰ 'উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস' (২০১৫) গ্ৰন্থখনত উপন্যাসৰ প্ৰকৃতি আৰু উপন্যাসৰ ইতিহাস, জীৱনীমূলক উপন্যাসৰ আলোচনা কৰিছে। নিৰঞ্জন কলিতাৰ 'অসমীয়া জীৱনীভিত্তিক উপন্যাস : এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন' (২০০৯) নামৰ গ্ৰন্থখনৰপৰা জীৱনীভিত্তিক উপন্যাসৰ বিষয়ে গৱেষণা পত্ৰৰ লগত সংগতি থকা দুই এক তথ্য আদায় হয়। দীপ্তি বৰাৰ 'বিশুও বাভাৰ ৰচনাৰাজিত লোকসাংস্কৃতিক উপাদানঃ বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন' (২০০৩) শীৰ্ষক গৱেষণা গ্ৰন্থত বিশুওৰাভাৰ জীৱন আৰু ব্যক্তিত্ব, বিশুওৰাভাৰ সমসাময়িক অসম আৰু অসমীয়া সমাজ, বিশুওৰাভাৰ সাহিত্য প্ৰতিভা আদিৰ আলোচনা পোৱা যায়। প্ৰজ্ঞাশ্ৰী ভূঞাৰ 'অসমীয়া জীৱনীমূলক উপন্যাসত লোকসাংস্কৃতিক সমল : এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন' গৱেষণা গ্ৰন্থত লোকসংস্কৃতিৰ চাৰিওটা বিভাগৰ বিষয়ে আলোচনা আগবঢ়াইছে।

উপৰোক্ত গ্ৰন্থ আৰু গৱেষণা গ্ৰন্থসমূহৰ উপৰিও গৱেষণা পত্ৰৰ লগত সংগতি থকা বহু গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ ভিন্ন গ্ৰন্থ, স্মৰণিকা, গৱেষণা পত্ৰত আলোচনা হৈছে।

#### মূল বিষয়ৰ আলোচনা :

মেদিনী চৌধুৰীৰ ৰচিত বিশুপ্ৰসাদ বাভাৰ জীৱন সম্পৰ্কীয় 'ফেৰেংগাদাও' উপন্যাসখন বৰ্ণনাত্মক উপন্যাস। উপন্যাসখনে বাভাৰ গোটেই জীৱনটোক পৰিষ্কাৰ কৰিব পৰা নাই। মূল বিষয়ৰ আনুসংগিক আন বহু বিষয়হে ৰচনাৰ মাজত উন্মোচিত হৈছে। উপন্যাসখনত বাভাৰ ৰাজনৈতিক ক্ষেত্ৰৰ লগত জড়িত প্ৰসংগৰ তথ্যই অধিক ভূমুকি মাৰিছে। উপন্যাসখনত সেই সময়ৰ সমাজৰ লগতে অসমত বিপ্লৱী কমিউনিষ্ট আন্দোলনৰ চিত্ৰ অতি স্পষ্টকৈ প্ৰকাশিত। তদানীন্তন সমাজ ব্যৱস্থাত অসমৰ গ্ৰাম্য সমাজৰ জীৱনৰেখা, ধৰ্মীয়, অৰ্থনীতি ইত্যাদিৰ সামান্ত্ৰিককৈ সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰখনৰো বিচিত্ৰ চিত্ৰ ফুটি উঠিছে। চৌধুৰীয়ে বাভাৰ সংগ্ৰামী জীৱনক দাঙি ধৰিবলৈ বৰ্ণনাত্মক প্ৰক্ৰিয়াক আঁকোৱালী লৈছে। শদিয়াৰ পৰা ধুবুৰীলৈ যাবাবৰী জীৱন অতিবাহিত কৰাৰ চিত্ৰ বহুলকৈ বৰ্ণনা কৰিছে। বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মাজত দিন-ৰাতি অতিবাহিত কৰাৰ ফলত সেই জনগোষ্ঠীসমূহৰ সংস্কৃতিক দিশো চৌধুৰীয়ে সংযোগ কৰিছে।

চৌধুৰীয়ে উপন্যাসখনত অসম আৰু অসমীয়াৰ

প্রকৃত ছবি দেখুৱাবলৈ যথা তথ্য ৰীতি আৰু উপযুক্ত বাক্যশৈলী ব্যৱহাৰ কৰিছে। য'ত সংগ্ৰামী সত্তা আটুত হোৱাকৈ তেওঁ অসমৰ সাধাৰণ কৃষক জনগণৰ ছবি সংযোগ কৰিছে। সমান্তৰালকৈ সাধাৰণ গঞা কৃষক ৰাইজৰ ক্লেদান্ত জীৱনৰ কৰুণ দৃশ্য উপন্যাসখনত অংকন কৰিছে। চৌধুৰী আৰ্থ-সামাজিক দিশক অধ্যয়ন কৰা সদা সচেতন ব্যক্তি। সেয়ে তেওঁ বৰ্ণনাৰ মাজত অসমৰ আৰ্থ-সামাজিক দিশক বেছিকৈ প্ৰাধান্য দিছে।

বিষ্ণুপ্ৰসাদ ৰাভাৰ জীৱনৰ বিষয়ে উপন্যাস ৰচনা একেবাৰে সহজ কথা নহয়। ৰাভা আছিল এগৰাকী ৰাজনৈতিক সংগ্ৰামী পুৰুষ, সাম্যবাদী আদৰ্শৰ পুৰুষ, সংস্কৃতিৰ চিন্তক, সমাজকৰ্মী, প্ৰতিবাদী কণ্ঠৰ সংগ্ৰামী নেতা। সেয়েহে দিন-ৰাতি একাকাৰ কৰি অসমৰ ইমূৰ-সিমূৰ একাকাৰ কৰা দিশবোৰ নিৰ্দিষ্ট চৰিত্ৰৰ মাজত উপন্যাসত ৰখা সহজ কাম নহয়। এনে এগৰাকী অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ প্ৰাণ পুৰুষক সাহিত্যিক চেতনাৰে প্ৰকাশ কৰিবলৈ চৌধুৰীয়ে যথা সমসাময়িক সামাজিক-সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰৰ লগত জড়িত হৈ পৰিব লগা হৈছে। সমান্তৰালকৈ লোকসাহিত্যৰ দিশসমূহে প্ৰসংগক্ৰমে সন্নিবিষ্ট কৰিছে। আমাৰ আলোচনাৰ মাজত লোকসাহিত্যৰ দিশসমূহ পোহৰলৈ অনাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

#### সাধুকথাৰ প্ৰয়োগ :

সাধুকথা গদ্যধৰ্মী কাল্পনিক কাহিনী। এইসমূহ সময় আৰু স্থান নিৰপেক্ষ। সাধুকথাসমূহ সামাজিক ৰূপকৰ ভিত্তিত ৰচিত। সাধুকথাসমূহে একোখন সমাজক প্ৰতিফলিত কৰে। এখন সমাজৰ বা এটা জাতিৰ লোকমনৰ স্বৰূপ, বিশ্বাস, পৰম্পৰাৰ, বুদ্ধি-বৃত্তিৰ সমলেৰে সাধুকথা ভৰপূৰ হৈ থাকে।

আমাৰ আলোচনাৰ ফেৰেংগাদাও উপন্যাসখনৰ নামকৰণ প্ৰসংগতে এক পৌৰাণিক অতি কথা সংযুক্ত হৈ থকা যেন অনুমান হয়। বহল দৃষ্টিত অৱশ্যে ই লোকবিশ্বাসৰো সমপৰ্যায়ৰ—

“চোৰা কাউৰীৰ মুৰৰ ওপৰত চোঁ মৰা সেই দুটা হ'ল ফেৰেংগাদাও। ফেঁহ চৰাই, যি ফেঁহ চৰায়ে জালি দি নিতৌ পুৱাতে সুপ্ত পৃথিৱীক জগাই তোলে। বড়োসকলৰ ভাষাত ফেৰেংগাদাও। এই চৰায়ে আকৌ সৰু সৰু চৰাইবোৰক ধৰি ধৰি খোৱা শেন, বাজ, চিলনী, কুৰুৱা, চোৰা কাউৰীৰ দৰে হিংস্ৰ চৰাইবোৰক আক্ৰমণ কৰি সৰু

চৰায়ে বাহ লোৱা গছবোৰ নিৰাপদ কৰি ৰাখে।”৫

লোকগীত লোকসাহিত্যৰ এটা প্ৰধান অংগ। ই লোক সমাজৰ সৃষ্টি। লোকসমাজৰ সুখ-দুখ, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, ৰীতি-নীতি, চিন্তা-ভাৱনা, বিশ্বাস আদিবোৰতে লোকগীতসমূহে প্ৰকাশ পায়। লোকগীতসমূহে লোকজীৱনৰ এক বৃহৎ অংশ আৱৰি আছে। ই মানুহৰ অন্তৰত গঢ় লোৱা গভীৰ অনুভূতি প্ৰকাশৰ এক মাধ্যম। ইয়াৰ ভাষাও সহজ-সৰল।

মেদিনী চৌধুৰীয়ে ‘ফেৰেংগাদাও’ উপন্যাসত বিপ্লৱী শিল্পীৰ বৰ্ণনা কৰিবলৈ পৰম্পৰাগত সমাজৰ লগতে আধুনিক ৰূপৰো বৰ্ণনা দাঙি ধৰিছে। ৰাভাই জনগণৰ সমস্যা সমাধানৰ স্বার্থত দিন-ৰাতি একাকাৰ কৰিছিল। বড়ো জনগোষ্ঠীৰ জাতীয় অস্তিত্ব ৰক্ষাৰ সংগ্ৰামক সন্মুখৰ পৰা নেতৃত্ব দিছিল। সংগ্ৰামৰ জটিল স্বার্থত দিনে-নিশাই হাবিয়ে-বনিয়ে ঘূৰি থকা ৰাভাৰ জীৱনৰ মাজত উপন্যাসিক চৌধুৰীয়ে জনজাতীয় বিবাহ অনুষ্ঠানৰ বৰ্ণনাও সংযোগ কৰিছে। এনেক্ষেত্ৰত বড়োসকলৰ বিবাহ-অনুষ্ঠানত পৰিৱেশন কৰা ধেমেলীয়া গীতৰ বৰ্ণনা এই ক্ষেত্ৰত উল্লেখযোগ্য—

ঐ বৈৰাখী ল' লিয়া  
ঐ বৈৰাখী ল'লিয়া  
নৌংনি খিবু এলো এলো  
গয় খাওনাইখৌ  
জীংলাই জালিয়া। ৬

অৰ্থাৎ বিবাহ অনুষ্ঠানত বৰযাত্ৰীসকলক বৈৰাখীয়ে খনীয়া তামোলোৰে আদৰে। কিন্তু দৰাঘৰীয়া লোকে বৈৰাখীয়ে আদৰোতে দিয়া তামোল নাখাওঁ বুলি এইধৰণৰ গীত গায়। যিহে টিকাত হাত মচি মচি লেতেৰা হাতেৰে তামোল কাটিছ, আমি এইবোৰ তামোল নাখাওঁ এনে এক সুৰতে এই গীতসমূহ পৰিৱেশিত হয়। উজনি-নামনিৰ লগতে অসমৰ বিভিন্ন অংশজুৰি জাতি-জনগোষ্ঠীৰ বিবাহ অনুষ্ঠানসমূহত এইধৰণৰ গীতসমূহ অধিক জনপ্ৰিয়।

জীৱনীমূলক উপন্যাসবোৰ কেৱল ব্যক্তিৰ জীৱনস্বৰূপ প্ৰকাশতে সীমাবদ্ধ নহয়। এইসমূহত এটা যুগৰ, এখন সমাজৰ সকলো দিশ প্ৰকাশিত হয়। ই সমাজৰ ক্ষুদ্ৰ দাপোনস্বৰূপ। এনেক্ষেত্ৰত অসমীয়া ভাষাত প্ৰকাশিত জীৱনীমূলক উপন্যাসসমূহে লোকসমাজক ভিন্ন তথ্যে

আলোকিত কৰিছে। ঠিক একেদৰে জাতীয় জীৱনৰ প্ৰাণপুৰুষ বিষুঃ বাভাৰ জীৱনীভিত্তিক উপন্যাসৰ পাততো অসমীয়া সমাজৰ ভিন্ন দিশ প্ৰবাহিত হৈ আছে।

লোকসাহিত্য বা বাচিক কলাৰ আন এটা ভাগ হ'ল লোক উক্তি অৰ্থাৎ লোকোক্তি। অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ সৈতে এইবোৰৰ গভীৰ সম্পৰ্ক আছে। এইসমূহত জাতিৰ প্ৰাণস্পন্দন গভীৰ ভাৱ লুকাই আছে। প্ৰাচীন কালৰ পৰা অসমৰ লোক সমাজত প্ৰচলিত লোক উক্তিবোৰত লোকসমাজৰ জ্ঞান, বুদ্ধিৰ পৰিচয় ফুটি ওলাই। এইবোৰত লোক হৃদয়ানুভূতিৰ স্বতঃস্ফূৰ্ত ৰূপ প্ৰকাশিত হয়। সমান্তৰালকৈ অৰ্থ প্ৰকাশৰ বাবে ই বহু উচ্চ শক্তিশালী ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। এই লোক উক্তি সমূহৰ অন্তৰ্গত প্ৰবাদ-পটন্তৰ, জতুৰা ঠাচ ফকৰা-যোজনা, সাঁথৰ আদিয়ে অসমীয়া জন জীৱনৰ আৱেগ অনুভূতিৰে লোক সাহিত্যৰ ভঁৰাল টনকিয়াল কৰি আহিছে। প্ৰবচনসমূহত জনজীৱনৰ আৱেগ-অনুভূতি, ভাৱৰ আদান-প্ৰদান আদি ফুটি উঠে। দৈনন্দিন জীৱনৰ সাধাৰণ কথোপকথনত এইসমূহ প্ৰয়োগ হয়। সমাজত ইবোৰৰ প্ৰয়োগ লক্ষণীয়। এনেকাৰণতে ইয়াক কলাগত গুণবিশিষ্ট সংক্ষিপ্ত আৰু বুদ্ধিনিষ্ঠ পৰম্পৰাগত উক্তি বুলিও বহুতে উল্লেখ কৰিব খোজে। সেয়ে লোকসমাজত ইয়াৰ মাদকতা যথেষ্ট গুৰুত্বপূৰ্ণ। সমাজত কথোপকথনৰ মাজত বা কথনশৈলী অধিক ভাৱবিশিষ্ট কৰিবলৈ ইয়াৰ প্ৰয়োগ অতি লক্ষণীয়। পুৰণি কালৰে পৰা প্ৰবচন-যোজনা ইত্যাদিবোৰ বেদৰ বাণীৰ দৰে বিবেচিত হৈ আহিছে। এই ধৰণৰ শব্দ প্ৰয়োগ কৰিব নোৱাৰিলে কথৰ গুৰুত্ব বা মহত্ব কম হোৱা যেন বা কথা নৰজে বুলিও ক'ব খোজে। সেয়েহে 'ডাকৰ বচন বেদৰ বাণী'ৰ গুৰুত্ব অপৰিসীম। সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই ক'ব খোজে ফকৰা-যোজনা আৰু প্ৰবচনবোৰত সাংসাৰিক অভিজ্ঞতালব্ধ জ্ঞানমূলক নীতি, বিভিন্ন সময়ত প্ৰচলিত জীৱনচৰ্যা আৰু আদৰ্শবাদ, জাতিৰ মনস্তত্ত্ব, আচাৰ-ব্যৱহাৰ আৰু বহুক্ষেত্ৰত সমালোচনাও পোৱা যায়। এই প্ৰবাদ-প্ৰবচন বাক্যবোৰ হৈছে 'দহৰ জ্ঞান, একৰ বাণী'। চুটি চুটি বাক্যত একোটা সাৰগৰ্ভ সত্য বা অভিজ্ঞতা প্ৰকাশ কৰিব পৰা অদ্ভুত শক্তি এইবোৰত লক্ষ্য কৰা যায়।

মেদিনী চৌধুৰীৰ ৰচিত 'ফেৰেংগাদাও' উপন্যাসত পোৱা প্ৰবাদ বা প্ৰবচন বা যোজনাসমূহৰ ভিতৰত ভিন্ন কথৰ প্ৰসংগত ব্যৱহাৰ কৰা অনুসৰি— খাবলৈ জানিলে

হেনো চাউলেই চিৰা, বহিবলৈ জানিলে বোলে মাটিয়ে পীৰা; বাঘে খায় দেখি দীঘলে খায় লেখি; গাত নাই ছাল বাকলি, মদ খাৰ তিন টেকেলি; কপালত লেখা থাকিলে নেউল পুলিহেও খাব, নুপুলিহেও খাব; কালৰো কাল বিষম কাল, হৰিণাই চেলেকে বাঘৰ গাল; চোৰকো মোৰে পায়, লোহাও মামৰে খায়; হয় ৰঙামাটি নহয় গুৱাহাটী; বাজিব লাগিছিল টেমী-কটাৰী, বাজিল আকৌ হাঁচটিখনহে; এদিন পূৰ্ণিমা হ'লে এদিন আউসী হয়; মানুহৰ একাল সুখ হ'লে একাল দুখ হয়; ভূতৰ মুখত ৰাম নাম; গঠত কঠাল গুঠত তেল; ধান পকোতে নে টুনীৰ মৰণ হয়; য'তে বাঘৰ ভয় ত'তে ৰাতি হয়।

উপন্যাসখনত লোকসাহিত্যৰ প্ৰবাদ-প্ৰবচন, ফকৰা-যোজনা আদিৰ ব্যৱহাৰে সমসাময়িক সমাজ জীৱনৰ ভিন্ন তথ্যৰ লগতে জীৱন যাত্ৰাৰ উপযোগী শিক্ষাও প্ৰদান কৰে। ব্যক্তিৰ কৰ্মমুখী দৈনন্দিন জীৱনৰ অন্তৰালত নিহিত হৈ থকা পাৰস্পৰিক কৰ্তব্য, দায়িত্ববোধ, সামাজিক জীৱনৰ নৈতিক জ্ঞান আদিবোৰো উপন্যাসখনৰপৰা লাভ কৰিব পাৰে। এইসমূহে ব্যক্তিক অধিক কৰ্মঠ কৰিবলৈ সজাগ কৰে—

বিকট উৎকট ৰোগ

দুৰ্দান্ত কৰ্কট।

দূৰ হোৱা দূৰ হোৱা

নানিবা সংকট।।

দৰিদ্ৰ যিপিনে যায়, সাগৰো শুকাই মাণিকো লুকায়; কথৰ নাপাৰ আলু তালু, চোবাই মৰ সৌ আৰু; একেবাৰে সাইলাখ পটেশ্বৰী নে পটেশ্বৰীয়েই; গুৰিয়াল অবিহনে নাৱৰ যি অৱস্থা; শ্যামল দ্বীপৰ উপকূল; ৰাজবংশী মুছলমান গেলা ইংৰাজী মাৰিবাৰ, বাবুগণ আসিল তাৰ মজা দেখিবাৰ; ঢাল নাই তৰোৱাল নাই নিধিৰাম চৰ্দাৰ, চাঙৰ মাৰলিৰ চুঙাত জাল, গাঁৱৰ যিহে নাক কটা গ'ল; ইটোৰ পিছত সিটো মৰিচিকা খেদা, আকাশলৈ থু পেলালে নিজৰ গাতেই পৰে; আজি অ'ত কালি ত'ত কৰি চিকাৰীৰ ভয়ত চোং সলোৱা হৰিণা পহু; হাবিয়ে-বনিয়ে নিশাচৰ জন্তুৰ দৰে ঘূৰা; হাড়কটা চনৰ জাহনি ওপঙি থকা পানীবোৰ ভাঙি ভাহি; কামৰ সময়ত কাম, তেহে সময়ত পাম; নিৰাকৰণৰ উপায় বিচৰা মানে পাহাৰত কাছ কণী বিচৰা; কলিজাৰ তেজৰ টোপোলা, তেওঁ পাতে মহাদেৱৰ বাসা, সি আকৌ পাতে টেকীখোৰাৰ কথা; আইধৰতকৈ বাইধৰ ছাৰ হ'ব, শত্ৰুৰ আগত হ'বা সিংহৰ

দৰে কঠোৰ, জনতাৰ আগত হ'ব ফুলৰ দৰে কোমল আৰু স্নেহময় ইত্যাদি লক্ষণীয়।

উপন্যাসখনৰ মাজত প্ৰসংগ অনুসৰি ভিন্ন প্ৰবাদ বা জতুৰা ঠাঁচৰ ব্যৱহাৰ লক্ষণীয় তাৰ ভিতৰত— ডলাৰ বগৰী, কাণ-জগা, চকু-মুদা, আথে বেথে, অলৰ অচৰ, চুচুক চামাক, গোৰ মাৰি গঙ্গাত পেলোৱা, হিয়াৰ আমঠু, আদৰৰ চেনেহৰ, আকাশ-পাতাল।

কলিকতাত অধ্যয়ন কৰি থকা ২১ বছৰীয়া বিষ্ণু ৰাভা যেতিয়া ভাৰতৰ স্বাধীনতা আন্দোলনত জপিয়াই পৰিছিল সেইসময়তে এই কবিতা ফাকি লিখি প্ৰতিবাদ কৰিছিল— ৰাজ্যৰ যদি মঙ্গল চাও। দুটি পাঠাই বলি দাও।

### লোকভাষাৰ প্ৰয়োগ :

লোক সাহিত্যৰ আন এটা উল্লেখযোগ্য উপাদান লোকভাষা। লোকসমাজৰ ব্যক্তিয়ে আপোন মনৰ ভাব প্ৰকাশৰ মাধ্যম হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা ভাষাই লোকভাষা। এইবোৰ পৰম্পৰাগতভাৱে মুখে মুখে চলি অহা এক ৰূপ। এইক্ষেত্ৰত অঞ্চলভেদে ভিন ভিন ৰূপ গঢ় লোৱাৰ লগতে ভাষাগত বিভিন্নতাই দেখা যায়। এই লোকভাষাৰ মাজত লোক সমাজ বা জনসাধাৰণৰ বাচিক আচৰণ বা লোকমনৰ অনুভৱ খুব সारলীল আৰু বাঙাল ৰূপত ফুটি উঠে। সেয়ে লোক সংস্কৃতি অধ্যয়নত লোকভাষাৰ গুৰুত্ব যথেষ্ট, এইবোৰত মুখ পৰম্পৰা প্ৰচলিত হৈ থাকে। কাৰণ অঞ্চলভেদে মানুহৰ ভাষা সুকীয়া সুকীয়া। কোনো ব্যক্তিয়েই তেওঁৰ স্থানীয় ভাষা কেতিয়াও আনুষ্ঠানিকভাৱে নিশিকে। এইবোৰ পিতৃ-মাতৃ পৰিয়াল, বন্ধু-বান্ধৱী আদিৰ পৰা আয়ত্ব কৰি লয়। সেয়ে নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই বৰ্ণনা কৰিছে— ভাষা কোনো ধৰণৰ আনুষ্ঠানিক পদ্ধতিৰে শিকা নাযায়, যি ভাষা পৰিমাৰ্জিত আৰু ৰীতিবদ্ধ নহয়, সেই ভাষাই লোকভাষা।

লোকভাষা লোক বা জন জীৱনৰ প্ৰাণস্বৰূপ। ই সময় সাপেক্ষে আকৃতি-প্ৰকৃতি বা চিত্ৰ সম্পন্ন হয়। সন্মুখৰ জগতৰ বস্তুবোৰেই ইয়াৰ প্ৰধান উপজীৱ্য। লোকজীৱনৰ এৰাব নোৱাৰা অংগসমূহৰ ভিতৰত খেতি-বাতি, সাজ-পোছাক, তাঁতশাল, চিংকাৰ, মাছমাৰা, বন্ধন প্ৰকৰণ ইত্যাদিৰ লগত অনেক লোকভাষাৰ ব্যৱহাৰ হয়।

জীৱনীমূলক উপন্যাসখনৰ বৰ্ণিত-বিষয়ত সমাজ জীৱনৰ লগত খাপ খোৱা ঘৰুৱা বৰ্ণনা আৰু কথা-বাৰ্তাত লোকভাষাৰ ব্যৱহাৰে উপন্যাসখনক সমৃদ্ধিশালী কৰিছে। অসমীয়া সমাজ জীৱনত দৈনন্দিন ব্যৱহৃত শব্দৰাজিৰ

ব্যৱহাৰৰ জৰিয়তে সমসাময়িক সমাজখনৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক দিশৰ তথ্য আদায় হয়। সমান্তৰালকৈ জনজীৱনৰ লোকপাৰিপার্শ্বিক ছবিৰ পৰিচয়ো প্ৰকাশিত হয়। প্ৰকৃতিৰ বুকুৰ সম্পদসমূহকে ভিন্ন দিশেৰে বৰ্ণনা কৰা দেখিবলৈ পাওঁ।

সমাজ ব্যক্তিৰ দ্বাৰা গঠিত। ব্যক্তিৰ প্ৰসংগ অনুসৰি ভাষা, কৰ্ম, কলা, ধৰ্ম তথা পাৰিবাৰিক সম্পৰ্ক আদিবোৰ সমাজৰ লগত অঙ্গগীভাৱে জড়িত। জন সমাজৰ সামূহিক জীৱন প্ৰণালী, পৰিয়াল ব্যৱস্থা, গৃহ নিৰ্মাণৰ প্ৰণালী, কৃষি কৰ্ম, দৈনন্দিন ব্যৱহৃত সা-সঁজুলি, উৎসৱ-পাৰ্বণ, প্ৰকৃতি গছ-বন, চৰাই- চিৰিকতি ইত্যাদি শব্দৰ অলেখ বৰ্ণনা জীৱনীমূলক উপন্যাসৰ মাজত পোৱা যায়। অসমীয়া চহালোকৰ কথিত ভিন্ন শব্দ আৰু সাধাৰণ কথোপকথনৰ স্বৰূপত লোকসমাজ প্ৰকাশি উঠে। সমান্তৰালকৈ চোখুৰীৰ বৰ্ণনালৈলীৰ মাজত সামাজিক চৰিত্ৰসমূহৰ স্বতন্ত্ৰ বাকভংগী প্ৰতিফলিত হৈ উঠিছে। সেয়েহে উপন্যাসখনত লোকমনৰ স্ফূৰণ সারলীলতাৰে পৰিস্ফুট হৈ উঠা দেখিবলৈ পাওঁ। উপন্যাসখনত বৰ্ণিত বিভিন্ন শব্দৰাজিৰ তলত দিয়া ধৰণে ভাগ কৰিব দেখুৱাব পাৰি—

### যুৰীয়া শব্দ :

উপন্যাসখনত যুৰীয়া শব্দৰ ব্যৱহাৰ লক্ষণীয়। অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ মাজত সততে চকুত পৰা যুৰীয়া শব্দৰ ব্যৱহাৰে উপন্যাসখন অধিক গুণগ্ৰাহী কৰি তুলিছে। তেনে শব্দসমূহৰ ভিতৰত— খেতি-বাতি, খুতি-নাতি, লৰক-ফৰক, লুতুৰি-পুতুৰি, কটেৰা-জেঙেৰা, ওলট-পালট, কাকুতি-মিনতি, তিতি-বুৰি, জুৰুলি-জুপুৰি, পুলিচ-টুলিচ, লৰক-ফৰক, স্বেত-স্বেত, কুচি-মুচি, আশে-পাশে, কাগজ-তাগজ, আথে-বেথে। এইসমূহৰ ব্যৱহাৰে উপন্যাসখনক অধিক জনমুখী কৰি তুলিছে আৰু সামাজিক স্বৰূপ পোনে পোনে প্ৰকাশি উঠিছে।

### গছ-গছনি, ফল-মূল, তৰু-তৃণৰ নাম বুজোৱা শব্দ :

অসম আৰু অসমীয়া সমাজৰ গছ-বন, ফল-মূল, তৰু-তৃণ আদিৰ উল্লেখ লক্ষণীয়। 'ফেৰেংগাদাও' উপন্যাসত পোৱা গছ-বন, তৰু-তৃণৰ উল্লেখ অনুসৰি — আঁহত, তামোল, শিমলু, ঘাঁহ, অৰ্জুন গছ, খাগৰি, হাতকটা বন, শৌৰাগছ, বিৰিণা, তুলসী, চজিনা, হেলোং, চাহপাত ইত্যাদি। ফল-ফুলৰ ভিতৰত— কঠাল, জলকীয়া, কুঁহিয়াৰ, বগৰী, মাধুৰী ফুল, জাৰ্মানি বন, কচু, নাৰ্জী ফুল, শেৱালী

ফুল, সৰিয়হ, কছাৰা ইত্যাদি অন্যতম।

**জীৱ-জন্তু, চৰাই-চিৰিকতি সম্পৰ্কীয় :**

‘ফেৰেংগাদাও’ উপন্যাসত পোৱা জীৱ-জন্তুৰ উল্লেখ অনুসৰি—ঘোঁৰা, মেকুৰী, বাঘ, হৰিণা, ছাগলী, বন মেকুৰী, নেউল, শুগুৰি পছ, যাড়, বাঘ, ভালুক, শিয়াল, গৰু, হাতী, কুকুৰ, মেঠোন, ম’হ। চৰাই-চিৰিকতি, পোক-পতংগ, মাছ-পুঠিৰ উল্লেখ অনুসৰি—বগলী, কপৌ, হাঁহ, মুৰ্গী, কাউৰী, বাজ হাহ, মকৰা, জোনাকী পৰুৱা, কেঁহ চৰাই, শেন, চিলনী, কৰুৱা, ঢোৰা কাউৰী, সখিয়তী, বগলী, হেটুলুকা, মাছৰোকা, কুকুৰা, জাতি শালিকা, হাইঠা, দহিকতৰা, ডাউক, উইচিৰিঙা, টুনী, ডাঁহ, এৰী পলু, ম’ৰা, হাঁহকলি, উঁৰিক, তিতৰ, উলুম’ৰা, গোৱালা সাপ, হাইঠা, দহিকতৰা, ফৰিং, উঁৰিকণা, উঁয়, কুচিয়া, কাৱৈ মাছ, বেং, জোক, মিচামাছ ইত্যাদি।

**দৈনন্দিন ব্যৱহাৰৰ সামগ্ৰী :**

‘ফেৰেংগাদাও’ উপন্যাসত অসমীয়া গ্ৰাম্য জনসমাজৰ দৈনন্দিন ব্যৱহাৰত সা-সামগ্ৰীৰ ভিতৰত— জুই চকী, বিচনা, নাও, চাকি, বেৰ, চাইকেল, পীৰা, টেকেলি, কলহ, বৰদুৱাৰ, কোদাল, কোৰ, কুঠাৰ, কৰত, আইনা, চুঙা, জাল, ভঁৰাল, জপনা, মিৰিকি, তাঁতশাল, জাপি, কাগজ, জুলি পা, কাঠপেঞ্চিল, মৈ, নঙলা, হেঙাৰ, ইত্যাদি।

**পোছাক-পৰিচ্ছদ বিষয়ক শব্দ :**

‘ফেৰেংগাদাও’ উপন্যাসত উল্লেখিত সাজ-পোছাকৰ বৰ্ণনা অনুসৰি— পায়জামা, পটলুং, কুৰ্তা, গামোচা, কম্বল, কোট, লুঙী, তাঁত, গেঞ্জি, ধুতি, চাদৰ, চেণ্ডেল, গাৰু ইত্যাদি।

**উৎসৱ-অনুষ্ঠান বিষয়ক শব্দ :**

‘ফেৰেংগাদাও’ উপন্যাসত উল্লেখিত লোকসংস্কৃতিৰ লগত জড়িত শব্দৰ ভিতৰত— শিল্পী, নৃত্যাংশ, তাণ্ডৰ নৃত্য, ঢুলীয়া, বায়ন ইত্যাদি। উৎসৱ-অনুষ্ঠানৰ বৰ্ণনা অনুসৰি— শংকৰদেৱৰ তিথি, জয়মতী উৎসৱ, আউসী, একাদশী। বাদ্য-যন্ত্ৰৰ উল্লেখ অনুসৰি— হাৰ্মোনিয়াম, খোল, ঢোল, নেগেৰা, বাঁহী, খুটিতাল, মঞ্জিৰা। শংকৰী সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত— সত্ৰীয়া নৃত্য, শিশুলীলা, বৰগীত, অংকীয়া ভাওনা, নটী, ৰুক্মিণীহৰণ নাট, আশাৱৰী ৰাগ, প্ৰাৰ্থনা, ধূপ-ধূনা, চাকি-বস্তি আদি অন্যতম।

এইদৰে অসমীয়া জীৱনীমূলক উপন্যাসত অজস্ৰ

অসমীয়া কথিত লোকভাষাৰ প্ৰয়োগ ঘটিছে। যি অসমীয়া লোকসমাজৰ চহা লোকমনক বুদ্ধিনিষ্ঠ, সহজ-সৰল প্ৰকাশভঙ্গীমাৰে অতি মনোৰমকৈ প্ৰতিফলিত হৈছে। ওপৰৰ আলোচনাৰ পৰা দেখা গ’ল যে অসমীয়া জীৱনীমূলক উপন্যাসত লোককথা, লোকোক্তি, লোকভাষা আদি ব্যৱহাৰ কৰি উপন্যাসৰাজিক পাঠকৰ হৃদয়গ্ৰাহী কৰি তুলিছে। লোকসাহিত্যৰ উপৰোক্ত উপাদানসমূহৰ সৰব ব্যৱহাৰে পাঠকক ইতিহাস, প্ৰাচীন চৰিত্ৰ, ৰীতি-নীতিৰ লগতে লোকসমাজক মানসিক আৰু শাৰিৰীক অৱসাদ আঁতৰাই আনন্দ- উৎসাহ, মনোৰঞ্জন প্ৰদান কৰে। মেদিনী চৌধুৰীৰ ‘ফেৰেংগাদাও’ উপন্যাসত নিহিত হৈ থকাৰ অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিৰ বৰ্ণনা দিশে উপন্যাসৰ কথাবস্তুৰ সৌষ্ঠৱ বৃদ্ধি কৰিছে।

**সিদ্ধান্ত :**

১। জীৱনীমূলক উপন্যাসৰ অধ্যয়নে অসমীয়া সমাজ-সংস্কৃতিৰ বৰ্ণনা দিশসমূহ লাভ কৰাৰ লগতে পাঠৰ লগতে সাহিত্যৰ সমলো উন্মোচিত হয়।

২। লোকসাহিত্যৰ অন্তৰ্গত শাখাসমূহৰ লগতে বিশেষভাৱে লোকোক্তি, লোকভাষাৰ পৰম্পৰাগত শৈলীয়ে পাঠকৰ হৃদয়ক অধিক মনোগ্ৰাহী কৰি তুলিছে।

৩। জীৱনীমূলক উপন্যাস হিচাপে ‘ফেৰেংগাদাও’ উপন্যাসখন সমসাময়িক সমাজ জীৱনক উন্মোচিত কৰি এক বাস্তৱ কলাসন্মত ধাৰণা প্ৰকাশ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

**সামৰণি :**

অসমীয়া জীৱনীমূলক উপন্যাসে তদানীন্তন সমাজ জীৱনৰ ছবিসমূহ বৰ্তমান সময়ৰ পাঠকৰ আগত দাঙি ধৰাৰ সামান্ত্ৰালকৈ উপন্যাসৰ পাতত সংযোজিত লোকসাহিত্যৰ বিস্তৃত সমলে সমাজ জীৱনৰ লগত পাঠকক ওচৰ চপাই অনা দেখিবলৈ পাওঁ। আমাৰ এই অধ্যয়নত লোকসাহিত্যৰ ভিন্ন দিশবোৰ ফুটি উঠাৰ লগতে ভৱিষ্যৎ অধ্যয়নত ই বিশেষ ভূমিকা গ্ৰহণ কৰিব বুলি আশা কৰিব পাৰি। সামান্ত্ৰালকৈ সাহিত্যিকলাত প্ৰয়োগ হোৱা লোকসাহিত্যৰ সমলসমূহ সংৰক্ষিত হৈ নতুন গৱেষণাৰ বাট মুকলি কৰিব বুলি ক’ব পাৰি। □

প্ৰসংগসূচী :

- ১। উদ্ধিত, নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা, লোকসংস্কৃতি
- ২। নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা, লোক সংস্কৃতি, পৃ. ৪৯
- ৩। নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা, লোক সংস্কৃতি, পৃ. ১৬৪
- ৪। নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা, লোক সংস্কৃতি, পৃ. ১৬৪
- ৫। ফেৰেংগাদাও, পৃ. ৯০
- ৬। ফেৰেংগাদাও, পৃ. ১৪৯
- ৭। সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মা, অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, পৃ. ২০
- ৮। নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা, লোকসংস্কৃতি, পৃ. ৭৯

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- কলিতা, সত্যজিৎ। অসমীয়া লোকসংস্কৃতিত এভূমুকি। গুৱাহাটীঃ অসম বুক হাউজ। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১১। প্ৰকাশিত।
- গগৈ, লীলা। অসমীয়া লোকসাহিত্যৰ ৰূপৰেখা। ডিব্ৰুগড়ঃ বনলতা। দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১১। প্ৰকাশিত।
- গোস্বামী, প্ৰফুল্লদত্ত। বাৰ মাহৰ তেৰ গীত। দিল্লীঃ সাহিত্য অকাডেমি। ২০১২। প্ৰকাশিত।
- — —। অসমীয়া জন সাহিত্য। গুৱাহাটীঃ বীণা প্ৰকাশ। তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১৪। প্ৰকাশিত।
- চৌধুৰী, মেদিনী। ফেৰেংগাদাও। ধেমাজীঃ কিৰণ প্ৰকাশন। ২০১৪। প্ৰকাশিত।
- ঠাকুৰ, নগেন (সম্পা.)। এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস। গুৱাহাটীঃ জ্যোতি প্ৰকাশন। দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১২। প্ৰকাশিত।
- বৰদলৈ, নিৰ্মলপ্ৰভা। অসমৰ লোকসংস্কৃতি। গুৱাহাটীঃ বীণা লাইব্ৰেৰী। প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৭২। প্ৰকাশিত।
- শৰ্মা, নবীনচন্দ্ৰ। অসমীয়া লোকসংস্কৃতিৰ আভাস। গুৱাহাটীঃ বীণা প্ৰকাশ। পঞ্চম প্ৰকাশ, ২০১১। প্ৰকাশিত।
- — —। লোকসংস্কৃতি। গুৱাহাটীঃ চন্দ্ৰ প্ৰকাশ। তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০১৫। প্ৰকাশিত।
- শৰ্মা, গোবিন্দ প্ৰসাদ। জীৱনী আৰু আত্মজীৱনী। গুৱাহাটীঃ বনলতা। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৯। প্ৰকাশিত।
- — —। অসমীয়া উপন্যাসৰ ইতিহাস। গুৱাহাটীঃ জ্যোতি প্ৰকাশন। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৪। প্ৰকাশিত।
- — —। উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস। গুৱাহাটীঃ বনলতা। প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০১৫। প্ৰকাশিত।
- শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰ নাথ। অসমীয়া উপন্যাসৰ ভূমিকা। গুৱাহাটীঃ সৌমাৰ প্ৰকাশ। প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৬৫। প্ৰকাশিত।
- — —। অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা। গুৱাহাটীঃ সৌমাৰ প্ৰকাশ। প্ৰথম প্ৰকাশ, ১৯৭৬। প্ৰকাশিত।
- — —। অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত। গুৱাহাটীঃ অৰণ্যদয় প্ৰেছ। নৱম প্ৰকাশ, ২০০৩। প্ৰকাশিত।

## অসমীয়া গল্পত 'হৃদপিণ্ড সংৰোপণ' বিষয় : এক চমু অৱলোকন (ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ 'গহুৰ' গল্পৰ বিশেষ অধ্যয়ন)

### সংক্ষিপ্তসৰ :



ৰিমঝিম গগৈ

গৱেষক ছাত্ৰী, অসমীয়া বিভাগ  
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, অসম-৭৮১০০১  
৭৮৭৭৯৪০১৭৭  
rimjhimgogoi01@gmail.com

অসমীয়া গল্প সাহিত্যৰ উঁহাল চহকী কৰা গল্পকাৰসকলৰ ভিতৰত ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ আছে বিশেষ অৱদান। ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়া কেৱল গল্পকাৰেই নহয়। তেওঁ একেধাৰে নাট্যকাৰ, নাট পৰিচালক, ঔপন্যাসিক, চলচ্চিত্ৰকাৰ, প্ৰযোজক লগতে এগৰাকী শিশু সাহিত্যিক। তেওঁৰ গল্পত বুলিয়ে নহয় সাহিত্যৰ প্ৰতিটো ভাগতে পোৱা যায় সমসাময়িক সমাজৰ চিত্ৰ। সেয়া হ'ব পাৰে সমাজত ঘটি থকা জাতীয় সমস্যা, সেয়া হ'ব পাৰে সমাজলৈ নতুনকৈ অহা পৰিৱৰ্তন বা সেয়া হ'ব পাৰে বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তি বিদ্যাৰ উন্নতিৰ বতৰা বা নতুন উদ্ভাৱন। তেনে সকলোধৰণৰ সমাহাৰ থকা ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ বহু পঠিত, বহুল চৰ্চিত তথা জনপ্ৰিয় গল্প 'গহুৰ'। চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ চমকপ্ৰদ সাফল্যৰ অন্যতম হৈছে মানৱ দেহত অংগ সংৰোপণ। সেয়া কৃত্ৰিম বা মানৱ দেহৰ জৈৱিক অংগ দুয়োটা ইয়াৰ ভিতৰুৱা। তাৰ ভিতৰত 'হাৰ্ট ট্ৰান্সপ্লান্ট' (Heart Transplant) বা হৃদপিণ্ড সংৰোপণ চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ আটাইতকৈ ডাঙৰ সফলতা। তেনে এটি কাহিনী লৈয়ে ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াই 'গহুৰ' নামৰ গল্পটো লিখিছিল। প্ৰদত্ত আলোচনা প্ৰদৰ্শিত এই 'গহুৰ' গল্পৰ এক সামগ্ৰিক অধ্যয়নৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

### বীজ শব্দ :

অসমীয়া, গল্প, চিকিৎসা, বিজ্ঞান, হৃদপিণ্ড, সংৰোপণ।

### ০.০ অৱতৰণিকা :

### ০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় :



দীপাঞ্জলি দাস গোস্বামী

সহযোগী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ,  
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী  
অসম-৭৮১০০১  
৭৫৭৭৯৮৮৬১০  
dipanjali.goswami@cottonuniversity.ac.in

ৰামধেনু যুগৰ প্ৰতিষ্ঠিত গল্পকাৰসকলৰ ভিতৰত ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াই এখন বিশেষ আসন অধিকাৰ কৰি আছে। স্কুলীয়া দিনতে উদয় নামৰ আলোচনীখনত প্ৰকাশিত 'পথ নিৰূপন' নামৰ গল্পটোৱেই তেওঁৰ প্ৰথম গল্প বুলি কোৱা হয়। তেওঁৰ প্ৰকাশিত গল্প সংকলনসমূহ হৈছে- প্ৰহৰী, বৃন্দাবন, গহুৰ, সেন্দূৰ, শৃংখল, তৰংগ, এই বন্দৰৰ আবেলি, ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ শ্ৰেষ্ঠ গল্প, আকাশ, উপকৰ্ণ আৰু সাক্ষ্যভ্ৰমণ। শেহতীয়াকৈ তেওঁৰ সমগ্ৰ গল্পৰ একত্ৰ সংকলন প্ৰকাশ পাইছে ড০ ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ গল্প সমগ্ৰ নামেৰে। ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ সাহিত্যত প্ৰতিফলিত হৈছে সমসাময়িক সমাজ, সমসাময়িক সময়ৰ ঘটনা-পৰিঘটনা। গল্পকাৰ হিচাপেই ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াই প্ৰথম অৱস্থাত অসমীয়া সাহিত্যত প্ৰসিদ্ধি লাভ কৰিছিল। তেওঁৰ গল্পত বুলিয়েই নহয় অন্যান্য সাহিত্যকৃতিতো চৰিত্ৰৰ মানসিক জগতখনক উপস্থাপন কৰাত আছে এক সুকীয়া বিশেষত্ব। ব্যক্তি চৰিত্ৰৰ বৈচিত্ৰয়ৰ বিশ্লেষণ তেওঁৰ গল্পৰ

অন্য এক গুৰুত্বপূৰ্ণ বৈশিষ্ট্য। তেওঁৰ গল্প সম্পৰ্কে মহেশ্বৰ নেওগে কৈছে এনেদৰে “ ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ সকলোবোৰ গল্পৰ বৰ্ণনা গোটে খুৱালে হয়তো আগলৈ এটা যুগৰ এডোখৰ ঠাইৰ সমাজতাত্ত্বিক এখণ্ড অধ্যয়ন ৰূপে বিবেচিত হ’ব পাৰিব। সাধাৰণ বাক্যবোৰৰ পৰা গভীৰ অৰ্থ ওলোৱা শইকীয়াৰ ভাষাত শব্দবোৰৰ যেন নিজস্ব এক গতি-শক্তি আছে, যদিও তেওঁৰ সুকীয়া এখন অভিধান নাই। কেতিয়াবা একোটাহঁত সাধাৰণ শব্দয়ে আহি আমাৰ সমুখত পিঠিৰ পৰা ‘ছ-উ-চ’ কৰি বৰ গধুৰ বোজা একোটা ধুপু কৰে পেলাই থিয় হয়হি।” ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ গল্পত দেশী আৰু বিদেশী দুয়োটা পটভূমিয়েই পৰা যায়। আলোচনা পত্ৰৰ বাবে নিৰ্বাচিত ‘গহুৰ’ গল্পটোও বিদেশৰ পটভূমিটোই লিখা যদিও তাত প্ৰকাশিত মানৱীয় আবেদন সৰ্বজনগ্ৰাহ্য।

বিজ্ঞান আৰু প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ উন্নতিয়ে চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ ক্ষেত্ৰখনলৈয়ো পৰিৱৰ্তন আনিলে। চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ অন্যতম চমকপ্ৰদ সাফল্য হৈছে মানৱ দেহৰ অংগ সংৰোপণ। এটা মানৱ দেহৰ অংগ অন্য এটা মানৱ দেহত সংৰোপণ কৰি নতুন জীৱন দিব পৰাটোৱে চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ উন্নতিকেই প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। অৱশ্যে পৰীক্ষা-নিৰীক্ষাৰ বাবে জন্তুৰ দেহৰ অংগও মানৱ দেহত সংৰোপণ কৰাও পৰিলক্ষিত হয়। মানৱ দেহত অংগ সংৰোপণৰ দৰে বিষয়ক লৈয়ে ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াই ‘গহুৰ’ গল্পটো ৰচনা কৰিছে। গল্পটোৰ মূল বিষয় মানৱ দেহত হৃৎপিণ্ড সংৰোপণ। কেনেকৈ এজন ব্যক্তিক হৃৎপিণ্ড সংৰোপন কৰি নতুন জীৱন দিলে, তাৰ পাছত কেনেধৰণৰ শাৰিৰীক-মানসিক প্ৰত্যাহ্বানৰ সন্মুখীন হৈ ব্যক্তিজনে মৃত্যুক সাৱতিব লগা হ’ল তাকেই গল্পটোত উপস্থাপন কৰা হৈছে।

প্ৰদত্ত আলোচনা পত্ৰখনিত ‘গহুৰ’ গল্পৰ পটভূমি, গল্পটোত প্ৰতিফলিত সমসাময়িক সমাজ তথা গল্পটোৰ এক সামগ্ৰিক বিশ্লেষণৰ প্ৰয়াস কৰা হ’ব।

## ০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াই চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ হৃৎপিণ্ড সংৰোপণ বিষয়টোক একোটা গল্পত কেনেদৰে উপস্থাপন কৰিছে, সেয়া অধ্যয়ন কৰাই আলোচনা পত্ৰখনিৰ মূল উদ্দেশ্য।

বিজ্ঞান-প্ৰযুক্তিবিদ্যা আৰু চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ সাফল্যক ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াই গল্প ৰূপত কেনেকৈ সজাই তুলিছে আৰু সমসাময়িক সমাজত চলি থকা ঘটনা-পৰিঘটনা জানিবৰ বাবে এই অধ্যয়নৰ তাৎপৰ্য্য আছে।

## ০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

“অসমীয়া গল্পত হৃদপিণ্ড সংৰোপন বিষয়ঃ এক চমু অৱলোকন (ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ ‘গহুৰ’ গল্পৰ বিশেষ অধ্যয়ন)” শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখনিত ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ ‘গহুৰ’ গল্পটিৰ বিষয় হৃদপিণ্ড সংৰোপনক মূল পৰিসৰত সামৰি লোৱা হৈছে। লগতে গল্পত আনুষংগিক কেনেধৰণৰ বিষয়ৰ সন্নিৱিষ্ট কৰিছে সেয়াও পৰিসৰত সামৰি লোৱা হ’ব।

## ০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

প্ৰস্তাৱিত গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰোতে মূলতঃ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ’ব। প্ৰয়োজন অনুসৰি বৰ্ণনামূলক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হ’ব।

## মূল বিষয়ৰ আলোচনা :

### ১.০ অসমীয়া গল্পত হৃদপিণ্ড সংৰোপণ বিষয় :

অসমীয়া সাহিত্যৰ জগতখনত কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য নামেৰে সাহিত্যৰ এটা ভাগ আছে। যাক ইংৰাজীত ‘ছাইন্স ফিক্‌চন’ ( Science Fiction ) বুলি কোৱা হয়। বিজ্ঞান আৰু কল্পনাৰ সংমিশ্ৰণত যি সাহিত্যৰ সৃষ্টি হয় তেনে সাহিত্যই কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য। অৰ্থাৎ বিজ্ঞানৰ কোনো এক বিষয় যেতিয়া সাহিত্যৰূপত উপস্থাপিত হয় তাকেই কল্পবিজ্ঞান সাহিত্য বুলি কোৱা হয়। অসমীয়া সাহিত্যৰ গল্পৰ ক্ষেত্ৰখনতেই আটাইতকৈ বেছি বিজ্ঞানৰ কাহিনীৰূপ পোৱা যায়। চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ বিভিন্ন বিষয়ো অসমীয়া সাহিত্যৰ গল্পৰ ভিতৰুৱা। তাৰ ভিতৰত হৃদপিণ্ড সংৰোপন অন্যতম। অসমীয়া সাহিত্যত দুজন গল্পকাৰে এই বিষয়টো খুব সুন্দৰ ৰূপত তুলি ধৰিছে। তেওঁলোক হৈছে বিশিষ্ট গল্পকাৰ দীনেশ চন্দ্ৰ গোস্বামী আৰু আমাৰ আলোচনাৰ বিষয়ৰ গল্পকাৰ ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়া। ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ ‘গহুৰ’ (১৯৬৮) আৰু দীনেশ চন্দ্ৰ গোস্বামীৰ ‘অভিন্ন হৃদয়’ (১৯৯৭) তেনে বিষয়ৰ গল্প। বিশ্ব তথা ভাৰতৰ প্ৰথম মানৱ দেহৰ হৃদপিণ্ড সংৰোপন দুয়োটা গল্পৰে মূল পটভূমি।

### ১.১ বিশ্ব তথা ভাৰত আৰু অসমৰ প্ৰেক্ষাপটত হৃদপিণ্ড সংৰোপন :

পৃথিৱীৰ প্ৰথম মানুহৰ পৰা মানুহলৈ হৃদপিণ্ড সংৰোপনৰ প্ৰয়াস কৰিছিল ১৯৬৭ চনৰ ৩ ডিচেম্বৰত দক্ষিণ আফ্ৰিকাৰ ডাঃ শ্ৰীষ্টিয়ান বাৰ্নাড আৰু তেওঁৰ দলে আৰু প্ৰথম প্ৰয়াসতে তেওঁলোক সফল হৈছিল। এই প্ৰয়াস

আছিল চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ ইতিহাসত যুগান্তকাৰী উদ্ভাৱন। এয়া আছিল বিশ্বৰ প্ৰেক্ষাপটৰ প্ৰথম হৃদপিণ্ড সংৰোপন।

আনহাতে ভাৰতত ১৯৬৮ চনৰ ১৭ ফেব্ৰুৱাৰী তাৰিখে মুম্বাইৰ শল্য চিকিৎসক ডাঃ প্ৰফুল্ল কুমাৰ সেনে কিং এডৱাৰ্ড মেম'ৰিয়েল হস্পিতেলত প্ৰথম হাৰ্ট ট্ৰান্সপ্লাণ্টৰ প্ৰয়াস কৰিছিল। সম্পূৰ্ণৰূপত সফল হোৱা নাছিল যদিও ৰোগীজন প্ৰায় তিনি ঘণ্টা সময়ৰ বাবে জীৱিত আছিল। ভাৰতত প্ৰথম সফল ট্ৰান্সপ্লাণ্ট কৰা হৈছিল নতুন দিল্লীৰ 'Indian Institute of Medical Science' চমুকৈ AIIMS এ ১৯৯৪ চনৰ ৩ আগষ্টত আৰু যাৰ দেহত সংৰোপন কৰা হৈছিল সেই ৰোগীজন ১৪ বছৰ জীৱিত আছিল।

অসমৰ ক্ষেত্ৰত হৃদপিণ্ড সংৰোপণ বিষয়টো কিছু সুকীয়া। মানৱ দেহৰ পৰা মানৱ দেহলৈ অংগ সংৰোপণৰ পৰিৱৰ্তে জন্তুৰ দেহৰ হৃদপিণ্ডহে মানৱ দেহত সংৰোপণৰ চেষ্টা কৰিছিল। ১৯৯৭ চনৰ ১ জুলাই তাৰিখে অসমৰ চিকিৎসক ডাঃ ধনীৰাম বৰুৱাই গাহৰিৰ দেহৰ হৃদপিণ্ড আনি মানৱ দেহত সংৰোপণ কৰিছিল। তেৱেঁই আছিল পৃথিৱীৰ প্ৰথম জন চিকিৎসক যিয়ে গাহৰিৰ হৃদপিণ্ড মানৱ দেহত লগাই দিছিল। এয়া আছিল অসমৰ চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ ইতিহাসত প্ৰথম হৃদপিণ্ড সংৰোপণৰ ঘটনা।

## ২.০ ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ 'গহুৰ' গল্পত হৃদপিণ্ড সংৰোপণঃ

ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ 'গহুৰ' গল্পৰ ৰচনাকাল ১৯৬৮ চন। ওপৰত উল্লেখ কৰা তথ্যৰ ইতিহাসৰ পৰা এইটো নিশ্চিত হ'ব পাৰি যে ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ 'গহুৰ' গল্পৰ পটভূমি গঢ়ি উঠিছে বিশ্বৰ প্ৰথমটো হৃদপিণ্ড সংৰোপণ বিষয়ক লৈ।

গল্পটোৰ মূল কাহিনীভাগ এনেধৰণৰ - মিঃ পিয়েনাৰ নামৰ এজন ব্যক্তিৰ দেহত অন্য এজন ব্যক্তিৰ দেহৰ পৰা আনি হৃদপিণ্ডটো লগাই দিয়া হৈছে। এই কামটো কৰিছে বিখ্যাত চিকিৎসক ডঃ কেম্পবেল, সহকাৰী ডাক্তৰ মিলিন আৰু তেওঁৰ সহযোগীসকলে। প্ৰায় এশ ওঠৰ দিনৰ অন্তত সৃষ্টি হৈ মিঃ পিয়েনাৰ ঘৰলৈ যাবলৈ ওলাইছে। হস্পিতালখনৰ সন্মুখত তেওঁক সম্ভাষণ জনাবৰ বাবে তেওঁৰ অজস্ৰ শুভাকাংক্ষী, বিপৰ্চাৰ, ফটোগ্ৰাফাৰ ৰৈ আছিল। এই এশ ওঠৰ দিন সকলোৰে দৃষ্টিৰ কেন্দ্ৰবিন্দু আছিল এই হস্পিতালখন। কাৰণ চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ যুগান্তকাৰী সাফল্যৰ ইতিহাস ৰচনা হ'ল এই হস্পিতালখনতে।

নতুন জীৱন পাই ঘৰলৈ ঘূৰি পিয়েনাৰে আকৌ পূৰ্বৰ দৰে জীৱন চলাবলৈ ধৰিলে। স্বাস্থ্যৰ প্ৰতি যত্ন লৈ তেওঁ নিতৌ ঘৰৰ ওচৰৰে পাৰ্ক এখনত খোজ কাঢ়িবলৈ যায়। তাতেই লগ পালে এদিন মেৰীক। মেৰীৰ মুখেৰে জানিব পাৰিলে যে যিটো কলিজা লৈ পিয়েনাৰ আজি জীৱিত সেই কলিজাৰ গৰাকী মেৰীৰ স্বামী মিঃ স্মিথ। মেৰী আৰু স্মিথৰ বিয়া হোৱা বেছিদিন হোৱাই নাছিল। এক দুৰ্ঘটনাত পতিত হৈ হস্পিতেলত থাকোতে তাইৰ স্বামীৰ কলিজাটো আনি পিয়েনাৰৰ দেহত সংস্থাপন কৰা হ'ল। সেয়ে মেৰীয়ে বিশ্বাস কৰে যে তাইৰ স্বামী স্মিথ আজিও জীয়াই আছে পিয়েনাৰৰ বুকুত আৰু সেয়ে তাই এবাৰ মাত্ৰ শূনি চাব বিচাৰে পিয়েনাৰৰ বুকুত ধপ্ধপাই থকা স্বামী স্মিথৰ কলিজাৰ কপনি। তাই পিয়েনাৰৰ হাতত গুজি দিলে তাইৰ ঘৰৰ ঠিকনা থকা এটি সৰু কাগজৰ টুকুৰা। কথাবোৰ জানি পিয়েনাৰ প্ৰায় আচৰিত হৈ উঠিল। পিয়েনাৰ শ্বেতাংগ সমাজৰ ব্যক্তি আৰু স্মিথ কৃষ্ণাংগ সমাজৰ প্ৰতিনিধি। পিয়েনাৰে কৃষ্ণাংগ মানুহক সমুলি ভাল নাপাইছিল। পিয়েনাৰৰ বুকুত তেওঁ ঘিণ কৰা মানুহখিনিৰে এটা কলিজা আছে বুলি জানি বৰ অশান্তি অনুভৱ কৰিলে। পাছত এই কথাবোৰ পত্নী মিছেচ পিয়েনাৰক জনোৱাত আগ-পাছ নাভাবি তেওঁ স্বামীৰ পৰা এক নিৰ্দিষ্ট দূৰত্বত অৱস্থান কৰিলে। কথাবোৰ ইমান বাঢ়ি গ'ল যে পিয়েনাৰে নিজকে শেষ কৰি পেলোৱাৰ সিদ্ধান্ত ল'লে। সেয়ে তেওঁ মৃত্যুৰ পূৰ্বে এবাৰ মেৰীক এই কলিজাটোৰ কঁপনি শুনাবলৈ তাইৰ ঘৰলৈ গ'ল। তাইকো তেওঁ আৰু জীয়াই নাথাকে বুলি জনাই অতদিনে শূনিব বিচাৰি থকা স্বামীৰ কলিজাৰ কঁপনি এবাৰ শূনি ল'বলৈ ক'লে; কিন্তু মেৰীয়ে তেওঁক এই কাম নকৰিবলৈ কৈ তাইৰ স্বামীক জীয়াই ৰাখিনলৈ পিয়েনাৰৰ ভৰিত ধৰি অনুৰোধ জনাই তেওঁৰ বুকুত মূৰ থৈ স্বামীৰ কলিজাৰ কঁপনি শুনিলে। ইতিমধ্যে পিয়েনাৰৰ পত্নীয়ে তেওঁক ঘিণ কৰিবলৈ লৈছে। কৃষ্ণাংগ সকলক সমাজৰ পৰা শেষ কৰিবৰ বাবে শ্বেতাংগসকলৰ এটা সংগঠন আছে। যাৰ দায়িত্বত আছিল পিয়েনাৰ নিজেই; কিন্তু এতিয়া সেইজন মানুহেই সিহঁতৰ লগত সম্পৰ্ক ৰাখিছে বুলি জানি সকলোৰে মনত অসন্তোষ অনুভৱ কৰিছে। এই কথাবোৰে জনাৰ পাছত আৰু তেওঁ মেৰীৰ সৈতে সম্পৰ্ক ৰাখিছে বুলি জানি তেওঁক পত্নী আৰু সংগঠনৰ সদস্যই মিলি হত্যা কৰা হ'ল আৰু হত্যাৰ অন্তত চিকিৎসক কেম্পবেলক সংবাদ মাধ্যমত জনাবলৈ ক'লে যে "সকলো জাতৰ মানুহৰ

কলিজা সকলো মানুহৰ দেহত খাপ নাখায়।” (ড. ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ গল্প সমগ্ৰ, পৃ. ৪১৬)

### ২.১ ‘গহুৰ’ গল্পত প্ৰতিফলিত বৰ্ণ বৈষম্য :

ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ ‘গহুৰ’ গল্পত প্ৰতিফলিত হৈছে সমাজত চলি থকা বৰ্ণ বৈষম্য। ক’লা বঙৰ মানুহবোৰৰ প্ৰতি থকা বগা মানুহৰ ঘৃণা ভাৱ, সমাজৰ পৰা সিহঁতক সমূলি শেষ কৰি দিয়াৰ যি মানসিকতা আৰু গল্পৰ সমসাময়িক সময়ছোৱাৰ ইতিহাস খুচৰি চালে পৰিলক্ষিত হয় যে যিসময়ত হৃদপিণ্ড সংপৰোপণৰ দৰে চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ যুগান্তকাৰী পথ দক্ষিণ আফ্ৰিকাত আৰম্ভ হৈছিল, সেই সময়ত তাত বৰ্ণ বৈষম্যৰ দৰে ব্যাধিও সাংঘাতিক ধৰণেৰে বিয়পি পৰিছিল। এফালে বিজ্ঞানৰ জয়জয় কাৰ কৰাৰ দৃশ্য, আনফালে মানুহৰ মনত থকা নিকৃষ্ট মানসিকতা-এই দুয়োটা বিষয়ে গল্পটোত দুটা বিপৰীত বাৰ্তা প্ৰকাশ পাইছে। গল্পটোৰ কেইবা ঠাইতো ক’লা বঙৰ প্ৰসংহ বৰ্ণ বৈষম্যৰ বিষয়টোক অধিক স্পষ্ট কৰি তুলিছে। উদাহৰণস্বৰূপে, যিদিনা মি. পিয়নাৰক হস্পিতেলৰ পৰা ঘৰলৈ লৈ যোৱা হৈছিল সিদিনা তেওঁক সন্তোষ জনাবলৈ ঘৰৰ সন্মুখতো গোটি খোৱা মানুহবোৰৰ মাজত ক’লা বঙৰ মানুহো আছিল। সকলোকে তাৰ পৰা যাবলৈ অনুৰোধ কৰা হৈছিল। কিন্তু তাৰ মাজতে গল্পকাৰে এযাৰি বাক্য সন্নিৱিষ্ট কৰিছে যে “পুলিচৰ লগত অযথা তৰ্কাতৰ্কি কৰাৰ অপৰাধত দুটা ক’লা ছালৰ মানুহক গ্ৰেপ্তাৰ কৰা হ’ল।” (পৃ. ৪০৯)

আনহাতে মি. পিয়নাৰ যিটো সংঘৰ দায়িত্বত আছিল সেই সংঘৰ মূল উদ্দেশ্যই আছিল ক’লা ছালৰ মানুহক শেষ কৰা। শ্বেতাংগসকলৰ সংঘৰ উদ্দেশ্য অনুযায়ী “এডোখৰ ঠাইত জন্মগ্ৰহণ কৰিলে কাৰণেই মানুহ সেই ঠাইডোখৰৰ অধিকাৰী হ’ব নোৱাৰে। কিছুমান হাবিত হেজাৰ হেজাৰ বান্দৰে জন্মগ্ৰহণ কৰে, কিন্তু সেই হাবিবোৰ বান্দৰৰ নহয়। এইখন দেশত বহুত ক’লা ছালৰ মানুহে জন্মগ্ৰহণ কৰিছিল আৰু জন্মগ্ৰহণ কৰিছিল কাৰণেই সিহঁত এসময়ত মৰিছিল। জন্মগ্ৰহণ কৰি এসময়ত মৰাৰ বাহিৰে সিহঁতে একো কৰা নাছিল, আজিও কৰা নাই।... ধকধকীয়া বগা ছালৰ এক শ্ৰেণী মানুহ ভগবানে ভলতে সৃষ্টি কৰা নাই। মানুহৰ ছালৰ এই দুটা বঙৰ মাজতে ভগৱানৰ বক্তব্য লুকাই আছে।

#### প্ৰসংসূত্ৰ :

ড. ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ গল্প সমগ্ৰ, বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, পঞ্চম সংস্কৰণ, ২০ ফেব্ৰুৱাৰী, ২০০৬ চন, পৃ. ৪০৯, ৪১০, ৪১৩, ৪১৬

#### সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

ড. ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ গল্প সমগ্ৰ, বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, পঞ্চম সংস্কৰণ, ২০ ফেব্ৰুৱাৰী, ২০০৬ চন,

গাঁগে, হৃদয়ানন্দ. সম্পাদক, গল্প আৰু শিল্পগ্ৰন্থ. ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ চাৰিটা দশকৰ শ্ৰেষ্ঠ গল্প. জ্যোতি প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, নৰ্থ-ইষ্ট বুক ফেয়াৰ, ১৯৯৮

বৰা, ড. অপূৰ্ব. সম্পাদক, অসমীয়া চুটিগল্প ঐতিহ্য আৰু বিৱৰ্তন, যোৰহাট কেন্দ্ৰীয় মহাবিদ্যালয় প্ৰকাশন কোষ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ৭ জুলাই ২০১২ চন

বৰুৱা, ড. প্ৰহ্লাদ কুমাৰ. অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন, বনলতা, ডিব্ৰুগড়, পুণৰ মুদ্ৰণ ২০১২ চন

ক’লা ছালৰ মুৰ্খহঁতে সেই বক্তব্য উপলব্ধি কৰিব নোৱাৰি বিদ্ৰোহ নামত পাপ আচৰণ কৰে।” (পৃ. ৪১০)

মি. পিয়নাৰৰ দেহত ক’লা বঙৰ মানুহৰ কলিজা থকাৰ বাবে এটা সময়ত তেওঁ সংকিত হৈছে যদি তেওঁ দেখাত ক’লা হৈ পৰে বা স্মিথৰ দৰে হৈ যায় - “তেওঁৰ মুখৰ বং, গাৰ বং লাহে লাহে ক’লা হৈ আহিছে নেকি? তেজ চলাচল কৰা যন্ত্ৰটোৰ কাৰণে - তেওঁ এদিন স্মিথহঁতৰ নিচিনা হৈ যাব নেকি?” (পৃ. ৪১৩)। এনেবোৰ কথাই বিষয়টো অধিক স্পষ্ট কৰি তুলিছে।

### ৩.০ উপসংহাৰ :

ভবেন্দ্ৰ নাথ শইকীয়াৰ ‘গহুৰ’ গল্পটোত মূলতঃ দুটা বিষয় পোৱা যায়। এটা হ’ল বিজ্ঞান আৰু আনটো হ’ল মানুহৰ মনত শিপাই থকা বৰ্ণ বৈষম্য। মূল হৃদপিণ্ড সংপৰোপণৰ বিষয়টোক উপস্থাপন কৰোঁতে সমান্তৰালকৈ ক’লা-বগাৰ এই বৰ্ণ বৈষম্যৰ যুঁজখনে গল্পটোৰ মূল বিষয়ক সমৃদ্ধ কৰাত সহায় কৰিলে। সাহিত্য সমাজৰ পৰিপূৰক তথা সাহিত্যই সমাজৰ পৰাই সমল সংগ্ৰহ কৰে। সমসাময়িক সমাজ খনৰ দুটি গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়ক তেওঁ ‘গহুৰ’ গল্পত খুব সাৱলীলভাৱে তুলি ধৰিছে।

প্ৰদত্ত আলোচনা পত্ৰখনিৰ আলোচনাৰ অন্তত তলত দিয়া ধৰণৰ সিদ্ধান্তত উপনীত হ’ব পাৰোঁ-

ক) ‘গহুৰ’ গল্পটোৰ মূল প্ৰেক্ষাপট আফ্ৰিকাত সম্পন্ন হোৱা প্ৰথম হাৰ্ট ট্ৰান্সপ্লান্ট।

প্ৰদত্ত গৱেষণা পত্ৰখনিৰ অধ্যয়নৰ অন্তত তলত দিয়া ধৰণৰ সিদ্ধান্তত উপনীত হ’ব পাৰি-

ক) গল্পটোৰ মূল পটভূমি আফ্ৰিকাত সম্পন্ন হোৱা প্ৰথমটো হৃদযন্ত্ৰ সংপৰোপণৰ ঘটনা।

খ) বৰ্ণ বৈষম্যৰ দৰে সংবেদনশীল ঘটনাৰাজিৰ অন্তৰ্ভুক্তিয়ে সমসাময়িক সমাজখনকে প্ৰতিফলিত কৰিছে।

গ) এই গল্পটো যিহেতু বিদেশৰ পটভূমিত লখা হৈছে সেইবাবে ইয়াৰ জৰিয়তে ষাঠিৰ দশকৰ আফ্ৰিকাৰ বিজ্ঞানৰ ক্ষেত্ৰখনৰ উন্নতি আৰু সামাজিক ক্ষেত্ৰখনৰ অৱনতি দুয়োটা দিশেই জানিব পাৰি। □

# আধ্যাত্মিকতা, যৌনতা আৰু ধৰ্মীয় শোষণ : উৰিষ্যা আৰু অসমৰ দেৱদাসী প্ৰথাৰ এক লিংগভিত্তিক অধ্যয়ন

## সংক্ষিপ্তসূচনা :



সুমন ভূঞা

গৱেষক, ইতিহাস বিভাগ  
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়  
গড়মূৰ মাজুলী, পিন-৭৮৫১০৪  
☎ ৯৬৭৮৫৮৮০৩২  
✉ bhuyansuman91@gmail.com

ভাৰতৰ দেৱদাসী ব্যৱস্থাই এক সুকীয়া সামাজিক- সাংস্কৃতিক অনুষ্ঠানক  
প্ৰতিনিধিত্ব কৰে য'ত মহিলাসকলে ঐতিহাসিকভাৱে মন্দিৰত সেৱা আগবঢ়াইছিল  
তথা ধ্ৰুপদী কলাৰ ৰক্ষক আৰু পৰিৱেশক হিচাপে ভূমিকা পালন কৰিছিল। ড°  
মহেশ্বৰ নেওগৰ মতে ভাৰতৰ আন বহু মন্দিৰৰ দৰে অসমৰ দেৱদাসী প্ৰথা মূলতঃ  
শিৱ মন্দিৰৰ সৈতে জড়িত আছিল। প্ৰাক্- আহোম যুগৰ শাক্ত- শৈৱ মন্দিৰসমূহত  
দেৱদাসী আৰু দেওধনী নৃত্যৰ ব্যৱস্থা আছিল। একেদৰে উৰিষ্যাৰ জগন্নাথ মন্দিৰতো  
নৰ্ত্তকী ছোৱালীক আনুষ্ঠানিকভাৱে দেৱতাৰ বাবে অত্যৱশ্যকীয় পূজা- পাতল  
সম্পাদনা কৰিবলৈ নিযুক্তি দিয়া হৈছিল। উৰিষ্যাৰ দেৱদাসীসকলক “মাহাৰী” উপাধি  
দিয়া হৈছিল; যাৰ অৰ্থ আছিল “মহান নাৰী”। কিন্তু পিছলৈ অসম আৰু উৰিষ্যাৰ  
দেৱদাসী প্ৰথাই ধৰ্মীয় পৰম্পৰাৰ আঁৰত নাৰীৰ শোষণৰ সূচনা কৰিছিল। এই গৱেষণা  
পত্ৰখনত উৰিষ্যা আৰু অসমৰ দেৱদাসী ব্যৱস্থাৰ বিশদ অধ্যয়নৰ জৰিয়তে  
আধ্যাত্মিকতাৰ সৈতে যৌনতা আৰু ধৰ্মীয় শোষণৰ সংযোগ স্থাপন কৰা হৈছে।  
যদিওৱা ঈশ্বৰৰ সেৱাত লিংগ সমতা (gender equality) সম্ভৱপৰ কৰি তোলাৰ  
এটা ভাল উদ্দেশ্যেৰে দেৱদাসী প্ৰথা আৰম্ভ কৰা হৈছিল, তথাপি এই ব্যৱস্থাই ভাৰতত  
নাৰীৰ মৰ্যাদা অৱনমিত কৰা দেখা গৈছিল। অসম আৰু উৰিষ্যাৰ দেৱদাসী প্ৰথাৰ  
ধাৰাবাহিকতা আৰু পৰিৱৰ্তন অধ্যয়নৰ যোগেদি ধৰ্মীয় অনুষ্ঠানত লিংগ ভূমিকাই  
কেনেদৰে প্ৰভাৱিত কৰিছে; এই অধ্যয়নত তাৰো আলোকপাত কৰা হৈছে। এইদৰে  
এই অধ্যয়নে মূলসুঁতিৰ শাখাসমূহত অধ্যয়নৰ এক শ্ৰেণী হিচাপে লিংগ বৈষম্য  
(gender biasness), ধৰ্মীয়- সামাজিক শোষণ (socio- religious exploitation)  
আদিৰ দৰে গুৰুত্বপূৰ্ণ বিষয়সমূহ উত্থাপন কৰিছে।

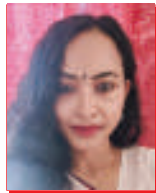
## বীজ-শব্দ :

দেৱদাসী, ধৰ্মীয় পৰম্পৰা, আধ্যাত্মিকতা, লিংগ সমতা, নাৰীৰ শোষণ।

## ০.০ অৱতৰণিকা :

### ০.১ বিষয় পৰিচয় :

নৃত্য- গীতৰ সৈতে জড়িত যুৱতীক দেৱদাসী হিচাপে মন্দিৰত উৎসৰ্গা কৰাৰ  
পৰম্পৰা হিন্দু ধৰ্মৰ শতিকা পুৰণি প্ৰথা। তেওঁলোকে দাসত্বৰ অন্যতম প্ৰাচীন  
প্ৰতিষ্ঠানক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে, যিয়ে তথাকথিত নিম্নবৰ্ণৰ মহিলাসকলক মন্দিৰত দাসী  
হ'বলৈ বাধ্য কৰাইছিল। এই যুৱতীসকলক দেৱতাৰ লগত বিবাহিত বুলি গণ্য কৰা  
হৈছিল। দেৱদাসী শব্দৰ অৰ্থ হৈছে “ঈশ্বৰৰ দাস”, যিয়ে ঐতিহাসিকভাৱে সেইসকল  
মহিলাক বুজায় যিসকলে গোটেই জীৱন কোনো দেৱতা বা মন্দিৰৰ পূজা আৰু



ড° প্ৰীতিমা গগৈ

সহকাৰী অধ্যাপিকা, ইতিহাস বিভাগ  
মাজুলী সাংস্কৃতিক বিশ্ববিদ্যালয়  
গড়মূৰ মাজুলী, পিন-৭৮৫১০৪  
☎ ৯৯৭১৪৭৫৬৫৫  
✉ gogopreetima@gmail.com

সেৱাত নিজকে উৎসৰ্গিত কৰিছিল। পৰম্পৰাগতভাৱে কোনো দেৱতাৰ সৈতে “বিবাহিত” বুলি বিশ্বাস কৰা এই মহিলাসকলক মন্দিৰৰ বন্ধণাবেন্ধণৰ লগতে আচাৰ-অনুষ্ঠান পৰিচালনাৰ দায়িত্ব অৰ্পণ কৰা হৈছিল।<sup>১</sup> দেৱদাসী হোৱাৰ পিছত তেওঁলোকে ধৰ্মীয় আচাৰ, নীতি-নিয়ম আৰু নৃত্য সাধনাৰ জৰিয়তে সময় পাৰ কৰিছিল। সেই সময়ত সংগীত আৰু নৃত্য মন্দিৰ উপাসনাৰ অন্যতম অংগ হোৱা হেতুকে তেওঁলোকে নৃত্য-সংগীতক পবিত্ৰ শিল্পৰূপে সংৰক্ষণ আৰু প্ৰসাৰত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। অসমৰ নেঘেৰিটিং, ডুবি আৰু হাজোৰ দেৱদাসী প্ৰথা সৰ্বজনবিদিত। এসময়ত দেৱগাঁৱৰ নটীনৃত্যই সমগ্ৰ অসমতে প্ৰসিদ্ধি লাভ কৰিছিল। বৰ্জনীকান্ত বৰদলৈৰ, ‘বহুদৈ লিগিৰি’তো দেৱগাঁৱৰ দেৱদাসী ব্যৱস্থাৰ কথা উল্লেখ আছে।

একেদৰে, দেৱদাসী প্ৰথাই উৰিষ্যাৰ সংস্কৃতি আৰু ইতিহাসতো এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। তেওঁলোকৰ নৃত্য, গীত আৰু অন্যান্য কলা উৰিষ্যাৰ প্ৰসিদ্ধ মন্দিৰসমূহৰ পূজা-অৰ্চনাৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ আছিল। উৰিষ্যাত উৎপত্তি আৰু বিকাশ হোৱা পৰম্পৰাগত ‘ওড়িশী নৃত্য’ৰ সৈতে দেৱদাসীসকল ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত আছিল। ওড়িশী নৃত্যই পাছলৈ ৰাজসভাতো ঠাই পাইছিল আৰু ইয়াৰ বহুতো ভংগিমা মন্দিৰৰ দেৱালত খোদিত কৰা আছে। দেৱদাসীসকলে মন্দিৰৰ পূজা-অৰ্চনাত নৃত্যৰ জৰিয়তে ভগৱানৰ সেৱা কৰিছিল। অৱশ্যে, পিছলৈ এই প্ৰথাৰ অপব্যৱহাৰ হ’বলৈ ধৰিলে আৰু ইয়াৰ ফলত দেৱদাসীসকলৰ সামাজিক অৱস্থা দুৰ্বল হৈ পৰিল।<sup>২</sup> ভাৰতীয় ইতিহাস অধ্যয়নৰ জৰিয়তে দেখা যায় যে বৈদিক যুগত নাৰীৰ মৰ্যাদা অধিক আছিল। কিন্তু মধ্যযুগীয় কালত তেওঁলোকৰ মৰ্যাদাৰ অৱনতি ঘটিবলৈ আৰম্ভ কৰে। বাহিৰৰ পৰা অহা আগ্ৰাসন, নৈতিকতাৰ স্বল্পন ইত্যাদিয়েই ইয়াৰ মূল কাৰণ। কালক্ৰমত দেৱদাসীসকল ভোগৰ বিষয় হৈ পৰিল আৰু অৱশেষত যৌনকৰ্মী হিচাপে পৰিগণিত হ’ল।

### ০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

ভাৰতৰ দেৱদাসী প্ৰথাৰ, বিশেষকৈ দক্ষিণ ভাৰতৰ দেৱদাসী পৰম্পৰাৰ বিষয়ে বিশদ অধ্যয়ন কৰি ইতিহাসবিদসকলে বিতং বিশ্লেষণ আগবঢ়াইছে যদিও ঐতিহাসিক অধ্যয়নৰ ফালৰ পৰা অসম আৰু উৰিষ্যাৰ দেৱদাসী পৰম্পৰাৰ বিষয়ে এতিয়াও বিস্তৃতভাৱে অধ্যয়ন

কৰা হোৱা নাই। অসম আৰু উৰিষ্যাৰ দেৱদাসী প্ৰথাৰ ওপৰত ৰচিত গ্ৰন্থ অতিকৈ কম, লিংগ দৃষ্টিকোণৰ পৰা দেৱদাসী ব্যৱস্থাৰ সমালোচনাত্মক বিশ্লেষণ এতিয়াও হোৱা নাই। সেয়ে, ধৰ্মৰ নাৰীবাদী সংজ্ঞাৰ (feminist definition of religion) ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰি ইয়াক অসম আৰু উৰিষ্যাৰ দেৱদাসী ব্যৱস্থাৰ অধ্যয়নত কেনেকৈ প্ৰয়োগ কৰিব পাৰি, এই সম্পৰ্কে গৱেষণাৰ যথেষ্ট প্ৰয়োজন আছে। এইদৰে এই গৱেষণাত দেৱদাসী পৰম্পৰাৰ ইতিহাস আৰু ইয়াৰ বিকাশৰ বিষয়ে নাৰীবাদী দৃষ্টিকোণৰ পৰা অধ্যয়ন কৰি পূৰ্বৰ খালী ঠাইবোৰ পূৰণ কৰাৰ চেষ্টা কৰা হৈছে।

### ০.৩ অধ্যয়নৰ পদ্ধতিঃ

ঐতিহাসিক পদ্ধতিৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত প্ৰাথমিক আৰু গৌণ উভয় উৎসৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি অধ্যয়ন কৰা হৈছে। প্ৰাথমিক উৎসসমূহৰ ভিতৰত বুৰঞ্জী, ভাৰতৰ লোকপিয়ল, শিলালিপি আৰু গেজেটীয়াৰ আদিৰ দৰে উৎসসমূহ আছে। অসম আৰু উৰিষ্যাৰ মন্দিৰত চলি থকা এই দেৱদাসী প্ৰথাৰ প্ৰত্যক্ষ জ্ঞান থকা কেইজনমান শিল্পী, পুৰোহিত আৰু পৰিচালনা সমিতিৰ সদস্যৰ লগত ফোকচ সাক্ষাৎকাৰ (focus group discussion) আৰু মৌখিক ইতিহাস (oral history) পদ্ধতিৰ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। তদুপৰি, বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক এই দুয়োটা পদ্ধতিৰ সংমিশ্ৰণ এই গৱেষণাত ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। সংগ্ৰহ কৰা প্ৰাথমিক তথ্যসমূহ ইংৰাজী আৰু স্থানীয় ভাষাত প্ৰকাশিত গ্ৰন্থ, বাতৰি কাকত আৰু আলোচনীকে ধৰি আন গৌণ উৎসসমূহৰ লগত পূৰ্ণপৰিষ্কাৰ কৰা হৈছে।

### ০.৪ দেৱদাসী প্ৰথাৰ ইতিহাস :

খ্ৰীষ্টপূৰ্ব ৩য় শতিকাত চন্ডিগড়ৰ ৰামগড় পাহাৰৰ যোগীমাৰা গুহাত প্ৰথমবাৰ দেৱদাসীৰ উল্লেখ থকা শিলালিপি পোৱা গৈছিল। বিদেশী পৰিব্ৰাজক, ডমিংগো পেছে সমৃদ্ধিশালী বিজয়নগৰ সাম্ৰাজ্যত দেখা পোৱা দেৱদাসী ব্যৱস্থাৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিছিল। আৰবৰ এক বিৱৰণী অনুসৰি সোমনাথ মন্দিৰৰ দুৱাৰত তিনিশ মহিলা নৃত্যশিল্পীয়ে অনুষ্ঠান পৰিৱেশন কৰিছিল। সাহিত্যিক গ্ৰন্থসমূহৰ ভিতৰত প্ৰায় ৫ম শতিকাত কালিদাসে ৰচনা কৰা গীতিকবিতা ‘মেঘদূত’ত দেৱদাসী ব্যৱস্থাৰ উল্লেখ পোৱা যায়। যদিও কালিদাসে এই মহিলাসকলক দেৱদাসী ব্যৱস্থাৰ সৈতে স্পষ্টভাৱে জড়িত কৰা নাছিল। বৰঞ্চ কালিদাসৰ চিত্ৰণত তেওঁলোকক বৈশ্যা ‘পতিতা’ বুলি বৰ্ণনা

কৰা হৈছে। স্কন্দ পুৰাণ আৰু বামদেৱ সংহিতাৰ ‘পুৰুষোত্তম ক্ষেত্ৰ মহামত্যা’ত দেৱদাসীসকলৰ উপস্থিতি আৰু তেওঁলোকৰ বীতি-নীতি, উৎসৱত নৃত্য কৰি ঈশ্বৰৰ সেৱা কৰাৰ স্পষ্ট প্ৰমাণ পোৱা যায়। পদ্মপুৰাণ আৰু ভৱিষ্য পুৰাণত উল্লেখ পোৱা মতে মন্দিৰত দেৱতাৰ সন্তুষ্টিৰ বাবে এক শ্ৰেণীৰ নৰ্তকী ছোৱালী নিয়োগ কৰা হৈছিল যাক দেৱদাসী নামেৰে জনা গৈছিল। কলহনৰ ‘ৰাজতৰংগিনী’, কোটিল্যৰ ‘অৰ্থশাস্ত্ৰ’, দামোদৰ গুপ্তৰ ‘কুটনীমতম্’ আদি গ্ৰন্থত দেৱদাসী নৃত্য থকাৰ কথা জনা যায়। ৭০০ খ্ৰীষ্টাব্দৰ ভিতৰত ই হিন্দু ধৰ্মত এক প্ৰতিষ্ঠিত প্ৰতিষ্ঠানত পৰিণত হয়।<sup>১</sup> ভাৰতৰ বিভিন্ন প্ৰান্তত দেৱদাসীসকলক বিভিন্ন নামেৰে জনা যায়। ওড়িশাত “মাহাৰী”, অসমত “নটা”, অন্ধ্ৰপ্ৰদেশত “ভোগম-বন্ধী”, তামিলনাডুত “থেৱাৰ্ভিয়া”, মহাৰাষ্ট্ৰত “মুৰালী”, “জোগাতেন”, “আৰাধিনী”, “মতাং”, কৰ্ণাটকত “বাসৱী” হিচাপে। ধৰ্মীয় আৰু কলাত্মক ভূমিকাৰ বাহিৰেও দেৱদাসীসকলেও যথেষ্ট ৰাজনৈতিক প্ৰভাৱ পেলাইছিল। ঐতিহাসিক তথ্য অনুসৰি তেওঁলোক মন্দিৰৰ হৈ ভূমি অধিগ্ৰহণ আৰু পৰিচালনাৰ বিষয়ত সক্ৰিয়ভাৱে জড়িত আছিল, যিয়ে মন্দিৰৰ আধ্যাত্মিক আৰু বস্তুগত উভয় স্বাৰ্থৰ বিশ্বাসযোগ্য ৰক্ষক হিচাপে তেওঁলোকৰ উচ্চ ভূমিকাক সূচায়। ইয়াৰ পৰা বুজা যায় যে দেৱদাসীসকলে মন্দিৰ প্ৰতিষ্ঠানসমূহৰ ধৰ্মীয় আৰু আৰ্থ-ৰাজনৈতিক দুয়োটা দিশতে উচ্চস্তৰৰ তথা সন্মানীয় স্থান দখল কৰিছিল।

#### ০.৫ অসমৰ নটা (দেৱদাসী) প্ৰথাৰ ধাৰাবাহিকতা আৰু পৰিৱৰ্তন :

অসমৰ দেৱদাসী নৃত্যৰ প্ৰচলন কেতিয়াৰপৰা হয় তাৰ সঠিক উত্তৰ লাভ কৰাটো সম্ভৱ নহয় যদিও ইয়াক ঘাইকৈ শৈৱ ধৰ্মৰ প্ৰভাৱৰে ফল বুলি বিবেচনা কৰা হয়। কালিকা পুৰাণ আৰু যোগিনীতন্ত্ৰৰ মতে প্ৰাচীন কামৰূপ তন্ত্ৰৰ আসন আছিল আৰু তান্ত্ৰিক প্ৰভাৱৰ বাবেই অসমলৈ দেৱদাসীসকলৰ আগমন ঘটিছিল। বৰ্তমানলৈ উদ্ধাৰ হোৱা ভালেমান তান্ত্ৰিক পুথিত, শিৱমন্দিৰত দেৱদাসী প্ৰথা থকাৰ উল্লেখ পোৱা যায়। বুৰঞ্জীবিদ প্ৰতাপ চন্দ্ৰ চৌধুৰীৰ মতে, “অসমত হয়তো অতি প্ৰাচীন কালৰে পৰা দেৱদাসী অনুষ্ঠান আছিল আৰু অনাৰ্যসকলেই ইয়াৰ প্ৰচলন কৰিছিল।” দেৱদাসী সকলক মন্দিৰৰ কামত নিয়োগ কৰিব পৰাটো সৌভাগ্যৰ কাৰণ বুলি ভবা হৈছিল। অসমত

দেৱদাসীসকলৰ উৎপত্তি বৰ্মন বংশৰ ৰজা ভাস্কৰবৰ্মনৰ ৰাজত্বকালৰ পৰা (সপ্তম শতিকা) অনুসন্ধান কৰিব পাৰি। পুৰণি কামৰূপত নৰ্তকীৰ অৱস্থিতিয়ে নাট্যশাস্ত্ৰৰ নীতি-নিৰ্দেশিত পদ্ধতিৰ সংকেত দিয়ে। উল্লেখযোগ্য যে ভাস্কৰবৰ্মাৰ মৃত্যুত তেওঁৰ বিয়োগ সহিব নোৱাৰি এগৰাকী বিলাসিনী নৰ্তকী সহমৃত্যু হোৱা এক বিৱৰণ পোৱা যায়। পৰৱৰ্তী সময়ৰ নৱম শতিকাৰ বনমালবৰ্মাৰ তাম্ৰশাসনত ৰজাই নৰ্তকীৰে সৈতে যুক্ত হাটকশূলী শিৱৰ মন্দিৰ নিৰ্মাণ কৰাইছিল। তদুপৰি তাত বাদ্য- গীতেৰে নিৰ্মিত দেৱালয়ৰ কথাও আছে- “দেৱাগাৰং বাদ্য গীত প্ৰণাদৈঃ”<sup>২</sup>

আহোম যুগত ৰজাঘৰীয়া সুবিধা আগবঢ়াই এই প্ৰথাক অধিক উৎসাহিত কৰা হয়। আহোম শাসনত প্ৰায় আটাইবোৰ মন্দিৰৰ সমুখতে নাট-মন্দিৰ সংযোজিত হয় আৰু তাত নৃত্য-নাট্যানুষ্ঠানৰ আয়োজন কৰা হয়। স্বৰ্গদেউ গদাধৰসিংহই ‘জোঙা ঢোল (খোল)’ বজাই নটা ননচুৰাবলৈ নিৰ্দেশ দিছিল যদিও পুতেক ৰুদ্ৰসিংহৰ সংগীতানুৰাগ অতি গভীৰ আছিল। “আহোম ৰজা শিৱসিংহৰ দিনৰে পৰা পাইক প্ৰথা অনুসৰি ডুবৰ পৰিহৰেশ্বৰ দেৱালয়ত তিনি প্ৰহৰে দেৱদাসী নৃত্য প্ৰদৰ্শন কৰা হৈছিল। ৰাজেশ্বৰ সিংহই নেঘেৰিটিঙত নতুনকৈ দৌল আৰু পুখুৰী কৰাই যাৱতীয় পূজা পাতলৰ ব্যৱস্থা কৰাৰ লগতে নট-নটাৰ নৃত্য গীত আৰু বাদ্য সুপৰিচালনাৰ বাবে দুখনমান গাঁও বহুৱাইছিল। ৰজনীকান্ত বৰদলৈৰ ‘বহুদৈ লিগিৰী’ত নটা নৃত্যৰ উল্লেখ পোৱা যায় এনেধৰনে- ‘নাহৰণীৰ শিৱদৌলত গধূলি আৰতি আৰু পূজা হৈ যোৱাৰ পিছত দৌলৰ আগত থকা নাটমন্দিৰ ঘৰটোৰ ভিতৰত ডেৰগঞা নট-নটা সকলে নৃত্য-গীত কৰিছে। সেইনৃত্যগীত চাবলৈ ওচৰৰ গাঁৱৰ ডেকা গাভৰু ভালেমান আহিছে। সকলো বিলাক নটা নাচোনত বিভোৰ.....”

অসম বুৰঞ্জীৰ মতে, নেঘেৰিটিং শিৱদৌলে আহোমৰ ৰজা প্ৰতাপ সিংহৰ পৰা দেৱদাসীকে ধৰি কেইবাজনো কৰ্মচাৰী লাভ কৰিছিল। পিছত তেওঁৰ বংশধৰ স্বৰ্গদেউ লক্ষ্মী সিংহই এশ উনপঞ্চাশ গোট পাইক উমানন্দ মন্দিৰলৈ দান কৰে। মৌখিক সূত্ৰ অনুসৰি দেৱদাসী আৰু সংগীতজ্ঞসকলৰ দৈনন্দিন জীৱন আৰু নৃত্যৰ আচাৰ-ব্যৱহাৰৰ বাবে সুকীয়া অলংকাৰ আৰু সাজ-পোছাক আছিল আৰু পৰিহৰেশ্বৰ, হাজো, বিশ্বনাথ, নেঘেৰিটিং আৰু অন্যান্য শিৱ মন্দিৰতো ইয়াৰ সামান্য তাৰতম্য আছিল।

### ০.৬ উৰিষ্যাৰ মাহাৰী (দেৱদাসী) প্ৰথাৰ বিৱৰ্তন আৰু পতন :

নীলমাধৱ নামেৰেও পৰিচিত ভগৱান জগন্নাথৰ সৈতে বিবাহপাশত আবদ্ধ হোৱা উৰিষ্যাৰ মাহাৰীসকলে গোটেই জীৱন তেওঁকেই 'ঐশ্বৰিক স্বামী' হিচাপে গ্ৰহণ কৰিছিল। উৰিষ্যাৰ মাহাৰী পৰম্পৰাৰ আটাইতকৈ প্ৰাচীন উল্লেখ খ্ৰীষ্টীয় নৱম শতিকাৰ উদ্যোতকেছাৰী ৰজাসকলৰ সময়ৰ শিলালিপিত পোৱা যায়। ভূৱনেশ্বৰৰ ব্ৰহ্মেশ্বৰ মন্দিৰত ৰজাৰ মাতৃ কলৱতী দেৱীয়ে মন্দিৰ নৃত্যশিল্পীক ভগৱান শিৱৰ ওচৰত উৎসৰ্গা কৰিছিল। উৰিষ্যাৰ কেশৱী বা সোমবমশী বংশৰ শাসনকালত বৌদ্ধ ধৰ্মৰ অৱনতি ঘটিবলৈ আৰম্ভ কৰে আৰু ব্ৰাহ্মণবাদী শিক্ষা অধিক শক্তিশালী হৈ উঠে। এই পৰিৱৰ্তনে জগন্নাথ পূজাৰ উত্থানত সহায় কৰিছিল, য'ত বিষ্ণু-কৃষ্ণক জগতৰ প্ৰভু হিচাপে পূজা কৰা হৈছিল। এই বিশ্বাসে মাহাৰীসকলৰ নৃত্য পৰম্পৰা গঢ় দিয়াত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। কেশৱীসকলৰ পিছত গংগা বংশ ক্ষমতালৈ আহে। ৰজা অনন্তবৰ্মণ চোদাগংগাই ১০৭৭ চনৰ পৰা ১১৪৭ খ্ৰীষ্টাব্দলৈ শাসন কৰি পুৰীত বিখ্যাত জগন্নাথ মন্দিৰ নিৰ্মাণ কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে। মন্দিৰত সেৱা কৰিবলৈ মাহাৰীসকলকো নিয়োগ কৰিছিল। পিছলৈ ১২১১ খ্ৰীষ্টাব্দত ৰজা অনংগ ভীম দেৱ তৃতীয় গংগা বংশৰ শাসক হয়। তেওঁ বহুতো মন্দিৰ নিৰ্মাণ কৰি জগন্নাথ মন্দিৰত 'নাট মন্দিৰ' নামৰ এটা বিশেষ হল সংযোজন কৰে। এই হলটো মাহাৰী আৰু সংগীতজ্ঞসকলে মন্দিৰ পূজাৰ অংশ হিচাপে অনুষ্ঠান পৰিবেশন কৰিবৰ বাবে নিৰ্মাণ কৰা হৈছিল। এই সময়ছোৱাত বিখ্যাত কবি জয়দেৱেও গীত পদ ৰচনা কৰিছিল। তেওঁৰ ৰচনা 'গীত গোবিন্দ' মন্দিৰৰ আচাৰ-ব্যৱহাৰৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ অংগ হৈ পৰিছিল আৰু মাহাৰীসকলে পৰিবেশন কৰিছিল। গংগা শাসনৰ শেষৰ ফালে ৰাজা ৰাজা দেৱে প্ৰায় বিশগৰাকী নৃত্যশিল্পীক জগন্নাথ মন্দিৰত সেৱা আগবঢ়াবলৈ নিযুক্তি দিয়ে। ১৫ খ্ৰীষ্টীয় দশম আৰু একাদশ শতিকাত ৰচিত 'স্কন্দ পুৰাণ'তো জগন্নাথ মন্দিৰৰ নৃত্য অনুষ্ঠানৰ কথা উল্লেখ আছে। ১৪৯৭ চনত পুৰুষোত্তম দেৱৰ মৃত্যুৰ পিছত তেওঁৰ পুত্ৰ প্ৰতাপ ৰুদ্ৰ দেৱে মন্দিৰত কেৱল গীতা গোবিন্দহে গোৱা উচিত বুলি ৰায় দিছিল। আঠ দশকৰো অধিক সময় সেৱা আগবঢ়োৱাৰ পাছত ২০১০ চনত বৃদ্ধাৱস্থাৰ বাবে গীতা গোবিন্দৰ পাঠ আৰু ভগৱান জগন্নাথৰ সেৱাৰ পৰা বিৰতি ল'বলৈ বাধ্য

হৈছিল পৰশমণি দেৱী (পুৰীৰ শেষগৰাকী মাহাৰী)। মাহাৰী পৰশমণিৰ অৱসান ঘটাব লগে লগে জগন্নাথ মন্দিৰত ৮০০ বছৰতকৈও অধিক পুৰণি 'দেৱদাসী' পৰম্পৰাৰ অন্ত পৰিছিল। ১২ বছৰীয়া পৰশমণি আছিল পুৰীত ভগৱান জগন্নাথৰ সেৱাৰ বাবে ৰখা শেষগৰাকী গায়কী (সেৱকী)। ৰজাৰ পদ বিলুপ্ত হোৱাৰ লগে লগে আৰু ১৯৫৫ চনত ওড়িশা চৰকাৰে আইন প্ৰণয়ণৰ জৰিয়তে পুৰী ৰাজপৰিয়ালৰ পৰা মন্দিৰৰ প্ৰশাসন চৰকাৰৰ হাতলৈ হস্তান্তৰ কৰাৰ লগে লগে পুৰীৰ শতিকা পুৰণি মাহাৰী প্ৰথাৰ অন্ত পৰে।

### ০.৭ অসম আৰু উৰিষ্যাৰ দেৱদাসী প্ৰথাৰ এক লিংগভিত্তিক অধ্যয়ন :

উৰিষ্যা আৰু অসমৰ দেৱদাসী ব্যৱস্থাক নাৰীবাদী দৃষ্টিভঙ্গীৰে বিশ্লেষণ কৰিলে জাতি, শ্ৰেণী, ধৰ্ম, লিংগ, আৰু যৌনতা; ইত্যাদি কাৰকসমূহে কেনেদৰে একত্ৰিত হৈ অত্যাচাৰৰ জটিল ৰূপৰ সৃষ্টি কৰে সেয়া জানিব পৰা যায়। দৰিদ্ৰতা, শিক্ষাৰ অভাৱ, শ্ৰেণীগত পাৰ্থক্য আৰু অন্ধবিশ্বাসৰ মাজত আবদ্ধ এই মহিলাসকলে অহৰহ নিৰ্যাতনৰ সন্মুখীন হ'ব লগা হৈছিল। তেওঁলোকৰ বহুতকৈ দাসত্বলৈ (দাসী হ'বলৈ) ঠেলি দিয়া হৈছিল, যৌন হিংসাৰ সন্মুখীন হৈছিল আৰু বৈশ্যবৃত্তি ধাৰণ কৰিবলৈ বাধ্য কৰা হৈছিল। পুৰুষ ভক্তসকলৰ বাবে তেওঁলোকৰ মূল্য সৌন্দৰ্যৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰিছিল। উৰিষ্যা আৰু অসমত দেৱদাসী ব্যৱস্থাৰ দৰে গভীৰভাৱে শিপাই থকা ধৰ্মীয় পৰম্পৰাই ব্যাপক ৰূপত লিংগ বৈষম্যৰ সৃষ্টি কৰিছিল। তেওঁলোকৰ দৃঢ় ধৰ্মীয় বিশ্বাস আছিল যে : যদিহে তেওঁলোকে এই প্ৰথাৰ পৰা আঁতৰি আহে তেতিয়াহ'লে পৰৱৰ্তী জনমত ঈশ্বৰৰ অভিশাপৰ সন্মুখীন হ'ব লাগিব। আত্মীয়সকলে তেওঁলোকক প্ৰায়ে এৰাই চলিছিল। দেৱদাসী অৰ্থাৎ দেৱতাৰ পত্নী হোৱাৰ পাছতো ঋতুশ্ৰাৱৰ সময়ত তেওঁলোকক মন্দিৰ প্ৰাঙ্গনত প্ৰৱেশ নিষিদ্ধ কৰাৰ দৰে নিষেধাজ্ঞাৰ সন্মুখীন হৈছিল। এই ব্যৱস্থাটোক স্থানীয় অভিজাত শ্ৰেণীয়ে সমৰ্থন কৰিছিল আৰু দেৱদাসীসকলক প্ৰায়ে যৌন শোষণ কৰা হৈছিল। উনৈশ আৰু বিংশ শতিকাৰ সমাজ সংস্কাৰকসকলে এই ব্যৱস্থাটোক শোষণমূলক বুলি গৰিহণা দিছিল আৰু যুক্তি দিছিল যে ই ধৰ্মীয় পৰম্পৰাৰ আৱৰণত বৈশ্যবৃত্তিক উৎসাহিত কৰিছিল যাৰ ফলত সমাজৰ নৈতিকতাৰ স্বলন হৈছিল। সমাজ সংস্কাৰক মুখলক্ষ্মী ৰেড্ডীয়ে অসম আৰু উৰিষ্যাৰ দেৱদাসী প্ৰথা

সাংস্কৃতিক পশ্চাদগমনৰ প্ৰতীক বুলি গণ্য কৰিছিল।

উৰিষ্যাৰ জগন্নাথ মন্দিৰৰ মন্দিৰ আইন অনুসৰি দেৱদাসীসকলক দেহ ব্যৱসায়ত জড়িত হ'বলৈ দিয়া হোৱা নাছিল। কিন্তু বাস্তৱ জীৱনত এই নিময় সদায় পালন কৰা হোৱা নাছিল। কিছুমান দেৱদাসীক জোৰকৈ বা প্ৰভাৱিত কৰি অবৈধ কামত জড়িত কৰা হৈছিল। প্ৰায়ে মন্দিৰৰ সেৱক বা শক্তিশালী তথা ক্ষমতাশালী লোকৰ লগত জড়িত হৈ এনেকুৱা হৈছিল। ৰজা আৰু তেওঁলোকৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ অতিথিসকলে কেতিয়াবা দেৱদাসীৰ পৰা সুবিধা বিছাৰিছিল। এনে কাৰ্যক জনসাধাৰণৰ পৰা লুকুৱাই ৰখা হৈছিল যিহেতু তেওঁলোক মন্দিৰৰ পৰম্পৰাৰ বিৰুদ্ধে গৈছিল। ইয়াৰ পৰা মন্দিৰৰ আইন আৰু প্ৰকৃত প্ৰথাৰ মাজৰ ব্যৱধান দেখা যায়।<sup>৬</sup> মৌখিক সূত্ৰ অনুসৰি মাহাৰিসকলে সক্ৰিয় পৰিবেশনৰ পৰা অৱসৰ লোৱাৰ পিছত গান গোৱাৰ বাবে চৰকাৰৰ পৰা কোনো পেঞ্চন লাভ কৰা নাছিল। ইয়াৰ লগতে উৰিষ্যাত এটা জনবিশ্বাস আছিল যে যদি পৰিয়ালৰ কোনোবা এটি শিশু জটিল বেমাৰত পৰে আৰু মাক-দেউতাকে আশু অৰোগ্য কামনা কৰি জগন্নাথৰ পৰা বৰ বিচাৰে; তেতিয়া শিশুটি আৰোগ্য হ'লে পৰৱৰ্তী ছোৱালী সন্তানক মাহাৰি হিচাপে জগন্নাথৰ চৰণত অৰ্পন কৰা হৈছিল।

ব্ৰাহ্মণবাদী অনুষ্ঠানৰ পৰা নিজৰ বৈধতা আৰু অব্ৰাহ্মণ ভূমিহীন শ্ৰেণীৰ সৈতে জড়িত পৃষ্ঠপোষকতাৰ এক বিশৃংখল নেটৱৰ্কৰ দেৱদাসীসকল আছিল ভূমিহীন পৰিয়ালৰ ধৰ্মীয় আৰু সামাজিক অৰ্থনীতিৰ এক অন্তৰ্নিহিত অংশ। আহোম ৰজা শিৱসিংহৰ ৰাজ আমোলত, কনৌজৰ পৰা ব্ৰাহ্মণ বা পূজাৰী, হাজোৰ পৰা মালাকৰ আৰু দেৱগাঁওৰ নেঘেৰিটিং শিৱদৌলৰ পৰা গায়ন-বায়ন আৰু দেৱদাসী আৰু ডুবি-পৰিহৰেশ্বৰ দেৱালয়ত শিৱৰ সেৱা-পূজা আৰু দেৱদাসী প্ৰথাৰ প্ৰচলন কৰিছিল। ৰজা ৰুদ্ৰ সিংহই ভূইপ্ৰিয়াক দেৱালয়ৰ প্ৰথম দেৱদাসী হিচাপে নিযুক্তি দিছিল আৰু প্ৰথম বায়ন খৰাণক দেৱগাঁৱৰ মহেশ্বৰ শিৱদৌলৰ পৰা অনা হৈছিল।<sup>৭</sup> আন এগৰাকী দেৱদাসী বয়া বায়নক মাত্ৰ এঘাৰ বছৰ বয়সত আনুষ্ঠানিকভাৱে ডুবি দেৱদাসী হিচাপে ঘোষণা কৰা হৈছিল যি বয়সত তেখেত এগৰাকী স্কুলীয়া ছাত্ৰী আছিল। সময়ৰ বিৱৰ্তনৰ লগে লগে এই নৃত্যকলাবিধ অসমৰ দেৱালয়সমূহৰ পৰা নাইকিয়া হৈ পৰিল। জমিদাৰ তথা আভিজাত্য শ্ৰেণীৰ সৈৱাচাৰ আৰু সমাজৰ কিছুমান কু-প্ৰবৃত্তিৰ লোকৰ কামনাৰ বলী হোৱাৰ

লগতে তেওঁলোকৰ ভোগৰ সামগ্ৰী হৈ দেৱদাসীসকলে বিভিন্ন ব্যভিচাৰত লিপ্ত হৈ পৰাৰ ফলত, এই প্ৰথাটোৱে সমাজৰ পৰা আস্থা হেৰুৱাই পেলালে। ঔপনিৱেশিক শাসনৰ সময়ত ধৰ্মীয় সংস্কাৰ আৰু সামাজিক পৰিৱৰ্তন, ইত্যাদি কাৰকসমূহৰ ফলত ধৰ্মীয় অনুষ্ঠানসমূহৰ এই ধৰণৰ নৰ্তকী নিয়োগৰ প্ৰথা নাইকিয়া হৈ পৰে।<sup>৮</sup>

#### ০.৮ উপসংহাৰ :

দক্ষিণ এছিয়াৰ সমাজ জীৱনত প্ৰাচীন কালৰ পৰাই পিতৃতান্ত্ৰিক গাঁথনিৰ দীঘলীয়া ইতিহাস আছে, য'ত বৈদিক গ্ৰন্থ, মনুস্মৃতি আৰু অন্যান্য ধৰ্মীয় মতবাদৰ দ্বাৰা সমাজৰ স্তৰবৃত্ত শিপাই আছে। এই গ্ৰন্থসমূহে নাৰী আৰু পুৰুষৰ বাবে নীতিগত আদৰ্শৰ ভেদাভেদ স্থাপন কৰি আৰু পুৰুষক ৰক্ষক হিচাপে আৰু মহিলাক অধীনস্থ ভূমিকাত স্থান দিছিল। দক্ষিণ এছিয়াৰ বহু সমাজত পুৰুষত্বক প্ৰায়ে আধিপত্য, শাৰীৰিক শক্তি, সফলতা, কতৃপক্ষ আৰু নিয়ন্ত্ৰণৰ সৈতে ৰিজোৱা হয়; আনহাতে নাৰীত্বক লালন-পালন আৰু অনুকূলতাৰ সৈতে। দেৱদাসী প্ৰথাৰ ক্ষেত্ৰতো দেখা যায় যে : শিল্পকলাসমূহৰ সংৰক্ষণ আৰু ৰক্ষণাবেক্ষণত তেওঁলোকৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা থকাৰ পিছতো দেৱদাসীসকলক তেওঁলোকৰ সাংস্কৃতিক অৱদানৰ বাবে আনুষ্ঠানিক স্বীকৃতি আৰু কৃতিত্বৰ পৰা পদ্ধতিগতভাৱে বঞ্চিত কৰা হৈছিল। দেৱদাসী হোৱা বহু নাৰীক পিছলৈ ধৰ্মীয় সেৱাৰ বাবে সন্মান জনোৱাৰ পৰিৱৰ্তে যৌন কামত লগাবলৈ বাধ্য কৰা হৈছিল। ই আছিল এক অমানৱীয় প্ৰথা যিটো প্ৰজন্মৰ পিছত প্ৰজন্ম ধৰি চলি আহিছিল আৰু ইয়াৰ ফলত আৰ্থিকভাৱে দুৰ্বল সম্প্ৰদায়ৰ লোকৰ শোষণ কৰা হৈছিল। নাৰী শৰীৰৰ বস্তুনিষ্ঠকৰণে তেওঁলোকৰ অভিজ্ঞতাক পিতৃতান্ত্ৰিক সমাজৰ নিয়ন্ত্ৰণৰ বলী কৰিছিল আৰু পুৰুষত্বৰ পৰম্পৰাগত ধাৰণাসমূহে লিংগৰ মাজত ক্ষমতাৰ ভাৰসাম্যহীনতাক গঢ় দিছিল। ধনবান অথচ কুচৰিত্ৰ সম্পন্ন লোকে মন্দিৰলৈ আহি দেৱদাসীসকলৰ সৈতে অবৈধ সম্পৰ্ক গঢ়ি তুলিছিল। তাৰ বাবে ৰক্ষণশীল সমাজে শিল্পকলাৰ দিশটোলৈ দৃষ্টিপাত নকৰি দুঃসহ বৃত্তি অৱলম্বন কৰা এই নৃত্য সম্পদটোকে জগৰীয়া কৰিছিল। আলবেৰ্ণিয়ে তেওঁৰ 'তাহুক্-ই-হিন্দ' নামৰ ভাৰত-ভ্ৰমণ বৃত্তান্তত উল্লেখ কৰিছে যে, 'হিন্দুসকলৰ একাংশই এই মন্দিৰ-নৰ্তকী সকলক উচ্ছেদ কৰিবলৈ উঠি পৰি লাগিছিল, কিন্তু সফল হ'ব পৰা নাছিল।' এইদৰে এই

গৱেষণাই ভাৰতৰ নাৰীৰ অধিকাৰ, যৌনতা, ধৰ্মীয় আচাৰ-ব্যৱহাৰত লিংগ বৈষম্যই কেনেদৰে কেনেদৰে প্ৰভাৱিত কৰি আহিছে, সেই বিষয়েও প্ৰতিফলিত কৰে। ই পৰম্পৰা, ক্ষমতা আৰু পৰিচয়ৰ ৰাজনীতিৰ বিষয়ে গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰশ্ন উত্থাপন কৰি ভাৰতৰ প্ৰাচীন ব্যৱস্থাই বৰ্তমান সময়তো

লিংগ আৰু সামাজিক গতিশীলতাক কেনেদৰে প্ৰভাৱিত কৰে সেই বিষয়ে পুনৰ চিন্তা কৰিবলৈ উৎসাহিত কৰে। এই অধ্যয়নে ভাৰতীয় সমাজত লিংগ সমতা, ধৰ্ম সংস্কাৰ, সাংস্কৃতিক পৰিৱৰ্তনৰ ওপৰত বহুল বিতৰ্কত অৰিহণা যোগায়। □

প্ৰসংগসূচী :

- ১। Singh, A.K., (1990) Devadasis System in Ancient India. Delhi: H.K. Publishers and Distributors.
- ২। Marglin, F.A., (1986) Wives of the God- King: Rituals of the Devadasis of Puri. Oxford University Press.
- ৩। Basham, A.L., (1954) *The Wonder That Was India*. New Delhi: Rupa. Co.,(Rpt. 2002).
- ৪। কামৰূপ শাসনাৱলী, পৃঃ ৪৮
- ৫। গগৈ, লীলা (১৯৯৪) অসমৰ সংস্কৃতি, ৫ম বনলতা সংস্কৰণ, গুৱাহাটী, পৃঃ ৬৫
- ৬। Pattnaik, S., (1990). *Mahari Tradition and Odissi Dance*. Utkal University Press, Bhubaneswar.
- ৭। Kothari, S. (2003). *Odissi: Indian Classical Dance Art*. New Delhi: Marg Publications.
- ৮। Mallik, S.K. and Praharaj, B.L., (2010) Was “Devadasi” Tradition in the Cult of Jagannath, *Cult of Humanism?* Journal of National Seminar, Department of History, Banki, Cuttack, Odisha.
- ৯। বৰদলৈ, পবন (২০১০) অসমৰ দেৱদাসী নৃত্যকলা, প্ৰভাত প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, পৃঃ ৫৬
- ১০। Deka, M., (2022) *Religion, Gender and Sexuality: The Devadasi System in Assam*; Sexuality & Culture 2022, Vol, 26 Issue 6.

## দেবেন্দ্রনাথ আচার্যৰ 'অন্য যুগ অন্য পুৰুষ' উপন্যাসত প্রতিফলিত গ্রাম্য জনজীৱন

### সংক্ষিপ্তসার :



শিৱানী দাস

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ  
কুমাৰ ভাস্কৰবৰ্মা সংস্কৃত আৰু পুৰাতন  
অধ্যয়ন বিশ্ববিদ্যালয়,  
নলবাৰী - ৭৮১৩৩৭  
৮৬৩৮৮০৫২৭৪  
sibanidas4735@gmail.com

সত্তৰৰ দশকৰ অসমীয়া উপন্যাসিকসকলৰ ভিতৰত লেখত ল'বলগীয়া এগৰাকী উপন্যাসিক হৈছে দেবেন্দ্রনাথ আচার্য। প্ৰায় দুকুৰি বছৰীয়া জীৱনকালতে তেখেতে যিখিনি অৱদান আগবঢ়াই থৈ গৈছে তাৰবাবে অসমীয়া সাহিত্য জগতত তেখেতৰ নাম চিৰস্মৰণীয় হৈ ৰ'ব। তেখেতে অন্য যুগ অন্য পুৰুষ, কালপুৰুষ আৰু জঙ্গমৰ দৰে কালজয়ী উপন্যাস অসমীয়া সাহিত্যলৈ আগবঢ়াই থৈ গৈছে।

সাহিত্য আৰু সমাজ পৰম্পৰা নিৰ্ভৰশীল। সাহিত্য সৃষ্টিৰ অন্তৰালত সমাজখন গভীৰভাৱে জড়িত হৈ থাকে। দেবেন্দ্রনাথ আচার্যৰ 'অন্য যুগ অন্য পুৰুষ' উপন্যাসখনেও প্ৰাক-স্বাধীনতা কালৰ অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ বিভিন্ন দিশ পোহৰাই তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। বিশেষকৈ প্ৰাক-স্বাধীন অসমৰ অৰ্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক, সামাজিক, সাংস্কৃতিক আদি বিভিন্ন দিশ উপন্যাসিকে উপন্যাসখনৰ মাজেৰে চিত্ৰিত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। যাতায়ত আৰু যোগাযোগৰ সূচলতা নথকা এখন দেশত ব্ৰিটিচৰ আগমনৰ লগে-লগে কেনেদৰে পৰিৱৰ্তনৰ জোৱাৰ ববলৈ আৰম্ভ কৰিলে তাৰ আভাসো উপন্যাসখনে দাঙি ধৰিছে। মুঠতে 'অন্য যুগ অন্য পুৰুষ' উপন্যাসখনে প্ৰাক-স্বাধীনতা কালৰ অসমৰ গ্ৰাম্য সমাজ খনক সুন্দৰ ৰূপত প্ৰতিফলিত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

### অৱতৰণিকা :

### বিষয়ৰ পৰিচয় :



ড° গুণীন শইকীয়া

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ  
কুমাৰ ভাস্কৰবৰ্মা সংস্কৃত আৰু পুৰাতন  
অধ্যয়ন বিশ্ববিদ্যালয়,  
নলবাৰী - ৭৮১৩৩৭  
৬০০০৪৫০০৪৬  
jintu.saikia29@gmail.com

অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ প্ৰথিতযশা সাহিত্যিকসকলৰ ভিতৰত দেবেন্দ্রনাথ আচার্য অন্যতম। ঐতিহাসিক ঘটনাক জনমানসত সুপৰিকল্পিত ৰূপত উপস্থাপন কৰাত উপন্যাসিক দেবেন্দ্রনাথ আচার্যই প্ৰয়াস কৰিছে। দেবেন্দ্রনাথ আচার্যৰ তিনিওখন উপন্যাসৰ ভিতৰত 'অন্য যুগ অন্য পুৰুষ' উপন্যাসত প্ৰাক স্বাধীনতা অসমৰ সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক অৱস্থাৰ বিষয়ে বেং বেলেপ্তৰ চৰিত্ৰৰ যোগেদি ৰোমন্থন কৰাৰ চেষ্টা কৰিছে। বেং বেলেপ্তৰ মুখৰোচক কাহিনীৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে অতীত অসমৰ বিভিন্ন ঘটনা তথা সমাজ জীৱনৰ পৰিৱৰ্তনৰ কথা। ব্ৰিটিচৰ আগমনে গাঁও আৰু নগৰৰ ধাৰণাই সলনি কৰি দিছিল। এই ক্ষেত্ৰত উদ্যোগ প্ৰতিষ্ঠা আৰু ব্যৱসায় বাণিজ্যই যথেষ্ট সহায় কৰিছিল। গাঁৱৰ পৰা চহৰমুখী যাত্ৰাই মানুহৰ জীৱনধাৰাকো সলনি কৰিবলৈ প্ৰেৰণা যোগাইছিল। এখন গ্ৰাম্য সমাজত দেখি অহা সমাজ জীৱনৰ বিবিধ ছবি আৰু তালৈ অহা পৰিৱৰ্তনসমূহ উপন্যাসখনত চিত্ৰিত কৰিছে।

### অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

দেবেন্দ্রনাথ আচার্যৰ 'অন্য যুগ অন্য পুৰুষ' উপন্যাসত প্ৰতিফলিত গ্ৰাম্য

জনজীৱন-শীৰ্ষক বিষয়টো আলোচনা কৰিবলৈ যোৱাৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য হৈছে নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনৰ মাজেৰে কিদৰে প্ৰাক স্বাধীনতা অসমৰ গ্ৰাম্য জনজীৱনৰ বিবিধ দিশ প্ৰকাশ পাইছে সেই সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা। ইয়াৰ লগতে ব্ৰিটিচৰ আগমনৰ লগে-লগে হোৱা অসমৰ পৰিৱৰ্তনৰ এক ছবি দাঙি ধৰাটো অধ্যয়নৰ অন্যতম উদ্দেশ্য।

নিৰ্বাচিত বিষয়টো আলোচনা কৰাৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। কিয়নো ঐতিহাসিক তথ্যৰে সমৃদ্ধ অন্য যুগ অন্য পুৰুষ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ পৰা হেৰাই যাব ধৰা কিছুমান দিশ উপন্যাসিকে পোহৰাই তোলাৰ প্ৰয়াস কৰিছে।

### অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

দেবেন্দ্ৰনাথ আচাৰ্যৰ অন্য যুগ অন্য পুৰুষ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত গ্ৰাম্য জনজীৱন শীৰ্ষক বিষয়টো আলোচনা কৰিবলৈ যাওঁতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

### বিষয়ৰ আলোচনা :

দেবেন্দ্ৰনাথ আচাৰ্যৰ সাহিত্যিক জীৱনৰ প্ৰথম সৃষ্টি হৈছে ‘অন্য যুগ অন্য পুৰুষ’ উপন্যাসখন। কোনো অধ্যয়ন বিভাজন নথকা উপন্যাসখনৰ মাজেৰে উপন্যাসিকে অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ এছোৱা সময়ৰ বিভিন্ন দিশ দেখুৱাবলৈ যত্ন কৰিছে। উপন্যাসখনত পৰম্পৰাগত কাহিনীৰ বিপৰীতে আধুনিক উপন্যাসৰ কৌশলবীতি লক্ষ্য কৰা যায়, সেয়া লাগিলে বিষয়বস্তুৰ অসংলগ্নতাই হওঁক বা চৰিত্ৰৰ মানসিক প্ৰক্ৰিয়াই হওঁক যিয়ে উপন্যাসখনক অনন্য মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ পৰা হেৰাই যাবলৈ ধৰা কিছুমান দিশ উপন্যাসিকে অংকন কৰিছে। তাৰ উপৰি উপন্যাসখনৰ মাজেৰে ঐতিহাসিক ঘটনাসমূহেও প্ৰকাশ লাভ কৰিছে।

উপন্যাসখনৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ বেং বেলেষ্টৰৰ মুখেদি উপন্যাসিকে উপন্যাসৰ কাহিনী বৰ্ণনা কৰিছে। বেং বেলেষ্টৰ যিয়ে গোটেই দিনটো বৰশী বাই কটায়। বৰশী বাবৰ কাৰণে প্ৰয়োজন হোৱা বেং ধৰাত পাকৈত কাৰণে সকলোৱে তেওঁক বেং বেলেষ্টৰ নামেৰে সম্বোধন কৰে। দিনৰ দিনটো গাঁৱে-ভূঞা ঘূৰি ফুৰি পুখুৰীবোৰত মাছ ধৰি থাকে আৰু ‘য’তে ৰাতি ত’তে কাতি’ৰ দৰে তেওঁ যিখন গাঁৱতে বৰশী বাই থাকে সেই খন গাঁৱৰে কাৰোবাৰ ঘৰত আশ্ৰয় গ্ৰহণ কৰে। গাঁৱৰ লোকসকলেও তেওঁ আশ্ৰয় গ্ৰহণ

কৰিলে বেয়া নাপায়, কিয়নো বেং বেলেষ্টৰ আছিল কাহিনী কোৱাত পাকৈত ব্যক্তি। যিয়ে সৰু-সৰু লৰা-ছোৱালীবোৰক গোট খোৱাই সেই সময়ৰ জনপ্ৰিয় ঘটনাৰাজি মনোগ্ৰাহী হোৱাকৈ ব্যক্ত কৰে। বেং বেলেষ্টই ল’ৰা-ছোৱালীবোৰৰ আগত অসম দেশৰ বিভিন্ন ঘটনাৰ কাহিনী সিহঁতৰ আগত বস লগাকৈ বৰ্ণনা কৰে। ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীয়ে ভাৰতবৰ্ষলৈ বেহা-বেপাৰ কৰাৰ নিমিত্তে আহি কিদৰে গোটেই দেশখনক শাসন কৰি নিজৰ অধীনলৈ নিছিল তাৰ বৰ্ণনাও বেং বেলেষ্টই ল’ৰা-ছোৱালীবোৰক বৰ্ণনা কৰিছে। যাতায়ত আৰু যোগাযোগৰ সূচল সুবিধা নথকাৰ সময়তে ব্ৰিটিচ বিষয়াসকলে ঘন জংঘল, বন্য জীৱ-জন্তু বিভিন্ন বিপদ নেওচি দেশখন শাসন কৰিবলৈ আগবাঢ়ি আহিছিল। মহাৰাণী ভিক্টোৰিয়াই ব্ৰিটিচ ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীৰ জৰিয়তে আমাৰ দেশখন শাসন কৰি বেহা-বেপাৰৰ চলেৰে কিদৰে দেশৰ সম্পদসমূহ লুটি আমাৰ দেশখনক দাল-দৰিদ্ৰত পৰিণত কৰিছিল তাৰ আভাসো বেলেষ্টৰৰ মুখেৰে ব্যক্ত হৈছে। উপন্যাসখনৰ মাজেৰে ভাৰতবৰ্ষৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ সময়ছোৱাত মহাত্মা গান্ধীয়ে ব্ৰিটিচৰ বিৰুদ্ধে লোৱা ভিন্ন পদক্ষেপৰ কথাও প্ৰকাশ পাইছে।

ব্ৰিটিচসকল আমাৰ দেশলৈ অহাৰ পাছতে তেওঁলোকৰ বেহা-বেপাৰৰ সুবিধাৰ্থে যাতায়ত ব্যৱস্থাৰো সূচল কৰি তুলিছিল। ৰেল গাড়ী, মটৰ গাড়ী তেওঁলোকে নিজৰ সুবিধাৰ কাৰণে আনিছিল। এসময়ত ঘন জংঘল আৰু বন্য জীৱ-জন্তুৰে ভৰি থকা আমাৰ দেশখনত তেওঁলোকে বেহা-বেপাৰৰ কাৰণে যাতায়ত ব্যৱস্থাৰ উন্নয়ন সাধন কৰিছিল।

দেবেন্দ্ৰনাথ আচাৰ্যৰ ‘অন্য যুগ অন্য পুৰুষ’ উপন্যাসখন স্বাধীনতাৰ প্ৰাক কালৰ বিভিন্ন দিশৰ সমাহাৰেৰে ৰচিত এখন উপন্যাস। স্বাধীনতাৰ প্ৰাক মুহূৰ্তৰ অসমৰ যি সামাজিক পটভূমি সেয়া ব্ৰিটিচৰ আগমণৰ লগে-লগে পৰিৱৰ্তন হ’বলৈ ধৰিলে। ব্ৰিটিচৰ আগমণৰ লগে-লগে সমাজ জীৱনলৈ অহা ভিন্ন পৰিৱৰ্তন উপন্যাসখনৰ মাজেৰে চিত্ৰিত হৈছে। তাৰ উপৰি এখন গাঁৱলীয়া সমাজৰ নিখুঁত ছবি উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে। দেবেন্দ্ৰনাথ আচাৰ্যৰ ‘অন্য যুগ অন্য পুৰুষ’ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে যে গ্ৰাম্য জীৱনৰ ছবি নিখুঁতভাৱে চিত্ৰিত হৈছে সেই সম্পৰ্কে হোমেন বৰগোহাঞিয়েও মত প্ৰকাশ কৰিছে এনেদৰে-

“শ্ৰী আচাৰ্য্যই অন্য যুগ অন্য পুৰুষ নামৰ এই উপন্যাসত আমাৰ হেৰাই যাব ধৰা গাঁৱলীয়া

সমাজ এখনৰ এটা নিখঁত বাস্তৱ চিত্ৰ বিষয়োপযোগী মনোগ্ৰাহী ভাষাৰে বৰ্ণনা কৰিছে। বৰ্তমান কালত যি দ্ৰুত গতিৰে urbanisation হ'ব ধৰিছে, অৰ্থাৎ চহৰীয়া পৰিৱেশৰ দ্ৰুত সম্প্ৰসাৰণ ঘটিব ধৰিছে, তাৰ কোবাল সোঁতত আমাৰ গাঁৱলীয়া জীৱন-ধাৰা তাৰ হাজাৰ বছৰৰ স্মৃতি, স্বপ্ন পৰম্পৰা আৰু বৈশিষ্ট্যৰে সৈতে সমুলি নিশ্চিহ্ন হ'বৰ উপক্ৰম হৈছে। এই উপন্যাসৰ বুকুত তেনে এটি জীৱনৰ ছবি চিৰকাললৈ বন্ধা হৈ ৰ'ল। আমাৰ হেৰাই যোৱা এটা যুগ আৰু এটা জীৱন-ধাৰাৰ সাক্ষী হৈ এই ছবিয়ে বহুতৰ মনতে কৰুণ নষ্টাল্জিয়াবোধৰ সঞ্চাৰ কৰিব।” (আচাৰ্য, পাতনি)

গ্রাম্য সমাজৰ লোকসকলৰ মাজত সাধাৰণতে এক আত্মিক সম্বন্ধ গঢ় লৈ উঠে যাৰ বাবে ইজনে আনজনক নিজৰ পৰিয়ালৰ লোকৰ দৰে গণ্য কৰে। ইয়াৰ উপৰি গাঁৱৰ যিকোনো উৎসৱ অনুষ্ঠান, চুবুৰীয়াৰ বিপদ-আপদ আদিবোৰত ইজনে আনজনক সহায় কৰা আদিয়ে গাঁৱৰ লোকসকলৰ মাজত পাৰস্পৰিক সম্পৰ্ক গভীৰ কৰি তোলে। উপন্যাসখনৰ মাজেৰেও তেনে কিছুমান দিশৰ প্ৰকাশ ঘটিছে যিয়ে গ্রাম্য সমাজখনৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলন ঘটাত সহায় কৰিছে। গ্রাম্য সমাজত আলহীক ভগৱানৰ দৰে গণ্য কৰে, সেয়ে কোনো লোকৰ আগমণ ঘটিলে আথে-বেথে বহুৱাই সাদৰ সন্তোষ কৰে। উপন্যাসখনৰ প্ৰধান নায়ক বেং বেলেষ্টৰ, যিয়ে গোটেই দিনটো খাল, ডোং আদিত বৰশী বাই সময় কটায়। তেওঁ ইখনৰ পাছত সিখন গাঁৱত বৰশী বাই ফুৰে আৰু য'তে ৰাতি ত'তে কাতিৰ দৰে যিখন ঠাইতে সন্ধিয়াই পাই সেই ঠাইৰে কোনো লোকৰ ঘৰত আশ্ৰয় গ্ৰহণ কৰে। গাঁৱৰ লোকসকলেও বেং বেলেষ্টৰ অতিথি হ'লে বেয়া নাপাইছিল, কাৰণ বেং বেলেষ্টৰই বৰশী বাই পোৱা মাছ গৃহস্থক যোগান ধৰাৰ লগতে সৰু ল'ৰা-ছোৱালীবোৰক লগত লৈ সাধু ক'বলৈ আৰম্ভ কৰে। বেং বেলেষ্টৰই সাধুকথাৰ লগতে গাঁওখনত সময়ে সময়ে দেখি অহা পৰিৱৰ্তনবোৰো সিহঁতৰ আগত বস লগাকৈ ব্যক্ত কৰিছিল।

বেং বেলেষ্টৰ চৰিত্ৰৰ যোগেদি উপন্যাসিকে অসমীয়া সমাজ জীৱনলৈ অহা কিছুমান পৰিৱৰ্তন উদঙাই দেখুৱাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। অসমীয়া সমাজ জীৱনত কানি প্ৰচলনে গভীৰভাৱে প্ৰভাৱ পেলাইছিল। কানিৰ প্ৰচলনৰ লগে-লগে মানুহৰ জীৱন ধাৰাত ঋণাত্মক প্ৰভাৱ পৰিছিল।

কানিয়ে কিদৰে প্ৰজন্মৰ পৰা প্ৰজন্মলৈ ধ্বংসৰ গৰাহত পেলাব পাৰে সেই কথাও উপন্যাসখনত বৰ্ণিত হৈছে। কানি বৰবিহৰ পৰা কিদৰে নতুন প্ৰজন্মক আঁতৰাই ৰাখিব পাৰি তাৰ বাবেও বেং বেলেষ্টৰই সৰু-সৰু ল'ৰাবোৰক উপদেশ দিছে যাতে কানিৰ পৰা আঁতৰত থাকে। উপন্যাসখনত সেই কথা প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে-

“বিড়িচুৰটবোৰ নাখাবি বেলেষ্টৰে প্ৰায়েই কয়, মলা-ধপাতো নেখাবি। এইবোৰ এবাৰ খাবলৈ ল'লে আৰু এৰিব নোৱাৰ, নিচা বহি যাব। বিড়ি চুৰটবোৰৰ পাছফালে আকৌ কোম্পানীয়ে অকণমান কানি লগাই দিয়ে, সেই কাৰণে ৰাগী বহে আৰু মানুহবিলাকে হোৰাহোৰে কিনি খায়। নহ'লে কোম্পানী কেনেকৈ চলিব?” (আচাৰ্য, ৩)

ব্ৰিটিচ ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীৰ আগমণে অসমৰ গ্ৰাম্য সমাজ জীৱনলৈও অভূতপূৰ্ব পৰিৱৰ্তন কঢ়িয়াই আনিলে। ৰাষ্টা-ঘাটৰ পৰিৱৰ্তন, যান-বাহনৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগতে জীৱন ধাৰাতো সেই পৰিৱৰ্তন ফুটি উঠিলে। বেহা-বেপাৰৰ উদ্দেশ্যে অহা ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীয়ে পৰৱৰ্তী সময়ত সমগ্ৰ দেশকে শাসন কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। শাসনৰ সমান্তৰালভাৱে তেওঁলোকে দেশৰ জনতাক শোষণ কৰাৰ লগতে কিদৰে দেশৰ মূল্যবান সম্পদ লুটি-পুটি দেশখন উদং কৰিছিল তাৰ উদাহৰণো উপন্যাসখনত প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে-

“ইন্ডিন্দিং কোম্পানীয়ে জাহাজবোৰত ভৰাই সোণ-ৰূপৰ বাহিৰেও আৰু বহুতো বস্তু নিয়ে- ভাল ভাল কাঠ, পুৰণি পুথি-পাঁজি, হাতেবোৱা মিহি পাটৰ কাপোৰ, চাহপাত, তেল, খোৱাবস্তু বেহানি এইবোৰ এইদৰে চলাই মেলি সৰকাই নি আমাৰ দেশখন লাওলোৱা কৰিলে।” (আচাৰ্য, ৪)

ব্ৰিটিচসকল অসমলৈ অহাৰ পাছতে চাহৰ আৱিষ্কাৰ হ'ল যদিও প্ৰথমৰস্থাত অসমীয়া মানুহে চাহৰ প্ৰতি আকৰ্ষিত হোৱা নাছিল। তেনে সময়ত ব্ৰিটিচসকলেও চাহৰ চাহিদা বৃদ্ধিৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি তেওঁলোকে সাধাৰণ গাঁৱলীয়া লোকসকলক বিনা পইচাৰে চাহ সেৱন কৰাৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল। যাৰ ফলস্বৰূপে চাহৰ সোৱাদ লোৱাৰ পাছৰে পৰা সেই লোকসকলৰ চাহৰ প্ৰতি আকৰ্ষণ বৃদ্ধি হ'বলৈ ধৰে আৰু ই দৈনন্দিন পৰম্পৰাৰ অংশীদাৰ হ'বলৈ আৰম্ভ কৰিলে। বৰ্তমানেও অসমৰ গাঁৱে-ভূঞা চাহৰ সমাদৰ কোনো গুনে কম হোৱা নাই। অতিথিক অভাগত হিচাপে চাহৰ গুৰুত্ব অপৰিসীম। উপন্যাসখনত চাহৰ জনপ্ৰিয়তাৰ

কাৰণে ব্ৰিটিচসকলে কেনেধৰণৰ ব্যৱস্থা গ্ৰহণ কৰিছিল তাৰ উমান পোৱা যায়।

“আমাৰ অসমীয়া মানুহবিলাকে আকৌ প্ৰথমতে চাহপানী কৰি খাব নেজানিছিল। চাহবসকলে জানিবা সকলোকে বুজাই বঢ়াই চাহপানীত শৰণ দিয়ালে। দেৱানৰ দিনতে যোৰহাটৰ চক বজাৰত চাহৰ দোকান বহিল- দোকান মানে হাটৰুৱা বাটৰুৱাক এনেয়ে চাহপানী খুউৱা খোলাহে, পইচা-পাতি দিব নালাগে। কুস্পানীৰ দোকানদাৰে বাটেদি যোৱা মানুহক এনেয়ে চাহপানী এমলা খাই যাবলৈ মাতে।” (আচাৰ্য্য, ১৮)

অসমীয়া সমাজ জীৱনত প্ৰাচীন কালৰে পৰা শংকৰদেৱৰ ভক্তিধৰ্মই প্ৰভাৱিত কৰি আহিছে। ভক্তিধৰ্মৰ প্ৰধান কেন্দ্ৰ হিচাপে শংকৰদেৱে নামঘৰ আৰু সত্ৰসমূহ নিৰ্মাণ কৰাৰ লগতে ভাওনাক নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰচাৰৰ অন্যতম মাধ্যম হিচাপে গণ্য কৰিছিল। যাৰফলস্বৰূপে অসমীয়া সমাজ জীৱনত বিভিন্ন মহাপুৰুষীয়া উৎসৱ বা তিথিত ভাওনা প্ৰদৰ্শন হৈ আহিছে। দেবেশ্বৰনাথ আচাৰ্য্যৰ ‘অন্য যুগ অন্য পুৰুষ’ উপন্যাসতো শিৱৰাত্ৰিৰ উপলক্ষ্যে গৰখীয়াদ’ল নামঘৰত ভাওনা অনুষ্ঠিত কৰাৰ কথা প্ৰকাশ পাইছে। ভাওনাৰ প্ৰাৰম্ভতে মহাপুৰুষৰ সৃষ্টি গায়ন-বায়ন আৰু সূত্ৰধাৰৰ নৃত্যগীত পৰিৱেশন কৰা হয়। ইয়াৰ পাছতে দৰা, শংখ, কাঁহ বাজি উঠে আৰু ভগৱানৰ প্ৰৱেশ ঘটে। শংকৰদেৱৰ মৃত্যুৰ পাছত সমাজখনত বিশৃংখলতাই দেখা দিবলৈ ধৰে। সমাজখন কেইবাটাও খেলত বিভক্ত হৈ ভক্তিৰ বাঞ্ছোন টিলা হৈ পৰে। উপন্যাসখনতো সমাজখন বিভক্ত হোৱাৰ কথা বেলেপ্তৰৰ কথাৰ মাজেৰে প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে-

“আজিকালি নামঘৰত ভাওনাইনে থ্ৰীষ্ট্ৰেই ধৰিবই নোৱাৰি। সা-সবাহ নাই, ৰাইজৰ মনত ভকতিৰ ভাব নাই-মাথো মানুহক দেখুৱাবলৈ বাহিৰে ৰং চং ভিতৰে কোৱাভাতুৰি; ৰাইজখনো খেলে খেলে ভাগ হ’ল-আগৰ হাবিয়ালৰ দ’লনামঘৰ এতিয়া সাতখেলীয়া হ’ল-তাত আকৌ কিহৰ ভাওনাটো?” (আচাৰ্য্য, ১৫)

অধিক ধন ঘটাৰ লালসাত পৰি পুনাইৰ দৰে গুৱালে ৰাইজক ফাকি দি কিদৰে ধন ঘটি আছিল আৰু মিছাক সঁচা কৰাৰ অপৰাধত কিদৰে সমস্ত হেৰুৱাবলগীয়া হয় সেই কথা উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে। পুনাই গুৱালে গাখীৰত পানী ঢালি কিদৰে ক’লী গাইজনীৰ গাখীৰ পনীয়া

বুলি ৰাইজক গাখীৰ খুৱাই আছিল তাৰ সমিধান হিচাপে গাঁৱৰ ৰাইজেও পৰীক্ষা কৰিবলৈ বুলি পুনাই গুৱালৰ ঘৰত সকলোৰে উপস্থিত হৈছিল। যদিও পুনাইৰ কাণ্ডক কোনেও ধৰা পেলাব পৰা নাছিল অৱশ্যে ইয়াৰ কেইদিন মানৰ পাছত যি ঘটনা ঘটিল তাৰ বাবে পুনাইয়ে নিজেই ৰাইজক সকলো কথা ক’বলৈ বাধ্য হৈছিল। উপন্যাসখনত সেই কথা আছে এনেদৰে-

“কেইদিনমানৰপিছত যেনিবা ক’লী গাইজনী পোৱালিৰে সৈতে গোহালিতে মৰিল; তাৰ পিছত পুনাইৰ গোহালিত চবকা উঠি এটা এটাকৈ গোটেইসোপা গৰু-গাই মৰিল; লগে-লগে বৰটো পুতেকৰ যোৱাথোৱা নৰিয়া হ’লত বৰপ্ৰভুৰে সৈতে সকলো ৰাইজ গোটাই বৰনামঘৰতে পুনাই দীঘল দি পৰিলহি। বোলে কৰীয়াত এবকটু পানী ভৰাই থৈ গাখীৰ খীৰাই ৰাইজখনৰ চকুক ঠগিলোঁ, পিছে সবাবো ওপৰত থকাজনক নোৱাৰিলোঁ। মোক ক্ষমা কৰাইক এ-ল’ৰাটোৰ ধাতু যায় যায় অৱস্থা।” (আচাৰ্য্য, ২১)

উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অসমীয়া বাপতি সাহোন বহাগ বিহু আৰু গৰু বিহু উদযাপনৰ কথাও প্ৰকাশ পাইছে। গৰু বিহুৰ দিনা ৰাতি পুৱাতে গোহালি ঘৰ চাফা কৰি গৰুক মাহ হালধিৰে নোৱাই নদী বা পুখুৰীত সকলোৱে একেলগে গা ধুৱাবলৈ বুলি নিয়ম। গা ধুওৱাৰ পাছতে লাও, বেঙেনা, কেৰেলা, হালধী, ঠেকেৰাৰে সীয়া বাঁহৰ চাট হাতত লৈ গৰুৰ গাত চাটবোৰ মৰাৰ পৰম্পৰা প্ৰাচীন কালৰে পৰা অসমীয়া লোকসকলৰ মাজত প্ৰচলিত আছে। ইয়াৰ সমান্তৰালভাৱে চাটৰ লাও, বেঙেনা গৰুক মাৰোঁতে গৃহস্থই উচ্চাৰণ কৰি গায় ‘লাও খা বেঙেনা খা বছৰে বছৰে বাঢ়ি যা, মাৰ সৰু বাপেৰ সৰু তই হ’বি বৰ গৰু’। বেং বেলেপ্তইও গৰু বিহুৰ পৰম্পৰাৰ বিষয়ে ল’ৰাবোৰৰ আগত ব্যক্ত কৰিছে এনেদৰে-

“আগৰ দিনত চ’ত সংক্ৰান্তিৰ দিনা ৰাইজৰ গাত গোসাঁই নাথাকে, দোকমোকালিতে উঠি মাছৰ বাকলিৰে গৰুৰ ভৰি ধুৱায়, দুৱাৰমুখত পকা ওটেঙা আঁৰে, পকা ওঁৰ গোন্ধে হাইজা মহামাৰী খেদায়। গা-পা ধুই নিয়ম মতে গোসাঁইঘৰত গুৰুসেৱাফেৰি সমাপন কৰিয়েই শুদা পেটতে বৰ্হমথুৰি, আমৰ মল, কঁঠালৰ মুচি আৰু কেঁচা মচুৰ মাহ খায়। পগোৱা গুৰত থেৰেজু টেঙা সিঁজাই খায়। বৰচ’ৰাত কড়িৰ ঢাল পাতে। গৰু বিহুৰ দিনা কড়ি এচাল খেলিলে বোলে জনমে জনমে শত্ৰু নাশ হয়। ডেকাডগুৱা দলে

ছচৰিৰ দল পাতে, বুঢ়া-থেৰাই নামঘৰত নাম একেযাৰ লৈ জনা-শুনা পণ্ডিতৰ ঘৰত তামোল-পাণ এটি দি বৰ্ষচক্ৰ গণনা কৰায়; ঘৰত বজ্ৰপাত নপৰিবলৈ কেঁচা নাহৰ পাতত চণ্ডী চক্ৰী বাকৰণি মন্ত্ৰ লিখি চালে বাৰে খুচী থয়;

নহ'লে হিলদ'ল ভাঙি মাকৰ ঘৰত বিহু খাবলৈ অহা জটায়ুৰ জীয়াৰী গৰুড়ৰ বোৱাৰী বৰদৈচিলাই ঘৰ-বাৰী মৰিমূৰ কৰিব নহয়। তাৰ আগজননী বুলিয়েই মাঘৰ বিহুৰ মেজিৰ দিনাও বাৰীয়ে ভঁৰালে ঘৰে মাঘী বান্ধে।” (আচাৰ্য্য, ৫১)

ইয়াৰ উপৰি উপন্যাসখনত এনে বহু লোকবিশ্বাসৰ অৱতৰণ কৰা হৈছে যিসমূহ বিহুৰ সৈতে সম্পৃক্ত হৈ আছে। তেনে কিছুমান লোকবিশ্বাসৰ ভিতৰত-“চ'ত সংক্ৰান্তিৰ দিনা পাতত দিয়া এলাইজাবৰী শুঙে-তেতিয়া বোলে এঁৱা বেমাৰ ভাল হয়। সাত তিতা পাতত দি খায়-বছৰটোলৈ খৰ-খজুৱতিয়ে গা কৰিব নোৱাৰে। গধূলি মাথিয়াতী আৰু তৰাপাতেৰেগোহালি চোতাল আৰু পদূলিত যাগ দিয়ে-দীঘলতি দীঘল পাতেৰে জাত জাত মাখি মাৰি গৰু খেদাই আনি গোহালিয় সুমায়হি। গৰুৰ ডিঙিত ঘৰত তৰাৰে পকোৱা নতুন পঘা লগায়-নহ'লে গৰুবোৰ বিহুচৰা হয়। বাতি সোনকালে খাই বৈ ঘৰে-ঘৰোৱাহে জেতুকা লয়। জেতুকাৰ হেঙুলীয়া বং ধৰিবলৈ থেৰেজু টেঙা, ডালিমৰ পাত আৰু পাণেৰে সৈতে বাটে। জেতুকা বোলে মহিষাসুৰৰ তেজ; গোসাঁনীয়ে মহিষাসুৰক মাৰি তেজবোৰ পিথপীত ছটিয়াই থৈ গ'ল; পিছে অসুৰৰ তেজ মাটিয়ে শুহিব নোৱাৰে; সেইবাবে তাতে

জেতুকা গছ গজিল। জেতুকা ল'লে মানুহৰ তেজ তিতা হয়-সাপে নোখোঁটে। হাতে-ভৰিয়ে জেতুকাৰ বং লগাই ল'লে বোলে বছৰটোলৈ আইসকল আৰু ছালৰ বেমাৰে লাই নাপায়।” (আচাৰ্য্য, ৫১) আধুনিকতাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত অসমীয়া পৰম্পৰাৰ বহু পৰিৱৰ্তন হৈছে। উপন্যাসখনতো তেনে কিছুমান পৰিৱৰ্তন দেখুওৱা হৈছে। বিহুৰ পৰম্পৰাৰ লগত জড়িত কড়ি খেল অনুষ্ঠিত হওঁতে বেলেপ্তই সকলো নিৰীক্ষণ কৰি যি মন্তব্য দিছে তাৰ মাজেৰে পৰিৱৰ্তনৰ কথা প্ৰকাশ পাইছে। বেলেপ্তই আদহীয়া কেইজনৰ কড়ি খেল চাই কৈছে এনেদৰে-

“তোমালোকে কড়িকে খেলিছানে কিবা গুপ্ত গুৰগুৰীয়া মেলকে পাতিছাহঁক নেদেখিলে ধৰিবই নোৱাৰি। কড়িখেলনো ইমান হৰি নিজঞ্জাল হয়নে?”

গোটেই দেখোন কাঁহপৰি জীণ যোৱা। ডেকামানুহ কড়িৰ ঢালত বহিছা অলপ চিঞৰ-বাখৰ বৌজাল বৌজাল কৰিবা, তেহে জমিব। ইমান নিমাও মাওকৈ কড়ি খেলাতকৈ তামোল ধপাত খাই মেল মাৰি বহি থকাই ভাল।” (আচাৰ্য্য, ৫২)

উপন্যাসখনত বহাগ বিহুত ছচৰি গোৱাৰ ক্ষেত্ৰত হোৱা পৰিৱৰ্তনসমূহো বেং বেলেপ্তই লক্ষ্য কৰিছে। বেলেপ্তৰ মতে, আগৰ দিনত বহাগ বিহুত ছচৰি গাবলৈ যাওঁতে ছচৰি দলে ঘোষা ধৰি গৃহস্থক আৰ্শীবাদ দি বিহু গাবলৈ আৰম্ভ কৰে কিন্তু বৰ্তমানে ছচৰিৰ নামত কেৱল বহুৱালিহে কৰা যেন অনুভৱ হৈছে। তেওঁৰ মতে-“এই মতামুৱাখনে গাইমুৱা সাজি শিখণ্ডী হৈ ভাংখোৱা বান্দৰৰ দৰে যিহে ধেই ধেই নাচোন ধৰিছে-মোৰ মনটোত বিষাদহে লাগিল। গায়নবোৰকনো কি চাবা হু লংপেন-ঠেঙা পিন্ধি ছচৰি গাবলৈ আহিছে-কেলেই আমাৰ জাতটোৰ সাজপাৰ নাই? মৰামুৱাকেইটাই ছচৰি গাইছেহি মুখত হাঁহি এটা নাই, গাত ডেকাতেজটো নায়েই জেতুকাৰ বং অকণো তহঁতে দেখা নাই।” (আচাৰ্য্য, ৫২-৫৩) তাৰ উপৰি বৰ্তমান সময়ত ছচৰি কিদৰে ব্যৱসায়লৈ ৰূপান্তৰ হৈছে সেই কথাও প্ৰতিপন্ন হৈছে। আগৰ দিনত গৃহস্থই ছচৰি দলৰ পদধূলা পাবৰ কাৰণে অধিৰ আগ্ৰহেৰে বাট চাই আছিল। ছচৰি দলটিকো যথাসাধ্য সা-সন্মান প্ৰদান কৰি বছৰটো ভালে যাবলৈ বাঁটা আগবঢ়ায় আৰ্শীবাদ লয়। কিন্তু বৰ্তমানে ছচৰি গোৱাতকৈ শৰাইৰ বৰঙণিৰ ফালেহে যেন সকলোৰে চকু। বং ধেমালিবোৰো যেন এতিয়া ক্ৰমান্বয়ে নাইকিয়া হৈ পৰিছে।

‘অন্য যুগ অন্য পুৰুষ’ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে পমুৱা মুছলমানসকলৰ অসমলৈ আগমণৰ লগতে বসতি বিস্তাৰৰ কথাও জনা যায়। তেওঁলোকৰ বহুতেই আহোম আৰু মোগলৰ যুদ্ধৰ সময়তে আমাৰ দেশত থিতাপি লৈছিলহি। অসমৰ জলবায়ুৰ বিষয়ে জ্ঞান আহৰণ কৰি নিজৰ পেটৰ ভাতমুঠি মুকলি কৰোৱাৰ উপায় গণি প্ৰথমে নদী কাষৰীয়া সাৰুৱা মাটিৰ ঠাইবোৰতে বসতি আৰম্ভ কৰিবলৈ ধৰিলে। উপন্যাসখনত অসম দেশৰ কৃষি উপযোগী ভূমিৰ বৰ্ণনা প্ৰসঙ্গত বৰ্ণনা কৰিছে এনেদৰে -

“এই মুলুকৰ মাটি সাৰুৱা-আঁচ মাৰিলেই ফচল ফলে; হেৰা-পানীও ভাল। ৰ'দে-বৰষুণে সমান। অকণমান হাত জোকাৰিলেই খাবলৈ এমুঠিৰ অভাৱ নহয়। এস্তাৰ মাটি আবাদী পৰি আছে, খেতি-খোলা কৰিবলৈ মানুহ-দুহু

কম। মিছাতে পৰৰ গোলামী কৰি অঘৰী মলুৱা বান্দৰৰ দৰে আজি অ'ত কালি ত'ত ঘূৰি ফুৰাৰ কি দৰ্কাৰ? পৰৰ মুলুক দখল কৰি জাহাপনা ধনী হ'ব, আমাৰনো কি?" (আচাৰ্য্য, ৯৪)

উপন্যাসখনৰ মাজেৰে হিন্দু আৰু মুছলমানৰ সম্প্ৰীতিৰ ছবি এখনও সুন্দৰভাৱে প্ৰকাশ পাইছে। উপন্যাসখনৰ এটা প্ৰধান চৰিত্ৰ হৈছে ফুলু দৰ্জি; যাৰ উপৰিপুৰুষ পশ্চিমীয়া দেশৰ পৰা যুদ্ধৰ বিভীষিকাময় পৰিস্থিতিৰ মাজতে অসমত উপস্থিত হৈছিল। এসময়ত নদীৰ পাৰত বাস কৰা সেই লোকসকলে সময়ৰ লগে-লগে খিলঞ্জীয়া মানুহৰ বসতি অঞ্চলতো থিতাপি ল'বলৈ আৰম্ভ কৰে। সময়ৰ লগে-লগে এটা জনগোষ্ঠীৰ সংস্কৃতি আনটো জনগোষ্ঠীয়ে ইচ্ছাকৃত ভাৱেই হওক বা নজনাকৈয়ে গ্ৰহণ কৰিবলৈ ধৰিলে, যাৰ ফলস্বৰূপে তেওঁলোকৰ মাজত এক সমন্বয়ৰ ভাব জাগি উঠে। উপন্যাসখনত হিন্দু-মুছলমানৰ সম্প্ৰীতিৰ কথা প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে-

“বাহিৰৰ দেশৰ মানুহ এন্তৰ আহিছে-আহি অসম দেশত জীণ গৈছে; উভতি যাবলগীয়া হোৱা নাই। গতিকে এই ন-পমুৱা মুছলমান মানুহবোৰে ব্ৰহ্মপুত্ৰ পাৰ এৰি লাহে লাহে ভিতৰ সোমাই আহিল। অসমীয়া মাত-কথা, আচাৰ-ব্যৱহাৰ শিকিলে, ধৰ্মটো বেলেগ থাকিল-কিন্তু মানুহবোৰ নামে-কামে একেবাৰে অসমীয়া হ'ল। আমাৰ ধৃতি-নীতিও বহুতে মানিলে। সমিলমিল ভাবত ওচৰাউচৰিকৈ নামঘৰ মছজিদ হ'ল। এইদৰে অসমীয়া ৰাইজৰ মাজত এই পমুৱা মানুহবোৰ জীণ গ'ল। ধৰ্মৰ কথাত সিহঁত সিহঁতৰ মতে চলে, আমি আমাৰ মতে চলো; বাকীবোৰ কথাত আমি

সকলোৱে একেমতে চলো।” (আচাৰ্য্য, ৯৪-৯৫)

উপন্যাসখনত ফুলু দৰ্জিৰ উপৰিপুৰুষ অসমলৈ আহি কিদৰে কৃষিকৰ্মত অভ্যস্ত হৈ পৰে সেই কথা প্ৰতিফলিত হৈছে। সময়ৰ লগে-লগে আহোম সাম্ৰাজ্যৰ পতন ঘটে আৰু ব্ৰিটিচসকলে শাসনভাৰ গ্ৰহণ কৰে। তেনে সময়ত ফুলু দৰ্জিৰ দৰে লোকেও দেউতাকৰ কৃষিকৰ্মত মনোযোগ নিদি কামৰ সন্ধানত ঘৰৰ পৰা ওলাই গৈ নগাঁৱত উপস্থিত হৈছিল। ভাগ্যৰ পাকচক্ৰত পৰি ফুলুৱে কিদৰে বৰঠাকুৰৰ ঘৰৰ লোকেচৰৰ সান্নিধ্য লাভ কৰি তেওঁলোকৰ প্ৰিয়পাত্ৰ হৈ পৰিছিল উপন্যাসখনৰ পৰা জানিব পাৰি। ইয়াৰ মাজেৰেও হিন্দু আৰু মুছলমানৰ মাজৰ সম্প্ৰীতিৰ ভাৱ জাগি উঠিছে।

উপন্যাসখনত অসমীয়া সমাজখনক প্ৰতিফলন ঘটোৱা বহুকেইটা দিশ প্ৰতিফলিত হৈছে যিসমূহৰ মাজেৰে গ্ৰাম্য সমাজখনৰ বিষয়ে পাঠকে জ্ঞান লাভ কৰিব পাৰিব।

#### উপসংহাৰ :

ঐতিহাসিক তথ্যৰে সমৃদ্ধ দেবেন্দ্ৰনাথ আচাৰ্য্যৰ ‘অন্য যুগ অন্য পুৰুষ’ উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অসমীয়া গ্ৰাম্য সমাজখনৰ বহুখিনি দিশ উপন্যাসিকে প্ৰতিফলন ঘটাইছে। সমাজ পৰিৱৰ্তনশীল। সমাজ পৰিৱৰ্তনত বহু কাৰকে সহায় কৰে। উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত অনুযায়ী গ্ৰাম্য সমাজখনৰ বহু পৰিৱৰ্তন সাধিত হৈছে। জীৱন-ধাৰণৰ পদ্ধতি, পৰিয়াল ব্যৱস্থা, উৎসৱ অনুষ্ঠান, বিবাহ পদ্ধতি আদি সকলোতে পৰিৱৰ্তনে দেখা দিছে। উপন্যাসখনৰ মাজেৰে অসমীয়া গ্ৰাম্য সমাজখনৰ পৰা হেৰাই যাব ধৰা কিছুমান দিশ প্ৰতিফলন ঘটোৱাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। □

#### প্ৰসঙ্গ সূত্ৰ :

আচাৰ্য্য, দেবেন্দ্ৰনাথ। অন্য যুগ অন্য পুৰুষ। গুৱাহাটী : বনলতা, ২০১৬। পৃ. পাতনি

- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ৩
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ৪
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ১৮
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ১৫
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ২১
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ৫১
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ৫১
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ৫২
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ৫২-৫৩
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ৯৪
- উল্লিখিত গ্ৰন্থ পৃ. ৯৪-৯৫

#### সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- আচাৰ্য্য, দেবেন্দ্ৰনাথ। অন্য যুগ অন্য পুৰুষ। গুৱাহাটী : বনলতা, ২০১৬। মুদ্ৰিত।  
 কটকী, প্ৰফুল্ল। স্বৰাজ্যোত্তৰ অসমীয়া উপন্যাস সমীক্ষা। গুৱাহাটী : বীণা লাইব্ৰেৰী, ২০০৯। মুদ্ৰিত।  
 ঠাকুৰ, নগেন। সম্পা। এশ বছৰ অসমীয়া উপন্যাস। গুৱাহাটী : জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০১৮। মুদ্ৰিত।  
 শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ। অসমীয়া উপন্যাসৰ গতিধাৰা। গুৱাহাটী : সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০১৩। মুদ্ৰিত।

## ভাৰতবৰ্ষত কিম্বৰ আখৰা

সংক্ষিপ্ত সাৰ :



ড° মিতালী কুমাৰী

বেচিত্ৰ্যৰ বাবে বিখ্যাত ভাৰতবৰ্ষই আদিৰ পৰাই ধৰ্ম, সংস্কৃতি, সাহিত্য তথা কলাৰ ক্ষেত্ৰখনত সমাদৃত আসন লাভ কৰি আহিছে। ভাৰতীয় সভ্যতা সনাতন ধৰ্মৰ ভেঁটিত প্ৰতিষ্ঠিত। এই ভাৰতীয় সভ্যতা-সংস্কৃতিৰ এক অন্যতম নিদৰ্শন হ'ল কিম্বৰ সম্প্ৰদায়। মানৱ সৃষ্টিৰ আদিৰে পৰা ভাৰতবৰ্ষত কিম্বৰসকলৰ অৱস্থিতি দেখিবলৈ পোৱা যায়। এইখিনিতে কোৱা বাহুল্য যে প্ৰাচীন কিম্বৰ অভিধা তথা সাম্প্ৰতিক কিম্বৰ অভিধাৰ মাজত কিছু পাৰ্থক্য আছে। প্ৰাচীন কালত কোনো অস্তিত্ব (মানৱ, অশ্ব, পক্ষী আদি) অৰ্ধ অৰ্ধ স্বৰূপে কিম্বৰক সূচোৱাৰ পৰাই সম্ভৱত অৰ্ধনাৰী-অৰ্ধপুৰুষ স্বৰূপে সাম্প্ৰতিক কিম্বৰ অভিধাক দৰ্শাই। ট্ৰেন্সজেন্ডাৰ সম্প্ৰদায়ৰ অন্তৰ্গত কিম্বৰসকলে এক সুকীয়া সমাজ গঠন কৰি স্বকীয় ৰীতি-নীতিৰে সমাজখন পৰিচালিত কৰে। কিম্বৰ সমাজখন এখন ধৰ্মীয় তথা সাংস্কৃতিক সমাজ। কিম্বৰ সমাজৰ ধৰ্মীয় তথা সাংস্কৃতিক আস্থাৰ সৰ্বোত্তম নিদৰ্শন হ'ল কিম্বৰ আখৰা। এই অধ্যয়নত ভাৰতবৰ্ষত বিদ্যমান কিম্বৰ আখৰা সম্পৰ্কে বিশ্লেষণাত্মক দৃষ্টিভঙ্গী দাঙি ধৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ :

কিম্বৰ সমাজ, কিম্বৰ আখৰা, লিংগ, আখৰা, ৰাজকীয় স্নান, ধৰ্মনিৰপেক্ষ সম্প্ৰদায়।

১.০০ অৱতৰণিকা :

ট্ৰেন্সজেন্ডাৰ সম্প্ৰদায়ৰ এক উপসম্প্ৰদায় হ'ল কিম্বৰ সম্প্ৰদায়। ট্ৰেন্সজেন্ডাৰ শব্দটো এক আমব্ৰেলা টাৰ্ম। এই শব্দৰ লগত ট্ৰেন্স'মেন (নিজকে নাৰী বুলি মানসিকভাৱে অনুভৱ কৰা পুৰুষ), ট্ৰেন্সমেন (নিজকে পুৰুষ বুলি মানসিকভাৱে অনুভৱ কৰা নাৰী), কিম্বৰ, ছিমেল, ডাবল-ডেকাৰ, বাইনেৰী ব্যক্তি, এজেন্ডাৰ, জেন্ডাৰ কুইন আদি জড়িত হৈ আছে। দৰাচলতে কিম্বৰসকলক ট্ৰেন্স'মেনৰ সংজ্ঞাৰে সংজ্ঞায়িত কৰিব পাৰি। কিম্বৰ আৰু ট্ৰেন্স'মেনৰ মাজত থকা সাদৃশ্য হ'ল দুয়ো শ্ৰেণীত অন্তৰ্ভুক্ত ব্যক্তিক জৈৱিকভাৱে পুৰুষ। কিন্তু তেওঁলোকৰ লিংগভাৱ বা জেন্ডাৰ নাৰীৰ। তেওঁলোকে নিজকে নাৰী ৰূপে গণ্য কৰে। কিন্তু দুয়োৰে মাজত সামান্য পাৰ্থক্য পৰিলক্ষিত হোৱা দেখা যায়। কিম্বৰ সম্প্ৰদায় এক কঠোৰ ৰীতি-নীতিৰে ভৰপূৰ সাংস্কৃতিক সম্প্ৰদায়। যিসকল ট্ৰেন্স'মেনে স্ব-ইচ্ছাই কিম্বৰ সম্প্ৰদায়ত যোগদান কৰে তেওঁলোকক কিম্বৰ আখ্যা দিয়া হয়। আনহাতে কিম্বৰ সমাজত যোগদান নকৰা ট্ৰেন্স'মেনে আমাৰ সমাজ ব্যৱস্থাৰ অংশীদাৰ হৈ জীৱন নিৰ্বাহ কৰে। জৈৱিকভাৱে ট্ৰেন্স'মেন আৰু কিম্বৰৰ মাজত পাৰ্থক্য নাই যদিও সামাজিক-সাংস্কৃতিক ক্ষেত্ৰত দুয়োটা শব্দই পৃথক অৰ্থ বহন কৰে।

কিম্বৰ সমাজখন বিভিন্ন অলিখিত ৰীতি-নীতিৰে ভৰপূৰ। কিম্বৰ সমাজখনৰ সংস্কৃতিৰ অন্যতম নিদৰ্শন কিম্বৰ আখৰাই বৰ্তমান ভাৰতবৰ্ষৰ ধৰ্মীয় তথা সাংস্কৃতিক

মালিগাওঁ গোটানগৰ, জনতা লাইব্ৰেৰী  
কৃষ্টি সংঘ, ঘৰ নং-৬৯, গুৱাহাটী  
পিন-৭৮১০১১  
৯০৮৫১৭২১৭২  
mitali.7309.mk@gmail.com

জগতখনত বিশেষ সমাদৰ লাভ কৰিছে। কেনেদৰে কিম্বৰসকলে প্ৰান্তীয়কৃত সম্প্ৰদায়ৰ পৰা উদ্ভৱণ ঘটি অৰ্ধদেৱ তথা সন্মানীয় আসন লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে, তাকেই আলোচনাৰ আওতালৈ অনাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

### ২.০০ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু উদ্দেশ্য :

আখৰাসমূহ ভাৰতীয় ধৰ্মীয় আস্থাৰ অন্যতম দৃষ্টান্ত। প্ৰান্তীয়কৃত এক শ্ৰেণীয়ে কেনেদৰে সংঘৰ্ষৰ মাজেৰে আখৰাত অন্তৰ্ভুক্তিকৰণেৰে এক স্বকীয় পৰিচয় লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে তাকেই অধ্যয়নৰ মাজেৰে দেখুওৱাবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। এই অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হ'ল—

- ১। প্ৰান্তীয়কৃত কিম্বৰ সম্প্ৰদায়ে মূলধাৰাত সন্নিবিষ্ট হোৱাৰ ক্ষেত্ৰত কৰা সংঘৰ্ষক বিশ্লেষণ কৰা
- ২। কিম্বৰ আখৰাৰ ৰীতি-নীতি, আচাৰ-অনুষ্ঠান সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ কৰা।
- ৩। ধৰ্ম নিৰপেক্ষ গুণ বিশিষ্ট কিম্বৰ সমাজৰ বিশ্লেষণ কৰা

### ৩.০০ অধ্যয়ন পদ্ধতি :

বিষয়টো আলোচনা কৰিবলৈ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিক গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

কিম্বৰ বা হিজৰাসকল হিন্দু আৰু ইছলামিক সংমিশ্ৰিত ট্ৰেন্স'মেনৰ এক প্ৰাচীন ধৰ্মীয় উপসংস্কৃতিৰ অংশ। যি বৰ্তমান আৰ্থিক তথা সামাজিক দুৰ্দশাৰে জৰ্জৰিত। ২০১৫ চনত কিম্বৰ নেতা তথা ট্ৰেন্সজেণ্ডাৰ এন্টি ডিষ্ট লক্ষ্মী নাৰায়ণ ত্ৰিপাঠীয়ে আন কিম্বৰ নেতাসকলৰ সৈতে একগোট হৈ কিম্বৰ আখৰা প্ৰতিষ্ঠা কৰে। কিম্বৰ আখৰাৰ আৰম্ভণিৰে লক্ষ্মী নাৰায়ণ ত্ৰিপাঠীয়ে ভাৰতবৰ্ষৰ কিম্বৰসকলৰ হিন্দু ধৰ্মীয় পৰিচয় আৰু মৰ্যাদা অক্ষুণ্ণ ৰখাৰ লগতে এই জাতিৰ বিদ্যমানতাৰ বৈধতা প্ৰদান কৰাত গুৰুত্ব আৰোপ কৰে। ইয়াৰ বাবে তেওঁলোকে পৌৰাণিক ঐশ্বৰিক সত্তা (কিম্বৰ), বিভিন্ন হিন্দু শাস্ত্ৰ, নিজকে প্ৰান্তীয়কৃত গতানুগতিক আৰু বিষমধৰ্মী হিন্দু পৰম্পৰা আৰু আচাৰ-অনুষ্ঠানৰ সৈতে অন্বিত কৰে। এই নতুন সংযোজনে পুৰুষ শাসিত তথা পৰিৱৰ্তন বিৰোধী পুৰুষতান্ত্ৰিক বিশ্বক প্ৰত্যাহ্বান জনাইছে।

সচৰাচৰ উত্থাপিত কিছু প্ৰশ্ন যেনে— এই জাতিক হিজৰা নে কিম্বৰ বুলি সন্মোধন কৰা হ'ব? কিম্বৰ আখৰাৰ ক্ষেত্ৰত কেৱল কিম্বৰ শব্দৰ ব্যৱহাৰ কিয়? লক্ষ্মী নাৰায়ণ

ত্ৰিপাঠীয়ে নিজকে হিজৰা বুলি পৰিচয় দিয়াৰ পাছতো আখৰাৰ নামত কিম্বৰ শব্দৰ প্ৰয়োগৰ কাৰণ কি? এনে প্ৰশ্নসমূহৰ উত্তৰ হ'ল কিম্বৰ সম্প্ৰদায়ৰ সংস্কৃতকৰণ। কিম্বৰ শব্দৰ ব্যৱহাৰ হিজৰা শব্দতকৈ অধিক সন্মানজনক হিচাপে বিবেচিত কৰা হয়। কিম্বৰ শব্দৰ প্ৰয়োগৰ দ্বাৰা এই জাতিক নৃত্য-গীতত পাৰ্গত তথা কাশ্যপ মুনি আৰু অৰিষ্টাৰ দ্বাৰা সৃষ্ট ঐশ্বৰিক সত্তা সৈতে সংযোগ কৰা হৈছে। বেদ, পুৰাণ, ৰামায়ণ আদিত বিদ্যমান কিম্বৰ সকলক মনু সংহিতা, আইন সংহিতাত সাধু, যক্ষ আৰু গন্ধৰ্বসকলৰ সৈতে তালিকাভুক্ত কৰা হৈছে যাৰ পুনৰ্জন্ম নহয়। কিয়নো তেওঁলোকৰ উৎপত্তি দৈৱীয়। সেইবাবে সমকালীন কিম্বৰসকলে এই দৈৱীয় সংযোগকৰণেৰে নিজকে অৰ্ধদেৱতা ৰূপে এক ন-পৰিচয় দাঙি ধৰিছে। ইয়ো এক প্ৰকাৰৰ সংস্কৃতকৰণ প্ৰক্ৰিয়া।

কিন্তু প্ৰকৃততে অনুপুংখ নিৰীক্ষণৰ দ্বাৰা মনুসংহিতাত কিম্বৰসকলক বান্দৰ, মাছ, চৰাই, পশু, হৰিণ, সিংহ, বাঘ আদি দুপাৰি দাঁত থকা জন্তুৰ লগত তুলনা কৰিছে সেই সম্পৰ্কে জ্ঞাত হোৱা যায়।

“কিম্বৰান ৰানৰান্মৎস্যান্ ৱিৰিধাংশ্চ ৱিহঙ্গমান।

পশূন্ মৃগান্মনুষ্যাংশ্চ ৰ্যালাংশ্চোভয়তোদত ॥ ৩১ ॥”

ৰেণ্ডী ডনিগাৰে উপৰোক্ত শ্লোকক কেন্দ্ৰ কৰি কিম্বৰ বান্দৰৰ এক প্ৰজাতি হ'ব পাৰে বুলি মত প্ৰকাশ কৰে। কিন্তু ‘শতপথ ব্ৰাহ্মণ’ত অশ্বমুখী মানৱ শৰীৰ ৰূপী কিম্বৰ, বৌদ্ধ সংস্কৃতিত মানৱমুখী পক্ষীক অৰ্ধপক্ষী-অৰ্ধমানুহ, অৰ্ধনাৰী-অৰ্ধপক্ষীক কিম্বৰ আখ্যা দিয়া হৈছিল। তথাপিও কিম্বৰ সকলক অৰ্ধদেৱ তথা সংগীতজ্ঞ আৰু নৃত্যশিল্পী ৰূপে মান্যতা প্ৰদান কৰা হয়।

মনুসংহিতাত ক্লীৰ শব্দৰ উল্লেখ আছে। ক্লীৰ শব্দটোৰ দ্বাৰা সমকামী আৰু নপুংসক বুজাব পাৰে। ‘সুশ্ৰুত সংহিতা’ৰ দ্বিতীয় খণ্ডত থকা ‘শণ্ড’ শব্দটোৱে পাঁচ প্ৰকাৰৰ ক্লীৰৰ মাজৰ এক ক্লীৰক বুজায়, যাৰ দেহত নাৰীৰ গুণ নিহিত হৈ থাকে। কামোদ্দীপক গ্ৰন্থ ‘কামসূত্ৰ’ত কিম্বৰ তথা নপুংসকৰ উল্লেখ আছে। যাক তৃতীয় প্ৰকৃতি বুলিও বৰ্ণনা কৰা হৈছে। কামসূত্ৰ অনুসৰি তৃতীয় প্ৰকৃতিৰ ব্যক্তিয়ে নাৰীৰ আচৰণ কৰাৰ লগতে গণিকাৰ দায়িত্বও পালন কৰিব লাগে। কিম্বৰৰ অৰ্ধদেৱতা আৰু ক্লীৰৰ ৰূপ তথা তৃতীয় প্ৰকৃতি যোগসূত্ৰৰ নিদৰ্শন দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। সেয়েহে ভাবিবৰ থল আছে যে সমসাময়িক

কিন্নৰসকলৰ অৰ্ধদেৱতা বা দেৱতাৰ অংশ বুলি দাবী কৰাৰ আঁৰত আৰ্থ-ৰাজনৈতিক তথা সামাজিক সাৱলীকৰণ, কিন্নৰ সম্প্ৰদায়ক ভাৰতীয় সমাজত পুনৰ সংস্থাপিতকৰণ আদি বিভিন্ন কাৰক জড়িত হৈ আছে।

কোনো কোনো ঐতিহ্যভিত্তিক মতে অৰ্ধ-দেৱতাৰ পৰিচয়েৰে হিন্দু ৰাষ্ট্ৰবাদৰ অন্তৰ্গত হিজৰা শব্দটোক লুপ্ত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। আখৰাৰ লগত হিজৰা শব্দৰ অব্যৱহাৰৰ কেতবোৰ কাৰক আছে। প্ৰথমতে হিজৰা এক হিন্দুস্তানী শব্দ। এই শব্দটো আৰবী ভাষাৰ ‘হিজ’ শব্দৰ পৰা আহিছে। আখৰা এক হিন্দু ধৰ্মীয় অনুষ্ঠান। সেয়েহে কিন্নৰ আখৰা নিৰ্মাণৰ ক্ষেত্ৰত হিজৰা শব্দতকৈ কিন্নৰ শব্দৰ প্ৰয়োগক শ্ৰেষ্ঠ বুলি মান্যতা প্ৰদান কৰা হৈছে। দ্বিতীয়তে হিজৰা শব্দটোক হেয় জ্ঞান কৰাৰ বাবে আখৰাৰ লগত হিজৰা শব্দৰ সংযোজন পৰিহাৰ কৰা হৈছে।

আখৰা শব্দটো বিভিন্ন অৰ্থত প্ৰকাশ হোৱা দেখা যায়। প্ৰশিক্ষণ কেন্দ্ৰ, য’ত মল্লযুঁজাৰুসকলে অনুশীলন কৰে। দ্বিতীয়তে আখৰা হৈছে অস্ত্ৰ-শস্ত্ৰ শিল্পত পাৰ্গত সাধুৰ দল। তৃতীয়তে আখৰা হৈছে খাহৰাজৰ খেল পথাৰ য’ত বিভিন্ন সাংস্কৃতিক অনুষ্ঠানৰ আয়োজন কৰা হয়। আলোচনাৰ বিচাৰ্য কেৱল দ্বিতীয় অৰ্থহে। আখৰা শব্দটোৱে শৈৱ আৰু বৈষ্ণৱ দুয়ো সম্প্ৰদায়ৰ লগত জড়িত ধৰ্মীয় সাধু-মহন্তক নিৰ্দেশিত কৰে। প্ৰাচীন কালত ভাৰতবৰ্ষৰ সাধু-মহন্তসকলৰ দলে সংকটৰ সময়ত, ৰাজধৰ্মৰ বিৰোধ পৰিস্থিতিত, ৰাষ্ট্ৰ তথা ধৰ্ম ৰক্ষাৰ্থে অস্ত্ৰ বিদ্যাৰ ব্যৱহাৰ কৰিছিল। ভাৰত চৰকাৰ তথা ‘অখিল ভাৰতীয় আখৰা পৰিষদ’ৰ ধৰ্মাচাৰ্যৰ দ্বাৰা স্বীকৃত মুঠ চৈধ্য আখৰা আছে। ইয়াৰে শ্ৰীআৱাহন আখৰা, শ্ৰী অটল আখৰা, শ্ৰী মহানিৰ্বাণী আখৰা, শ্ৰী আনন্দ আখৰা, শ্ৰী জুনা আখৰা, শ্ৰী অগ্নি আখৰা, শ্ৰী নিৰঞ্জনী আখৰা শৈৱপন্থী। শ্ৰী বৈষ্ণৱ আখৰা, শ্ৰীপঞ্চ ৰামানন্দীয় দিগম্বৰ আখৰা, শ্ৰীপঞ্চ জামানন্দীয়া নিৰ্মোহী আখৰা হ’ল বৈষ্ণৱপন্থী। ইয়াৰোপৰি উদাসীন আখৰাৰ এক শ্ৰেণী আছে। শ্ৰী নিয়া উদাসী পঞ্চায়তী আখৰা, শ্ৰীবড়া উদাসী পঞ্চায়তী আখৰা আৰু শ্ৰী নিৰ্মল উদাসী পঞ্চায়তী আখৰা। চৈধ্য নং শ্ৰী গুদড় আখৰা

পঞ্জীকৃত যদিও আখৰা পৰিষদে এই আখৰাক মান্যতা প্ৰদান কৰা নাই। আখৰাসমূহৰ মূল উদ্দেশ্য হ’ল সমাজত শান্তি, সুৰক্ষা, সু-ব্যৱস্থা বৰ্তাই ৰখা, হিন্দু ধৰ্মৰ ৰক্ষা কৰা, সনাতন সংস্কৃতিৰ সংৰক্ষণ, আধ্যাত্মিক তথা ধাৰ্মিক শিক্ষা প্ৰদান, দেশ-বিদেশ ভ্ৰমণ কৰি ভাৰতীয় তথা বৈদিক সংস্কৃতিৰ প্ৰচাৰ তথা প্ৰসাৰ, মঠ-মন্দিৰ, আশ্ৰম, ধৰ্মীয় অনুষ্ঠান আদিৰ স্থাপন, ৰাষ্ট্ৰীয় বিপদকালীন স্থিতিত ৰাষ্ট্ৰক যথাসম্ভৱ সহায় প্ৰদান ইত্যাদি। ঊনবিংশ শতিকাৰ শেষৰফালে আখৰাসমূহে স্বীকৃতি লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। ‘অখিল ভাৰতীয় আখৰা পৰিষদ’ৰ অন্তৰ্গত আখৰাসমূহৰ ভিতৰত মৰ্যাদা অনুশাসন তথা আদৰ্শক সৰ্বোত্তম মহত্ব প্ৰদান কৰা হয়।

আখৰাসমূহৰ মাজত শ্ৰীজুনা আখৰা আটাইতকৈ বৃহৎ। এই আখৰাক ‘ভৈৰৱ আখৰা’ বুলিও জনা যায়। জুনা বা ভৈৰৱ আখৰা শৈৱপন্থী। জুনা আখৰা আদি শংকৰাচাৰ্যই পাতনি মেলা শৈৱধৰ্মৰ দশমী সম্প্ৰদায়ৰ অনুগামী। জুনা আখৰাই ভাৰতীয় ধৰ্ম-সংস্কৃতিৰ সংৰক্ষণ, প্ৰচাৰ-প্ৰসাৰ তথা আন কৰণীয়সমূহৰ লগতে শোষিত-বঞ্চিত তথা জ্ঞাত-অজ্ঞাতভাৱে সমাজে এলাগী কৰা কিন্নৰ সম্প্ৰদায়কো আখৰাত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে। কিন্নৰ সম্প্ৰদায়ে ২০১৫ চনত জুনা আখৰাত যোগদান কৰে। কিন্নৰ আখৰাৰ মহামণ্ডলেশ্বৰ (হিন্দু আধ্যাত্মিক অভিভাৱক বা সংৰক্ষক) লক্ষ্মী নাৰায়ণ ত্ৰিপাঠী সহিতে আইন কিন্নৰে জুনা আখৰাৰ মুখ্য আচাৰ্য মহামণ্ডলেশ্বৰ শ্ৰী মহন্ত হৰিগিৰিৰ উ পস্থিতিত আইনীভাৱে জুনা আখৰাত অন্তৰ্ভুক্ত হয়। লক্ষ্মী নাৰায়ণ ত্ৰিপাঠীৰ মতে নিজৰ হত অস্তিত্বৰ উত্তৰণৰ বাবে আখৰাত যোগদান কৰাৰ আৱশ্যকতা আছিল। তেওঁ আদি শংকৰাচাৰ্যৰ দৰ্শনৰ দ্বাৰা পূৰ্ণমাত্ৰাই প্ৰভাৱিত। শংকৰাচাৰ্যই সমাজৰ সমস্যাসমূহৰ সন্মুখীন হোৱাৰ লগতে জনসাধাৰণৰ মাজত কণ্ঠস্বৰ আলোড়িত কৰিবলৈ আখৰাসমূহৰ নিৰ্মাণ কৰিছিল। তেওঁৰ দৰ্শন সমগ্ৰ শৈৱপন্থী আখৰাৰ মূল ভেঁটি।

‘অখিল ভাৰতীয় আখৰা পৰিষদ’-এ কিন্নৰ আখৰাক মান্যতা প্ৰদান কৰা নাই। পৰিষদৰ অধ্যক্ষই কিন্নৰ আখৰাক সনাতন পৰম্পৰাৰ বিৰোধী তথা ভুৱা

বুলি মন্তব্য প্ৰদান কৰিছে। সমগ্ৰ আখৰা মূলতঃ পুৰুষ প্ৰধান। কোনো আখৰাত নাৰী স্থান নথকা নহয়। কিন্তু কোনো পথেই প্ৰভাৱশালী স্থান নহয়। পৰিষদৰ মতে সন্ন্যাস পৰম্পৰা নাৰী বা কিম্বৰ জাতিৰ নহয়। নাৰী বা কিম্বৰ জাতি পুৰুষ সাধু-মহন্তসকলৰ বাবে কেৱল এক হেঙাৰ। ইয়াৰোপৰি তেওঁলোকে দাবী কৰে যে আখৰাৰ সংখ্যা নিৰ্দিষ্ট। ইয়াৰ পৰিৱৰ্তন সম্ভৱ নহয়। প্ৰয়োজন অনুসৰি মান্যতাপ্ৰাপ্ত আখৰাত যোগদান কৰিব পাৰিব। সন্ন্যাসত নাৰীৰ স্থান নাই। তেওঁৰ এই মন্তব্যৰ পৰা এটা প্ৰশ্ন মনলৈ আহে যে সন্ন্যাসৰ অৰ্থ সংসাৰৰ, গাৰ্হস্থ্য জীৱন কামনা-বাসনা, সুখ-দুখ ত্যাগ কৰি সম্পূৰ্ণভাৱে ঈশ্বৰত মন সংযোগ কৰা তথা বৈবাগ্য হোৱা। সন্ন্যাস ধৰ্ম হৈছে জীৱনৰ কামনা-বাসনা ত্যাগ কৰি ঈশ্বৰৰ উপাসনাত নিমগ্ন হোৱা ধৰ্ম। সন্ন্যাস ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰা পুৰুষক ‘সন্ন্যাসী’ আৰু নাৰীক ‘সন্ন্যাসিনী’ বুলি অভিহিত কৰা হয়। তেনে ক্ষেত্ৰত সন্ন্যাসী হোৱাৰ পথত লিংগই কেনেদৰে বাধাৰ সৃষ্টি কৰিব পাৰে। আগতে উল্লেখ কৰি অহা হৈছে যে বৈদিক যুগৰ পৰাই ভাৰতীয় সমাজত কিম্বৰৰ স্থান আছিল আৰু সন্ন্যাস ধৰ্ম সনাতন ধৰ্মৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। তেনেক্ষেত্ৰত কিম্বৰৰ স্থান এই ধৰ্মত নোহোৱাৰ কাৰণ কি? কিম্বৰসকলে নিৰ্বাণ প্ৰক্ৰিয়া বা অস্ত্ৰোপচাৰৰ জৰিয়তে নাৰী ৰূপে ন-জীৱন লাভ কৰে। তেনে ক্ষেত্ৰত তেওঁলোকে সন্ন্যাসিনী হ’ব নোৱাৰাৰ কাৰণ কি? এনে প্ৰশ্নসমূহ জুকিয়াই চোৱাৰ প্ৰয়োজন আছে। ধৰ্মই কয় কামনা-বাসনা ত্যাগ কৰি ঈশ্বৰৰ লগত সংযোগ স্থাপন কৰাই হৈছে সন্ন্যাস। গতিকে এগৰাকী কিম্বৰে কামনা-বাসনা এৰি ঈশ্বৰৰ লগত সংযোজিত হৈ ধৰ্মৰ পথত চলিব বিচৰা কাৰ্যত কাৰো আপত্তি থাকিব নালাগে। ই নীতি বিৰোধ তথা ধৰ্ম বিৰোধ। ভাৰতীয় সংবিধানেও ভাৰতীয় নাগৰিকক ধৰ্মৰ ক্ষেত্ৰত স্বাধীনতা প্ৰদান কৰিছে। সংবিধানৰ ধাৰা ২৫-২৮ লৈ আমাক ধৰ্মীয় স্বাধীনতাৰ মৌলিক অধিকাৰ প্ৰদান কৰা হৈছে। গতিকে ধৰ্ম তথা আইনেও কিম্বৰসকলক ধৰ্মীয় ৰীতি-নীতি পালন কৰা তথা কোনো ধৰ্মীয় পথ নিৰ্বাচিত কৰা, পূজা-পাতল, যাগ-যজ্ঞ বা আন ধাৰ্মিক অনুষ্ঠানত অংশগ্ৰহণ কৰাত বাধা প্ৰদান কৰা নাই।

কিম্বৰ আখৰাত কেৱল সনাতনী হিন্দু ধৰ্মৰ কিম্বৰে অংশগ্ৰহণ কৰা নাই। এই আখৰা তথা কিম্বৰ সম্প্ৰদায়ত ইছলাম ধৰ্মালম্বীৰ কিম্বৰেও যোগদান কৰা দেখা যায়। বহু ইছলাম ধৰ্মীয় কিম্বৰে হজ যাত্ৰা কৰাৰ লগতে কুস্তমেলা বা আন সনাতনী ধাৰ্মিক অনুষ্ঠানতো অংশগ্ৰহণ কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে ইছলাম ধৰ্মী ভৱানী নাথ বান্মীকিয়ে হজ যাত্ৰা কৰাৰ লগতে কুস্তমেলা, অম্বুবাচী মেলা, গঙ্গাসাগৰ মেলা আদিতো অংশগ্ৰহণ কৰে। তেওঁ পূৰ্বৰ ধৰ্ম তথা নাম শ্ববনম বেগমক ত্যাগ কৰি হিন্দু ধৰ্ম তথা হিন্দু নাম গ্ৰহণ কৰিছে। তেওঁ ২০১৫ চনত হিন্দু ধৰ্ম গ্ৰহণ কৰি কিম্বৰ আখৰাত যোগদান কৰে। ২০১৭ চনত তেওঁক মহামণ্ডলেশ্বৰ উপাধি প্ৰদান কৰা হয়। তেওঁ কৈছে যে দুয়ো ধৰ্মৰ প্ৰতি তেওঁৰ সম্পূৰ্ণ আস্থা তথা বিশ্বাস আছে। তেওঁৰ মতে সমাজত সমমৰ্যাদা পাবলৈ ধৰ্মৰ বাহিৰে শ্ৰেষ্ঠ বিকল্প নাই। সেয়েহে কুস্তমেলাৰ জৰিয়তে কিম্বৰ সম্প্ৰদায়ে নিজকে সমাজৰ অংশ বুলি পৰিচিত কৰাৰ একান্ত প্ৰয়াস কৰি আহিছে। ২০২১ চনত হৰিদ্বাৰত অনুষ্ঠিত হোৱা মহাকুস্ত মেলাত পূৰ্বৰ দৰে সকলোৱে ‘ৰাজকীয় স্নান’ কৰে। প্ৰত্যেক কুস্ত মেলাতে কিম্বৰ আখৰাই বৃহৎ শিবিৰ পাতে।

জ্ঞাতব্য যে কিম্বৰ এক ধৰ্মনিৰপেক্ষ সম্প্ৰদায়। ২০১৫ চনৰ মধ্যপ্ৰদেশৰ উজ্জৈনৰ মহাকুস্তত পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে কিম্বৰ আখৰাই পদাৰ্পণ কৰে। উজ্জৈনৰ কুস্তমেলাত কিম্বৰসকলে আন আখৰাৰ সহিতে শিবিৰ স্থাপন কৰাৰ লগতে সাংস্কৃতিক শোভাযাত্ৰাত অংশগ্ৰহণ কৰে। জুনা আখৰাত অন্তৰ্ভুক্তকৰণে কিম্বৰ আখৰাক ৰাজকীয় স্নানৰ বাট মুকলি কৰি দিয়ে। ২০১৯ চনৰ প্ৰয়াগৰাজত অনুষ্ঠিত হোৱা অৰ্ধ কুস্তমেলাত কিম্বৰ আখৰাই পোনপ্ৰথম বাৰৰ বাবে ৰাজকীয় স্নান কৰাৰ সুবিধা লাভ কৰে। ই কিম্বৰ সম্প্ৰদায়ৰ বাবে গৌৰৱ, স্বীকৃতি স্ব-পৰিচয় তথা জয়ৰ ক্ষণ। ভাৰতীয় সংস্কৃতি, আধ্যাত্মিক তথা ধাৰ্মিক আস্থাৰ সৰ্বোত্তম পৰ্ব কুস্তমেলাত অংশগ্ৰহণেৰে কিম্বৰ আখৰাই নিজ ধৰ্মীয় ভেঁটি সবল কৰি তুলিছে।

আখৰা পৰিষদৰ পৰা আনুষ্ঠানিক ভাৱে স্বীকৃতি নোপোৱাৰ পিছতো কিম্বৰ আখৰাক জুনা আখৰাৰ পৰা

স্বাধীন বুলি গণ্য কৰা হৈছে। ঊনবিংশ শতিকাৰ পৰাই কাৰ্যতঃ অপৰিৱৰ্তিত ৰূপত থকা কুস্তমেল্লাৰ সময়ত আখৰাৰ শোভাযাত্ৰা আৰু ৰাজকীয় স্নানৰ ক্ৰম আৰু সময়ৰ সালসলনি কৰা হৈছে কিম্বৰ আখৰা যোগদানৰ বাবে। কম সময়ৰ ভিতৰত কিম্বৰ আখৰা জনপ্ৰিয় হৈ উঠে যদিও বৰ্তমানো কিম্বৰ আখৰা সকলো আখৰা, বিভিন্ন নগা সাধু তথা ট্ৰেন্জেলুৰ সম্প্ৰদায়ৰ বিভিন্ন ব্যক্তিৰ বিৰোধিতাৰ সন্মুখীন হৈছে। কিম্বৰ আখৰাই একান্তভাৱে হিন্দু পৰম্পৰাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি এক পৰিচয় সৃষ্টিৰ বাবে গ্ৰহণ কৰা পদক্ষেপ ইয়াৰ এক অন্যতম কাৰক হ'ব পাৰে।

কিম্বৰ পৰম্পৰা এক নিৰ্বাচিত সংস্কৃতকৰণ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত। সংস্কৃতকৰণ হিন্দু ধৰ্মৰ এক প্ৰক্ৰিয়া য'ত নিম্ন মধ্যবৰ্গ বা কোনো জনজাতিয়ে উচ্চ বৰ্গৰ জাতিক অনুকৰণ কৰি নিজ পৰম্পৰা, ৰীতি-নীতি, জীৱনশৈলী আদি ৰূপান্তৰৰ প্ৰয়াস কৰে। কিম্বৰসকলে সংস্কৃতকৰণ প্ৰক্ৰিয়াৰ দ্বাৰা শোষিত-লাঞ্চিত কিম্বৰ সম্প্ৰদায়ৰ চিত্ৰ পৰিৱৰ্তনৰ চেষ্টা অব্যাহত ৰাখিছে। এই সংস্কৃতকৰণৰ অৰ্থ সম্পূৰ্ণৰূপে ব্ৰাহ্মণবাদী পাঠ্যৰ উৎস বা সাধু-মহন্তসকলৰ জীৱনৰ কঠোৰতাক পুৰামাত্ৰাই অনুকৰণ কৰা নহয় বৰং নিজ বিশিষ্টতাৰ পৰিচয়ৰ হানি নোহোৱাকৈ এই প্ৰক্ৰিয়াক আকোঁৱালি লোৱা হৈছে। তেওঁলোকে হিন্দু ধৰ্মীয় ৰীতি-নীতি, আদৰ্শৰে কিম্বৰ ৰূপেই স্বীকৃতি লাভ কৰিব বিচাৰে। কিম্বৰসকলে আখৰাত অংশগ্ৰহণেৰে কিম্বৰ পৰিচয়ত এক লেবেলিং কৰিছে যদিও মূল পৰিচয় সমূলি পাহৰা নাই।

কিম্বৰ আখৰাই, কুস্ত মহাপৰ্বত অংশগ্ৰহণ কৰাৰ দৰে অসমৰ কামাখ্যা ধামৰ প্ৰাংগনত প্ৰতি বছৰে অনুষ্ঠিত হোৱা অম্বুবাচী মেলাতো অংশগ্ৰহণ কৰে। ভাৰতবৰ্ষৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ কিম্বৰে প্ৰত্যক বছৰে অম্বুবাচী মেলাত যোগদান কৰাৰ লগতে মন্দিৰৰ প্ৰাংগনত শিবিৰ পাতে। এই শিবিৰত কিম্বৰসকলৰ সৈতে আন আন ভক্তগণেও ভিৰ কৰা দেখা যায়। প্ৰবৃত্তি আৰম্ভ হোৱাৰ আগৰে পৰা শিবিৰত দেশৰ বিভিন্ন প্ৰান্তৰ পৰা কিম্বৰসকল আহি উপস্থিত হয়। তেওঁলোকে দেৱীৰ ভজন, বহুচৰা দেৱীৰ ভজন তথা আন ভক্তিমূলক গীত পৰিবেশন কৰাৰ লগতে বাদ্যযন্ত্ৰৰ তালে তালে নৃত্য-গীত পৰিবেশন কৰে। কিম্বৰ আখৰাৰ ভজন-কীৰ্তনে অম্বুবাচীৰ আন ভক্তসকলকো আকৰ্ষণ কৰে।

অম্বুবাচীত অংশগ্ৰহণ কৰা কিম্বৰ আখৰাত মহামণ্ডলেশ্বৰ ভৱানী নাথ বাৰ্মীকি ইছলাম ধৰ্মী। কিন্তু তেওঁ কিম্বৰ আখৰাত যোগদান কৰিবলৈ সন্ন্যাসৰ পথ বাচি লয়। পূৰ্বতেও উল্লেখ কৰা হৈছে যে কিম্বৰ সমাজ এক ধৰ্ম নিৰপেক্ষ সমাজ। গতিকে ভৱানী শংকৰ নন্দ গিৰি তথা আন কিম্বৰেও সকলো ধৰ্মকে সম দৃষ্টিৰে চায়। ইয়াক ভাৰতীয় সংস্কৃতিৰ এক অন্যতম বৈশিষ্ট্য বুলিব পাৰি। কিম্বৰ সাধৱী, সন্ন্যাসী তথা কিম্বৰ আখৰাৰ অন্তৰ্গত সন্ত-মহন্ত, মণ্ডলেশ্বৰ, মহামণ্ডলেশ্বৰসকলে কুস্তমেলা, অম্বুবাচী মেলাৰ বাহিৰেও ভাৰতৰ পশ্চিমবংগ ৰাজ্যৰ গংগা নদী (হুগলী নদী) আৰু বংগোপসাগৰৰ মিলনস্থলীত (যাক গংগা সাগৰ নামে জনা যায়) অনুষ্ঠিত হোৱা 'গংগাসাগৰ মেলাতো' অংশগ্ৰহণ কৰাৰ লগতে শিবিৰ পাতে।

### সামৰণি :

কিম্বৰ আখৰা সংস্কৃতকৰণ প্ৰক্ৰিয়াক অনুসৰণ কৰা এক সমূহ। শোষিত-লাঞ্চিত এক শ্ৰেণীক উচ্চ খাপলৈ নিয়াৰ প্ৰচেষ্টাৰ পৰিণাম স্বৰূপে কিম্বৰ আখৰাৰ সংবৃদ্ধি বুলিব পাৰি। যিয়েই নহওক প্ৰান্তীয়কৃত সম্প্ৰদায়ে মূলসুঁতিত-সমাবিদ্ধ হোৱাটোৱে গৌৰৱৰ বিষয়। এই প্ৰলম্বিত সংগ্ৰামৰ আদি আছে অন্ত নাই। পৰিচয়ৰ সংগ্ৰাম, স্বীকৃতিৰ সংগ্ৰাম, স্থানৰ সংগ্ৰাম, মানুহৰ সংগ্ৰাম কেৱল মাথো অস্তহীন সংগ্ৰাম। সংগ্ৰামৰ বাট কোনো কালেই মসৃণ নাছিল। ৰক্ষ পথেৰে অলেখ সমস্যাবেৰে জৰ্জৰিত কিম্বৰসকলে নিৰ্মাণ কৰা কিম্বৰ আখৰাই সৰ্বোতপ্ৰকাৰে মান্যতা লাভ কৰা দৰকাৰ। এই আখৰাই প্ৰান্তীয়কৃত কিম্বৰৰ মান সমাজত বৃদ্ধি কৰিছে। এক বিশেষ পৰিচয় তথা সন্মান দিছে। পুৰুষতান্ত্ৰিক সমাজখনত পুৰুষৰ সমপৰ্যায়ত আহি একেলগে খোজ দিয়াৰ সুবিধা দিছে। কিম্বৰ আখৰাই ভাৰতবৰ্ষৰ জনগণৰ মনত সাঁচ বহুৱাবলৈ সক্ষম হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। ভাৰতবৰ্ষৰ আন আখৰাসমূহৰ দৰে কিম্বৰ আখৰা এক গুৰুত্বপূৰ্ণ আখৰা। আখৰাসমূহৰ মূল উদ্দেশ্যক পালন কৰি হিন্দু ধৰ্ম-সংস্কৃতি তথা কিম্বৰ সম্প্ৰদায়ৰ বিকাশৰ বাবে নিৰন্তৰে কাম কৰাই কিম্বৰ আখৰাৰ মূল লক্ষ্য হোৱা উচিত। সংস্কৃতকৰণ প্ৰক্ৰিয়া আৰু স্বকীয় পৰিচয়ৰ মাজৰ ভাৰসাম্য বৰ্তাই ৰাখিব নোৱাৰিলে কিম্বৰ আখৰাৰ লগতে কিম্বৰসকলৰ অস্তিত্ব সংকটাপন্ন হ'ব। □

---

ग्रन्थपंजीः

असमीया —

- १। शर्मा, अनन्त कुमारः & शक्तिरूपी मा कामाख्या, प्रकाशक, देवेन कलिता, बेथा प्रकाशन, पाणवजाब, गुवाहाटी-१, प्रथम प्रकाश, २०११।
- २। शर्मा, किरणः & मनुसंहिता, प्रकाशक, बाजेन्द्र मोहन शर्मा, डाः बवीन्द्र मोहन शर्मा, चन्द्र प्रकाश, पाणवजाब, गुवाहाटी-१, पक्षम प्रकाश, अक्टोबर्, २०२१।

हिन्दी —

- १। गुप्ता, आशीष कुमार और अन्य : किन्नर हाशिए का जीवन, प्रकाशक, सन्मति पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्युटर्स, बी-३४७, संजय विहार, मेरठ रोड, हापुड- २४५११०१ (उ. प्र.), प्रथम संस्करण, २०२०
- २। गोयल, सतीश : बृहद वात्स्यायन कामसुत्र, प्रकाशक, डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-३०, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज- II, नई दिल्ली- ११००२०
- ३। डागा, शीला : किन्नर गाथा, प्रकाशन, वाणी प्रकाशन, ४६९५, २१, दरियागंज, नयी दिल्ली ११०००१
- ४। पट्टनायक, देवदत्त (मुल), कपूर, रमेश (अनु.) नीलाभ (सम्पा.) : शिखण्डी और कुछ अनसुनी कहानियाँ, प्रकाशन, राजपाल एण्ड सनज, १५१० मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-११०००६
- ५। वनजा, केः क्यौर विमर्श लेस्त्रियन, गे, बाई-सेक्सुअल, ट्रांसजेंडर, प्रकाशन, वाणी प्रकाशन- ४६९५, २१-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- ११०००२, प्रथम संस्करण, २०२१ई
- ६। त्रिपाठी, राजेंद्र : प्रयागराज कुंभ-कथा, प्रकाशक, सत्याहित्य प्रकाशन, ६९४-ए, चावड़ी बजार, दिल्ली- ११०००६, प्रथम संस्करण, २०१९ई
- ७। त्रिपाठी, लक्ष्मीनारायण (मुल), राय, राशिकला और सुरेखा बनकर (अनु.) : मैं हिजड़ा... मैं लक्ष्मी!, प्रकाशन, वाणी प्रकाशन १६१५, १२-ए, दरियागंज, नई दिल्ली- ११०००२

Websource —

१. <https://www.bbau.ac.in/dept/sociology/TM/sanskritization.pdf>
  २. <https://www.cambridge.org/core/services/laop/xa/sanskritization-and-social-change-in-india.pdf>
  ३. <https://asiananthrology.org/article/2379/download>
  ४. <https://www.hindustantimes.com/india-news/akhada-parishad-dirided-over-inclusion-at-kinnar-akhada/story>
-

## ডাঙৰীৰ বৌদ্ধিক জাগৰণ : এক অধ্যয়ন

সাৰাংশ :



মানস প্ৰতীম সোনোৱাল

উনবিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণিত নামনি অসমত জনজাতীয় লোকসকলৰ মাজত এক বৌদ্ধিক জাগৰণৰ আৰম্ভ হৈছিল। বিশেষকৈ বড়োসকলৰ মাজত দল-সংগঠন প্ৰতিষ্ঠাৰ লগতে শিক্ষা, সাহিত্য, সংস্কৃতিৰ ওপৰত অধিক গুৰুত্ব দিয়া হৈছিল। তাৰ সমান্তৰালকৈ উজনি অসমৰ ডাঙৰীত (তিনিচুকীয়া) জনজাতীয় লোকসকলৰ প্ৰচেষ্টাত পোনপ্ৰথমে উন্নয়নমূলক কাম হাতত লোৱা হৈছিল। অষ্টাদশ শতিকাৰ শেষ দশক আৰু উনবিংশ শতিকাৰ প্ৰথম ভাগত উজনি অসমৰ জনজাতীয় আন্দোলনৰ মূল কেন্দ্ৰ হিচাপে এই ডাঙৰী অঞ্চলটোক অভিহিত কৰিব পাৰি। জনজাতীয় বৌদ্ধিক জাগৰণত এইসময়খিনি উল্লেখযোগ্য। ডাঙৰীৰ মধ্যবিত্ত লগতে উজনি অসমৰ বিশেষকৈ ডিব্ৰুগড়, তিনিচুকীয়া জিলাৰ বাগানত কৰ্মৰত লোকসকলৰ প্ৰচেষ্টাতে ডাঙৰী কছাৰী যুৱ সম্মিলনী (১৯১৭) গঠন হয়। এই সংগঠন আছিল উজনিৰ প্ৰথম সকলো কছাৰীলোকৰ এটা গোট। এই সংগঠনে ডাঙৰীৰ সামগ্ৰিক উন্নয়নৰ লগতে সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ ওপৰত গুৰুত্ব দিছিল। লগতে সমাজৰ কু-সংস্কাৰ দূৰীকৰণৰ বাবে অহৰহ প্ৰচেষ্টা কৰিছিল। সংগঠনটোৰ মুখপত্ৰ হিচাপে *প্ৰভাতী* (১৯২৫), *ৰাইজ* (১৯৩৩) আলোচনী প্ৰকাশ হয়। ইয়াৰ জৰিয়তে বহুতো জনজাতীয় লেখকৰ সৃষ্টি হৈছিল। *ডাঙৰী কছাৰী যুৱ সম্মিলনী*য়ে পাছলৈ *অসম কছাৰী যুৱ সম্মিলনী* আৰু *ট্ৰাইবেল লীগ* হিচাপে পৰিচয় লাভ কৰিলে। কছাৰী জাতিৰ উত্তৰণত এই দল-সংগঠনৰ যথেষ্ট অৱদান আছে। গতিকে ডাঙৰীৰ লগতে উজনিৰ কছাৰী জাতিৰ বৌদ্ধিক উত্তৰণৰ ইতিহাস আলোচনা কৰাই এই গৱেষণা পত্ৰৰ মূল বিষয়।

সূচক শব্দ :

বৌদ্ধিক, জনজাতি, উত্তৰণ, কছাৰী।

০.০০ অৱতৰণিকা

০.০১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

জনজাতিসকলৰ উৎসৱ-পাৰ্বন, তেওঁলোকৰ লোকসংস্কৃতিৰ লগতে তেওঁলোকৰ ঐতিহাসিক স্থিতি তথা জনজাতীয় জাগৰণৰ অধ্যয়ন সমানে গুৰুত্বপূৰ্ণ। লোকসংস্কৃতিয়ে যেনেকৈ এটা জাতিক সমৃদ্ধিশালী কৰে ঠিক সেইদৰে জাতিটোৰ সামাজিক, অৰ্থনৈতিক, ৰাজনৈতিক তথা ঐতিহাসিক উপাদানেৰে এটা জাতিক মৰ্যাদাসম্পন্ন কৰি বৌদ্ধিক ক্ষেত্ৰত সমৃদ্ধ কৰি তুলে। এতিয়াও বহুতো জনজাতিৰ ঐতিহাসিক দিশসমূহ অনালোচিত। তেওঁলোকৰ দৈনন্দিন জীৱন, তেওঁলোকৰ সংস্কৃতি, তেওঁলোকৰ সাংস্কৃতিক স্বকীয়তাৰ লগতে তেওঁলোকৰ সংঘাত-সংঘৰ্ষ, নিজৰ অধিকাৰৰ বাবে কৰা সংগ্ৰাম, সমস্যা আৰু সমস্যা সমাধানৰ বাবে অৱলম্বন কৰা নানান উপায়, সামাজিক, অৰ্থনৈতিক-ৰাজনৈতিক, বৌদ্ধিক উত্তৰণৰ ইতিহাস, সংগ্ৰাম

-----  
অংশকালীন সহকাৰী অধ্যাপক  
দুলীয়াজান মহাবিদ্যালয়  
অসম- ৭৮৬৬০২  
☎ ৮০১১৪২৬৭০৫  
✉ manashponowal2018@gmail.com  
-----

ফলত লাভ কৰা প্ৰাপ্তিৰ অধ্যয়ন সমানেই প্ৰাসঙ্গিক। ডাঙৰীত গঢ় লৈ উঠা বৌদ্ধিক জাগৰণে অসমৰ সকলো প্ৰান্তক প্ৰভাৱিত কৰিছিল। জনজাতীয় বৌদ্ধিক জাগৰণ হিচাপে আছিল ই প্ৰথম পদক্ষেপ। এই জাগৰণৰ ফলস্বৰূপে ট্ৰাইবেল লীগ, ট্ৰাইবেল সংঘৰ জন্ম হৈছিল।

#### ০.০২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

উনবিংশ শতিকাৰ শেষ ভাগ আৰু বিংশ শতিকাৰ আদি ভাগত অসমত জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মাজত সমস্যাসমূহ সমাধানৰ বাবে জাতীয় জাগৰণৰ সৃষ্টি হৈছিল। উজনি অসমৰ ডাঙৰীতেই পোনপ্ৰথমে কছাৰীসকলে একত্ৰিত হৈ নিজৰ জাতিৰ উন্নতিৰ বাবে প্ৰস্তুতি আৰম্ভ কৰিছিল তাৰ লগে লগে তেওঁলোকৰ মাজত এক বৌদ্ধিক জাগৰণৰ সৃষ্টি হৈছিল। সেইসময়তে নামনি অসমৰ গোৱালপাৰাত জনজাতিসকলৰ মাজত বৌদ্ধিক জাগৰণৰ ফলত আন্দোলনৰ আৰম্ভ হৈছিল, সেই সম্পৰ্কে সম্প্ৰতি বহুতো আলোচনা পোৱা যায়। কিন্তু সমান্তৰালভাৱে উজনিৰ বৰ্তমানৰ ডাঙৰীৰ বৌদ্ধিক আলোচনা হোৱা নাই। গতিকে এই গৱেষণা পত্ৰৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে-

■ ডাঙৰী অঞ্চলৰ বৌদ্ধিক উত্তৰণ আৰু তাত হোৱা জনজাতি উত্থানৰ দিশসমূহ গৱেষণাৰ

জৰিয়তে পোহৰলৈ অনা।

■ এতিয়ালৈকে আলোচনালৈ নহা ডাঙৰীৰ পৰা প্ৰকাশ পোৱা প্ৰভাতী, ৰাইজ আলোচনীৰ পৰিচয়মূলক আলোচনা আগবঢ়োৱা।

অসমৰ জনজাতিসকলৰ বৌদ্ধিক উত্তৰণে অসমীয়া সমাজ, সংস্কৃতি আৰু বৌদ্ধিক ক্ষেত্ৰত সমৃদ্ধ কৰিছে। এইফালৰ পৰা বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

উজনি অসমৰ ডাঙৰীত বিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণি অৱস্থাতে সকলো কছাৰী জনজাতিয়ে একত্ৰিত হৈ সামাজিক, ৰাজনৈতিক, বৌদ্ধিক দিশৰ উন্নতিৰ বাবে আগবাঢ়ি আহি বিভিন্ন দল-সংগঠন, বিভিন্ন অনুষ্ঠান-প্ৰতিষ্ঠানৰ স্থাপন কৰিছিল। এই অনুষ্ঠানসমূহৰ মুখপত্ৰ হিচাপে বহুতো আলোচনী প্ৰকাশ কৰাৰ লগতে শৈক্ষিক পৰিৱেশৰ সৃষ্টি কৰিলে। তেওঁলোকৰ উত্থানে অসমৰ জাতীয় জীৱনত বাৰুকৈয়ে প্ৰভাৱিত কৰিছিল। গতিকে বিষয়টো অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

#### মূল আলোচনা :

অসমৰ বৰ্তমান তিনিচুকীয়া জিলাত অৱস্থিত ডাঙৰী গাওঁখনক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই বৃহৎ ডাঙৰী অঞ্চলটোক অভিহিত কৰিব পাৰি। ই তিনিচুকীয়া জিলাৰ টাউনৰ পৰা পূবে প্ৰায় ৪৯/৫০ কি. মি. দূৰত্বত অৱস্থিত। ডাঙৰী জনজাতীয় লোকসকলৰ বাসস্থান আছিল। বাগানত কৰ্মৰত জনজাতীয় লোকসকলৰ প্ৰচেষ্টাত ডাঙৰীত জনজাতীয় লোকসকলৰ উন্নতিৰ হকে *ডাঙৰী কছাৰী যুৱ সন্মিলনী* (১৯১৭) গঠন কৰা হয়। অসমৰ নামনিত এফালে জনগোষ্ঠীয় আন্দোলন তথা বৌদ্ধিক এক জাগৰণৰ আৰম্ভ হৈছিল তাৰ সমান্তৰালকৈ উজনি অসমৰ ডাঙৰীত উনবিংশ শতিকাৰ শেষ দশক আৰু বিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণিত বৌদ্ধিক জাগৰণৰ সৃষ্টি হৈছিল। জনজাতীয় লোকসকলে বিশেষকৈ শিক্ষাৰ প্ৰচাৰ-প্ৰসাৰ, আলোচনী প্ৰকাশ লগতে সাংস্কৃতিক পৰিৱেশ সৃষ্টিত গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছিল। এই বৌদ্ধিক জাগৰণত জনজাতীয় দল-সংগঠনৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। *ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলন*, *অসম কছাৰী যুৱক সন্মিলনে* জনজাতীয় লোকৰ উত্তৰণৰ লগতে শৈক্ষিক দিশত অধিক গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। ডাঙৰীত বিশেষকৈ কু-সংস্কাৰ, অন্ধবিশ্বাস, মদ আৰু কানিৰ প্ৰচলন বন্ধ কৰা, নিৰক্ষৰতা আদি সমস্যা দূৰ কৰিবৰ অৰ্থে জনজাতীয় সতৰ্কতা, সজাগতা বৃদ্ধি পাইছিল। জনজাতীয় লোকৰ মাজত শিক্ষাৰ প্ৰচাৰ কৰিবৰ অৰ্থে ১৮৬০/৭০ দশকত লহৰ কছাৰীয়ে নিজ ঘৰতে টোল পাতি স্থানীয় ছাত্ৰ-ছাত্ৰীক শিক্ষা প্ৰদান কৰিছিল। এই সম্পৰ্কে কেৱল মাত্ৰ গকুল সোনোৱালৰ প্ৰবন্ধত পোৱা যায়। সেই বিদ্যালয়ে ১৮৮০/৮৫ চনত এই 'টোলে' ডাঙৰী প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ৰূপে আত্মপ্ৰকাশ কৰে। প্ৰায় ১৯১৮/২০ চনলৈকে 'ডাঙৰী প্ৰাথমিক বিদ্যালয়' আছিল সমগ্ৰ অঞ্চলটোৰ একমাত্ৰ প্ৰাথমিক বিদ্যালয়। যুৱচামৰ প্ৰচেষ্টাতে ডাঙৰীৰ লোকসকলে শিক্ষাৰ পোহৰ দেখিছিল। *ডাঙৰী অঞ্চলত যুৱকসকলক ওচৰে-পাজৰে স্থগিত হোৱা চাহ বাগিচাসমূহৰ 'বাবু' চাকৰি হস্তগত কৰা, বিদ্যালয় স্থাপনকাৰীসকলৰ অন্যতম একান্ত বাঞ্ছা আছিল। এই উদ্দেশ্য প্ৰায় সফল হৈছিল আৰু পৰৱৰ্তীকালত বাগিচাত বাবু চাকৰি কৰা চাকৰিয়ালসকলে ডাঙৰী তথা ডিব্ৰুগড় অঞ্চলত সোনোৱাল কছাৰীসকলক অৰ্থনৈতিক বুনীয়াদ তথা মেৰুদণ্ড স্বৰূপ হৈছিল। সেইয়াই ডাঙৰী অঞ্চলত জনজাতি জাগৰণ আৰম্ভণ। সেই আৰম্ভণিৰ ক্ৰিয়া প্ৰতিক্ৰিয়া আজিও চলি আছে, চলি থাকিব।*

(সোনোৱাল, সোনোৱাল (সম্পা.) ২৩৯) সেইসময়ত কেইজনমান মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীৰ লোক জাতিৰ উন্নতিৰ হকে ওলাই আহিল। তেওঁলোকৰ প্ৰায়ভাগেই আছিল শিক্ষিত আৰু বাগানত চাকৰি কৰা লোক। তেওঁলোকে স্বইচ্ছাই কল্যাণৰ বাবে আগবাঢ়ি আহিছিল আৰু আন আন লোককো এই জাগৰণত জড়িত হ'বলৈ অনুপ্ৰেৰণা যোগাইছিল। তালাপ চাহ বাগিচাৰ বৰকেৰাণী ভৰত চন্দ্ৰ খাখলাৰী, পাভজান চাহ বাগিচাৰ বৰকেৰাণী কীৰ্ত্তিনাথ খাখলাৰী, ডিব্ৰুগড় জামিৰা গাঁৱৰ যুৱক সোনাবাম বাগলাৰী (ডাঙৰী মাইনৰ স্কুলৰ প্ৰধান শিক্ষক), ডাঙৰী গাঁৱৰ দণ্ডীধৰ ফাটোৱালী সহ ডাঙৰী অঞ্চলৰ তলত উল্লেখ কৰা পুজনীয় ব্যক্তিসকল (ডাঙৰী কছাৰী সন্মিলনত নথিত পোৱা মতে): অনিৰাম (আনন্দ) বাঘলাৰী (দাস), ডাঙৰী গাঁও, সাধন চন্দ্ৰ শঙ্খনুৰীয়া (বাগিচাৰ বাবু, লাফাংকলা গাঁও), কল্পবাম চাংখৰীয়াৰী (সৰু ধাদুম), হবিহাস ডেকাৰী (সৰু ধাদুম), সোণা কেঁকুৱাৰী, লম্বোধৰ সোনোৱাল, বাপাবাম ফাটোৱালী (ডাঙৰী গাঁও), সোণাবাম, বাবুধৰ কেঁকুৱাৰী, থানেশ্বৰ পাটোৱালী, দধিবাম সোনোৱাল, উমাবাম সোনোৱাল, পোৰণ সোনোৱাল, গৌৰীকান্ত কুমৰাৰী, উপেন্দ্ৰনাথ সোনোৱাল, মহেন্দ্ৰবাম দাস, শ্ৰী বুদ্ধিনাথ ফাটোৱালী, বলোকান্ত দাস, কেশৱ চন্দ্ৰ সোনোৱাল, দৌলত ফুটকাৰী, নগেন্দ্ৰনাথ ফাটোৱালী, তিলক চন্দ্ৰ দাস, শ্ৰী লীলাৰাম, মণিন্দ্ৰনাথ বৰশইকীয়া, হৰেন্দ্ৰনাথ বাগলাৰী, মিনাৰাম, সাধন চন্দ্ৰ এফ. বি. পাছ (নথিত পোৱা মতে), দেৱেশ্বৰ, বৈদ্যনাথ, দণ্ডীধৰ গগৈ, কফুল গগৈ, গোবিন্দ প্ৰসাদ হাজৰিকা, ইন্দ্ৰনাথ কুমৰাৰী, গঙ্গাধৰ সোনোৱাল (ধাদুম গাঁও), ধৰ্ম গোহাঁই (খলা গাঁও), ভোলা (বৰপথাৰ), কোলাধৰ, পিথুবৰ (বিহিয়া), শুক্ৰেশ্বৰ, কালিৰাম তহবি (লাওপাতি), ভোৱাৰাম ঘজিয়াৰী, পদ্মনাথ দাস, (হানচৰা টি.ইষ্টেট), জগন্নাথ বাট্টেৰী, (ডাঙৰী), কেশৱ চন্দ্ৰ শইকীয়া (ডাঙৰী বাগান), সোন্দৰ সোনোৱাল (চেঙ্গেলী গাঁও), শ্ৰী দণ্ডীৰাম শইকীয়া, টয়েত সোনোৱাল, (বৰধাদুম), যজ্ঞোৰাম লাৰাঙ্গী (ডাঙৰী), ভাগীৰথ সোনোৱাল (মেগেলা), ৰত্নধৰ (বৰপথাৰ), যদুনাথ বাঘলাৰী (ডাঙৰী), যজ্ঞোৰাম লাৰাঙ্গী (ডাঙৰী), কৃষ্ণৰাম (ডাঙৰী), ভূগৰাম মাক্ৰাৰী (ডাঙৰী), নন্দীৰাম শইকীয়া (বিহিয়া), শোকবৰ গাথিৰী (বিহিয়া), কালিৰাম তুযুৰী (লাওঁপাতি), ভোৱাৰাম সৃজৰাৰী (লাওঁপাতি), বালিৰাম ঠেকমালী (বৰপথাৰ), লভৈৰাম ফেদালি (বৰধাদুম), ধৰ্মেশ্বৰ গোহাঁই (খলা), জয়ৰাম ভকট

আদি এই জনজাতীয় জাগৰণত জড়িত আছিল। এই নামসমূহ গকুল সোনোৱালে সংগ্ৰহ কৰিছিল। সম্ভৱতঃ তেখেতে সেই সময়ৰ কিছু নথি-পত্ৰ সংগ্ৰহ কৰিছিল। তেখেত যিহেতু ডাঙৰীৰে আছিল আৰু সম্ভৱতঃ তেওঁ উক্ত দুই-এজন ব্যক্তিক লগ পাইছিল। যাৰ বাবে তেখেতে শুদ্ধ তথ্য দিব পাৰিছিল।

ডাঙৰী কছাৰী যুৱ সন্মিলনীৰ লগত কেৱল ডাঙৰী বা ওচৰ ঠাইসমূহৰ লোকসকল জড়িত আছিল তেনে নহয়, পৰৱৰ্তী সময়ত অন্য ঠাইৰ বহুতো জনজাতীয় লোক ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ লগত জড়িত হৈছিল। সাধনচন্দ্ৰ দাস (লাফাংকলা), মিঠাৰাম বড়া (লেপেতকটা, ডিব্ৰুগড়), উম্বৰুধৰ শইকীয়া (গৰিয়াবাম), ভীমবৰ দেউৰী (ৰজাবাৰী, ডিব্ৰুগড়), হেৰম্ব বড়া (ডিব্ৰুগড়, বিজয় শইকীয়া (খোৱাং), জাইবৰ কাননগু (খাটোৱা), কমলা মিৰি (গোলাঘাট), কাৰ্চচন্দ্ৰ দলে (মাজুলি), চাৰুচন্দ্ৰ দলে (চকুৱাখানা), মুহি মিৰি, ৰবিচন্দ্ৰ কছাৰী, পৰশুৰাম ইংটি, ৰূপনাথ ব্ৰহ্ম, বেলবুং চুবোদাৰ, ৰবি কছাৰী (মাজুলি), সতীশ চন্দ্ৰ বসুমতাৰী, অনিৰাম বসুমতাৰী, বেথাবাম পেগু, খৰসিং টোৰাং, চুৰৰাম কছাৰী, ভগিৰাম ডেকা, ধীৰসিং দেউৰী, মদাৰাম ব্ৰহ্ম, জলধৰ ব্ৰহ্ম, বাধিতৰাম বড়ো, হিতৰাম চৌধুৰী, ৰত্নেশ্বৰ খেৰকাটাৰী, ইন্দুমতী দাস বড়ো (গুৱাহাটী), আহিনা ৰাভা, লক্ষেশ্বৰ বসুমতাৰী, ধনবৰ পাটৰ আদি।

এই কেইজন ব্যক্তি জড়িত আছিল মূলতে ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ লগত। যাদৱ চন্দ্ৰ খাখলাৰীৰ ককায়েক ভৰত চন্দ্ৰ খাখলাৰীৰ যত্নত ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনী গঠন হয় ১৯১৭ চনত। এই সংগঠনটোৰ প্ৰতিষ্ঠাৰ লগত জড়িত কেইজনমান উল্লেখযোগ্য ব্যক্তি হৈছে: সোনাবাম বাঘলাৰী, কীৰ্ত্তিনাথ খাখলাৰী, যাদৱ চন্দ্ৰ খাখলাৰী, দণ্ডীধৰ ফাটোৱালী, দণ্ডীৰাম দাস। কীৰ্ত্তিনাথ খাখলাৰী আৰু দণ্ডীধৰ ফাটোৱালী আছিল সাহিত্যিক দিশত আগবঢ়া। তেওঁলোকে শিক্ষাৰ প্ৰচাৰৰ ওপৰত অধিক গুৰুত্ব দিয়াৰ লগতে সাহিত্যিক দিশৰ ক্ষেত্ৰত আগবঢ়াই লৈ যোৱাৰ চেষ্টা কৰিছিল যাৰ উদ্দেশ্যে বহু কেইখন আলোচনী প্ৰকাশ কৰিছিল। গকুল সোনোৱালে ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ উদ্দেশ্যে ব্যাখ্যা কৰিছে এনেদৰে: ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ উদ্দেশ্যে আৰু লক্ষ্য আছিল নিজ আত্ম পৰিচয় যাব খোজা অৱক্ষয়ী আত্মজাহ প্ৰৱৰ্ত্তাৰ পৰা নিজকে মুক্ত কৰি সোনোৱাল সকলে সোনোৱাল কছাৰী বুলি চিনাকি

দি আত্ম প্ৰত্যয় ঘূৰাই অনা, জাতীয় গৌৰৱ প্ৰতিপন্ন কৰা, নিৰক্ষৰতা, কু সংস্কাৰ, অন্ধবিশ্বাস, সংকীৰ্ণতাবোধ (নীচাত্মিকাবোধ) সমাজৰ পৰা দূৰ কৰা, জাতিটোক পঙ্গু কৰি দিয়া কানি বৰবিহ আৰু মদ নিবাৰণ, ডাঙৰী গাঁৱত থিতাপি লোৱা আগ্ৰাসী বহিৰাগতক উচ্ছেদ কৰা, ডাঙৰী গাঁৱত স্থাপন কৰা 'চেৰাপ ভাটি' গাঁৱৰ পৰা উচ্ছেদ কৰা, বৌদ্ধিক বিকাশৰ বাবে ক্লাৱঘৰ, লাইব্ৰেৰী স্থাপন, সাহিত্য চৰ্চা, নাটক ৰচনা অভিনয়, থিয়েটাৰ আদি সুকুমাৰ কলাৰ চৰ্চা আৰু বিকাশ আৰু গাঁৱে গাঁৱে বিদ্যালয় স্থাপনৰ জৰিয়তে শিক্ষাৰ প্ৰসাৰ। (ঐ, ২৪২) ইয়াত তেখেতে সোনোৱাল জাতিৰ প্ৰচেষ্টা বুলি বুজাব বিচাৰিছে। আচলতে তেওঁলোকৰ মাজত কেৱল সোনোৱাল কছাৰী জাতিৰ উন্নতিৰ ভাৱ নাছিল তেওঁলোকৰ উদ্দেশ্য আছিল কছাৰী জাতিৰ সামগ্ৰিক উন্নয়ন কৰা। সেইবাবে তেওঁলোকে কছাৰী সন্মিলন বুলি নামাকৰণ কৰিছিল। নিজৰ মাজতে ভাগ হোৱাতো তেওঁলোকৰ আদৰ্শ নাছিল। ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনী কম-বেছি পৰিমাণে সফল হৈছিল বুলিও তেখেতে উল্লেখ কৰিছে: 'আসাম সংৰক্ষণী সন্মিলন' ৰ প্ৰৱল বিৰোধিতা স্বত্বেও, তীব্ৰ প্ৰতিবাদ আৰু আন্দোলনৰ ফলত আউনীআটী সত্ৰাধিকাৰে সোনোৱাল কছাৰীসকলক নীচ জাতি বুলি গণ্য কৰাটো পৰিহাৰ কৰে আৰু বিবিধ কুমাৰ বৰুৱাই তেখেতৰ প্ৰৱন্ধত সোনোৱাল কছাৰীসকলক তলখাপৰ হিন্দু ম্লেছ' বুলি অভিহিত কৰা অপমানজনক বাক্য প্ৰত্যাহাৰ কৰে আৰু ক্ষমা খোজে। ইয়াৰ ফলত সোনোৱাল কছাৰীসকলৰ জাতীয় গৌৰৱবোধ শক্তিশালী হয়, আগ্ৰাসী বহিৰাগতসকলক ডাঙৰী গাঁৱৰ পৰা উচ্ছেদ কৰা হ'ল, 'চেৰাপ ভাটি' ডাঙৰী গাঁৱৰ পৰা উঠাই দিয়া হ'ল, মদ নিবাৰণ সম্ভৱ নহ'লেও কানিৰ ব্যৱহাৰ উল্লেখযোগ্যভাবে হ্রাস পালে, সাহিত্য চৰ্চাৰ যোগেদি সাহিত্যিক পেঞ্চনাৰ দণ্ডীধৰ ফাটোৱালীৰ দৰে সাহিত্যিক সৃষ্টিৰ পথ সুগম হয়। (ঐ, ২৪২)

ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ এটা উল্লেখযোগ্য অৱদান হৈছে আলোচনী প্ৰকাশ। যাদৱ চন্দ্ৰ খাখলাৰীৰ ককায়েক যদুনাথ খাখলাৰীৰ পুত্ৰ কীৰ্ত্তিনাথ খাখলাৰীয়ে এই সংগঠনৰ মুখপত্ৰ হিচাপে প্ৰভাতী নামেৰে এখন আলোচনী ১৯২৫ চনত প্ৰকাশ কৰে। গকুল সোনোৱালে দিয়া তথ্য মতে এইখন দহবছৰ প্ৰকাশ হৈ বন্ধ হৈ যায়। এই আলোচনীখন কিন্তু বৰ্তমান পাবলৈ নাই যদিও প্ৰয়াত ভুৱন চন্দ্ৰ শইকীয়া ঘৰৰ পৰা কেইখনমান পেজ উদ্ধাৰ কৰা

হয়। তেখেত আছিল ডাঙৰী উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয়ৰ প্ৰথমগৰাকী অধ্যক্ষ। লগতে তেখেত মহেশ্বৰ নেওগৰ সহপাঠী আছিল। তেখেতে বহু কবিতা, প্ৰবন্ধ ৰচনা কৰিছে যদিও বৰ্তমান উপলব্ধ নহয়। এই আলোচনীখনৰ সম্পাদনা কৰিছিল কীৰ্ত্তিনাথ খাখলাৰী আৰু সহকাৰী সম্পাদক আছিল দ্বাৰিকা নাথ ৰাভা। এই আলোচনীখন তিনিচুকীয়া জিলাৰ আৰ্য্য প্ৰেছৰ পৰা প্ৰকাশ হৈছিল। প্ৰেছটো আছিল লক্ষেশ্বৰ দাস নামৰ এজন ব্যক্তিৰ। উল্লেখযোগ্য যে এই প্ৰেছটো ১৯১৬ চনত স্থাপন কৰা হৈছিল আৰু বৰ্তমানো এই প্ৰেছৰ কাম চলি আছে। আলোচনীখনৰ প্ৰকাশকৰ দায়িত্বত আছিল সোনোৱাল সোনোৱাল। আলোচনীখনৰ কেইটামান পেজ উদ্ধাৰ হোৱাত তাত প্ৰভাতীৰ নিয়মাৱলীসমূহ পোৱা গৈছে:

১। প্ৰভাতী প্ৰতি মাহৰ অন্তৰে মাহৰ শেষ সপ্তাহত ওলাব।

২। বছৰেকীয়া বৰঙনি ডাক-মাছুলেৰে সৈতে ২.৯০ অনা। প্ৰতি সংখ্যাৰ মূল্য মাছুলে সৈতে পাঁচ অনা।

৩। কোনো গ্ৰাহকে কাগজ নেপালে অনুগ্ৰহ কৰি সেই মাহৰ ভিতৰতে জনাব পাচত কাগজৰ মূল্য পাঁচ অনা দি লব লাগিব।

৪। প্ৰভাতীলৈ লিখা প্ৰৱন্ধাদি কাগজৰ এপিঠিত লিখি সম্পাদকৰ নামে পঠাব।

৫। প্ৰভাতীত কৃষি, শিল্প, সাহিত্য আদি সকলো বিধৰ প্ৰবন্ধই ঠাই পাব। বিশেষকৈ সামাজিক বিষয়, গাঁৱলীয়া স্বাস্থ্যকথা, স্বাস্থ্যনীতি, কৃষি কথা, বেহা বেপাৰ ইত্যাদিৰ আলোচনা থাকিব। ভাল উপন্যাস, গল্প, কবিতা, ভ্ৰমন কাহিনী আদিক সাদৰে ঠাই দিয়া হব।

৬। অশ্লীল প্ৰৱন্ধাদি ব্যক্তিগত আক্ৰমণলৈ লিখা কোনো বিষয় ছাপা নহব।

প্ৰভাতীসম্পৰ্কে চেতনা আলোচনীৰ 'পোৱা কিতাপৰ সংক্ষেপ পৰিচয়' শীৰ্ষক প্ৰবন্ধটোত এজন লেখকে প্ৰকাশ কৰিছে এনেদৰে: প্ৰভাতী শ্ৰীযুত কীৰ্ত্তিনাথ দাস সম্পাদিত এখন মাহেকীয়া কাকত। ১ম বছৰৰ ১ম সংখ্যা মাত্ৰ ওলাইছে। "প্ৰভাতীৰ" উদ্দেশ্য দিয়া হৈছে খেতি, স্বাস্থ্য, ব্যৱসায়, শিল্প আদিৰ আলোচনাৰে অসমীয়া সমাজক এই বিলাক বিষয়ত উদ্যোগী কৰি দেশৰ ধন, জন, স্বাস্থ্য, সুখ বঢ়োৱা। প্ৰভাতীৰ মহৎ উদ্দেশ্যক আমি সাদৰে সম্ভাষণ জনাইছোঁ। কাকতখনৰ স্থায়িত্ব সম্বন্ধে চলাওঁতা সকলক

ভালদৰে চেপ্টা কৰিবলৈও খাটিলোঁ। ১ম সংখ্যা 'প্ৰভাতী' দেখি আমি একো মতামত দিব নোখোজোঁ, আশা কৰো চলাওঁতা সকলে সকলো বিষয়ে 'প্ৰভাতী'ৰ উন্নতি কৰিবলৈ চেপ্টা কৰিব। 'পোৱা কিতাপৰ সংক্ষেপ পৰিচয়'- (ষষ্ঠ বছৰ দশম সংখ্যা চেতনা)

আকৌ ডিম্বেশ্বৰ নেওগে প্ৰভাতী সম্পৰ্কে মত দিছে এনেদৰেঃ প্ৰভাতী অসমৰ বড়ো কছাৰীসকলৰ মুখপাত স্বৰূপে এই মাহেকীয়া আলোচনী শ্ৰীকীৰ্তিনাথ খাখলাৰী সম্পাদিত হৈ ১৯২৬ ত ওলায়। কছাৰীসকলৰ পুৰণি কীৰ্তি আৰু বুৰঞ্জীমূলক কথাৰ বাহিৰেও সাধাৰণ আলোচনাৰ নানা প্ৰবন্ধই ইয়াত ঠাই পাইছিল। ( ডিম্বেশ্বৰ নেওগ বচনাৱলী, ২৫২)

প্ৰভাতী আলোচনীয়ে বহুকেইজন সাহিত্যিকৰ সৃষ্টি কৰিলে। তাৰ ভিতৰত কীৰ্তিনাথ খাখলাৰী আৰু দণ্ডীৰাম দাস, দণ্ডীধৰ ফাটোৱালী, ভূৱনচন্দ্ৰ শইকীয়া অন্যতম। কিন্তু এই আলোচনীখন বৰ্তমান উপলব্ধ নোহোৱাৰ বাবে বহুতো সাহিত্যিক আৰু লেখনীৰ তথ্য পোৱা নাযায়। যি কেইখন পে'জ প্ৰভাতীৰ উদ্ধাৰ কৰা হৈছে, তাতেই বহুকেইজন লেখকৰ লেখা পোৱা গৈছে। আনকি দণ্ডীধৰ ফাটোৱালীৰ উদ্ধাৰ নোহোৱা আৰু তেখেতৰ ৰচনা সম্ভাৰত সন্নিৱিষ্ট নোহোৱা লেখা পোৱা গৈছে। ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ এজন অন্যতম কৰ্মীয়েই আছিল দণ্ডীধৰ ফাটোৱালী। তেখেতৰ অন্যতম ৰচনা হৈছে চপলা (১৯২২), যুগল-মূৰ্তি (১৯২৪), শত্ৰুদমন (১৯২২)। ইয়াৰে চপলা আৰু যুগল-মূৰ্তি হৈছে উপন্যাস আৰু শত্ৰুদমন হৈছে নাটক। ইয়াৰ উপৰিও তেখেতে মইনামৰ উপন্যাস, নৱকলি, আমিও স্বাধীন নে? নামৰ কবিতা পুথি, নিলাম্বৰ, গেলাত টেঙা, সৰস্বতী পূজা নামেৰে পূৰ্ণাঙ্গ নাট আৰু প্ৰহসনৰ নাম পোৱা যায় যদিও বৰ্তমান এই কেইখন পোৱা নাযায়। তেখেতৰ সম্পৰ্কে পৰীক্ষিত হাজৰিকাই মত দিছে এনেদৰেঃ দণ্ডীধৰ ফাটোৱালী আছিল সম্পূৰ্ণ গান্ধীবাদী, স্বাৱলম্বী, দৃঢ়মনা, সংস্কাৰমুখী, সংগঠনকামী, সমাজসেৱী, সাহিত্য প্ৰেমী, নিৰহঙ্কাৰী আৰু উদাৰমনা পুৰুষ। সৎ সাহস, দৃঢ় মনোবল, স্পষ্টবাদিতা, স্বার্থত্যাগ আৰু কৰ্ম-নিষ্ঠতা আছিল তেখেতৰ চাৰিত্ৰিক অলঙ্কাৰ। সাহিত্যিক হিচাপে তেখেতৰ আছিল এটি সৰল নিৰ্মেষ মন, স্বাভাৱিক সৌন্দৰ্য্যৰ বৰ্ণনা ক্ষম শক্তি আৰু সাধাৰণ চহা লোকক জনাৰ আৰু আনকো জানিবলৈ দিয়াৰ এক শিল্পীসুলভ অভিব্যক্তি। (বৰেণ্য ব্যক্তিত্ব দণ্ডীধৰ ফাটোৱালী সৃষ্টি আৰু চেতনা, ২৭)

ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ লগত অসমৰ বিভিন্ন ঠাইৰ জনজাতীয় লোকসকলে যোগদান দিছিল। অসমৰ সকলো কছাৰীলোকক একত্ৰিত কৰাৰ উদ্দেশ্যেৰে ১৯২৭ চনত সকলো লোকৰ প্ৰচেষ্টাত আসাম কছাৰী যুৱক সন্মিলনী গঠন কৰা হয় আৰু লগে লগে ডাঙৰী কছাৰী যুৱক সন্মিলনী ভঙ্গ কৰা হয়। এই সন্মিলনীৰ প্ৰথম প্ৰতিষ্ঠাপক সম্পাদক আছিল যাদৱ চন্দ্ৰ খাখলাৰী। ডাঙৰী শাখা আসাম কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ প্ৰথম সভাপতি আৰু সম্পাদক আছিল যথাক্ৰমে ভৰত চন্দ্ৰ খাখলাৰী আৰু দণ্ডীধৰ ফাটোৱালী। আসাম কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ অধিবেশন ডাঙৰী, খাটোৱা খেৰেমীয়া আৰু তিতাবৰত বহিছিল। এই অধিবেশন সমূহৰ বিৱৰণ যাদৱ চন্দ্ৰ খাখলাৰীৰ টোকাবহীত পোৱা যায়। বাপ্পীবৰ নীলমণি ফুকন, লংকেশ্বৰ বৰুৱা, কনক চন্দ্ৰ শৰ্মা, আনন্দেশ্বৰ চক্ৰৱৰ্তীয়ে আসাম কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ সভাপতিত্ব কৰিছিল।

আসাম কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ মুখপত্ৰ হিচাপে কীৰ্তিনাথ খাখলাৰীৰ সম্পাদনাত ১৯৩৩ চনত ৰাইজ নামেৰে এখন আলোচনী প্ৰকাশ হয়। প্ৰভাতীখন দহবছৰ প্ৰকাশ হোৱাৰ পাছত ৰাইজখন প্ৰকাশ হয়। যদিও ৰাইজ খন বেছি বছৰ প্ৰকাশ নহ'ল। প্ৰভাতীৰ দৰে ৰাইজত বহু লেখকৰ লেখা প্ৰকাশ হৈছিল। কেৱল জনজাতীয়মূলৰ লেখকৰ লেখাই ইয়াত প্ৰকাশ হৈছিল এনে নহয় অন্য সাহিত্যিকৰ লগতে অন্য বিষয়ৰ ৰচনাও প্ৰকাশ হৈছিল।

দণ্ডীধৰ ফাটোৱালীৰ অসম কছাৰী সন্মিলনৰ দ্বাদশ অধিবেশনৰ সভাপতিৰ অভিভাষণ পোৱা যায়। তাত তেখেতে সন্মিলনীৰ আৱশ্যকতা, কছাৰীৰ ধৰ্ম, কছাৰী জাতিৰ শিক্ষা, অভাৱ, অভিযোগ সম্পৰ্কে বিশ্লেষণ কৰিছে। ১৯২৭ চনৰ পাছত কছাৰীসকলে নিজক চিনাকি দিয়াৰ আৰু উপাধি লিখাৰ কথা উল্লেখ কৰিছে। ঈশ্বৰৰ অশেষ কৰুণা যে ১৯২৭ চনত উজনি অসমৰ ডাঙৰীত অসম কছাৰী সন্মিলনীৰ জন্ম হয় আৰু এই চাল চিগা খুদ ডিকছৰেই সন্মিলনীৰ প্ৰথম গুৰিয়াল হ'বলৈ পোৱাত নিজক নিজে আজিলৈকে ধন্য মানিছোঁ। ডাঙৰীত বহা প্ৰথম সন্মিলনী লৈ গোৱালপাৰাৰ পৰা শদিয়ালৈকে সকলো ঠালৰ কছাৰী বা ভাই-ককাই গৈছিল আৰু তেতিয়াৰ পৰাই ঠায়ে ঠায়ে হৈ থকা কছাৰী সম্প্ৰদায় বিলাক জোৰা লাগি একে সুখ-দুখৰ ভাগী হয়। সেই সন্মিলনীতেই নিজক কছাৰী বুলি চিনাকি দিবলৈ দৃঢ়ভাৱে মান্তি হয় আৰু সোনোৱাল সম্প্ৰদায়

মানুহে নামৰ পিছত 'দাস' লিখাটো অপমানিত বুলি উঠাই দি তাৰ পৰিৱৰ্তে নামৰ শেষত নিজ নিজ খেল বা গোত্ৰৰ নাম লিখিবলৈ প্ৰস্তাৱ লয় আৰু আজিলৈকে তাক আখৰে আখৰে পালন কৰি আহিছে। যি কছাৰী জাতি সন্মিলনীৰ জন্মৰ পাৰ্ব নিজক নিজে হয় তাৰি চিনাকি দিবলৈ লাজ পাইছিল, সেই কছাৰীয়েই আছি নিজক কছাৰী বুলি গৌৰৱ কৰা দেখি শদিয়াৰ পৰা গোৱালপাৰালৈকে সকলো কছাৰী সম্প্ৰদায়ে একেডাল স্নেহৰ ডোলেৰে মেৰ খাই একেলগে কাম কৰি গোটেই অসমীয়াৰ ভিতৰত গৌৰৱেৰে নিজৰ ঠাই আৰু সন্মান ৰক্ষা কৰা দেখি সঁচাকৈয়ে সন্মিলনীৰ সং আদৰ্শৰ প্ৰতি মূৰ আপোনা-আপুনি দোঁ খায়। (অসম কছাৰী সন্মিলনৰ দ্বাদশ অধিবেশনৰ সভাপতিৰ অভিভাষণ)

তেখেতে এই বক্তৃতাত কছাৰীসকল হিন্দু সেই কথা প্ৰতিপন্ন কৰিব বিচাৰিছে। তাৰ বাবে তেখেতে অনেক যুক্তি দাঙি ধৰিছে। কছাৰী জাতিৰ শিক্ষাৰ বাবে সেই সময়ত তেওঁলোকে ছয় পাই উপৰুৱা কৰ লগাইছিল। যাতে সেই টকাৰে কছাৰী ছাত্ৰ-ছাত্ৰীৰ শিক্ষাৰ বাবে খৰচ কৰিব পাৰে। কেৱল সেয়াই নহয় তেখেতে বিশ্ববিদ্যালয়ৰ প্ৰয়োজনৰ কথাও উল্লেখ কৰিছে। তদুপৰি আমাক বা সদৌ অসমীয়াক অতি সোনকালে অসমীয়া ঠাঁচত হোৱা বিশ্ববিদ্যালয় এখনি লাগে। বিশ্ববিদ্যালয় নথকাত অসমীয়াৰ ভাষা-কৃষ্টি ইত্যাদি দিনক দিনে দুৰ্বল হ'বলৈ ধৰিছে। বৰ্তমান সদৌ অসমীয়াৰ খৰ আন্দোলনৰ ফলত অসম বিশ্ববিদ্যালয় হ'ব আশা দেখা হৈছে। সেই বিশ্ববিদ্যালয় অসমৰ প্ৰাচীন গৌৰৱৰ ঠাই গৌহাটীত হ'বই লাগিব। তাৰ বাহিৰে কোনো ঠাইতে আমাক নালাগে। বিশ্ববিদ্যালয় হোৱাৰ লগে লগে সংখ্যা অনুপাতে কৰ্মচাৰীকো যথেষ্ট আসন বিশ্ববিদ্যালয়ৰ চিনেট আৰু চিণ্ডিকেটত লাগিব। আমাৰ দাবী আগতে জনাই দিছো। ভাগত নেপালে নহ'বই। আমাক বা সদৌ অসমীয়াক অকল বিশ্ববিদ্যালয়ে নহয় হাইকোর্ট, ইঞ্জিনিয়াৰিং কলেজ, মিলিটেৰী কলেজ ইত্যাদি অতি সোনকালে লাগে আৰু সেই সকলো সজ অনুষ্ঠান বিলাক পাতিবলৈ হ'লে ব্ৰহ্মপুত্ৰ ভৈয়ামত উপযুক্ত ঠাইতহে হ'ব লাগিব আৰু তেতিয়াহে সেই অনুষ্ঠান বিলাক অসমীয়াৰ কাৰণেহে কৰা হৈছে বুলি বুজিব পাৰিম। সেই বিলাক সহ অনুষ্ঠানৰ সকলো আসন অসমীয়াৰ দ্বাৰাই পূৰাব লাগিব অসমীয়াৰ ভিতৰত সংখ্যা অনুপাতে আসন দিবলৈ কছাৰীক পাহৰিলে নহ'ব। (অসম কছাৰী সন্মিলনৰ দ্বাদশ অধিবেশনৰ সভাপতিৰ অভিভাষণ)

তেখেতৰ মূল আদৰ্শ আছিল সকলো লোকক একত্ৰিত কৰা। তেখেতৰ মতে অসমীয়া প্ৰথম তাৰ পাছতহে কছাৰী। শেষত কওঁ, আমি প্ৰথমে অসমীয়া, তাৰ পিছত হে কছাৰী। অসমৰ সুখ-দুখেই আমাৰ সুখ আৰু দুখ। অসমত যিমান বিলাক অসমীয়া জাতিয়েই নাথাকক লাগে, সকলো আমাৰ ককাই-ভাই। অসমৰ দাঁতিকাষৰীয়া পৰ্বতবাসী আবৰ, মিচিমি, খামটি, চিংফৌ আদিও অসমীয়া। তেওঁ বিলাককো নিজৰ ভাই-ককাই বুলি মৰম-স্নেহ কৰিব লাগে। (অসম কছাৰী সন্মিলনৰ দ্বাদশ অধিবেশনৰ সভাপতিৰ অভিভাষণ)

অসম কছাৰী যুৱক সন্মিলনীৰ মুখপত্ৰ ৰাইজত কীৰ্তিনাথ খাখলাৰীয়ে উল্লেখ কৰিছে এনেদৰেঃ আজি শুভক্ষণত সকলো ৰাইজক সেৱা জনাই ৰাইজক ৰাইজৰ আগত দাঙি ধৰিলোঁ। ঘোৰ দুৰ্দ্দিনত ৰাইজৰ জন্ম। যি সংকল্প লৈ ৰাইজৰ জন্ম তাৰ পৰা যাতে পিছলি নপৰে তাৰ হৈ ৰাইজ সদায় চেপ্তাত থাকিব। বৰ্তমান দেশত সাম্প্ৰদায়িকতা থকাটো অতি অবাঞ্ছনীয়। যদিও ৰাইজ অসমৰ বিৰাট পিছ পৰা সম্প্ৰদায়ৰ সহায় লৈ জন্ম লৈছে তথাপি ইয়াৰ উদ্দেশ্যে সাম্প্ৰদায়িকতাক পোষণ কৰা নহয়।

সদৌ অসমৰ ৰাইজৰ উন্নতিৰ অৰ্থে চেপ্তা কৰাটোহে ইয়াৰ ঘাই উদ্দেশ্য। মুছলমান, উচ্চ, হিন্দু, তলখাপৰ, হিন্দু, পিছ পৰা সম্প্ৰদায়, পৰ্বতীয়া জাতি ইত্যাদি এই সকলোবিলাক মিলিয়েই বৰ্তমানৰ অসমীয়া জাতি। এওঁবিলাকৰ ভিতৰত যিকোনো এটা দলক এৰি অসমীয়াই কোনো কামেই কৰিব নোৱাৰে। হিন্দু হওক, মুছলমান হওক, ওখ হওক, তল হওক, পিছ পৰা বা পৰ্বতীয়া হওক ওখ হওক সকলোৱেই অসমৰ মাটিত জন্ম লৈ অসমৰেই জলবায়ুত ডাঙৰ দীঘল হৈছে। অসম দেশক ভাল পোৱা আৰু অসম দেশৰ ভাল কৰাত সকলোৰে জন্মগত অধিকাৰ আছে। দেশৰ আৰু অসমীয়া জাতিৰ যদি ভাল কৰিবলগীয়া হয় তেন্তে সকলোৱে মিলি কৰাটোৱেহে উচিত।

অসম কছাৰী যুৱক সন্মিলনী ভঙ্গ কৰি ১৯৩৩ চনত এটা ৰাজনৈতিক সংগঠন 'অসম ট্ৰাইবেল লীগ' গঠন কৰা হয়। এই ট্ৰাইবেল লীগ প্ৰতিষ্ঠাৰ লগে লগে জনজাতীয় ৰাজনীতিয়ে নতুন গতি লাভ কৰিলে। এই সময়ছোৱাত জনজাতীয় জাগৰণৰ দ্বিতীয় পৰ্য্যায় বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি। ইয়াৰ প্ৰধান উদ্যোক্তা আছিল যাদৱ চন্দ্ৰ খাখলাৰী আৰু ভীমবৰ দেউৰী। তেতিয়াৰ পৰাই অসমত সামাজিক সংগ্ৰামৰ ঠাইত ৰাজনৈতিক সংগ্ৰাম আৰম্ভ হ'ল। এই 'অসম

ট্ৰাইবেল লীগ' ট্ৰাইবেল সংঘ হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা কৰা হৈছিল ১৯৫২ চনত। ট্ৰাইবেল লীগৰ পৰা ট্ৰাইবেল সংঘৰ যাত্ৰাৰ অন্তৰালটো বহুতো কাহিনী জড়িত হৈ আছে। গতিকে আলোচনী প্ৰকাশৰ পৰা আৰম্ভ কৰি সমাজৰ সমস্যা দূৰীকৰণ, কু-সংস্কাৰ আঁতৰ কৰা লগতে বিশেষকৈ জনজাতীয় লোকসকলৰ উন্নতিৰ ক্ষেত্ৰত ডাঙৰী কছাৰী যুৱ সম্মিলনীৰ অৱদান গুৰুত্ব পূৰ্ণ। অসমৰ জনজাতীয় স্বৰ্গত আগবাঢ়ি অহা সমগ্ৰ ডাঙৰীৰ লোকসকলেই প্ৰশংসাৰ পাত্ৰ।

#### সামৰণি :

অসমৰ নামনি অঞ্চলত যদি বিংশ শতিকাৰ প্ৰথম ভাগত জনজাতীয় বৌদ্ধিক জাগৰণে গা কৰি উঠিছিল তাৰ সমান্তৰালকৈ উজনি অসমৰ ডাঙৰীত জনজাতীয় বৌদ্ধিক জাগৰণৰ আৰম্ভ হৈছিল। প্ৰধানকৈ শিক্ষাৰ প্ৰচাৰ, জনজাতীয় সকলৰ সমস্যা, একাংশ জনজাতীয় মধ্যবিত্ত

লোকৰ উত্থান, আধুনিক শিক্ষাৰ প্ৰসাৰ আদি কাৰকে জাগৰণত বিশেষ প্ৰভাৱিত কৰিছিল। এই জাগৰণে জনজাতীয় লোকসকলক নিজৰ অধিকাৰ তথা নিজৰ প্ৰাপ্যৰ বাবে সংগ্ৰাম কৰাৰ এক বাট মুকলি কৰিলে। শিক্ষাৰ লগে লগে ডাঙৰীত সাহিত্য চৰ্চাৰ এক বাতাবৰণ সৃষ্টি হৈছিল। আলোচনী প্ৰকাশ কৰাৰ লগতে উপন্যাস, গল্প, নাটক ৰচনা কৰা হৈছিল। সাহিত্যৰ লগতে ডাঙৰীত নাট্য চৰ্চা আৰু সংগীত চৰ্চাৰ জৰিয়তে সকলো লোকক শিক্ষাৰ দিশত আগবাঢ়াই নিয়াৰ চেষ্টা কৰা হৈছিল। নামঘৰৰ লগতে সংঘবিলাক আছিল ডাঙৰী অঞ্চলত সকলো লোক একত্ৰিত হোৱাৰ এক মাধ্যম। নামঘৰতেই নিজে নাট ৰচনা আৰু পৰিচালনা কৰি পৰিৱেশন কৰা হৈছিল। গতিকে জনজাতীয় লোকসকলৰ উত্তৰণত *ডাঙৰী কছাৰী যুৱ সম্মিলনী* আৰু *অসম কছাৰী যুৱ সম্মিলনী*ৰ অৱদান উল্লেখনীয়। □

#### সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- দাস, বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ। *কছাৰী জাতিৰ ইতিবৃত্ত*। প্ৰথম প্ৰকাশ। মে ১৯৪৬।  
 দাস, মুনীন্দ্ৰ। *অসমৰ নৃগোষ্ঠীয় উত্তৰণৰ ইতিহাস*। প্ৰথম প্ৰকাশ। বনলতা, ডিচেম্বৰ ২০২০।  
 দাস, মুনীন্দ্ৰ। *বড়োৰ উত্তৰণৰ ইতিহাস*। প্ৰথম প্ৰকাশ। বনলতা, ডিচেম্বৰ ২০১৮।  
 পাটগিৰি, নৰেন; শৰ্মা খটনিয়াৰ, দিব্যৰঞ্জন; লাহন, ধৰণী (সম্পা.)। *আধুনিক অসমীয়া চিন্তা*। প্ৰথম প্ৰকাশ। বান্ধৰ, জানুৱাৰী ২০২১।  
 বৰুৱা, নিৰোদ কুমাৰ। *এজন সত্যাপ্ৰহীৰ ৰাজনীতি গোপীনাথ বৰদলৈ আৰু আসাম, তেতিয়া আৰু এতিয়া*। দ্বিতীয় প্ৰকাশ। ভৱানী বুকছ প্ৰাইভেট লিমিটেড, নৱেম্বৰ ২০২৪।  
 বৰ্মন, শিৱনাথ। *অসমৰ জনজাতি সমস্যা*। প্ৰথম প্ৰকাশ। বনলতা, ফেব্ৰুৱাৰী ১৯৯৫।  
 সোনোৱাল দেউৰী ভড়ালী, আইমানু (সম্পা.)। *ডাঙৰী উচ্চতৰ মাধ্যমিক বিদ্যালয়ৰ ইতিহাসৰ বেঙণি আৰু অন্যান্য ৰচনা*। প্ৰথম প্ৰকাশ। নিজৰা সোনোৱাল, বিৰাজ কুমাৰ সোনোৱাল, আইমানু সোনোৱাল দেউৰী ভড়ালী, মে ২০১৬।  
 সোনোৱাল, মোহন; সোনোৱাল, গুণেশ্বৰ (সম্পা.)। *সোনোৱাল কছাৰীৰ সমাজ আৰু সংস্কৃতি*। প্ৰথম প্ৰকাশ। সোনোৱাল কছাৰী স্নায়ত্ত্ব শাসিত পৰিষদ, ২০২০।  
 সোনোৱাল, লবৰাম; সোনোৱাল, কল্পজিৎ (সম্পা.)। *সোনোৱাল কছাৰীৰ ঐতিহ্য আৰু সমল*। প্ৰথম প্ৰকাশ। প্ৰতিমা লাহন সোনোৱাল, জানুৱাৰী ২০২১।  
 হাজৰিকা, ৰতন; শইকীয়া সোনোৱাল, ৰবীন (সম্পা.)। *সোনোৱাল সম্ভাৰ*। প্ৰথম প্ৰকাশ। সোনোৱাল কছাৰী স্নায়ত্ত্ব শাসিত পৰিষদ, মাৰ্চ ২০২৩।  
 হোছেইন, ইছমাইল। *অসমৰ জনগোষ্ঠীয় ঐতিহ্য আৰু সাম্যবাদী আন্দোলন*। প্ৰথম প্ৰকাশ। পাঞ্চজন্য বুকছ, আগষ্ট ২০১৮।

## लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कराकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अतः भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2500 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फॉन्ट, 12 प्वाइंट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होगा।
- शोधपत्र में क्रमशः शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

## द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....



### सदस्यता शुल्क

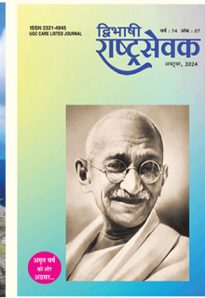
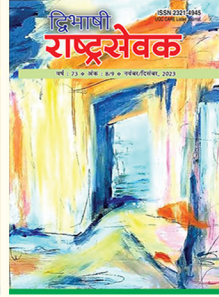
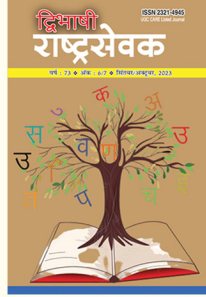
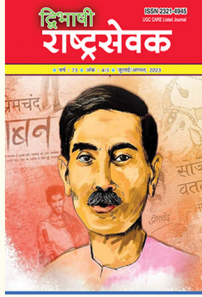
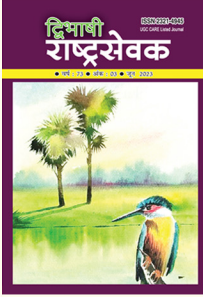
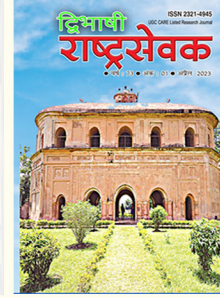
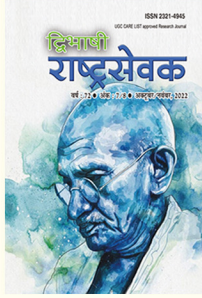
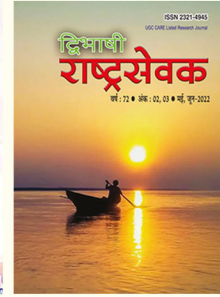
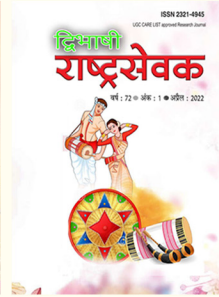
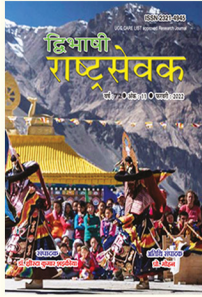
व्यक्तिगत		संस्थागत	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑर्डर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti  
A/c No. : 551802010004619  
Name of Bank & Branch : Union Bank of India, Hatigaon Chariali, Disa,ur-781038  
IFS Code : UBIN0555185

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com



संपादकीय कार्यालय :  
 प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032  
 🌐 arpsguwahati.com ✉️ rastrasewak51@gmail.com 📞 9101541395/9101541380